RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 10, अंक : 20, जुलाई–दिसम्बर 2017

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 10 अंक : 20 जुलाई–दिसम्बर 2017

प्रधान सम्पादक

मनोज कुमार

पूर्व सदस्य, उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड, इलाहाबाद (उ. प्र.)

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

अध्यक्ष – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226 017 (उ. प्र.)

सम्पर्क – 09415924888, 07607782917

Email : dr.virendrayadav@gmail.com • Email : virendra_kritika@rediffmail.com

Email : kritika_orai@rediffmail.com

Webside : www.kritika.org.in

सह–सम्पादक

नीलम यादव

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ – 226 017

प्रबन्धन

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152– सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208 006, उ.प्र.

दूरभाष – 09935007102

Email : aradhanabooks@rediffmail.com

Webside :www.kritika.org.in

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 10, अंक : 20, जुलाई–दिसम्बर 2017

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 10 अंक : 20 जुलाई–दिसम्बर 2017

सामान्य अंक	:	60.00 रुपये	
इस अंक की सहयोग राशि	:	400.00 रुपये	
यू. एस. 25 $		यूरो 40 $	
व्यक्तिगत सदस्यों के लिये			
वार्षिक सदस्यता	:	300 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	3000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	6500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
संस्थाओं के लिये			
प्रति अंक	:	500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
वार्षिक सदस्यता	:	1000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	5000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	10000 रुपये	(डाक व्यय सहित)

विषेष : सभी भुगतान नकद/आर.टी.जी.एस./बैंक ड्राफ्ट/चेक 'सम्पादक कृतिका' के नाम Payable at Lucknow भेजें। नकद जमा (R.T.G.S.) हेतु भारतीय स्टेट बैंक – मुख्य शाखा लखनऊ के A/C 30358537228 IFSC No. - SBIN0000125 में जमा कर सकते हैं। (नकद जमा हेतु बैंक कमीशन 50 रु. अतिरिक्त जमा करें।)

☞ विधिक वादों के लिये क्षेत्र, उरई न्यायालय के अधीन होंगे।

☞ कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।

☞ शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मंडल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व प्रबंधन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) से प्रकाशित।

सम्पादक–डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 10, अंक : 20, जुलाई–दिसम्बर 2017

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 10 अंक : 20 जुलाई–दिसम्बर 2017

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

नीलम यादव

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.–226017
सम्पर्क – 07607782917, 09415924888
Email : dr.virendrayadav@gmail.com • Email : virendra_kritika@rediffmail.com
Email : kritika_orai@rediffmail.com • http://kritika-shodh.blogspot.com
www.kritika.org.in

प्रबन्धन

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152– सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर–208 006, उ.प्र.
दूरभाष – 09935007102
Email : aradhanabooks@rediffmail.com • Email : kritika_orai@rediffmail.com

क्षेत्रीय प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. सुरेन्द्र कुमार सिंह
म.नं. नन्दन सदन ।। फ्लोर, शेरशाह रोड
शकरी गली, पो.आ. गुलजार बाग
पटना–822101 (बिहार)
सम्पर्क–09279211509, 09334626350
Email : drsurendra25@gmail.com

डॉ. सुरेश एफ. कानडे
प्लाट नं. 48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी,
विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर,
गंगापुर रोड, नासिक 422013 (महाराष्ट्र)
सम्पर्क–09422768141
Email : sureshkande2009@rediffmail.com

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 10, अंक : 20, जुलाई–दिसम्बर 2017

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृत अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस शोध पत्रिका का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ–साथ सात समुन्दर पार यू. एस. ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निदेशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो; बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर उपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर समय–समय पर कृतिका परिवार विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकालता है जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका में एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकर्मियों को समय–समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- ☞ कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- ☞ मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जाती हैं।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें, पुस्तक का संदर्भ, पत्र–पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- ☞ कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- ☞ कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- ☞ स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियों के साथ लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- ☞ किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- ☞ कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भलीभाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- ☞ रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा कृति देव 10 में 14 फान्ट साइज में MS-Word Software में टाइप करके ई–मेल करें या साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।

— संपादक कृतिका

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वर्ष : 10, अंक : 20, जुलाई–दिसम्बर 2017

देश–देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 10 अंक : 20 जुलाई–दिसम्बर 2017

अनुक्रमणिका

	शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
	सम्पादकीय......		i-iii
	ज्वलंत प्रश्न		
1.	समावेशी विकास और समाज	डॉ0 उत्तरा यादव	01
2.	शहरीकरण : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण	अमित सोनी	08
3.	भारतीय विदेश नीति के निर्धारक तत्व के रूप में व्यक्तित्व की भूमिका–एक अवलोकन	मनोज कुमार यादव	13
4.	शुद्ध जल के स्रोतों का ह्रास	मृदुलता सोनकर	17
5.	भारत की आस्था और श्री हैण्ड्रेड रामायनाज एवं दिल्ली विश्वविद्यालय	डॉ0 नीरज कुमार सिंह, डॉ0 गायत्री सिंह	22
6.	उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति एवं महत्व	शिल्पी श्रीवास्तव डॉ0 पी. पी. गोस्वामी डॉ0 अवधेश कुमार श्रीवास्तव	25
7.	इक्कीसवीं सदी में ई–गवर्नेंस के समक्ष चुनौतियाँ एवं सुझाव	डॉ0 निर्भय सिंह	31
8.	शिक्षक प्रशिक्षण के स्ववित्तपोषित व अनुदानित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन	डॉ0 सरोज यादव, दीपांजलि यादव	35
9.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण संरक्षण एवं सतत् विकास	डॉ0 निरपेन्द्र कुमार सिन्हा	39
10.	दलित विमर्श के साहित्यिक–संदर्भ	डॉ0 विवेक सिंह	44
11.	उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में	डॉ0 अलका दीक्षित	48

आधी दुनिया, कल, आज और कल

12.	सामाजिक परिवर्तन के दौर में ग्रामीण महिलाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन	धर्मेन्द्र सिंह यादव	53
13.	प्रतिरोध की पहली कविता का जन्म काल	सोनी पाण्डेय	61
14.	राजनीति में महिलाएँ–सशक्तिकरण का अधूरा सफर	डॉ0 गुलाब मीना	64
15.	महाभारत में स्त्री और पुरुष का यथार्थ : अम्बा के सन्दर्भ में	डॉ0 बबिता सिंह	68
16.	तीन तलाक के आइने में मुस्लिम महिलाएँ	डॉ0 रणविजय सिंह	72

साहित्य के समकालीन सरोकार

17.	भारत में वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली विकास की यात्रा	डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव	76
18.	राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय चेतना	डॉ0 मोहम्मद इकबाल सिद्दकी	81
19.	स्त्री–विमर्श : वर्तमान कथा साहित्य के संदर्भ में	डॉ0 सविता मसीह	86
20.	किसान व मजदूर की त्रासद गाथा : गोदान	डॉ0 धनंजय सिंह	94
21.	दलित साहित्य की कविताओं में प्रतिरोधी मूल्य	डॉ0 कमलेश सिंह नेगी	101
22.	दलित आंदोलन एवं मानवाधिकार	डॉ0 अनुपमा यादव	107
23.	श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित उपासना का स्वरूप एवं भक्ति साहित्य पर उसका प्रभाव	डॉ0 नीरज कुमार सिंह	111
24.	वर्तमान समय में गीता की प्रासंगिकता का विभिन्न धर्मों से तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. पुष्पा देवी	116
25.	श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा का स्वरूप और निष्कामकर्म	डॉ. बदलू राम शास्त्री	120
26.	विखंडनवादी विमर्शों के दौर में उम्मीदों की कविता	डॉ0 ललिता यादव	125
27.	अंजना संधीर कृत कविता संग्रह 'अमरीका हड्डियों में जम जाता हैं' में चित्रित प्रवासी भारतीय जीवन	डॉ0 सुनीता शर्मा	132
28.	ध्वनिशास्त्र–एक समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ0 अनुभा बाजपेयी	142
29.	अवधी के अमरग्रन्थ श्री रामचरितमानस में जीवनमूल्य	डॉ0 रानी अग्रवाल, डॉ0 अलका द्विवेदी	146
30.	कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा 'लगता नहीं दिल मेरा' में संघर्ष और सशक्तीकरण	डॉ0 निशा भदौरिया	151
31.	रूप सिंह चन्देल के उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना	डॉ0 ममता पाण्डेय	155
32.	'सुख क्या है ?' निबन्ध में व्यक्त बालकृष्ण भट्ट के विचारों का अवलोकन	डॉ0 नीतू सिंह	158
33.	कालिदास के साहित्य में लोककल्याण की भावना	डॉ0 आशारानी पाण्डेय	161
34.	मोहन राकेश की नाट्य कला : आधे–अधूरे के विशेष संदर्भ में	डॉ0 सदन कुमार पाल	166
35.	महादेवी का काव्य : विरह का जलजात	डॉ0 कमल प्रभा कपानी	171

36. प्रयोगवाद और गिरिजाकुमार माथुर — डॉ0 शुभा बाजपेयी — 179
37. गाँधी दर्शन में रामराज्य की अवधारणा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन — डॉ0 जय सिंह — 183
38. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में वैदिक सूर्य विज्ञान की प्रासंगिकता — डॉ0 रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी — 186

भारत की लोक संस्कृति

39. लोक गीत का स्वरूप — सीमा खान, डॉ0 हेमा देवरानी — 189
40. बुन्देलखण्ड के लोक देवी देवता — सुरेन्द्र खरे — 195
41. सरबंगी : मानव और समाज — डॉ0 ब्रजभूषण राजेश — 198

भारत के नवनिर्माण में अग्रज पीढ़ी का योगदान

42. कबीर नवजागरण के अग्रदूत : एक अवलोकन — डॉ0 शम्स आलम — 201
43. लोकतंत्र की आधुनिक अवधारणा का सच : विनोबा भावे की दृष्टि में — डॉ0 इन्द्रमणि — 206
44. डॉ0 राम कमल की नजर में 'लोहिया का व्यक्तित्व' — डॉ0 सियाराम — 209
45. वर्तमान काल में आचार्य नरेन्द्रदेव के विचारों की उपयोगिता — डॉ० अंजु अवस्थी — 214
46. शिवपूजन सहाय : व्यक्तित्व–कृतित्व के विविध आयाम — डॉ0 कमलेश सिंह — 216
47. यतीन्द्रनाथ राही का काव्य सृजन और सामाजिक सरोकार — डॉ0 प्रतिमा यादव — 219
48. लेखिका ममता कालिया के कथा साहित्य में सामाजिक मूल्य — रश्मि कुमारी — 222
49. डॉ0 रामकमल राय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विविध पक्ष — डॉ. सन्ध्या शर्मा — 224

पुस्तक समीक्षा खण्ड

❖ स्वामी विवेकानन्द और राष्ट्रवाद — डॉ0 आशुतोष पाण्डेय — 231
❖ मुक्तिबोध के साहित्य में मानवीय संवेदना और संघर्ष — डॉ0 अलका द्विवेदी — 232
❖ महात्मा गाँधी : विचार और मूल्यांकन — डॉ0 हरिनिवास पाण्डेय — 233
❖ समावेशी भारत और शिक्षा — डॉ0 सुरेश एफ. कानडे — 234
❖ किन्नर विमर्श साहित्य के आइने में — डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव — 235
❖ अज्ञेय का कथा साहित्य : नारी मानसिकता के आयाम — डॉ0 शिवशंकर यादव — 236
❖ शंख घोष की चयनित कविताएँ — डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव — 237
❖ भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त — डॉ0 हेमा देवरानी — 238

सम्पादकीय....

किसी समाज को व्यवस्थिति रूप से चलाने के लिए लोकतांत्रिक नियमों का निर्धारण एवं पालन करना आवश्यक होता है। वेदों में भी राजा, सभा, समिति, राजा का चुनाव उसका पदच्युत होना एवं पुनः सिंहासना रूढ़ किया जाना इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है। समाज में प्रचलित छल, छद्म, दमन, क्लेश आदि से छुटकारा पाने के लिए एक स्वस्थ लोकतंत्र की आवश्यकता होती है। इस तरह से देखा जाए तो लोकतंत्र समाज में व्यवस्था कायम करने वाली एक सहज प्रक्रिया होती है। लेकिन आज राजनीति का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया है। इसमें कोई दो राय नहीं कि जहाँ–जहाँ समाज होगा वहाँ–वहाँ उस समाज विशेष की राजनीति भी होगी। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में शासन का संचालन अप्रत्यक्ष रूप से जनता के हाथों में होता है इसलिए जीवन की वर्तमान प्रक्रिया में आज राजनीति अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गई है। यही कारण है कि राजनीतिक चेतना हमारे समय का मुख्य स्वर बन गई है । आज राष्ट्रों की सीमाएँ टूट रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शासन तन्त्र की बात चल रही है, फिर भी युद्ध की विभीषिका से प्रत्येक व्यक्ति अपने भविष्य के प्रति आशंकित है। कहीं व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय अवसरों से उत्साहित हैं तो कहीं विनाश से आतंकित। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में राजनीतिक परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। राजनीति में होने वाले (मूल्यों, आदर्शों, सिद्धान्तों एवं प्रतिमानों के) बदलाव को नई शताब्दी में तेजी से अभिव्यक्ति प्रदान की है।

औद्योगिक दृष्टि से भी भारत ने पर्याप्त उपलब्धियाँ अर्जित की हैं। विकासशील राष्ट्र होते हुए भी देश ने अनेक उद्योगों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। बदलते औद्योगिक परिवेश के कारण भारतीय दर्शन में परिवर्तन आया है और शिक्षा की व्यवस्था उद्योगों से सम्बंधित पाठ्यचर्या का संचालन कर रही है। उच्च शिक्षा में कुछ व्यावसायिक एवं औद्योगिक विशयों का समावेश किया गया है। आर्थिक दृष्टि से आज का भारत मजबूत इरादो वाला विशाल जनतंत्र है जो एक शानदार भविश्य की ओर इशारा कर रहा है। हमारा देश बड़े–बड़े खजानों को देश है और इसमे ईश्वर की दी हुई हर नेमत है। आप किसी भी चीज का नाम ले वह भारत मे मौजूद है।

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। आज भारत विज्ञान के क्षेत्र में अपना विशिश्ट स्थान रखते हुए इस क्षेत्र में अनेकों उपलब्धियाँ हासिल करने में सफल रहा है। भारतीय दर्शन में उदारवादिता को प्रमुख स्थान प्राप्त है। अतः यही कारण है कि हमारे राश्ट्र ने विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में महारत हासिल की है किन्तु हमारा ध्येय किसी को भी नुकसान पहुचाना नही है। हम अपने उदारवादी दर्शन का अनुकरण करते हुए अपनी सुरक्षा की दृश्टि से वैज्ञानिक उपकरणों एवं अनुसंधानो को अग्रसर कर रहे है न कि किसी पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की दृश्टि से। इसलिए वर्तमान समय को 'अल्ट्रा इन्फारमेशन टेक्नोलॉजी' का युग भी कहा जाता है। इन दिनों विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी का असाधारण विकास–विस्तार हुआ है। इसके साथ ही सुविधा–साधनों की भी अतिशय अभिवृद्धि हुई है। विराट् दुनिया कमरे के एक कोने में रखे एक स्क्रीन पर सिमटकर रह गई है। इसीलिए आज दुनिया को 'ग्लोबल–विलेज' कहा जाने लगा है। इतना सब होते हुए भी आश्चर्य की बात यह है कि लोगों में से अधिकांश खिन्न, विपन्न, उद्विग्न और अस्वस्थ पाये जाते हैं। यही आधुनिक जीवन की ज्वलन्त समस्या है। हमने आज भौतिक विकास के पैमाने और मापदण्डों को पीछे छोड़ दिया है पर इस तथाकथित भौतिक प्रगति में हमारी स्थिति बड़ी ही हास्यास्पद हो गई है। हमारा बाह्य जीवन तो 'हाईटेक' हो गया है परन्तु वैचारिक स्तर पर हम अभी भी दिग्भ्रमित हैं। सर्वहारा और सम्पूर्ण प्रगति के लिए आज हमें भौतिक विकास के साथ–साथ आन्तरिक विकास की ओर भी दृष्टिपात करना होगा।

भारतीय दर्शन मानवता की गंगोत्री है। भारतीय दर्शन विचार औषधि है। इसमें करूणा का रंग है जो मानवता का श्रृंगार करता है। एकात्मकता का सूत्र है जो अभेदता की नींव रखता है। इसमें सकारात्कता के बीज हैं जो

विश्वास, आस्था, आशा और आहलाद को जन्म देता है। इसमें ज्ञान–कर्म भक्ति की त्रिवेणी है जो मानव के समस्त संताप का शमन कर जीवन में आनन्दानुभूति प्रदान करती है। इसकी विचार शक्ति ने भौतिकता से ग्रस्त और त्रस्त पाश्चात्य समाज को अपनी ओर खींचकर अपनी सार्थकता का बोध कराया है। भारतीय दर्शन शांति–संतोश का उपवन है जहाँ विचारों की शीतल बयार और तृप्ति का मीठा फल जीवन को प्राप्त होता है। भारतीय दर्शन के अनुसार स्वस्थ रहने के लिए योग को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है और प्राकृतिक तत्वों से चिकित्सा प्रक्रिया को उन्नत करने का प्रयास किया जा रहा है। राजनीति के क्षेत्र मे भारतीय दर्शन को देखें तो भारत लोक तंत्रात्मक राश्ट्र के रूप मे जाना जाता है कि और इसी आधार पर देश की राजनीति का संचालन किया जाता है। राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्रता, समानता और मुक्त अभिव्यक्ति का अधिकार प्राप्त है और अपराधियों को सुधारात्मक रूप से दण्ड देने का प्रावधान है।

आधुनिक जीवन में तनाव, उन्नति व समृद्धि का मुख्य प्रतिरोधक बनकर सामने आ खड़ा हुआ है जो आधुनिक जीवनक्रम में मानवीय क्षमताओं को लीलता, निगलता चला जा रहा है। अस्त–व्यस्त जीवनशैली, सहयोग–सहकार की नीति का अभाव, प्रतियोगिता से भरी हुई जीवनदृष्टि, महत्त्वाकांक्षाओं का भारी बोझ–इन सबने मिलकर तनाव की तीव्रता को बढ़ा दिया है। हर व्यक्ति सुख की तलाश में है परन्तु कोई विरला ही होता है जो अपने सुख की चिरपिपासा को तृप्त कर पाता हो। मानव जीवन के मर्मज्ञ ऋषियों के अनुसार यह मानव जीवन की चरम नियति नहीं है। यह तो उसकी आत्मपूर्णता की स्थिति में उपलब्ध होने वाले आनन्द, शान्ति एवं चरम सुख की अवस्था है, जो उसके जीवन का चरम ध्येय है। यद्यपि इस ध्येय को पाने के लिए सभी विवेकशील व्यक्ति अपनी कृति, रूचि, बुद्धि के अनुसार तरह–तरह के साधनों का आश्रय लिया करते हैं। प्राचीन ऋषि–महर्षियों ने इसके लिए जप, तप, उपासना, भक्ति, कर्मकाण्ड आदि अनेक मार्गों का विधान पात्रभेद के अनुसार किया है, पर इन सबको आत्मोत्थान की निचली सीढ़ियाँ ही माना गया है। इनसे मनुष्य सांसारिक जीवन में उन्नति करके सुख और सफलता पा सकता है और देह त्याग के पश्चात् स्वर्गप्राप्ति की आशा भी रख सकता है। परन्तु सच्चा ज्ञान प्राप्त करके आत्मा के अन्तिम लक्ष्य कैवल्य या मोक्ष के परमानन्द की प्राप्ति के लिए इनसे कहीं अधिक उच्च श्रेणी के साधनों की आवश्यकता होती है। योग–मार्ग ऐसे ही साधनों में से अन्यतम है। अन्य साधन मार्गों की अपेक्षा इसकी बहुत बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ अन्य मार्ग केवल विचारात्मक अथवा कुछ सिद्धान्तों की विवेचना मात्र हैं, वहाँ 'योग–दर्शन' पूर्णतः क्रियात्मक है। इसकी सत्यता तथा यथार्थता का अनुभव प्रत्येक अभ्यासी स्वयं कर सकता है। यह केवल ईश्वर प्राप्ति का मार्ग ही नहीं बतलाता, बल्कि आसन, यम, नियम और ध्यान की विधियों को बतलाकर हमारे शरीर को शक्तिशाली,मन को पवित्र तथा चित्त को एकाग्र बनाता है। यदि संसार में शरीर तथा मन दोनों को स्वस्थ बनाने वाला और साथ ही मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला कोई दर्शन है तो वह 'योग–दर्शन' ही है। यह सब बदलते हुए दर्शन का परिणाम है। चिकित्सा के क्षेत्र में भी दर्शन का महत्वपूर्ण योगदान है। वर्तमान में योग गुरू रामदेव जी ने चिकित्सा के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान प्रदान किया है।

नूतन सहस्राब्दि के आधुनिक भूमण्डलीकरण युग में किसी भी राष्ट्र के लिए उसके भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का अत्यन्त महत्व है। वस्तुतः भौतिक एवं मानवीय संसाधन ही किसी राष्ट्र को आग्रणी बनाने में सक्षम है। कोई भी राष्ट्र तभी उन्नति कर सकता है, जब उस राष्ट्र के सभी नागरिकों को विकास में सर्वोत्तम अवसर प्राप्त हों तथा वे उनका लाभ उठाने में समर्थ हों। प्रत्येक मनुष्य के अन्दर कुछ जन्मजात शक्तियाँ निहित होती हैं, जिनके प्रस्फुटन से ही व्यक्तित्व का विकास होता है। विकास के आधुनिक युग में राष्ट्र की बौद्धिक सम्पदा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

मानव जीवन के उत्थान एवं विकास के लिए शिक्षा सबसे उपयुक्त एवं सशक्त साधन है; जो समाज, राष्ट्र एवं संस्कृति को परिवर्द्धित एवं परिष्कृत करती है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का अधिकतम

विकास करके उसके ज्ञान बोध व कौशल में वृद्धि की जाती है। शिक्षा एक ओर जहाँ व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करके उसकी व्यक्तिगत उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है, वहीं दूसरी ओर वह उसे समाज का एक महत्वपूर्ण व उत्तरदायी सदस्य तथा राष्ट्र का एक सुयोग्य, कर्तव्यनिष्ठ व सजग नागरिक भी बनाती है। आज बालकों के विकास के लिए इस प्रकार की शिक्षा का प्रावधान किया जा रहा है कि उनका सर्वांगीण विकास हो सके। इसी कारण रूसो के प्रकृतिवादी दर्शन और फ्राबेल की किण्डरगार्डेन पद्वति का अनुकरण किया जा रहा है। जिससे बालक उचित अनुचित में स्वयं अन्तर करके स्वअनुशासित रहकर शिक्षा प्राप्त करे। इसी आधार पर आज बालकों को शिक्षा प्रदान की जा रही है। शिक्षा मानवीय मूल्यों का निर्माण कर जगत के समस्त प्राणियों एवं वनस्पतियों में मानव को श्रेष्ठ ही नही बनाती वरन् उसे सबके संरक्षक एवं स्वामित्व का भार भी प्रदान करती है, और इन्ही नैतिक गुणो से युक्त मानव ही वास्तविक मनुष्य की श्रेणी में आता है।

एक अच्छे शोधकर्ता को सबसे पहले अपने आस–पास एवं वातावरण में हो रहे परिवर्तन को देखना चाहिए, फिर विचार करना चाहिए कि प्रस्तुत समस्या जनसामान्य के लिये कितनी उपयोगी और हानिकारक हो सकती है व्यापकता एवं उपयोग की दृष्टि से। तभी उसे कलम उठानी चाहिए क्योंकि समस्या पैदा करना एक शोधकर्ता /सृजनशील व्यक्ति का काम नहीं बल्कि समस्या से रूबरू कराना और उसका कैसे समाधन किया जाये जो सम्पूर्ण मानवता के लिये उपयोगी हो। यह सब विषय उसके लेखन में/शोध में उजागर होने चाहिये तभी उस लेखन की उपादेयता एवं उस लेखक को समाज का पथ प्रदर्शक कहा जायेगा।

कृतिका के नियमों के अनुरूप वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर विषय–विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक निकालना सुनिश्चित है। विषय–विशेष पर केन्द्रित अंक को ध्यान में रखते हुये हम कृतिका का जुलाई–दिसम्बर 2018 का अंक समाजवादी चिंतक और साहित्यकार डॉ0 रामकमल राय की सृजन–धर्मिता के रूप में केन्द्रित करने जा रहे हैं।

इस विषय पर विस्तृत सूचना पत्रिका के अन्दर के पृष्ठों एवं अन्त के कवर पृष्ठ पर अंकित है। कृपया प्रमुख बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुये अपने गम्भीर अध्ययन से सम्बन्धित शोधपरक एवं मौलिक रचना सामग्री भेजकर सहयोग प्रदान करने की कृपा करें।

— सम्पादक मण्डल

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

समावेशी विकास और समाज

डॉ0 उत्तरा यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–समाजशास्त्र विभाग
महिला पी. जी. कालेज, अमीनाबाद, लखनऊ

किसी समाज के भीतर शारीरिक उपस्थिति बृहत्तर सामाजिक समावेशन की गारंटी नहीं है। गतिविधियों में भाग लेने और स्थानीय सुविधओं का उपयोग करने से जरूरी नहीं है कि समाज की मुख्यधारा के साथ सार्थक समाजिक संपर्क हो। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में यह प्रावधान है कि प्रत्येक व्यक्ति को समाज के सांस्कृतिक जीवन में स्वतंत्र रूप से भाग लेने, कलाओं का आनंद लेने और वैज्ञानिक उन्नति और इसके लाभों में हिस्सा लेने का अधिकार है (अनुच्देद 27 (1))। मनोरंजन और अवकाश गतिविधियाँ,लोगों की क्षमताओं के अनपेक्ष सभी के लिए जीवन शैली का एक महत्वपूर्ण आयाम है। हर किसी को कला का आनंद लेने का अधिकार है। हर किसी को खेल में भाग लेने का अधिकार है। सभी को होटल, रेस्तरां और बार में जाने का अधिकार है। सभी लोगों को, उनकी क्षमताओं पर ध्यान दिए बिना, सामाजिक गतिविधियों की पूरी श्रृंखला में भाग लेने का अभिगम, विकल्प और अवसर होना चाहिए।

परंपरागत रूप से, विकासात्मक दिब्यांगजनों को समाज के सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने के अधिकार के करास्तक में बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

कई लोगों के लिए यह विकल्प पृथक मनोरंजन और अवकाश तक सीमित हैं। जब अन्य अवसरों की पेशकश की जाती है, तो उनमें बड़े सार्वजनिक स्थानों (उदाहरण के लिए, मॉल, थियेटर, रेस्तरां) में दिब्यांगजनों का समूहीकरण शामिल होता है, जबकि सामुदायिक स्थानों में, जो सामाजिक संपर्क और संबंध के लिए वृहत्तर अवसर प्रस्तुत करते हैं, व्यक्तिगत भागीदारी के लिए बहुत कम सहायता की पेशकश की जाती है।

एकीकृत वातावरण में भाग लेने में लोगों की सहायता करने के लिए, कुछ सहायता या समायोजन प्रदान करना आवश्यक हो सकता है। सहायता में, ऐसी चीजं शामिल हैं जैसे शारीरिक रूप से व्यक्ति को गतिविधि का हिस्सा बनने में सहायता करना, और/अथवा सामाजिक बातचीत का एक हिस्सा बनने में उनकी सहायता करना। इसमें व्यक्ति को कोई विशिष्ट कौशल और सामर्थ्य हासिल करने, किसी गतिविधि के भाग या पूरे में अनुकूलन करने, और/अथवा अनुकूल युक्तियों और उपकरणों का उपयोग करने में मदद शामिल हो सकता है।

समावेशी सामाजिक जवीन के लक्ष्य – राज्य सरकारों, स्वयं सेवी संस्थाओं, बौद्धिक दिब्यांगताओं से प्रभावित से व्यक्तियों तथा उनके परिवारों के साथ मिलकर सामाजिक गतिविधियों में समावेशीकरण के लिये महत्वपूर्ण एवं प्रभावकारी परिवर्तन लाना।

समावेशी विकास का अप्राप्य उद्देश्य – अजकल, समावेशी विकास का लक्ष्य हमारी सरकारों की प्राथमिकता बन गया है। और इसको मीडिया में मिले कवरेज से ये शब्द इतना लोकप्रिय हो गया है कि इसे ज्यादातर सभी लोग जान गए है। इस बार मैने दूसरे पहलुओं पर भी गौर किया और चिंतन किया कि क्या समावेशी विकास के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है, या फिर ये एक योजनागत शब्दावली बना रह जाएगा और बुद्धिजीवी लोगों के लिए एक बहस मा माध्यम बनकर रह जाएगा।

समावेशी विकास – समावेशी विकास का सीधा मतलब ऐसा विकास होना चाहिए जो समानता की ओर ले जाए, जो समाजवाद की याद दिलाता है और यह उदारीकरण के इस दौर में अप्रासांगिक हो गया है। पर हम

समावेशी विकास का नाम अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति के विकास के नाम पर करते हैं तो हम इस अवधारणा से मुह कैसे मोड़ सकते हैं।

हम कुछ आर्थिक आंकड़ों पर गौर करते हैं। आर्थिक सर्वे का अध्ययन करने पर हम पाते है कि देश की अधिकांश जनसंख्या जो कृषि पर निर्भर है, की जीडीपी में भागीदारी केवल 13 प्रतिशत है और इस पर देश की 65 प्रतिशत जनसंख्या निर्भर है, इस प्रकार हम कह सकते है कि पैंसठ प्रतिशत जनसंख्या के पास केवल देश के 13 प्रतिशत संसाधन है। असमानता का पहला कारण तो यहीं से समझ आता है। और शेष बची जनसंख्या के पास ही देश के 85 प्रतिशत संसाधनों का कब्जा हैं। उनकें भी माना जाता है कि टॉप के 5 प्रतिशत लोग ही उनकी 95 प्रतिशत संसाधनों की हकदारी रखते हैं, इन सब के बाद हम यह भली–भांति अंदाजा लगा सकते है कि हमारे नीति–निर्माता किस प्रकार के समावेशी विकास की बात कर रहें हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि समावेशी विकास का तात्पर्य कदापि भी आर्थिक या सामाजिक समानता नहीं है। इसका मतलब केवल सबको उन विकल्पों तक पहुॅच प्रदान करना है जिनसे कि कथित तौर पर विकास के रास्ते पर चला जा सकता है। इसमें यह भी तय नहीं है कि उन विकल्पों की गुणवत्ता कैसी हैं। इसे हम इस तरीके से देख सकते हैं कि सरकार समावेशी विकास के नाम पर वो सुविधायें प्रदान करेगी जो लोगों की शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल विकास आदि पर जोर देता है।

नागरिकों की भूमिका – समावेशी विकास के सम्बन्ध में हम नागरिकों की भूमिका पर आते हैं, जो लोग कृषि क्षेत्र से तालुक रखते हैं, हम उनकी जीडीपी में कम भागीदारी से देख चुके हैं कि उनकी प्रति व्यक्ति आय उन लोगों से कम है जो कि उद्योग या फिर सर्विस में लगे हुए हैं।

साथ ही हमारे आर्थिक सर्वेक्षण के नतीजे यह रूझान दे रहें है कि इसमें और कमी होने की सम्भावना है, इस तरह मान सकते है कि काफी लोग बहुत ही कम आय के साथ गुजारा कर रहें है उनकी संख्या में इजाफा होने वाला हैं।

अब हम आते है मध्यम वर्ग पर जो किसी न किसी माध्यम से एक निश्चित आय प्राप्त कर रहा है, इस वर्ग के अगर सरकार से समाजिक सुरक्षा नहीं मिले तो इसकी हालत भी निम्न वर्ग की तरह ही है यह वर्ग सामाजिक तौर पर जागरूक रहने क कारण सभी सरकारी पहलों से लाभान्वित होने की क्षमता रखता है।

आय और समावेशी विकास – हम नागरिकों की भूमिका देख चुके है कि उनकी आय उनके द्वारा तय किये गये कार्यक्षेत्र पर निर्भर है। और हमने ये भी निष्कर्ष निकाला था कि अधिकतर लोगों की आय कम है। अब हम बात करते है इस अधिकतर जनसंख्या के जीवनयापन की।

इन्हें अपनी इस छोटी आय में से इस मंहगाई के जमाने में अपनी दैनिक जरूरत की चीजें जुटानी पड़ती है, यहां पर एक और विडम्बना है कि कृषि उत्पादों की कीमत बढ़ती नही है इसलिए उनकी आय वहीं है और उनके पास मंहगाई के कारण कम पैसे ही बचते हैं। इस प्रकार यह तय है कि उनकी क्रय शक्ति बढ़ने के बजाय कम हो रही है और ना ही वे गुणवत्ता वाली शिक्षा, चिकित्सा व्यवस्था प्राप्त कर रहें है इस प्रकार हम कह सकते है कि कृषि पर लोगों की निर्भरता रखकर समावेशी विकास के मकसद को भी प्राप्त नहीं किया जा सकेगा।

समावेशी भारत–एक रणनीति

1. रणनीतिक भागीदारी – इस पहल के लक्ष्य प्राप्त करने के लिये हम प्रमुख कर्ताओं और संगठनों के बीच नए संपर्क, संरचना, रिश्ते और सामुदायिक नेतृत्व सृजित करेंगे। बौद्धिक और विकासात्मक दिब्यांगजनों के क्षेत्र में काम कर रहें गैर सरकारी संगठन ''समावेशी भारत'' के मिशन के लिए प्राथमिक वाहन होंगे, हम उत्कृष्ट शैक्षणिक संस्थानों, सरकारी संगठनों, रोटरी, लायंस क्लब आदि जैसे सामुदायिक संगठनों के साथ रणनीतिक साझेदारी करेंगे। राष्ट्रीय न्यास समावेशी शिक्षा और समावेशी रोजगार के लिए मानव संसाधन विकास, पर्यटन, संस्कृति,

कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालयों के साथ मिलकर इन लक्ष्यों को पूरा करेगा। इस पहल में समावेशी खेल स्थल बनाने और एकीकृत खेलों के अवसर पैदा करने के लिए स्थान राज्य सरकारों, विशेषकर नगरपालिका निगमों को शामिल करेगा।

2. पारिवारिक नेटवर्किंग और स्व–अभिवक्ता – इस पहल के तहत समावेशीकरण से सम्बन्धित विषयों में परिवारों को शामिल किया जायेगा। राष्ट्रीय न्यास द्वारा करीब 1000 स्व–अभिवक्ताओं को समावेशी शिक्षा और समावेशी नियोजन के लिए प्रोत्साहित और उत्प्रेरित करने की योजना है।

3. नीतिगत वचनबद्धता – समावेशी भारत पहल, समावेशन सुनिश्चित करने के लिए विद्यमान नीति के विश्लेषण और प्रत्युत्तर, नई नीति या नीति विकल्पों पर ध्यान केन्द्रित करेगा। ''स्मार्ट सिटीज'' और ''डिजिटल इंडिया'' जैसे प्रमुख राष्ट्रीय अभियानों के साथ काम करके बौद्धिक दिब्यांगजनों का एकीकरण सुनिश्चित किया जाएगा। ''सर्व शिक्षा अभियान'', सी.बी.एस.ई. और एन.सी.ई.आर.टी. के साथ मिलकर स्कूलों को सुगम एवं समावेशी बनाया जाएगा।

4. संगठन प्रशिक्षण एवं ज्ञान नेटवर्किंग – इस पहल में वे गतिविधियाँ भी शामिल होंगी जिनमें नीति और व्यवहार से संबंधित नयी और/अथवा विद्यमान सूचना का संग्रहण, विश्लेषण और उपयोग पर फोकस हो। इसमें इस क्षेत्र (जैसे प्रकाशित रिपोर्ट, मीडिया, सामाजिक मंच इत्यादि) के प्रमुख कर्ताओं और हितधारकों के बीच सक्रिय और रणनीतिक ज्ञान और सूचना की साझेदारी और सामान्य रूप से समाज में जनजागरूकता बढ़ाना भी शामिल होगा।

समावेशी विकास और वैश्विक कार्ययोजना – भारत समावेशी विकास के लिए परस्पर प्रयासरत है। इस प्रयास को मजबूती देने के लिए भारत अपने पड़ोसी देशों एवं शेष विश्व से लगातार संबंध बेहतर करने के प्रयास कर रहा है। भारत की कूटनीति का ही प्रयास है कि उसे बहुपक्षीय सहयोग मिल रहा है। कुल मिलाकर राज्य इस रवैये के साथ आगे बढ़ रहा है कि समावेशी विकास के भारत के एजेडें के साथ अन्य देश भी तालमेल कर सके।

मई, 2014 में कार्यभार ग्रहण करने के बाद नई सरकार ने लंबी अवधि के नजरिए के साथ अभिनव पहल की एक श्रृंखला की घोषणा की । सरकार के अनेक कार्यक्रम जैसे 'मेंक इन इंडिया, स्किल भारत, स्मार्ट सिटी, बुनियादी ढ़ांचे का विकास, डिजिटल भारत, स्वच्छ भारत आदि प्रथम दृष्टया घरेलू एजेंडे का हिस्सा नजर आए लेकिन इन कार्यक्रमों की सफलता के लिए बाहरी आदानों जैसे विदेशी भागीदारी, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश, वित्तीय सहायता और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की आवश्यकत थी। भारत की कूटनीति ने इस चुनौती को स्वीकार किया और बहुत कम समय में सभी आवश्यकताओं को पूरा किया गया। अब भारत की विदेश नीति क्रियाशील एवं व्यवहारिक है। इसमें राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कूटनीति का समिश्रण है। यह विकास केंद्रित है। इसके केन्द्र में ऐसे बाहरी वातावरण का सृजन करना है जोकि देश के समावेशी आतरिक विकास के अनुकूल हो। यहाँ मंतव्य घरेलू ऐजेंडे की प्राथमिकताओं के साथ कूटनीतिक पहल को भी संश्लिष्ट करना है। इसके अतिरिक्त इन प्रयासों का लक्ष्य यह है कि विभिन्न देशों के बीच बढ़ते अविश्वास को दूर किया जाए, खासकर पड़ोसी देशों के साथ और विश्व भर में परस्पर सहयोग कायम करने हेतु मित्रता और समझदारी विकसित की जाए, साथ ही एक प्रभावशाली देश के रूप में विश्व स्तर पर भारत की मौजूदगी और दृश्यता बढ़ाई जाए।

भारत के दीर्घकालीन दृष्टिकोण पर अंतर्राष्ट्रीय भागीदारों की सहमति हासिल करने के लिए हमारी राजनीतिक–आर्थिक कूटनीतिक पहल को अच्छी प्रतिक्रिया मिली है। यहां हम जिन विषयों पर चर्चा कर रहे हैं, वे केवल सकारात्मक परिणामों का संकेत है।

देश में समावेशी विकास हेतु कूटनीति बुनियादी ढांचा और वित्त – गत् वर्ष अगस्त में प्रधानमंत्री की दुबई

यात्रा के दौरान संयुक्त अरब अमीरात ने भारत बुनियादी ढांचा निवेश कोष की घोषणा की गई थी। इस कोष ने भारत में बुनियादी ढांचे के त्वरित विस्तार हेतु भारत की योजनाओं में निवेश को समर्थन देने के लिए 75 बिलियन डॉलर जुटाने का लक्ष्य रखा है। ब्रिटेन और भारत ने देश के राष्ट्रीय बुनियादी ढांचा निवेश कोष के तहत एक साझेदारी कोष का गठन किया ह। ऐसी संभावना है कि भारतीय रेल और विशेष रूप से सड़कों को विदेशी सहयोग और सहायता का लाभ मिलेगा। जापान पूर्वोत्तर में सड़कों की कनेक्टिवविटी को सुधारने के लिए ऋण उपलब्ध करा कराने को तैयार है। भारत और जापान के बीच उच्च गति की बुलेट ट्रेन के निर्माण पर सहमति बनी है। बुलेट ट्रेन शुरू होने के बाद मुंबई से अहमदाबाद की यात्रा केवल दो घंटे में तय की जा सकेगी, जिसमें अभी सात घंटे लगते हैं। जापान चेन्नई और अहमदाबाद मेट्रो परियोजनाओं के लिए 100 बिलियन येन का ओडीए ऋण भी देगा। वहीं फ्रांस दूसरे चरण की बंगलुरू और कोच्चि मेट्रो परियोजनाओं और नागपुर में मेट्रो परियोजना को वित्त पोषित करेगा। बंगलुरू और नागपुर में मेट्रो परियोजनाओं के लिए जर्मनी भी प्रति परियोजना 500 मिलियन यूरो का ऋण भारत को प्रदान करेगा। भारत और चीन ने रेलवे क्षेत्र में सहयोग बढ़ाने पर सहमति जताई है। प्रस्तावित परियोजनाओं में मौजूदा चेन्नई–बंगलुरू –मैसूर क्षेत्र पर गति को बढ़ाना शामिल है। फ्रेंच कंपनी आल्सटॉम बिहार के मधेपुरा में 3.2 बिलियन यूरो के निवेश के साथ इलैक्ट्रिक इंजन संयंत्र का निर्माण करेगी। भारत में रेलवे के बुनियादी ढांचे को वित्त पोषित करने के लिए लंदन में पहले रूपी डिनोमिनेटेड बांड की शुरुआत का कार्य प्रगति पर है।

मेक इन इंडिया – भारत के विदेशी अभियानो पर प्रभावशाली प्रतिक्रिया मिली है। रूस ने भारत में केए 226 हेलीकाप्टरों के संयुक्त निर्माण पर सहमति जताई है। इसके अतिरिक्त मेंक इन इण्डिया अभियान के तहत भारत में परमाणु ऊर्जा संयंत्रों के निर्माण के स्थानीयकरण पर सहयोग देने पर भी रजामंदी जताई है। रूस के रोसएटम और भारत के परमाणु ऊर्जा विभाग ने स्थानीकरण के लिए कार्यवाई कार्यक्रम को अंतिम रूप दे दिया है। एल एंड टी और फ्रेंच अरेवा ने जैतपुर परमाणु बिजली परियोजना का स्वदेशीकरण बढ़ाने और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की सुविधा पर असहमति जताई है। एयरबस और टाटा भारत में सी 295 हेलीकाप्टरों के संयुक्त निर्माण का कार्य करेंगे। एयरबस ने भी हेलीकाप्टर निर्माण हेतु महिन्द्रा के साथ एक प्रारम्भिक समझौता किया है। बोइंग एचएच 64 अपाचे हेलीकाप्टर के लिए एयरो संरचनाओं का निर्माण करेगा। 12 बिलियन डालर मूल्य की जापान–भारत मेक इन इंडिया विशेष वित्त सुविधा की शुरूआत की गई है। वहीं, मारूति जापान में निर्यात के लिए कारों का निर्माण करेगी।

विदेशी निवेश – वर्ष 2015 में एफडीआई में पिछले वर्ष को तुलना में 40 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई, जोकि महत्वाकांक्षी योजनाओं को साकार करने के लिए अति आवश्यक है। इससे उन कूटनीतिक अभियानों की सफलता प्रदर्शित होती है जिनकी शुरूआत यह सोचकर की गई थी कि इनसे विश्व स्तर पर भारत की उभरती अर्थव्यवस्था के प्रति विश्वास बढ़ेगा। भारतीय और चीनी कंपनियों के बीच हस्ताक्षरित समझौता ज्ञापनों का कुल मूल्य 22 बिलियन डालर मूल्यांकित किया गया है। भारत और ब्रिटेन की निजी कंपनियों के बीच 9.2 बिलियन ब्रिटिश पाउंड के सौदे किए गए हैं जिसमें बोडाफोन का 1.3 बिलियन ब्रिटिश पाउंड का सौदा भी शामिल है। जापान ने अगले पांच वर्षो में भारत में बुनियादी ढांचे से जुड़ी परियोजनाओं और स्मार्ट शहरों के निर्माण के लिए 35 बिलियन डालर के निवेश का वादा किया है। दक्षिण कोरिया ने 10 बिलियन डालर का वादा किया है। (1बिलियन डॉलर आर्थिक विकास सहयोग निधि के रूप में और 9 बिलियन डॉलर प्राथमिक क्षेत्रों जैसे रेलवे, बिजली उत्पादन और ट्रांसमिशन हेतु निर्यात ऋण के रूप में) जर्मनी की आटोमोटिव इंजीनियरिंग की दिग्गज कंपनी बॉश ने भारत में तीन नए विनिर्माण संयन्त्रों की स्थापना की घोषणा की है और 100 बिलियन ब्रिटिश पाउंड के निवेश की बात है।

स्मार्ट सिटी – भारत में स्मार्ट शहरों के विकास में सहायता करने के लिए कई अंतर्राष्ट्रीय भागीदार सामने आए हैं: अमेरिका ने विशसाखापत्तनम, अहमदाबाद, इलाहाबाद को विकसित करने के लिए सहमति जताई हैं। फ्रांस ने चंड़ीगढ़, नागपुर, पुडुचेरी पर विशेष जोर देते हुए स्मार्ट सिटी परियोजना में 2 बिलियन यूरो से अधिक का निवेश करने को तैयार है।

डिजिटल इंडिया और स्किल इंडिया – माईक्रोसाफ्ट और गूगल जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ डिजिटल इडियां के कार्यान्वयन की दिशा में योगदान देने पर सहमत हैं। अमेरिका, जर्मनी, ब्रिटेन, कनाडा, जापान, सिंगापुर और मलेशिया आदि देशों ने कौशल भारत कार्यक्रम के कार्यान्वयन में भारत की सहायता करने पर रजामंदी दिखाई है।

स्वच्छ गंगा – जापान और जर्मनी ने गंगा नदी के कायाकल्प के लिए वित्तीय सहायता, विशेषज्ञता और प्रौद्योगिकी की पेशकश की है।

ऊर्जा सुरक्षा – इस क्षेत्र में स्वच्छ ऊर्जा हेतु भागीदारी पर कूटनीतिक पहल की जा रही है। पिछले वर्ष दिसम्बर में पेरिस जलवायु परिवर्तन शिखर वार्ता के मौके पर भारत की पहल पर 100 से अधिक देशों के अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबंधन की शुरूआत की गई थी। इसके लिए भारत ने सचिवालय के लिए जमीन आवंटित की है। (गुड़गांव, एनसीआर दिल्ली में) और सचिवालय के निर्माण हेतु 30 मिलियन डॉलर का योगदान करने की प्रतिबद्धता जताई है। भारत में परमाणु संयंत्रों की स्थापना और हमारे ऊर्जा मिश्रण में स्वच्छ ऊर्जा की हिस्सेदारी बढ़ाने के उद्‌देश्य से विदेश से प्राकृतिक यूरेनियम की खरीद हेतु असैन्य परमाणु सहयोग के लिए समझौता किया जा रहा है।

विश्वास बहाली के लिए कूटनीति – पी 5 के अतिरिक्त विश्व के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्र दक्षिण एशिया, दक्षिण पूर्व एशिया, मध्य एशिया, खाड़ी अफ्रीका, एशिया प्रशांत भारत की विश्वव्यापी कूटनीतिक पहुंच के गंतव्य हैं। भारत संयुक्त राष्ट्र के विचार–विमर्श में भाग लेने के अतिरिक्त महत्वपूर्ण क्षेत्रीय समूहो जैसे आसियान, ईएएस, गुटनिरपेक्ष आंदोलन, जी–20, बिक्स, संघाई सहयोग संगठन में भी सक्रिय हैं।

नए प्रधानमंत्री के आधिकारिक तौर पर कार्यभारत ग्रहण करने से पहले भी हम अपने पड़ोसी देशों को प्राथमिकता देते रहें हैं। मई 2014 में भारत के प्रधानमंत्री के रूप में श्री नरेन्द्र मोदी के शपथ ग्रहण समारोह में सार्क देशों के राष्ट्र और सरकार प्रमुखों की उपस्थिति से यह बात रेखांकित हुई कि भारत की नई राजनीतिक व्यवस्था अपने पड़ोसी देशों से अच्छे संबंध बनाना चाहती है। इस अवसर ने शुरूआती संबंधों को पुष्ट किया और इसके बाद क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की तर्ज पर यात्राओं और बैठकों का आदान–प्रदान शुरू हुआ। साथ ही पाकिस्तान से दोबारा बातचीत शुरू हुई। कुल मिलाकर भारत द्वारा की गई इस पहल के परिणाम संतोषजनक रहें। भूटान और बंगलादेश के साथ हमारे संबंध अच्छे हैं। भूमि सीमा समझौते के अनुसमर्थन से न केवल भारत और बंगलादेश के बीच 4096 किलोमीटर की सीमा पर सहमति बनी, बल्कि इससे सीमा प्रबन्धन सहज हुआ विशेष रूप से अवैध प्रवास, मानव तस्करी, स्मगलिंग आदि की जांच करना आसान हुआ। अब 161 एन्कलेव में रहने वाले पचास हजार राज्यविहीन व्यक्तियों की वैध राष्ट्रीय पहचान है। नेपाल के साथ हमारा विश्वास बढ़ा है। श्रीलंका और मालदीव के साथ भी भारत के संबंध फिर से कायम हुए है। अफगानिस्तान के साथ रणनीतिक साझेदारी को नया जीवन मिला है लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारत द्वारा लचीलापन दिखाने के बावजूद भारत–पाकिस्तान संबंधों में अब तक कोई ठोस प्रगति नहीं हुई है। फिर भी रास्ता पूरी तरह बंद नही हुआ है। उम्मीद की एक गली नजर आ रही है जिससे भविष्य में आगे बढ़ने की आशा की जा सकती है।

पी–5 अमेरिका, चीन, ब्रिटेन, रूस और फ्रांस में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की यात्राओं ने पी 5 देशों के साथ संबंधों में नवशक्ति का संचार किया और इन देशों के साथ बहुपक्षीय सहयोग को गति प्रदान की। दिसंबर 2015 में प्रधानमंत्री की मास्को यात्रा कई मायनों में महत्वपूर्ण थी। यह धारणा बन रही थी कि मई 2014 में नई सरकार

के सत्तारूढ़ होने के बाद भारत धीरे–धीरे पश्चिम के करीब आने के प्रयास में अपने पुराने मित्र रूस से चिंता का निवारण हुआ, बल्कि आपसी विश्वास और भरोसा भी बहाल हुआ। साथ ही एक ध्रुवीय विश्व में मौजूद रहते हुए एक दूसरे की मजबूरियों को समझने का प्रयास किया गया।

एक्ट ईस्ट नीति – नब्बे के दशक मे प्रतिपादित लुक ईस्ट नीति ने एक्ट ईस्ट नीति का रूप अख्तियार किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत आसियान देशों के साथ अपने संबंधों, विशेष रूप से आर्थिक संबंधों पर ठोस पहल करने पर जोर दे रहा है। इसके अतिरिक्त भारत ने आसियान–भारत विज्ञान और प्रौद्योगिकी विकास निधि के लिए 5 मिलियन डॉलर देने की प्रतिबद्धता जताई है, जोकि इससे पहले 1 मिलियन डॉलर थी।

द्वीप देश – समुद्री सुरक्षा और महासागर अर्थव्यवस्था के लिहाज से मालदीव, श्रीलंका, मारीशस, सेशल्स जैसे देशों में कूटनीतिक पहल करना महत्वपूर्ण है। यह चीन के बढ़ते प्रभाव से मुकाबला करने के लिए एक रणनीतिक उपाय भी कहा जा सकता है।

भारत की ऊर्जा सुरक्षा और बड़ी संख्या में भारतीय प्रवासियों की मौजूदगी के कारण खाड़ी और पश्चिम एशिया, मध्य पूर्व भी एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त आईएसआईएस जैसे कट्टरपंथी और हिसंक ताकतों के उभरने के कारण हमारी सुरक्षा को भी खतरा है। अगस्त 2015 में संयुक्त अरब अमीरात और इस वर्ष अप्रैल में सऊदी अरब में प्रधानमंत्री की यात्रा के दौरान इन विषयों पर चर्चा की गई। संयुक्त अरब अमीरात की यात्रा से द्विपक्षीय संबंधों को नई गति मिली और एक व्यापक रणनीतिक साझेदारी विकसित हुई सऊदी अरब की यात्रा से रणनीतिक भागीदारी को मजबूती मिली। इस यात्रा के दौरान रक्षा सहयोग, आतंकवाद का मुकाबला करने और सुरक्षा के लिए सहयोग पर जोर दिया गया जिसमें, खाड़ी और हिन्द महासागर में समुद्री सुरक्षा और साइबर सुरक्षा शामिल हैं, विशेष रूप से आतंकवादियों द्वारा साइबर स्पेस के दुरूपयोग को रोकना। इसके अतिरिक्त आतंकवाद, मनी लॉन्ड्रिंग और आतंकवाद को धन मुहैया कराने से संबंधित खुफिया जानकारी साझा करने पर भी सहमति बनी है।

अफ्रीकी देश – भारत–अफ्रीका फोरम (अक्टूबर,2015) के दौरान पहली बार अफ्रीकी महाद्वीप के 41 देशों के राष्ट्र और सरकार प्रमुख दिल्ली पहुंचे। इस फोरम ने अतीत को प्रतिबिंबित करने, सदियों पुराने संबंधों को पुनर्जीवित करने तथा एक गतिशील एवं परिवर्तनशील कार्यसूची को सबके सम्मुख रखने का एक सुअवसर प्रदान किया, जिससे आने वाले वर्षो में भारत और अफ्रीका के करीब आने की उम्मीद की जा सकती है। इस दौरान दिल्ली घोषणापत्र 2015 पर सहमति बनी जिसमें भारत–अफ्रीका के बीच सहयोग बढ़ाने पर बल दिया गया है। भारत ने विकास परियोजनाओं के लिए 10 बिलियन डॉलर के ऋण,600 मिलियन डॉलर के अनुदान सहयोग तथा अगले पांच वर्षो के लिए 50000 छात्रवृत्तियों की घोषणा की है। इन प्रयासों से अफ्रीका में भारत की मौजूदगी बढ़ेगी, साथ ही भारत के साथ सद्भावना उत्पन्न होगी और अफ्रीका में चीन की बढ़ती उपस्थिति का मुकाबला करना संभव होगा।

बहुपक्षीय मंच – संयुक्त राष्ट्र, जी–20, आसियान, ईएएस, गुटनिरपेक्ष आंदोलन, ब्रिक्स, शंघाई सहयोग संगठन सहित प्रमुख बहुपक्षीय मंचों में भारत की बढ़ती सक्रियता ने देश का अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, विश्वव्यापी प्रशासनिक ढांचे में सुधार, जलवायु परिवर्तन, समुद्री डकैटी, साइबर सुरक्षा, विश्वव्यापी व्यापार वार्ता जैस मुद्दों पर भारत के अभियानों से अतंरर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण बदला है और विश्वव्यापी कार्यसूची का रूपांतरण हुआ है। शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) में भारत पर्यवेक्षक की बजाए पूर्ण सदस्य बन गया है। यह स्पष्ट है कि भारत एशिया प्रशांत क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण खिलाड़ी है जोकि ओपेक में भारत की सदस्यता को मिले समर्थन में सकारात्मक रूप से नजर आता है। विश्वव्यापी परमाणु निर्यात नियंत्रण व्यवस्थाओं जैसे मिसाईल प्रौद्योगिकी नियंत्रण व्यवस्था (एसटीसीआर), परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह (एनएसजी), ऑस्ट्रेलिया समूह और वेसनर एग्रीमेंट में भारत की सदस्यता

को पहले से समर्थन बढ़ा है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में स्थायी सीट के लिए भारत की उम्मीदवारी के लिए भी समर्थन बढ़ा है, संयुक्त महासभा द्वारा अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर व्यापक कन्वेंशन को जल्द मंजूरी देने को भी रजामंदी मिल रही है, जिसे भारत ने प्रस्तावित किया था।

सीओपी 21 के अन्तिम दस्तावेज में भारत के योगदान की विश्व स्तर पर सराहना की जा रही है, इस दस्तावेज में जलवायु के साथ न्याय की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है। भारत ने इसमें जलवायु वित्त, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और सामान्य किन्तु भिन्न जिम्मेदारी जैसे सिद्धांत रखे हैं। प्रधानमंत्री ने पिछले वर्ष जुलाई में रूस के उफा शहर में 7वीं ब्रिक्स शिखर वार्ता में दस कदम या 10 सूत्री कार्यक्रम प्रस्तावित किया था, जिसमें व्यापार मेलों, खेल, फिल्म महोत्सवों, कृषि, ऑडिट जैसे क्षेत्रों में अंतर क्षेत्रीय सहयोग की बात की गई थी। 7वीं ब्रिक्स शिखर वार्ता में भारत समर्थित प्रस्तावों, जैसे 100 बिलियन डॉलर मूल्य के नए विकास बैंक और 100 बिलियन डॉलर मूल्य के मुद्रा रिजर्व पूल को औपचारिक रूप दिया गया।

कनेक्टिविटी – उपक्षेत्रीय और क्षेत्रीय एकीकरण को प्रोत्साहित करने हेतु कनेक्टिविटी बढ़ाने के लिए कूटनीतिक पहल की गई जिसमें चटगांव और मोंगला बन्दरगाहों के प्रयोग के लिए बांग्लादेश के साथ संधि, कोलकाता–ढाका–अगरतला बस सेवा की शुरूआत, भारत, भूटान, बांग्लादेश और नेपाल के बीच मोटर वाहन संधि शामिल है। भारत ने ऐसी परियेजनाओं के लिए 1 अरब डॉलर मूल्य के ऋण के लिए प्रतिबद्धता जताई है जिनसे भारत और आसियान देशों के बीच भौतिक और डिजिटल कनेक्टिविटी को बढ़ावा मिले। भारत द्वारा ईरान में चाबहार बंदरगाह के निर्माण के लिए अंतर–सरकारी समझौते पर हस्ताक्षर किए गए हैं। दो प्रमुख गलियारों की प्रगति को गति दी जा रही है जिनमें भारत, ईरान और मध्य एशिया को जहाज, रेल–सड़क मार्ग के जरिए जोड़ने वाले अंतर्राष्ट्रीय उत्तर दक्षिण गलियारे और भारत–म्यांमार–थाईलैंड राजमार्ग शामिल हैं जिनमें भारत में उत्तर पूर्वी राज्यों को काफी लाभ मिलेगा।

संक्षेप में गत 22 महीनों के दौरान सक्रिय और व्यावहारिक कूटनीति ने राष्ट्रीय महत्व की परियोजनाओं को बढ़ावा देने का कार्य किया है, इससे विश्वव्यापी क्षितिज पर भारत की मौजूदगी बढ़ी है और एक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय खिलाड़ी के रूप में भारत की प्रतिष्ठा और कद ऊँचा हुआ है। इससे अंतर्राष्ट्रीय मामलों में भारत के लिए सकारात्मक योगदान देना और विभिन्न चर्चाओं को आकार देना संभव हुआ है।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

शहरीकरण : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

अमित सोनी
प्रवक्ता–समाजशास्त्र
दयानन्द बछरावां पी0जी0 कालेज, बछरावां, रायबरेली, उ0प्र0

भारत में पिछले कुछ दशकों से जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों की जनसंख्या का पलायन भी शहरों एवं बड़े–बड़े महानगरों की ओर हो रहा है। परिणामस्वरूप शहरों में बढ़ती आबादी अनेक समस्याओं को जन्म दे रही है, जिनका समाधान किया जाना अति आवश्यक है।

बढ़ते हुए शहरीकरण के फलस्वरूप शहरों में अनेक भयंकर समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं जैसे– जनसंख्या वृद्धि, बेरोजगारी, गरीबी, अपराध, बाल–अपराध, महिलाओं की समस्याएं, भीड़–भाड़, गन्दी बस्तियां, आवास की कमी, बिजली एवं जलपूर्ति की कमी, प्रदूषण, मदिरापान एवं अन्य मादक वस्तुओं का सेवन, यातायात सम्बन्धी समस्याएं आदि। इस कारण शहरों में दबाव और कुण्ठाएं एवं तनाव निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इन समस्याओं का समाधान किया जाना अत्यावश्यक है। कुछ उपाय हैं, जिनके द्वारा शहरों की समस्याओं को समाप्त किया जा सकता है अथवा कम किया जा सकता है, जैसे– नगरों का योजनाबद्ध विकास, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, उद्योगों को बढ़ावा देना, सरकार द्वारा वित्तीय साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराना, इत्यादि।

पिछले कुछ दशकों में भारतीय समाज और जीवन में अनेक वृहदस्तरीय परिवर्तन हुए हैं। ये परिवर्तन महानगरों और शहरों में विशेष रूप से परिलक्षित होते हैं। जनसंख्या– वृद्धि के साथ–साथ महानगरों और शहरों की जनसंख्या बेतहाशा बढ़ी है। गाँवों और कस्बों से एक बड़ी संख्या में लोगों ने इनकी ओर पलायन किया है। परिणामस्वरूप सड़कों– बाजारों में लोग ही लोग दिखाई देते हैं। अपराध, बाल– अपराध, मदिरापान और मादक वस्तुओं का सेवन, आवास की कमी, भीड़–भाड़ और गन्दी बस्तियाँ, बेरोजगारी और निर्धनता, प्रदूषण और शोर, संचार और यातायात– नियन्त्रण आदि जैसी अनेक जटिलतम समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। परन्तु यदि शहरीकरण दबाव एवं तनाव का स्थान है तो यह सभ्यता एवं संस्कृति का केन्द्र भी है। ये सक्रिय, नवाचार–युक्त और सजीव हैं। ये प्रत्येक व्यक्ति को उसकी अभिलाषाओं एवं आकांक्षाओं को प्राप्त करने हेतु अवसर प्रदान करते हैं। हमारे देश का भविष्य जितना ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से सम्बन्धित है, उतना ही शहरों एवं महानगरों के क्षेत्रों के विकास से।

'शहर' अथवा 'नगर' क्या है? इस शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है– जनांकिकीय रूप में और समाजशास्त्रीय रूप में। प्रथम अर्थ में जनसंख्या के आकार, जनसंख्या के घनत्व और वयस्क पुरुषों में से अधिकांश के रोजगार के स्वरूप पर बल दिया जाता है, जबकि दूसरे अर्थ मे विषमता, अवैयक्तिकता, अन्योन्याश्रयता और जीवन की गुणवत्ता पर ध्यान केन्द्रित रहता है। मैक्स वेबर और जार्ज सिमेल के अनुसार, ''नगरीय वातावरण में सघन आवासीय परिस्थितियों, परिवर्तन में तेजी और अवैयक्तिक अन्तःक्रिया पर बल दिया है। थियोडॅर्सन के अनुसार, ''यह वह समुदाय है।''

जिसकी जनसंख्या का घनत्व बहुत है, जहाँ गैर–कृषिक व्यवसायों की सर्वाधिकता है, एक ऊँचे स्तर की विशेषता है, जिसके फलस्वरूप श्रम–विभाजन जटिल होता है और स्थानीय शासन की औपचारिक ढंग से व्यवस्था होती है। उसकी विशेषताओं में अवैयक्तिक द्वितीयक सम्बन्ध प्रचलित होते हैं तथा औपचारिक सामाजिक नियन्त्रणों पर निर्भरता रहती है।'' राबर्ट रेडफील्ड के अनुसार, शहरी समाज की विशेषताएं ये होती हैं, ''वहाँ एक बहुत विषमरूप जनसंख्या होती है, उसका दूसरे समाजों से निकट का सम्बन्ध होता है (व्यापार, संचार आदि के जरिए),

उसमें एक जटिल श्रम विभाजन होता है, सांसारिक मामलों को पवित्र मामलों की अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जाता है और निश्चित लक्ष्यों के प्रति विवेकपूर्ण तरीके से व्यवहार को सुव्यवस्थित करने की अभिलाषा होती है। वे पारस्परिक मानदण्डों का अनुसरण नहीं करते।

हालांकि शहरों में एक–तिहाई से ज्यादा लोग बेघर हैं। शहरों में लगभग 40 प्रतिशत लोगों के पास पीने के लिए स्वच्छ पानी नहीं है, सफाई–व्यवस्था भी ठीक नहीं है और स्वास्थ्य सुविधाएं भी कम आय वाले व्यक्तियों के लिए बहुत कम हैं। ऐसे में शहरी आवास की समस्याओं को ज्यादा देर तक अनदेखा करना मनुष्य के हित में नहीं होगा। इसी आवश्यकता को महसूस करते हुए तुर्की की राजधानी इस्तांबुल में विश्व आवास सम्मेलन ''हैबीटेटन्ट्'' का आयोजन किया गया था। इतना ही नहीं, विश्वभर में मनाए जाने वाले पर्यावरण दिवस की विषय वस्तु भी ''हमारी पृथ्वी, हमारा–आवास, हमारा घर' रही। इस सम्मेलन में शहरों की आवास समस्याओं पर व्यापक विचार–विमर्श किया गया था।

यूं तो शहर हमेशा से ही आकर्षण का केन्द्र माने जाते रहे हैं। विभिन्न समस्याओं के बावजूद शहर विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। रोमन काल का मिस्र अलेक्जेंड्रा शहर बहुत प्रसिद्ध था। सन् 1798 में जब नेपोलियन ने उस पर अधिकार जमाया तो उसकी जनसंख्या कुछ हजार थी। 20वीं सदी के आरम्भ में भी शहरों की आबादी ज्यादा नहीं थी। एक अनुमान के अनुसार उस समय केवल 5 प्रतिशत आबादी शहरों में रहती थी। पूर्व में कंबोडिया का अंगकोरवात और थाईलैंड का अयुत्घया प्रसिद्ध शहर थे, परन्तु आजकल वे पर्यटक स्थलों के रूप में जाने जाते हैं, ठीक वैसे ही जैसे भारत के पुराने शहर फतेहपुर सीकरी और सिंकदराबाद किसी जमाने में राजनीतिक–सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों के केन्द्र थे, परन्तु अब पर्यटक स्थल के रूप में जाने जाते हैं। शहरों की आबादी में वृद्धि का दौर 1950–60 के बाद देखने में आया। आँकड़ों के अनुसार सन् 1960 में न्यूयार्क विश्व में सर्वाधिक आबादी वाला शहर था। उस समय उसकी जनसंख्या 1 करोड़ 40 लाख थी। उसके बाद 90 लाख से 30 लाख आबादी वाले शहरों का स्थान था, जिनमें लंदन, टोकियो, पेरिस, मास्को, शंघाई, ऐसन, शिकागो, कलकत्ता, ओसाका, बर्लिन, लॉस एंजलिस आदि आते थे।

शहरी मामलों के राष्ट्रीय संस्थान 'नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ अर्बन अफेयर्स' के निदेशक ने कुछ वर्ष पूर्व शहरों के बारे में कहा था कि 'बड़े शहर अब अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुके हैं और यह ढांचा अब चरमराने लगा है। अतः भारत के महानगरों की जनसंख्या, भारत की जनसंख्या वृद्धि की दुगनी दर से बढ़ रही है। शहरीकरण के सामाजिक प्रभाव परिवार, जाति, महिलाओं की सामाजिक स्थिति एवं ग्रामीण जीवन पर पड़ रहे हैं। शहरीकरण केवल परिवार की संरचना को ही प्रभावित नहीं करता, अपितु यह परिवार के आन्तरिक और अन्तर–परिवार के सम्बन्धों और उन कार्यों को भी, जो परिवार करता है, प्रभावित करता है। किन्तु इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि बच्चे बड़ों का आदर नहीं करते या कर्तव्यों का पालन नहीं करते या पत्नियां अपने पतियों के अधिकार को चुनौती देती हैं। महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया है कि अब 'पति–प्रधान' परिवार का स्थान समतावादी परिवार ले रहा है, जिसमें पत्नियां निर्णय प्रक्रिया में भाग लेती हैं, माता–पिता द्वारा बच्चों पर अधिकार थोपे नहीं जाते और न ही बच्चे आँख मूंदकर अपने माता–पिता के आदेशों का पालन करते हैं। बच्चों का व्यवहार भय की बजाय आदर से प्रेरित हो रहा है। शहरीकरण, शिक्षा, व्यक्तिगत उपलब्धि और आधुनिकता की ओर गत्यात्मकता, जाति की पहचान को कम करती है। कुछ जातियों के शिक्षित सदस्य, कभी–कभी दबाव–समूह के रूप में संगठित हो जाते हैं। उपजातियों एवं जातियों का विलयन हो रहा है, अन्तर्जातीय विवाहों के रूप में। खानपान सम्बन्धों, वैवाहिक सम्बन्धों, सामाजिक सम्बन्धों एवं व्यवसायिक सम्बन्धों में परिवर्तन हुए हैं। जहाँ तक शहरी महिलाओं का प्रश्न है तो वे ग्रामीण महिलाओं की तुलना में अधिक शिक्षित एवं उदार हैं। वे विभिन्न प्रकार की नौकरियों में कार्यरत् हैं। वे अपने राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अधिकारों का उपयोग अपने को शोषित एवं अपमानित होने से बचाने

के लिये करती हैं। फिर भी श्रम बाजार में इनकी स्थिति प्रतिकूल ही है। यद्यपि शहरों में शिक्षा ने महिलाओं की विवाह की आयु बढ़ा दी है तथा जन्म–दर को कम कर दिया है, फिर भी इससे दहेज के साथ पारम्परिक स्वरूप वाले तयशुदा विवाहों में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ है। तलाक और पुनर्विवाह नए तथ्य हैं, जिन्हें हम शहरी स्त्रियों में पाते हैं। बड़ी संख्या में तलाक, स्त्रियों द्वारा असामंजस्य और मानसिक यातना के आधार पर मांगा जाता है। राजनीतिक रूप से शहरी महिलाएँ अधिक सक्रिय हैं, वे चुनाव लड़ती हैं, राजनैतिक पदों पर आसीन हैं, स्वतन्त्र राजनैतिक विचारधारा रखती हैं। अतः ये ग्रामीण महिलाओं की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र हैं।

शहरीकरण के परिणामस्वरूप आज ग्रामीण क्षेत्रों में भी पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। गाँवों में सभी शहरी जीवन की सुविधाएँ उपलब्ध हैं, यद्यपि ये शहरों से मीलों दूर हैं। उत्कृष्ट राजमार्ग, बसें व मोटरें, रेडियो, टेलीविजन और अख़बार, ग्रामीणों को शहरी रोजगार, शहरी आवास और ग्रामीण सम्पर्क ने न केवल सामाजिक संरूपों में कुछ परिवर्तन किए हैं, अपितु जीवन की एक नई शैली से समन्वय भी स्थापित किया है। ग्रामीण लोग अब धर्म एवं जाति को अत्यधिक महत्व नहीं देते। उनका दृष्टिकोण उदार हो गया है, वे अलगाव में भी नहीं रहते, किसानों ने कृषि सम्बन्धी नवीन पद्धतियों को अपना लिया है। इनसे न केवल उनके मूल्यों एवं आकांक्षाओं में बदलाव आया है, वरन् व्यवहार भी परिवर्तित हुआ है। जज़मानी व्यवस्था कमजोर पड़ती जा रही है तथा अन्तर्जातीय एवं अन्तर्वर्गीय सम्बन्धों में परिवर्तन आ रहा है। विवाह, परिवार और जाति–पंचायतों की संस्थाओं में भी परिवर्तन आया है। स्वास्थ्य सम्बन्धी नवीन चिकित्सा पद्धतियाँ एवं सुविधाएं उपलब्ध हैं। चुनावों में ये लोग प्रत्याशी की क्षमताओं और राजनैतिक पृष्ठभूमि को महत्व देते हैं। किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि गाँवों में अब परम्पराओं का कोई महत्व नहीं है।

जहाँ तक शहरी समस्याओं का प्रश्न है तो इन समस्याओं का कोई अन्त नहीं है। वर्तमान समय में शहरीकरण ने अनेक समस्याओं को शहरों में जन्म दे दिया है। शहरीकरण के परिणामस्वरूप नगरों तथा महानगरों में आवास की समस्या लगातार बद से बदतर होती जा रही है। नवीनतम आँकड़ों के अनुसार वर्तमान में देश में लगभग 12 करोड़, 16 लाख से अधिक आवासीय इकाईयों की कमी है। भारत के महानगरीय परिप्रेक्ष्य में जहाँ तक आँकड़ा उपलब्ध है, उसके अनुसार दिल्ली में जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय इकाइयों की कमी नगण्य है, वहीं शहरी क्षेत्र में 13 लाख 70 हजार आवासों की कमी है, लेकिन इससे भी गंभीर समस्या आवास के मामले में कोलकाता और मुंबई की है। यद्यपि वहां का कोई शोध आँकड़ा उपलब्ध नहीं है, परन्तु वहाँ की जनसंख्या के अनुभव के आधार पर देखने में आता है कि दिल्ली की अपेक्षा मुंबई और कोलकाता में आवास की समस्या अधिक विस्फोटक स्थिति में है। मुंबई की स्थिति तो यह है कि वहां लोग खोली में अपना जीवन गुजारते हैं।

कुछ लोगों की काली कमाई के कारण आवास सेक्टर में ऐसे लोगों का प्रवेश हो गया है, जिनके लिए यह निवास–स्थल नहीं, बल्कि अपनी काली कमाई को बचाकर रखने का जरिया है। अनेक धनाढ्य सट्टेबाजों के लिए आवास कमाई करने का भी माध्यम बन गया है। इसके कारण पहले से ही दुर्लभ घर और भी दुर्लभ होते जा रहे हैं। इनकी कीमतें इतनी तेजी से बढ़ रही हैं कि सफेद कमाई करने वालों के लिए अपना घर सिर्फ सपना बन कर रह जाता है। मकानों की कीमतें बढ़ने के कारण किराए में भी लगातार वृद्धि हो रही है। लेकिन सरकार इस समस्या की ओर ध्यान नहीं दे रही है। आवास के लिए बनने वाली उसकी नीतियाँ निहित स्वार्थों को पूरा करने का हथियार बनकर रह जाती हैं। मकान, रोटी और कपड़े की भाँति एक मूलभूत आवश्यकता है। किसी भी देश का आदर्श यही हो सकता है कि सभी नागरिकों को आवास उपलब्ध हों। भारत इस आदर्श को प्राप्त करने से कोसों दूर है। सरकार की नीति के अनुसार, जब कोई वस्तु दुर्लभ हो जाए, अर्थात् माँग और आपूर्ति में बड़ी विसंगति पैदा हो जाए, तो उस वस्तु की राशनिंग कर दी जाती है। आवास भी दुर्लभ होते जा रहे हैं। महानगरों तथा अन्य नगरों में इसकी माँग लगातार बढ़ रही है, आपूर्ति बहुत सीमित है, लेकिन जो आपूर्ति है, वह भी काले धन के मालिकों से बहुत

हद तक प्रभावित हो जाती है। इससे होता यह है कि एक–एक व्यक्ति के पास अनेक मकान हो जाते हैं और किसी के पास मकान रह ही नहीं जाता। इस समस्या को हल करने के लिए यदि मकानों का कोटा निर्धारित कर दिया जाए तो यह बुरा नहीं होगा।

भीड़–भाड़ और व्यक्तियों की दूसरे व्यक्तियों की समस्याओं के प्रति उदासीनता एक दूसरी समस्या है, जो शहरी जीवन में पैदा हो रही है। भीड़–भाड़ के कई हानिकारक प्रभाव पड़ते हैं, जैसे– विचलित व्यवहार, शारीरिक और मानसिक बीमारियां, मादक द्रव्य व्यवसन, साम्प्रदायिक दंगे इत्यादि। शहरों में रहने वाले दूसरों के मामलों में उलझना नहीं चाहते। यहाँ तक कि व्यक्ति दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं, तंग किए जाते हैं, उन पर आक्रमण किया जाता है, भगाया जाता है और उनकी हत्या कर दी जाती है। ऐसे समय में अन्य व्यक्ति केवल खड़े हुए तमाशा देखते रहते हैं। शहरों में चौबीस घंटे जल की आपूर्ति नहीं हो पाती है और न ही यहाँ पूर्णरूप से मल–विसर्जन नाले होते हैं। जल–निकासी की भी बहुत बड़ी समस्या है। परिवहन एवं यातायात की समस्या भी सभी भारतीय शहरों को प्रभावित कर रही है। बढ़ती हुई जनसंख्या को सीमित परिवहन व यातायात के साधन पर्याप्त सुविधाएं प्रदान करने में असमर्थ हैं। यातायात से निकट से जुड़ी समस्या बिजली की कमी है। आज अधिकांश राज्य अपनी आवश्यकतानुसार बिजली उत्पादन करने की स्थिति में नहीं हैं। परिणामस्वरूप उन्हें पड़ोसी राज्यों पर निर्भर रहना पड़ता है। दो राज्यों में बिजली की आपूर्ति पर मतभेद हो जाने से शहर में व्यक्तियों के लिए बिजली का गंभीर संकट उत्पन्न हो जाता है।

शहरी समस्याओं को जन्म देने वाले कई कारण हैं। प्रथम– ग्रामीण दरिद्रों के शहरों में प्रवेश राजस्व के स्रोतों को कम करते हैं। दूसरी ओर धनवान व्यक्ति उप–नगरीय क्षेत्रों में रहना अधिक पसन्द करते हैं। अतः उनके पलायन से नगर को वित्तीय हानि होती है। द्वितीय– निर्धारित योजनाओं के अनुरूप औद्योगिक विकास नहीं हो पाया है, जो कि प्रवासियों को आश्रय प्रदान करता, है, यद्यपि उनकी आय बहुत कम होती है। तृतीय– सरकार की उदासीनता भी नगरीय समस्याओं को जन्म देती है। प्रशासनिक अव्यवस्था नागरिकों की परेशानी के लिए उत्तरदायी है। दूसरी ओर, राज्य सरकारें भी स्थानीय सरकारों पर कई शहरी समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक पैसा जुटाने पर कई प्रतिबन्ध लगा देती हैं। चतुर्थ– नागरिक सेवाओं के स्तर में व्यापक गिरावट का कारण दोषपूर्ण नगर योजना है, जिसके कारण आयोजकों और प्रशासकों में निस्सहायता बढ़ रही है। पंचम– नगरीय समस्याओं का अन्तिम कारण है, निहित स्वार्थों की शक्तियां, जो जनता के विरुद्ध कार्य करती हैं, परन्तु निजी व्यापारिक स्वार्थों और लाभों को बढ़ाती हैं।

यदि हम नगरीय समस्याओं का समाधान चाहते हैं, तो हमें कुछ उपाय करने पड़ेंगे। जैसे, प्रथम– नगरीय केन्द्रों का योजनाबद्ध विकास और निवेश के कार्यक्रम की योजना बनाना तथा रोजगार के अवसरों की वृद्धि करना। द्वितीय– नगरीय योजना बनाना एक तदर्थ उपाय है, किन्तु क्षेत्रीय योजना द्वारा एक अधिक स्थायी समाधान हो सकता है। तृतीय– उद्योगों को पिछड़े क्षेत्रों में जाने के लिए प्रोत्साहित करना। चतुर्थ– व्यक्ति नगरपालिकाओं को कर देने में आपत्ति नहीं करते, यदि उनका पैसा सड़कों के रख–रखाव के लिए, नालियों की व्यवस्था के लिए, पानी की कमी को दूर करने के लिए और बिजली उपलब्ध कराने के लिए ठीक प्रकार से काम में लिया जाए। पंचम– निजी परिवहन को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। षष्टम– कानून, जो नए मकान बनाने या मकानों को किराए पर देने पर रोक लगाते हैं, में संशोधन करना चाहिए। सप्तम्– मई 1988 में केन्द्र सरकार ने एक राष्ट्रीय आवासीय नीति बनायी थी, जिसका उद्देश्य शताब्दी के अन्त तक आवासहीनता को समाप्त करना है तथा आवास की गुणवत्ता को बढ़ाकर एक निश्चित स्तर पर लाना है। कुछ महत्वपूर्ण कदम भी उठाए जाने की आवश्यकता है, जैसे– मकानों के निर्माण के लिए पर्याप्त वित्त की व्यवस्था, शहरी क्षेत्रों में आवासीय स्थलों की व्यवस्था तथा निर्माण भूमिहीन मजदूरों की सहायता की व्यवस्था एवं आवास–निर्माण में कम लागत वाली तकनीक का विकास और

प्रयोग करना। अष्टम– स्वायत्त शासन का संरचनात्मक विकेन्द्रीकरण। इसमें पड़ोस– क्रिया समूहों का सृजन हो सकता है, जिन्हें सामुदायिक केन्द्र कहा जाएगा और उसमें निवासी तथा नगर पालिकाओं के प्रतिनिधि होंगे। ये केन्द्र पड़ोस की आवश्यकताओं की पहचान करेंगे और उनकी पूर्ति की दिशा में कार्य करेंगे।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जब तक नगरीय योजनाओं में सुधार नहीं होगा, तब तक शहरीकरण और नगरीयता के प्रभावों और नगरों की समस्याओं का स्थायी समाधान नहीं हो सकता और न ही आधारभूत उपाय किए जा सकते हैं। उपाय स्वार्थों से प्रेरित नहीं होने चाहिए। करों का, भूमि का, प्रौद्योगिकी इत्यादि का उपयोग भी सही दिशा में एवं स्वार्थरहित होना चाहिए। राजनीतिक दृष्टि से भी सभी लोगों को सक्रिय होना पड़ेगा। सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्थाओं में भी परिवर्तन करना होगा तथा सामूहिक रूप से आन्दोलन चलाना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. निबन्ध संग्रह– यूनीक पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1997।
2. आहूजा, राम : भारत में सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, नई दिल्ली, 1995।
3. गुप्ता, एम0एल0, गुप्ता विमलेश : समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. एस0 भटनागर : रूरल लोकल गवर्नमेंट इन इण्डिया (लाइफ एण्ड लाइट पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1978)
5. गोरे, एम0एस0, अर्बनाइजेशन एण्ड फैमिली चेंज, पापुलर प्रकाशन, बाम्बे, 1968

❑❑

एक संवेदनशील रचनाकार, कुशल शब्द शिल्पी और समकालीन साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर, समाजसेवी एवं साहित्यकार के रूप में चर्चित सहृदय, व्यवहार में मृदुल तथा लेखन में क्रियाशील, भाषा विज्ञान के मर्मज्ञ सक्रिय विद्वान तथा मन से साहित्यकार डॉ0 रामकमल राय अपने लेखन में मर्यादित सामाजिक संस्कृति के साथ–साथ राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति सजगता के निर्माण की प्रेरणा अपनी रचनाओं के माध्यम से संप्रेषित करते नजर आते हैं। अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक संस्थाओं के अध्यक्ष रह चुके डॉ0 रामकमल राय लेखन की जिजीविषा से सक्रिय रूप से जुड़े रहे। जिसे बनाए रखने के लिए अपने जीवन में अन्तिम समय तक आप सतत, जीवंत एवं सृजनशील रहे। डॉ0 राय की अभिरुचि अनुसंधात्मक के साथ सदैव वैज्ञानिक एवं खोजपूर्ण रही है। चिंतन, मनन में सजग एवं सूक्ष्म दृष्टि रखने वाले डॉ0 रामकमल जी ने सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित ज्वलंत एवं शोध परक लेख अपनी पुस्तकों एवं समसामयिक पत्रिकाओं में लिखे हैं।

✍ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारतीय विदेश नीति के निर्धारक तत्व के रूप में व्यक्तित्व की भूमिका–एक अवलोकन

मनोज कुमार यादव
पूर्व सदस्य उत्तर प्रदेश
मा0शिक्षा सेवा चयन बोर्ड इलाहबाद एवं प्रवक्ता रामपाल त्रिवेदी इण्टर कॉलेज, गोसाईंगंज, लखनऊ

विदेश नीति राष्ट्रीय हितों, सिद्धान्तों एवं उद्देश्यों का एक जोड़ है। प्रत्येक देश अन्य देशों के साथ अपने सम्बन्धों को संचालित करने हेतु उनका प्रतिपादन करता है। उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण के अनुरूप ढालने का प्रयास करता है ताकि वह अन्य देशों के व्यवहार में बदलाव ला सके, उसे प्रभावित कर अपने नीतिगत उद्देश्यों को प्राप्त कर सके। विदेश नीति के निर्माण एवं संचालन में विविध निर्धारक तत्व, संस्थाएँ, प्रणालियाँ एवं व्यक्तित्व कारक भूमिका निभाते हैं। विदेश नीति एक जटिल प्रक्रिया है। इसमें नीतिकार कूटनीतिक साधनों के माध्यम से राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने का प्रयास करते हैं। विभिन्न सिद्धान्तों उद्देश्यों एवं हितों की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है। वस्तुतः विदेश नीति का लक्ष्य देश के मूल राष्ट्रीय हितों– आंतरिक व बाह्य सुरक्षा को सुनिश्चित करना, आर्थिक विकास को बढ़ावा देना तथा सांस्कृतिक व सामाजिक मूल्यों की रक्षा करना है। उत्तरोत्तर अपनी विभिन्न क्षमताओं जैसे औद्योगिक, प्रतिरक्षा, आणविक सुरक्षा एवं सामरिक शक्ति को विकसित कर अपनी शक्ति एवं प्रभाव को अन्तर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय व्यवस्थाओं में लगाना होता है। उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता कब और कैसे होगी, इसका सटीक उत्तर किसी भी विदेश नीतिकार के पास नहीं है। वस्तुतः विदेश नीति एवं सम्बन्धों का संचालन करना एक कला है जिसमें शिल्पकार अपनी क्षमताओं एवं अनुभव का उपयोग करते हुए अपने वांछित उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

व्यक्तिगत तानाशाहों को छोड़कर प्रजातान्त्रिक पद्धतियों में नीति–निर्माताओं का नीति–निर्धारण (घरेलू या विदेशी) में कितना व्यक्तिगत योगदान होता है यह पूर्णतया स्थापित करना बड़ा मुश्किल है। एक बात महत्वपूर्ण है कि कुछ प्रजातान्त्रिक प्रणालियों में भी यदि प्रधानमंत्री राजनैतिक रूप से बहुत शक्तिशाली हो तथा चमत्कारिक व्यक्तित्व वाला हो तो विदेश नीति निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ठीक इसके विपरीत यदि प्रधानमंत्री की स्थिति राजनैतिक रूप से कमजोर हो तथा विदेश मन्त्री अपने आप में एक महत्वपूर्ण राजनैतिक नेता हो तो विदेश नीति को काफी हद तक अपनी मर्जी के अनुरूप ढाल सकता है। अन्त में दोनों ही यदि कमजोर नेता हों तथा राजनैतिक स्थिरता का अभाव हो तो उस समय असैनिक आधिकारियों का विदेश नीति निर्धारण में वर्चस्व बना रहेगा।

उपरोक्त दृष्टि से देखें तो भारतीय विदेश नीति पर मूलतः जवाहरलाल नेहरू व कुछ सीमा तक इन्दिरा गाँधी के व्यक्तित्वों का प्रभाव रहा है। लाल बहादुर शास्त्री, राजीव गाँधी, पी०वी० नरसिम्हाराव एवं इन्द्र कुमार गुजराल का सीमित एवं वी०पी० सिंह, चन्द्रशेखर व देवगौड़ा का नगण्य प्रभाव रहा। अटल बिहारी वाजपेयी का प्रभाव निश्चित रूप से काफी अच्छा रहा हैं क्योंकि वे लम्बे समय तक राजनयिक सेवाओं में रहने के साथ–साथ दो बार विदेश मंत्री भी रहे। वर्तमान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का विदेश नीति पर प्रभाव अच्छा रहने की सम्भावना है क्योंकि पिछले तीन वर्षों के कार्यकाल में मोदी जी ने विदेश नीति स्तर पर भारत की स्थिति कूटनीतिक स्तर पर भारत की स्थिति कूटनीतिक स्तर पर काफी अच्छी रही यद्यपि इसके परिणाम आने बाकी हैं। जवाहर लाल नेहरू का व्यक्तिगत प्रभाव उनकी कांग्रेस में भूमिका के कारण रहा है। नेहरू शुरू से ही, विशेषकर 1936 में कांग्रेस

में विदेश विभाग के गठन से लेकर, विदेशी मामलों में कांग्रेस के प्रवक्ता बने रहे हैं। इसका अन्य कारण शायद नेहरू के समकालीन नेतृत्व में विदेशी मामलों के बारे में कांग्रेस की उदासीनता भी रही है। जवाहरलाल की यह स्थिति न केवल स्वतंत्रता उपरान्त अधिक सशक्त हो गई है तथा उनकी मृत्यु पर्यन्त बनी रही। इसका मुख्य कारण था नेहरू का प्रधानमंत्री के साथ–साथ 1947 से 1964 तक विदेश मंत्री भी बने रहना। नेहरू के प्रभाव का आकलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्यों को समझ कर भारत के लिए गुटनिरपेक्षता की नीति को अपनाने एवं अनुकरण करने में नेहरू की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके साथ–साथ नेहरू ने आदर्शवाद तथा यथार्थवाद दोनों के सम्मिश्रण का पालन किया है। वैसे सतही तौर एवं सैद्धान्तिक स्वरूप में ये दोनों दृष्टिकोण एक दूसरे के विपरीत हैं परन्तु नेहरू द्वारा इन दोनों का संगम भारतीय विदेश नीति में इस प्रकार अपनाया गया कि बंद्योपाध्याय के अनुसार उनमें कोई विरोधाभास नहीं नजर आता। क्योंकि उनका मानना है कि नवोदित राष्ट्रों के संदर्भ में कुछ हद तक आदर्शवाद को अपनाना यथार्थवाद का ही दूसरा नाम था। परन्तु इसके विपरीत एम०एस० राजन का मानना है कि नेहरू द्वारा कश्मीर, चीन एवं गोवा के संदर्भ में अपनाए गए आदर्शवाद के परिणाम स्वरूप "सरकार के कार्य करने की स्वतंत्रता एवं भावी नीतियों पर अंकुश लगा दिया। इसीलिए बाद में नेहरू को कश्मीर एवं गोवा के संदर्भ में यह आदर्शवाद छोड़ना पड़ा। चीन के बारे में भी दूरगामी यथार्थवाद के कारण निकटवर्ती संकट का आकलन करने में असफल रहे। भारतीय विदेश नीति का एक बृहत ढाँचा तैयार करने की धुन से वह नीतियों को व्यवहारिक स्वरूप नहीं प्रदान कर सके; जैसा कि दक्षिणपूर्व एशिया के संदर्भ में हुआ। उपरोक्त सफलताओं एवं असफलताओं को नकारते हुए हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि नेहरू के व्यक्तित्व का भारतीय विदेश नीति पर इतना गहन प्रभाव पड़ा कि आज तक भी वह विरासत हमारे लिए दिशा–निर्देशन का कार्य कर रही है।

नेहरू के बाद श्रीमती इंदिरा गाँधी के व्यक्तित्व का विदेश नीति पर विशेष प्रभाव रहा है। हालांकि इंदिरा गांधी के प्रथम काल के दौरान (1966–67) तक पाँच विदेश मन्त्रियों ने भी विदेश नीति का कार्य भार संभाला, लेकिन वे सभी इंदिरा गाँधी के निर्णयों को प्रभावित नहीं करते थे। बंद्योपाध्याय का मानना है कि "अपने स्वयं के कारण से व्यक्तिगत रूप से असुरक्षित, लोगों पर अविश्वास, शासन करने की तानाशाही प्रवृत्तियों के कारण इंदिरा गांधी विदेशनीति के सामान्य संस्थागत ढाँचे के अन्तर्गत कार्य नहीं कर सकती थी।" अतः इसी संदर्भ में सुरजीत भानसिंह का मानना है कि उसका कार्यकाल भारतीय विदेश नीति में "शक्ति की खोज" का युग कहा जा सकता है। इन मनोवैज्ञानिक परस्थितियों के परिणाम स्वरूप विदेश नीति के मुद्दों पर व्यक्तिगत छाप अत्याधिक थी। इसी संदर्भ में लेखकों का कहना है कि भारत सोवियत संघ मंत्री सन्धि, बांग्लादेश में सैन्य हस्तक्षेप, परमाणु अप्रसार पर भारत का रवैया, सिक्किम का भारत में विलय एवं विदेश नीति का प्रशासन इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। दूसरा इसके परिणाम स्वरूप विदेश मन्त्रियों में शीध्र परिवर्तन किए गए ताकि कोई भी विदेशमन्त्री शक्तिशाली न बन सके। मंत्रालय में संस्थागत विकास की बजाय तानाशाही प्रवृंत्ति को बढ़ावा मिला। चौथे, अपने सहायकों के रूप में बहुत ही आश्वस्त लोगों जैसे पी०एन० हकसर, डी०पी०धर, पारशार्थी आदि को निजी स्वामी भक्ति के कारण अपने साथ रखा। अतः इस कार्यालय में इन्दिरा गाँधी का प्रभाव संस्थागत विकास को अवरूद्ध करके अपनी निजी सोच व हितों के अन्तर्गत विदेशी नीति निर्धारण हेतु प्रयोग किया गया।

लालबहादुर शास्त्री, नेहरू एवं श्रीमती गाँधी की भाँति विदेश नीति के व्यवहार से परिचित नहीं थे, क्योकि उनकी पृष्ठभूमि एवं परिवेश उपरोक्त दोनों से एकदम भिन्न था। वे देश की आन्तरिक स्थिति से शायद जितने परिचित थे उतने विदेशी मामलों से नहीं। उनका अनुभव उन दोनों के समान नहीं था। लेकिन उनके डेढ़ साल के थोड़े से समय के बावजूद उनका विदेश नीति के संदर्भ में योगदान सराहनीय रहा है। उनका यह योगदान व्यक्तित्व या व्यक्तिवादी नहीं था बल्कि शायद अपने कम अनुभव के कारण वे विदेशनीति के संबंध में ऐसा

संस्थागत विकास करने के पक्ष में थे कि विदेश नीति ज्यादा तर्कसंगत व सुस्पष्ट ढाँचे के अन्तर्गत निर्मित हो ताकि वह दूरदर्शिता पर आधारित बन सके। परणिाम स्वरूप उन्होंने व्यक्तित्व के प्रभाव के स्थान पर संस्थागत क्षेत्र में विकास किया। अपने संक्षिप्त कार्यकाल में उन्होंने बहुत से कदम उठाए जिससे विदेशनीति संबंधी निर्णय सुस्पष्ट एवं तर्कशील बन सके। सर्वप्रथम, उन्होंने पूर्णकालिक विदेश मन्त्री पद की स्थापना की। द्वितीय, उन्होंने विदेश मंत्रालय में महासचिव के पद को समाप्त किया। तृतीय, उन्होंने विदेश नीति की कार्यप्रणाली में सुधार हेतु पिल्लई समिति (जिसने 1966 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की) का गठन किया। चतुर्थ, आर्थिक विभाग का विस्तार एवं उन्नयन किया गया। पंचम, भारतीय विदेश सेवा एवं भारतीय सूचना सेवाओं को मिश्रित कर दिया गया। गुप्तचर सेवा का विकास एवं उन्नयन करके उसमें मंत्रिमण्डल की राजनैतिक विषयों की समिति के साथ जोड़ दिया गया। उपरोक्त परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप व्यक्तिगत प्रभाव में कमी हुई तथा विदेश नीति निर्णय सम्बन्ध में संस्थागत विकास हुआ।

राजीव गाँधी के नेतृत्व में दो बातें अवश्य नयी थी। प्रथम वे स्वतन्त्रता उपरान्त पीढ़ी की उपज थे तथा द्वितीय, उनका अपना अधिक स्पष्ट विचारधारात्मक लगाव नहीं था। हाँ अपनी शिक्षा, रहन–सहन एवं विवाह के कारण पाश्चात्य संस्कृति के ज्यादा निकट थे। लेकिन उसके साथ–साथ उनमें वैचारिक तथा राजनयिक परिपक्वता का अभाव भी दृष्टिगोचर होता है। निष्कर्ष रूप से उनकी विदेश नीति "नेहरू के वैश्वीकरण एवं इंदिरा गाँधी के क्षेत्रीय प्रभुत्व पर आधारित थी। "लेकिन उन दोनों के समान तीव्र समझबूझ वाली नहीं थी। विश्वस्तर पर उसका प्रयास बड़े–बड़े नेताओं से तालमेल बढ़ाने के साथ–साथ कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों को प्रकाश में लाना था। जैसे– निशस्त्रीकरण के बारे में छह राष्ट्रों की पहल; निशस्त्रीकरण के बारे में संयुक्त राष्ट्र से विस्तृत योजना; अफ्रीका कोश की स्थापना; पृथ्वी बचाओ कोष आदि। परन्तु क्षेत्रीय व द्विपक्षीय स्तर पर जहाँ चीन व पाकिस्तान के साथ सम्बन्धों में थोड़ा सुधार हुआ, लेकिन शान्ति सेना भेजने के कारण श्रीलंका के साथ तनाव बढ़ा। अतः स्वरूप को लेकर परिवर्तन भले ही दिखाई पड़ता हो, परन्तु मूलरूप से निरन्तरता ही बनी रही। विदेश नीति की निर्णायक प्रक्रिया में असंस्थाकरण का अभाव अवश्य बढ़ा। इसके परिणाम स्वरूप विदेश मंत्री व विदेश सचिवों के निरन्तर तबादले हुए। विदेश मंत्रालय के लिए एक उच्च कोटि के सहायक व निर्देशक का अभाव बना रहा।

विश्वनाथ प्रताप सिंह व चन्द्रशेखर की सरकारें अपनी अल्पावधि के कारण कुछ नहीं कर सकीं। दोनों सरकारें अपने घरेलू उलझनों के कारण इस ओर अधिक ध्यान भी नहीं दे पाईं। इस दिशा में विफलता का प्रमुख उदाहरण खाड़ी युद्ध के समय भारत की किंकर्तव्यविमूढ़ता की नीति से लगाया जा सकता है। नरसिम्हाराव की सरकार के दौरान विश्व अप्रत्याशित उथल–पुथल के दौर से गुजर रहा था। देश की आन्तरिक आर्थिक स्थिाति भी अत्यन्त नाजुक हो गई थी। अतः सोवियत विद्यटन एवं आन्तरिक आर्थिक दबावों के परिणाम स्वरूप आर्थिक सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी। उसके परिणाम स्वरूप उदारीकरण, अमेरिका से सहयोग, पूर्व की ओर आकर्षण की नीति, खुली बाजारी व्यवस्था, विश्व व्यापार संगठन में शामिल होना आदि विदेश नीति संबंधी निर्णय लिए गए। परन्तु इस सारे परिवर्तन में व्यक्तिपरक कम तथा परिस्थितियों की अधिक भूमिका रही। देवगौड़ा का भी विदेश नीति पर व्यक्तिपरक प्रभव नहीं रहा। इसका पहला कारण उनकी इससे पूर्व राष्ट्रीय राजनीति में भूमिका का न होना था। दूसरा, उनके कार्यकाल में इन्द्रकुमार गुजराल जैसा अनुभवी विदेश मंत्री था। तीसरा, मिश्रित सरकार की बाधाओं के कारण भी वह अधिक प्रभाव नहीं रख सके। अन्ततः उनका सीमित कार्यकाल भी इस प्रकार के प्रभाव स्थापित करने के विपरीत रहा।

इन्द्रकुमार गुजराल के व्यक्तित्व का प्रभाव विदेश नीति पर अवश्य देखने को मिलता है। यद्यपि वे भी थोड़े समय के लिए प्रधानमंत्री रहे तथा नेहरू व इंदिरा गाँधी की विदेश नीतियों के समर्थक रहे। परन्तु परिवतर्तित विश्व संदर्भ पर उन्होनें अपना व्यक्तिपरक प्रभाव छोड़ा है। उन्होंने जहाँ भारत की परमाणु नीति में भारत की स्थिति

की निरन्तरता बनाये रखी, वहीं पर पड़ोसी देशों के संदर्भ में "गुजराल सिद्धान्त" का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के माध्यम से भारत पड़ोसी राज्यों को एक तरफा छूट देकर मधुर सम्बन्ध बनाने का पक्षधर है। अतः यह गुजराल के मौलिक चिन्तन व प्रभाव को दृष्टिगोचर करता है। उनके इस प्रभाव के कारण शायद उनका लम्बा राजनयिक अनुभव, भारत की विदेश नीति में विद्यमान सर्वसम्मति, संयुक्त मोर्चा के घटकों का विदेश नीति में रुचि का अभाव आदि रहे हैं। अटलबिहारी वाजपेयी का व्यक्तिपरक प्रभाव भी देखने को मिलता है, परन्तु उनके साथ कुछ अपने दल की विचारधारा का दबाव भी प्रतीत होता है। सर्वप्रथम, मई 1998 में परमाणु विस्फोट के माध्यम से भारत की परमाणु नीति में अप्रत्याशित परिवर्तन के कारण उनके दल की इस सन्दर्भ में प्रतिबद्धता एवं सी०टी०बी०टी० के बाद भारत के नेतृत्व में राष्ट्रीय सुरक्षा की चिन्ता का मिश्रित स्वरूप माना जा सकता है। परन्तु फरवरी 1999 में 'लाहौर बस यात्रा' राज्य अपने अन्य दबाओं के अतिरिक्त वाजपेयी जी की व्यक्तिपरक सोच का प्रमाण प्रतीत होता है। उनके उदारवादी दृष्टिकोण के सन्दर्भ में ही उनकी पूर्व विदेश मंत्री के रूप में 1978 में पाकिस्तान से सम्बन्ध सुधारों की पहल का वर्तमान सन्दर्भ की पहल को समझा जा सकता है। उनकी अमेरिका से सम्बन्ध सुधार प्रक्रिया व आर्थिक उदारीकरण कार्यक्रमों को शीत युद्धोत्तर सरकारों की निरन्तरता की नीतियों का प्रतीक ही मानना चाहिए। अपने दल के कट्टरवादी दृष्टिकोण के बावजूद पाकिस्तान से संबंध सुधार की पहल अवश्य ही उनकी निजी सोच का परिचायक हो सकती है, परन्तु इस दिशा में ठोस परिणाम नहीं निकले, क्योंकि मई 1999 में कारगिल में पाकिस्तान की कार्यवाही ने उत्साहपूर्ण पहल की सार्थकता को प्रश्न चिह्न लगा दिया।

मोदी का 3 वर्ष से अधिक समय का कार्यकाल विदेश नीति स्तर पर कूटनीतिक सक्रियता से भरा रहा। मोदी ने राजनयिक का एक नया अन्दाज पेश करते हुए विदेश नीति में अपना डंका बजा दिया। इस नये अंदाज के तहत छोटे देशों के साथ दोस्ती पर फोकस किया जा रहा है और पड़ोसियों के साथ सम्बन्ध सुधार पर बल दिया जा रहा है। मोदी कूटनीति का फोकस आर्थिक हित है जिसके तहत विदेशी निवेशकों के सेंटिमेंट को सुधारने की कोशिश की जा रही है। मोदी की व्यक्तित्व का ही करिश्मा है कि विदेशों में मोदी की विदेश यात्राओं के दौरान मोदी–मोदी के नारे लगे, जिससे यह कहा जाने लगा कि भारतीय विदेश नीति मोदी के नेतृत्व में पुनः सक्रिय कूटनीति का आगाज है, लेकिन सफलता के पायदान पर देखे तो प्रधानमंत्री मोदी विदेश नीति के मोर्चे पर व्यक्तित्व के स्तर पर एक करिश्माई नेता के रूप में अवश्य उभरे, परन्तु घरातल के स्तर पर वे अभी परिणाम से काफी दूर हैं। चाहें पड़ोसी राष्ट्रों से सम्बन्धों का सवाल हो या सुरक्षा परिशद एवं एन०एस०जी० की सदस्यता, अभी भी भारतीय विदेश नीति के लिए एक गम्भीर चुनौती है।

सन्दर्भ संकेत

1. भारतीय विदेश नीति– लिछापि और अरोड़ा
2. विदेश नीति पुश्पेस पन्त
3. सहारा– हस्तक्षेप
4. हिन्दुस्तान हिन्दी दैनिक समाचार पत्र
5. जनसत्ता हिन्दी दैनिक समाचार पत्र

❑❑

शुद्ध जल के स्रोतों का ह्रास

मृदुलता सोनकर
असिस्टेंट प्रोफेसर – गृहविज्ञान
राजकीय महिला स्नातकोत्तर, महाविद्यालय हमीरपुर (उ0प्र0)

''पानी है गुणों की खान, पानी है धरती की शान''

जल जीवन के लिए बहुत ही आवश्यक है ऑक्सीजन (हवा) के बाद मानव की दूसरी एवं सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता जल ही है। इसके बिना जीवन को बहुत अधिक दिनों तक नहीं जिया जा सकता है। न केवल मनुष्य को ही जल की आवश्यकता होती है वरन् संसार के सभी प्राणियों को जीवित रहने के लिए जल परमावश्यक है। यद्यपि जल में किसी भी तरह का पौष्टिक तत्व विद्यमान नहीं रहता है और न ही यह ऊर्जा ही प्रदान करता है परन्तु तब भी आहार विज्ञानियों ने इसकी महत्ता को देखते हुए इसे पोषक तत्वों के अन्तर्गत रखा है।

जल H_2 एवं O_2 (हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन) के रासायनिक संयोग से बनता है। इसका सूत्र H_2O है। यह एक अकार्बनिक यौगिक है। हमारे कुल शरीर भार का 60–70 प्रतिशत भाग जल होता है। तन्तुओं में पानी की मात्रा 60–70 प्रतिशत होती है।

जल के कार्य–

1. घोलक के रूप में।
2. शारीरिक तापमान को नियंत्रित रखने में सहायक है।
3. स्नेहक के रूप में सहायक (जोड़ो में)।
4. कोशो के संरचानात्मक घटक के रूप में।
5. निर्माणात्मक कार्य के रूप में।
6. शारीरिक तरलों में माध्यम के रूप में।
7. कोमल अंगों की सुरक्षा करने में।
8. निरूपयोगी पदार्थो के निष्कासन में।
9. पाचन में सहायक।
10. पोषक तत्वों के हस्तान्तरण में।

जल सन्तुलन की प्रक्रिया – प्रति दिन हमारे द्वारा ग्रहण किए गये जल की मात्रा में भिन्नता होती है, परन्तु फिर भी शरीर में जल सन्तुलन बना रहता है। पानी की ग्रहण की गई मात्रा एवं यूरिन से उत्सर्जित पानी की मात्रा का नियंत्रण शरीर में एक प्रणाली के अन्तर्गत होता है, जिससे ''हारमोन्स द्वारा पानी की ग्रहण की जाने वाली मात्रा के अनुपात में ही यूरिन की मात्रा बनकर उत्सर्जित होती है।''

शरीर में जल सन्तुलन को बनाये रखने में अधश्चेतक (हाइपोथैलेमस) में उपस्थित तंत्रिका केन्द्र तथा पश्च पीयूष ग्रन्थि से स्त्रावित एन्टी डाइयूरेटिक हारमोन का अमूल्य योगदान होता है।

जल के स्रोत – जल संसाधन पानी के वह स्त्रोत हैं जो मानव के लिए उपयोगी हो या जिनके उपयोग की संभावना हों पानी के उपयोगों में शामिल है कृषि, औद्योगिक, घरेलू, मनोरंजन हेतु और पर्यावरणीय गति विधियों में। वस्तुतः इन सभी मानवीय उपयोगों में से ज्यादातर में ताजे जल की आवश्यकता होती है।

पृथ्वी पर पानी की कुल उपलब्ध मात्रा अथवा भण्डार को जल मण्डल कहते है। पृथ्वी के इस जल मण्डल का 97.5 प्रतिशत भाग समुद्र में खारे जल के रूप में है और केवल 2.5 प्रतिशत ही मीठा पानी है, उसका भी दो तिहाई हिस्सा हिमनद और ध्रुवीय क्षेत्रों में हिम चादरों और हिम टोपियों के रूप में जमा है। शेष पिघला हुआ मीठा पानी मुख्यतः जल के रूप में पाया जाता है, जिस का केवल एक छोटा सा भाग भूमि के ऊपर धरातलीय जल के रूप में या हवा में वायुमण्डलीय जल के रूप में है।

मीठा पानी एक नवीकरणीय संसाधन है क्योंकि जल चक्र में प्राकृतिक रूप से इसका शुद्धीकरण होता रहता है, फिर भी विश्व के स्वच्छ पानी की पर्याप्त लगातार गिर रही है। दुनियाँ के कई हिस्सों में पानी की मांग पहले से ही आपूर्ति से अधिक है और जैसे–जैसे विश्व में जनसंख्या में अभूतपूर्व दर से वृद्धि हो रही है। आज जल संसाधन की कमी, इसके अवनयन और इससे सम्बन्धित तनाव और संघर्ष विश्व राजनीति और राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण मुद्दे है। जल विवाद राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोंनो स्तरों पर महत्वपूर्ण विषय बन चुके है।

मीठे जल के स्रोत–

धरातलीय जल – धरातलीय जल या सतही जल पृथ्वी की सतह पर पाया जाने वाला पानी है जो गुरूत्वाकर्षण के प्रभाव में छात्र का अनुसरण करते हुए सरिताओं या नदियों में प्रवाहित हो रहा हैं अथवा पोखरो, तालाबों और झीलों या मीठे पानी की आर्द्रभूमियों में स्थित है। किसी जल सम्भर में सतह के जल की प्राकृतिक रूप से वर्षण और हिमनदों के पिघलने से पूर्ति होती है और वह प्राकृतिक रूप से ही महासागरों में निर्वाह, सतह से वाष्पीकरण और पृथ्वी के नीचे की ओर रिसाव के द्वारा खो जाता है।

हालाँकि किसी भी क्षेत्रीय जल तंत्र में पानी का प्राकृतिक स्त्रोत वर्षण ही है और इसकी मात्रा उस बेसिन की भौगोलिक अवस्थिति और आकार पर निर्भर हैं इसके अलावा एक जल तंत्र में पानी की मात्रा किसी भी समय अन्य कई कारकों पर निर्भर होती है।

नदी तली के नीचे का प्रवाह – नदी के पूरे मार्ग की ओर प्रवाहित जल की मात्रा केवल वही नहीं होती जो स्वतंत्र जल धारा के रूप में बहती हुई दिखती है बल्कि नदी की तली के ठीक नीचे की भी काफी पानी प्रवाहित होता रहता है। यह पानी तली के असंगठित पदार्थो के बीच से होकर बहता है। जैसे कि कंकड़ो और गोलाश्मों की मोटी परत के बीच से होकर ऐसे प्रवाह को अवप्रवाह कहते है और यह कभी कभी दिखाई पड़ने वाले प्रवाह से अधिक भी हो सकता हैं नदी के नीचे अप्रवाह की इस पेटी को अप्रवाह मण्डल कहा जाता है। एक प्रकार से यह वह पेटी है जहाँ 'भूजल और नदी जल' का आपसी अंतर मिट जाता है। यह कार्स्ट प्रदेशों और तराई क्षेत्र में काफी महत्वपूर्ण होता है।

भूजल – भूजल या भूमिगत जल मीठे जल का हिस्सा है जो मिट्टी और चट्टानों के रंध्राकाशों (Pore) में स्थित होता है। यह जल स्तर के नीचे जल भरे के भीतर बहने वाला जल भी है। भूजल के इस प्रवाह को अधोप्रवाह (underflow) कहा जाता है। कभी–कभी सतह के ठीक नीचे के जल को भूजल तथा अत्यधिक गहराई में पाए जाने वाले जल को भूगर्भिक जल या जीवाश्म जल (fossil water) भी कहते है।

विलवणीकरण – विलवणीकरण एक कृत्रिम प्रक्रिया है जिसके द्वारा खारा पानी (soline water) आमतौर पर समुद्र का पानी ताजे पानी में बदला जाता है। सबसे आम विलवणीकरण प्रक्रियाएं आसवन (distillation) और उलट परासरण (reverse osmosis) है। फिलहाल अन्य वैकल्पिक स्त्रोतों की तुलना में विलवणीकरण एक बहुत महंगा विकल्प है और कुल मानव उपयोग का एक बहुत छोटा अंश ही इस के द्वारा पूरा होता है यह केवल आर्थिक दृष्टि से उत्तम व्यावहारिक मूल्य वाले क्षेत्रों (जैसे घरेलू और औद्योगिक उद्योंगो के लिए) या फिर शुष्क क्षेत्रों में उपयोगी है। इसका सबसे व्यापक उपयोग फारस की खाड़ी के क्षेत्र में है।

जमा हुआ जल – हिमशैल को जल के स्त्रोत के रूप में उपयोग करने के लिए कई प्रस्ताव रखे गए है किन्तु

आज तक यह केवल नवीन परियोजनाओं के लिए विचाराधीन ही है। हिमानी अपवाह को भी धरातलीय जल माना जाता है।

मीठे जल के उपयोग –

कृषि उपयोग – पृथ्वी पर कुल जल उपयोग का 60 प्रतिशत जल सिंचाई के लिए उपयोग होता है। जिसका 14 प्रतिशत से 35 प्रतिशत सिंचाई आहरण धारणीय या सतत् उपयोग नहीं।

विश्व के कुछ क्षेत्रों में सिंचाई किसी भी फसल के लिए आवश्यक है जबकि अन्य क्षेत्रों में यह अधिक लाभदायक फसलों की बढ़त अथवा फसल पैदावार की वृद्धि में कारगर है। विभिन्न सिंचाई विधियों में फसल पैदावार, जल खपत एवं उपकरणों और संरचनाओं पूंजी लागत में समागम शामिल है। सतह के ऊपर या नीचे के सेचक (sprinkler) कम महंगे किन्तु कम कारगर भी होते है, क्योंकि अधिकतर जल वाष्पीभूत हो जाता है या रिस जाता है अधिक कारगर सिंचाई विधियों में शामिल है रिसाव सिंचाई, प्रवाह सिंचाई और सेचक सिंचाई जिसमें है। सेचक जमीनी स्तर के पास संचालित किए जाते हो।

जलीय कृषि जल का एक छोटा लेकिन बढ़ता प्रयोग है। मीठे पानी में व्यावसायिक मत्स्य पालन भी पानी का कृषि उपयोग माना जाता है, लेकिन इसे सिंचाई से कम महत्व दिया जाता है।

औद्योगिक उपयोग – अनुमान है कि विश्वभर कें 15 प्रतिशत जल का उपयोग औद्योगिक है। प्रमुख औद्योगिक उपयोग कर्ताओं में शामिल है तापीय बिजली घर जो पानी को शीतलन के लिए उपयोग करते हैं वही जल विद्युत संयंत्र पानी को बिजली स्त्रोत के रूप में उपयोग करते है। अयस्क और पेट्रोलियम संयंत्र रासायनिक प्रक्रियाओं में पानी का उपयोग करते है और कई विनिर्माण संयंत्र इसे एक विलायक के रूप में उपयोग करते हैं। औद्योगिक उपयोग में नष्ट होने वाले पानी में व्यापक विविधता है पर वैश्विक स्तर पर यह कृषि उपयोग में होने वाले क्षय से कम है।

घरेलू उपयोग – अनुमान लगाया जाता है कि विश्व में कुल जल उपयोग का 15 प्रतिशत जल घरेलू उद्देश्यों के लिए उपयोग में लाया जाता है इनमें शामिल है पीने का पानी, स्नान, खाना पकाने, स्वच्छता और बागवानी इत्यादि। पीटर गलैक के अनुमान अनुसार घरों की बुनियादी आवश्यकताओं के लिए प्रतिदिन व्यक्ति लगभग 50 लीटर की खपत है और इसमें बगीचों के लिए पानी शामिल नहीं है।

मनोरंजन – मनोरंजन के लिए प्रयोग होने वाला जल आमतौर पर कुल जल प्रयोग का एक बहुत छोटा किन्तु बढ़ता हुआ हिस्सा है। मनोरंजन में पानी का उपयोग अधिकतर जलाशयों, क्षिप्रिकाओं, झरनों और साहसिक खेलों से जुड़ा हुआ है। गोल्फ कोर्स पानी की अत्यधिक मात्रा का उपयोग करने के लिए प्रसिद्ध है, विशेषकर खुश्क क्षेत्रों में। लेकिन यह स्पष्ट नही है कि मनोरंजन सिंचाई के लिए जल का उपयोग (जिसमें निजी उद्यानों शामिल होंगे) पानी के संसाधनों पर क्या प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है। ऐसा काफी हद तक विश्वसनीय डेटा के अभाव के कारण है। श्वेत जल राफ्टिंग के लिए जल निर्गमन बिजली की मांग के व्यस्ततम समय पर पन बिजली उत्पादन के लिए जल की अनुपलब्धता में परिणत हो सकता है।

पर्यावरणीय उपयोग – स्वच्छ पर्यावरण के लिए पानी का प्रयोग भी एक बहुत छोटा उपयोग है लेकिन बढ़ती कुल जल का प्रयोग का प्रतिशत है। पर्यावरणीय जल उपयोगों में शामिल है–

कृत्रिम आर्द्रभूमि निर्माण, वन्यजीव आवास के लिए अपेक्षित कृत्रिम झीले, बांध के इर्द–गिर्द मत्स्य सोपान और मछली पालन के लिए समयबद्ध जलाशयों से जल मुक्ति इत्यादि।

जलसंकट – जल संकट और जल तनाव की अवधारणा सरल है सतत विकास के लिए विश्व व्यापार परिषद के अनुसार यह उन परिस्थितियों पर लागू होता है जहाँ सभी उपयोगों के लिए पर्याप्त पानी नहीं उपलब्ध है चाहे वे

औद्योगिक, कृषि या घरेलू उपयोग हों। प्रति व्यक्ति उपलब्ध जल तनाव को परिभाषित करना जटिल है, तथापि यह धारणा हैं कि जब प्रति व्यक्ति वार्षिक अक्षय मीठे पानी की उपलब्धता 1700 घन मीटर से कम हो, तो देश अल्पावधिक या नियमित रूप से पानी तनाव का अनुभव करने लगते है। 1,000 घन मीटर से कम जल उपलब्धता आर्थिक विकास और मानव स्वास्थ्य और समृद्धि में बाधा डालती है।

जनसंख्या वृद्धि और जल संसाधन – सन् 2000 ई. में दुनिया की आबादी 6.2 अरब थी। संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है कि सन् 2050 ई. तक जनसंख्या में 3 अरब की वृद्धि हो जायेगी और इसका ज्यादातर हिस्सा विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि करेगा जो पहले से ही जल तनाव से ग्रस्त है। इसलिए जल की मांग और बढ़ेगी जब तक इस महत्वपूर्ण संसाधन में जल संरक्षण और पुर्नप्रयोग द्वारा अनुकूल वृद्धि नहीं होती।

समृद्धि में बढ़त – गरीबी उन्मूलन दर की वृद्धि हो रही है खास कर चीन और भारत जैसे दो जनसंख्या दिग्गजों में। बहरहाल, बढ़ती समृद्धि का मतलब है निश्चित रूप से अधिक पानी की खपत। 24 घण्टे 7 दिन मीठे पानी की आवश्यकता और बुनियादी स्वच्छता से लेकर उद्यान सिंचाई और गाड़ी धोने के लिए पानी की मांग करने से लेकर निजी तरणताल की चाहत तक यह समृद्धि जल की मांग में वृद्धि ही करेगी।

व्यावसायिक गतिविधियों का विस्तार – तेजी से हो रहे औद्योगीकरण से सेवा क्षेत्र जेसे पर्यटन और मनोरंजन जैसी व्यावसायिक गतिविधियाँ तेजी से विस्तार कर रहीं है। इस विस्तार के फलस्वरूप पूर्ति और स्वच्छता सहित जल सेवाओं में वृद्धि होती है जो पानी और प्राकृतिक संसाधनों और पारिस्थितिक तेल पर और अधिक दबाव के कारण हो सकते है।

तीव्र शहरीकरण – शहरीकरण के रूझान इसमें तीव्र वृद्धि के है। निजी लघु कुएं और गटर (septic tank) जो कम घनत्व समुदायों में कारगर साबित होते है, भारी घनत्व के शहरी क्षेत्रों में सक्षम नहीं होते। शहरीकरण के होते जल सम्बन्धित बुनियादी सुविधाओं में महत्वपूर्ण निवेश की आवश्यकता है। व्यक्तियों तक पानी पहुँचाने के लिए और मलजल को और प्रदूषित और दूषित जल का उपचार किए जाने को सुविधाओं का विकास अनिवार्य है। अन्यथा ये सार्वजनिक स्वास्थ्य जोखिम बन जायेंगे। 60 प्रतिशत यूरोपीय शहरों में जिस की जनसंख्या 100,000 से अधिक है, वहाँ भूमिगत जल तेज दर से प्रयोग किया जा रहा है। यदि कुछ जल उपलब्ध है, तो उसे ग्रहण करने की लागत में वृद्धि ही हो रही है।

जल वायु पविर्तन और जल संसाधन – जलवायु परिवर्तन मौसम और जल चक्र के बीच अभिन्न सम्बन्धों के कारण दुनिया भर के जल संसाधनों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है। बढ़ते तापमान के रहते वाष्पीकरण में वृद्धि होगी और परिणाम स्वरूप वर्षण में भी वृद्धि होगी। कुल मिलाकर ताजे पानी की वैश्विक आपूर्ति में वृद्धि होगी लेकिन सूखा और बाढ़ विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग समय पर अक्सर हो सकते है और पहाड़ी क्षेत्रों में बर्फबारी और तुषार पिघलाव की संभावना हैं बढ़ा तापमान जल गुणवत्ता को कैसे प्रभावित करेगा यह अच्छी तरह समझा नहीं गया है।

जल भरों का रिक्तीकरण – मानव आबादी के विस्तार के कारण जल के लिए प्रतिस्पर्धा ऐसे बढ़ रही है कि विश्व के प्रमुख जल भरे समाप्त होते जा रहे है। यह भूमिगत जल के द्वारा कृषि सिंचाई और प्रत्यक्ष मानव उपभोग दोनों के लिए कड़वा यथार्थ है। पूरी दुनियां मे सभी आकार के लाखों पम्प इस समय भूमिगत जल निकाल रहें है।

अन्य जगहों की तरह भारत में भी भूजल का वितरण सर्वत्र समान नहीं है। भारत के पठारी भाग हमेशा से भूजल के मामले में कमजोर रहे है। भारत में जलभरों और भूजल की स्थिति पर चिंता जाहिर की जा रही है। जिस तरह भारत में भूजल का दोहन हो रहा है भविष्य में स्थितियाँ काफी खतरनाक हो सकती है। वर्तमान समय में 29 प्रतिशत विकास खण्ड या तो भूजल के दयनीय स्तर पर है या चिंतनीय है और कुछ आंकड़ो के अनुसार 2025

तक लगभग 60 प्रतिशत ब्लाक चिंतनीय स्थिति में आ जायेंगे।

प्रदूषण और जल संरक्षण – जल प्रदूषण आज विश्व के प्रमुख चिंताओं में से एक है। कई देशों की सरकारों की इस समस्या को कम करने के लिए समाधान खोजने के लिए कड़ी मेहनत की हैं जल आपूर्ति को कई प्रदूषकों से खतरा है, किन्तु सब से अधिक व्यापक विशेषकर अल्पविकसित देशों में है। कच्चे मलजल का प्राकृतिक जल में प्रवाह द्वारा इसके निपटान की यह विधि अल्पविकसित देशों में सबसे आम है लेकिन यह अर्थ विकसित देशों जैसे चीन, भारत और ईरान में भी प्रचलित है।

मल, कीचड़, गन्दगी और विषाक्त, प्रदूषक सब पानी में फेंक दिए जाते है। मल उपचार के बावजूद समस्याएँ खड़ी होती है। मल कीचड़ में तब्दील होता है, जो समुद्र में बहा दिया जाता है कीचड़ के अतिरिक्त उद्योगों और सरकारों द्वारा रसायनों का रिसाव जल प्रदूषण का प्रमुख स्त्रोत है।

सन्दर्भ सूची

1. आहार विज्ञान एवं पोषण – डॉ0 (श्रीमती) वृन्दा सिंह
2. इन्टरनेट के द्वारा –

- डॉ0 आश नारायण राय – जल अधिकार का वैकल्पिक संसार (इण्डिया वाटर पोर्टल दैनिक भास्कर 9 नवम्बर 2010)।
- विश्व की जल 2006–2007 सारणी पैसिफिक संस्थान
- WBCSD पानी तथ्यों और रूझान
- विश्व के जल मीठे जल संसाधनों की द्विवर्षीय रिपोर्ट (आईलैंड प्रेस, वाशिंगटन डीसी)
- जल मंडल – इण्डिया वाटर पोर्टल
- संयुक्त राष्ट्र की भविष्य वाणी है की सं0 2050 तक विश्व जनसंख्या 9.9 अरब हो जायेगी के पर्यावरण : दो ब्रिस का आकलन
- शहरी विकास में भूमिगत जल
- Paul Wyrwoll, Australian National University, Australia India's ground water crisis July 30, 2012 IN DEVELOPMENT, WATER SECURITY
- दक्कन हेराल्ड – India's ground water table to dry up in 15 year : अभिगमन तिथि 05.07.2014।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारत की आस्था और थ्री हैण्ड्रेड रामायनाज एवं दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ0 नीरज कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
चौ. चरणसिंह पी.जी. कॉलेज, हैंवरा (इटावा)

डॉ0 गायत्री सिंह
प्राचार्या
अर्मापुर पी. जी. कालेज, कानपुर

भारत की राजधानी दिल्ली में जहॉ भारत तेरे टुकड़े होंगे इंशा अल्लाह इंशा अल्लाह ''अफजल हम शर्मिंदा है तेरे कातिल जिंदा है जैसे नारे एक समय लगे थे। विभिन्न राजनीतिक पार्टियों ने अपनी विचारधारा के अनुसार इसका समर्थन और विरोध किया था। वहीं दिल्ली विश्वविद्यालय में थ्री हैण्डेड रामायनाज स्नातक पाठ्यक्रम में शामिल किया गया था हम सब को पता है कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम भारत की आस्था के प्रतीक हैं। इसी आस्था से सम्बन्धित एक आलेख काफी चर्चा में है। इस चर्चित आलेख को देश की राजधानी दिल्ली स्थित दिल्ली विश्वविद्यालय ने अपने स्नातक पाठ्क्रम में शामिल किया था। बहुभाषा और बहुस्थानिक रामायणों के विविध पाठों पर आधरित ए. के. रामानुजन का प्रसिद्ध निबन्ध 'थ्री हैण्ड्रेड रामायनाज फाइव इक्जाम्पल एण्ड थ्री थाट्स आफ ट्रान्सलेशन'' को 2008 में दिल्ली विश्वविद्यालय की विद्वत परिषद की संस्तुति के बाद बी.ए. के विद्यार्थियों को पढ़ाया जा रहा था। तीन सौ प्रकार की रामायण में क्या पढ़ाया जा रहा था और वह भी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के नाम पर उसका संक्षिप्त अवलोकन आप भी करें। रावण की छींक से सीता पैदा हुईं। रावण सीता का बाप था। रावण ने आठ महीने का गर्भ धारण किया और जब उसे घर से बाहर जाने में शर्म महसूस होने लगी तो उसने जोर से छींका और उसकी नाक से सीता पैदा हुईं। बी.ए. पास कोर्स में ऐन्शियन्ट कल्चर इन इण्डिया के अन्तर्गत उपरोक्त तथ्यों को पढ़ाया जा रहा था। इस कोर्स से सम्बन्धित किताब की कम्पायलेशन (संकलन) की थी– तत्कालीन प्रधानमंत्री मि. मनमोहन सिंह की बेटी उपेन्द्र सिंह ने।

दिल्ली वि. वि. में प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास के नाम पर छात्र–छात्राओं को और क्या पढ़ाया जा रहा था ? कुछ उदाहरण या तथ्य और देखिये – सीता और लक्ष्मण के अनैतिक सम्बन्ध थे। रात को रावण के अन्तःपुर में हनुमान जी विचरते थे कि शयनकक्षों में क्या हो रहा हैं? पाठ्यक्रम के माध्यम से यह सब चीजें पढ़ा कर दिल्ली विश्वविद्यालय कैसा उदात्त सन्देश प्रसारित करना चाहता था ? ये सब चीजें पढ़कर किसी भी राष्ट्रभक्त के सीने में उबाल आना स्वभाविक है। देश के बुद्धिजीवियों ने, विद्यार्थियों ने इस पाठ्यक्रम का विरोध करना शुरू किया। यह बात दिल्ली हाईकोर्ट तक भी गई। दिल्ली हाई कोर्ट में केस फाइल किया गया न्यायाधीश ने कहा '' वी आर मोर टालरेन्ट मेरे पास कोई निर्णय नहीं है। '' इसके बाद देश का बुद्धिजीवी वर्ग सुप्रीम कोर्ट गया। उस समय श्री के. जी. बालाकृष्णन साहब न्यायाधीश थे। उन्होंने जो कहा उस पर ध्यान देना पड़ेगा –'' न,न,न, यू हैव गो टू वाइस चान्सलर। अपनी समस्या कुलपति महोदय से बताइये। ''इसके बाद यह प्रकरण दिल्ली विश्वविधालय के कुलपति के पास गया। उनसे भी कई बार वार्ता होने के बाद यह मामला दिल्ली विश्वविद्याालय की विद्वत् परिषद के सामने रखा गया। विद्वत परिषद ने सर्वसम्मति से दिल्ली विश्वविद्यालय के स्नातक पाठ्यक्रम से इस कोर्स को बाहर किया।

तीन सौ प्रकार की रामायण से सम्बन्धित रामानुजन का यह आलेख पाउला रिचमैन की सन् 1992 में प्रकाशित –'मेनी रामायनाजः द डायवर्सिटी आफ द नैरेटिव ट्रैडिशन' में संकलित है।[1] इसमें पांच रामायणों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर सांस्कृतिक वैविध्य के निहितार्थों की पड़ताल की गई है। इसमें वाल्मीकि रामायण,

कंबन रामायण, विमल सूरि कृति पउमचरिउ, थाई रामायण के साथ–साथ कन्नड़ की एक लोक रामायण को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण और कंबन रामायण के अहिल्या प्रसंग के साम्य–वैषम्य को दर्शाया गया है। यद्यपि दोनों रामायणों में प्रसंगों की समानता है, किन्तु दोनों के कथन में अन्तर है। रामानुजन के अनुसार, ''इस तरह अहिल्या प्रसंग बुनियादी तौर पर वही है, लेकिन उसकी कताई, उसका टैक्सचर, उसके रंग बहुत भिन्न हैं। उत्तरवर्ती कवि कंबन के वाचन मे जो सौंदर्यात्मक आनन्द है, वह अंशतः पूर्ववर्ती के काम का कलात्मक विधि से उपयोग करने, उसे परिवर्तित करने का परिणाम है, कुछ हद तक बाद की सभी रामायणें पिछले वाचनों के ज्ञान का लाभ उठाती हैं। इस तरह वे यानी पहले वाली अधि रामायणें हैं।[2]

तीसरी रामायण के रूप में रामानुजन ने विमलसूरि के 'पउमचरिउ' को लिया है। यह जैन रामायण यह मानकर चलती है कि पूर्व की रामायणें रावण की छवि को सायास बदनाम करती हैं। अन्यथा इतना बड़ा ज्ञानी पंडित, उच्च कोटि का शिव भक्त, अद्भुत बलशाली और अकूत ऐश्वर्यशाली व्यक्ति इतने घृणित चरित्र का माना जाय ?चौथी रामायण थाई रामायण है। इस थाई रामायण–रामकीर्ति में भी रावण का व्यक्तित्व उन्नतशाली है। वाल्मीकि के चरित्रों से अलग थाई चरित्र अच्छे और बुरे का मानवीय मिश्रण हैं।

भारतीय संस्कृति और रामकथा के विशेषज्ञ सन्तोष देसाई के अनुसार ''थाई जीवन का रामकथा से ज्यादा हिन्दू मूल की और किसी चीज ने प्रभावित नहीं किया। उनके बौद्ध मंदिरों की दीवारों पर की गयी नक्काशी और चित्रकारी, शहरों और गाँवों में खेलें जानेवाले नाटक, उनकी नृत्य नाटिकाएँ, ये सभी रामकथा की सामग्री का इस्तेमाल करती हैं। रोचक तथ्य यह है कि थाई लोग सबसे ज्यादा सीता हरण और युद्ध के हिस्से को पसन्द करते हैं। अलगाव और पुनर्मिलन जो कि हिन्दू राजाओं का मर्मस्थल है, वहाँ उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं, जितने कि युद्ध तकनीक, चमत्कारी अस्त्रों आदि के विवरण और उनका रोमांच। युद्ध काण्ड किसी भी वाचन के मुकाबले यहाँ अधिक विस्तृत है। जबकि कन्नड़ लोक वाचनों में यह बहुत कम अहमियत रखता है।[3] रामानुजन देसाई के हवाले से इसके कारणों की पड़ताल करते हुए लिखते हैं, ''युद्ध पर थाई लोगों का यह जोर महत्वपूर्ण है। आरम्भिक थाई इतिहास युद्धों से भरा पड़ा है, अस्तित्व रक्षा उनकी चिन्ता थी। '' पाठों और वाचनों की इस भिन्नता पर उनकी राय यह है कि, '' ये विभिन्न पाठ न सिर्फ पूर्ववर्ती पाठों से, कुछ लेते या कुछ खारिज करते, सीधे–सीधे सम्बद्ध हैं, बल्कि वे एक दूसरे से भी इस साझा कोड या साझा सामूहिक निधि के जरिए सम्बद्ध हैं। हर सर्जक सामूहिक निधि के इस सरोवर में डुबकी मारता है और एक अलग तरह का समिश्रण निकाल लाता हैं, अनोखे टेक्सचर और ताजातरीन सन्दर्भ के साथ एक नया पाठ।[4]

''पांचवीं कन्नड़ रामायण है। जिस तरह संस्कृत में 'सीता' का अर्थ 'हल की रेखा' होता है। उसी तरह कन्नड़ में सीता का अर्थ 'उसने छींका' होता है। अब चूकि वाल्मीकि रामायण में सीता हल की रेखा यानी धरती से पैदा होती हैं तो कथानक की लोकप्रियता का ही परिचायक है कि जनमानस में 'सीता' का अर्थ ही 'हल की रेखा, हो गया।[5]

कन्नड़ की एक लोक रामायण में सीता का जन्म रावण की छींक से होता है। अस्पृष्य भाट द्वारा गाया गया यह लोक आख्यान रावण (राबुला) और उसकी पत्नी मंदोदरी के साथ शुरू होता है। वे सन्तानहीन हैं और सन्तान प्राप्ति के लिए अत्यधिक तपोयोग करते हैं। शिव के रूप में उन्हें एक योगी मिलते हैं और एक चमत्कारी आम देते हैं। साथ ही निर्देश देते हैं। कि आम का गूदा मंदोदरी को खिलाना है और गुठली स्वयं खाना है। यह इसके विपरीत आम का गूदा स्वयं खा लेता है। और गुठली मंदोदरी को खिलाता है। परिणामस्वरूप रावण गर्भ धारण कर लेता है और गर्भ पूरा होने पर छींक के माध्यम से सीता का जन्म होता है। रामानुजन ने पाँच रामायणों में एक इस कन्नड़ मौखिक रामायण को भी उदाहरण स्वरूप शामिल किया है। दक्षिण भारत के अतिरिक्त उत्तर भारत की कई रामकथाओं में सीता को रावण की बेटी कहा गया है,

परन्तु किसी भी रामायण में रावण को यह बात पता नहीं होती।[6]

बंग्ला रामायण चन्द्रावती में भी सीता रावण की बेटी है। ज्यादा सही यह कहना होगा कि सीता मन्दोदरी की बेटी है। उक्त कथानुसार ''मन्दोदरी ने अपने गर्भ का 'सत' भरकर समुद्र में इस प्रण के साथ तैराया था कि हे सागर, यह मुझ अकेली स्त्री के आहत तेज का 'सत' है जिसके पति का आधा समय आत्मरक्षा को निवेदित पूजा–पाठ में जाता है, आधा मार–पीट (जगत हिंसा+घरेलू हिंसा) और परस्त्रीगमन में। तुम अपने थपेड़ों से घट में भरा मेरा 'सत' जरा पुष्ट करो और लहरों की गोद में बिठाकर किसी ऐसे उर्वर तट को सुपुर्द कर आओ जहाँ यह मुझ अकेली स्त्री की बेटी के रूप में अवतरित हो सके। अपना सम्पूर्ण तेज इस अपने 'सत' को निवेदित करती हूँ और धरती से भी प्रार्थना करती हूँ कि वह अपना गर्भ इसे दे और ऐसा घटनाक्रम रचे कि (मेरी बेटी) इसके ही बहाने मेरे अन्यायी पति का वध सम्भव हो।''[7]

इस कथानक में दो बातें ध्यान देने की हैं। पहली तो यह कि सोलहवीं शताब्दी की चन्द्रावती (तुलसीदास से पूर्व) मन्दोदरी को दुराचारी पति रावण की हत्या का प्रण लेते दिखाती हैं। जहाँ कई अन्य रामायण बुरा और दुराचारी पति की पादवन्दना का उपदेश दे रही थीं, वहाँ इस तरह के आख्यान का सृजन अद्भुत है। दूसरी बात यह है कि यहाँ मन्दोदरी 'अकेली माँ' बनने का साहस दिखाती है। इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध लेखिका अनामिका लिखती हैं, ''मैंने जब पहली दफा 'चन्द्रावती रामायण' का यह प्रसंग सुना, मुझे पसीना आ गया! तो धरती माँ 'सेरोगेट मदर' थीं, असल माँ थी मन्दोदरी! पाँच महासतियों में मन्दोदरी की गिनती होती है और बावजूद इस प्रसंग के कि उन्होंने सीता को आत्मबल से 'कंसीव' किया था तो बस संकल्प के साथ कि वह उनके अत्याचारी पति के वध का कारण बने। कुन्ती की तरह उन्होंने किसी अन्य के तेज की भी मदद नहीं ली थी! अपने ही तेज से गढ़ी थी यह सन्तान ! 'सिंगल मदर' की यह मानस–पुत्री थी। जीसस क्राइस्ट की तरह ही किसी भौतिक समागम के बिना पर ही पैदा हुई थी। ...ठीक से देखा जाय तो हर उपेक्षित–अनादृत के गर्भ में विद्रोह की यह दबी ढकी चिनगारी पूर्ण लपट बनकर लहराने की गुप्त तैयारी करती ही रहती है।''[8]

रामानुज के इस आलेख की खासियत यह है कि वे विभिन्न रामायणों की अर्थव्याप्ति का विश्लेषण सम्पूर्ण सांस्कृतिक सन्दर्भों को खंगालते हुए करते हैं। लेकिन सांस्कृतिक सन्दर्भो को खंगालने के चक्कर में रामानुजन यह भूल जाते हैं कि जिस कार्य को मन्दोदरी, विभीषण यहां तक कि कुम्भकरण भी अनुचित ठहराते हैं। भारत में प्रचलित रामायण के कई रूपों की दुहाई देकर रामानुजन भारत की आस्था को ठेस पहुँचाने के दोषी हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय की विद्वत परिषद के द्वारा स्नातक पाठ्यक्रम से थ्री हैण्ड्रेड रामायनाज फाइव इक्जाम्पल एण्ड थ्री थाट्स आफ ट्रान्सलेशन'' नामक निबन्ध को बाहर किया जाना भारत की आस्था की विजय है। उम्मीद है कि भविष्य में दिल्ली विश्वविद्यालय की विद्वत परिषद द्वारा कोई विवादास्पद मुद्दा स्नातक पाठ्यक्रम में शामिल नहीं किया जाएगा।

सन्दर्भ संकेत

1. मेनी रामायनाजः द डायवर्सिटी आफ द नैरेटिव ट्रेडिशन –पाउला रिचमैन, पृ01

2, 3. तुलसीदास का काम विवेक और मर्यादाबोध – कमलानन्द झा, पृ0 –21

4, 5, 6. तुलसीदास का काव्य विवेक और मर्यादाबोध –कमलान्नद झा, पृ0–22

7, 8. डासत ही गई बीत निसा सब अनामिका, वाक–31, 2007, पृ0– 33 ,34

❑❑

उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति एवं महत्त्व

शिल्पी श्रीवास्तव
शोधार्थिनी (शिक्षाशास्त्र)
भगवन्त विश्वविद्यालय, अजमेर

डॉ0 पी. पी. गोस्वामी
सहा0–आचार्य
भगवन्त वि0 वि0, अजमेर

डॉ0 अवधेश कुमार श्रीवास्तव
सहा0–आचार्य (शिक्षा संकाय)
चौ0 चरण सिंह पी0जी0 कालेज, हेंवरा, इटावा

विकास के इस युग में सभी एक दूसरे से अधिक समृद्धशाली तथा उन्नति के पथ पर चलते हुए विकास की ऊँचाईयों को छूने के लिए होड़ लगाये हुए हैं। हमारा भारत वर्ष भी प्रगति के इस पथ पर सतत् प्रयत्नशील है परन्तु सुदृढ़ प्रजातांत्रिक राष्ट्र के निर्माण के लिए शिक्षित एवं योग्य नागरिकों की आवश्यकता होती है जो अपने कर्तव्यो और अधिकारों के प्रति पूर्णतया सजग हों। प्राचीन काल से ही शिक्षा को सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक विकास, आर्थिक उन्नति व राजनैतिक चेतना के लिए सर्वोत्तम साधन माना गया है। हमारे ही देश में एक लंगोटीधारी हाड़–मांस का व्यक्ति अपने जैसे कुछ हाड़–मांस के लंगोटीधारियों को अपने गिर्द बैठाकर उच्चतम आदर्श मूल्यों की शिक्षा दिया करता था। प्लेटो ने भी 'आदर्श राष्ट्र' निर्माण के लिए शिक्षा को उपयुक्त साधन माना है। मार्शल जैसे अर्थशास्त्री भी राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए शिक्षा को ही प्रधानता देते हैं। अतः स्पष्ट है कि हमारे लिए ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानव मात्र के लिए शिक्षा जीवन का आधार है।

किसी भी राष्ट्र का जीवन उसकी शिक्षा प्रणाली द्वारा ही अनुप्राणित होकर जीवन प्राप्त करता है। प्राणवन्त जीवन का मूलाधार प्राणवान शिक्षा प्रणाली है जो समाज तथा राष्ट्र के जीवन को गति देती है, समाज व राष्ट्र के चरित्र का निर्माण करती है। शिक्षा ही जीवन प्रणाली का आधार होती है तथा मानव जीवन को उन्नति के शिखर पर पहुँचाती है। राष्ट्र के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राज्य की शासन व्यवस्था की तत्परता, क्रियाशीलता, सक्षमता तथा उत्तरदायित्व की भावना को जन्म देने के लिए शिक्षा ही आगे बढ़ती है। प्रायः किसी भी राष्ट्र के जीवन को समुन्नत करने के लिए उक्त तथ्य आधार माने गये हैं। राष्ट्र और व्यक्ति एक दूसरे की पूरक इकाईयाँ हैं। इनमें असंतुलन होने से व्यक्ति और राष्ट्र दोनों ही धाराशायी हो जाते हैं। आज की व्यस्त राजनीति ने समाज के जीवन मूल्यों को बदल दिया है।

वर्तमान में आवश्यकता है नये सिरे से देश में जागरण की, मानव मात्र में शिक्षा का बीज बोकर नवीन सूझबूझ से प्रेरणा की, तथा जन–जन में शिक्षा के अभियान द्वारा मानव जीवन को नई दिशा की ओर मोड़ने की। यही कारण है कि आरम्भ से ही प्रारम्भिक शिक्षा के प्रसार पर दबाव डाला गया है परन्तु स्वतंत्रता के उपरान्त सन् 1947 से लेकर आजतक भारतीय शिक्षा को उद्देश्यहीन शिक्षा के नाम से अविहित किया जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। इसका कारण भी स्पष्ट है कि हमारे समस्त देश का शैक्षिक मापन स्पष्ट नहीं है। देश का निर्माण केवल बांध बनाने, कल–कारखाने से नहीं हो सकता, अपितु शिक्षा के माध्यम से होता है। शिक्षा के द्वारा ही हम राष्ट्र का निर्माण करते हैं। एक चीनी कहावत है – ''अगर तुम एक वर्ष की योजना बनाते हो तो अनाज बोओ, दस वर्ष की योजना बनाते हो तो वृक्ष लगाओ, यदि सौ वर्षों की की योजना बनाते हो तो मनुष्यों का निर्माण करो।'' शिक्षा की राष्ट्रीय नीति की घोषणा कर देने मात्र से ही समाज का निर्माण नहीं होगा। वर्तमान समय में शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर जितनी भी समस्याएँ दृष्टिगोचर है उन सबका एक ही कारण है – ''उद्देश्यहीनता''। आज आवश्यकता इस बात की है कि

खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता, आर्थिक विकास तथा रोजगार, सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण एवं राजनैतिक विकास के लिए छात्रों को चरित्र का प्रशिक्षण, व्यवहारिक प्रशिक्षण, साहित्यिक, कलात्मक एवं सांस्कृतिक रुचियों का प्रशिक्षण ही शिक्षा में उद्देश्यों की पूर्ति करता है, परन्तु इन सबका आधार है प्राथमिक शिक्षा की सबके लिए व्यवस्था करना।

उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति

1. सार्वभौमिक शिक्षा अधिनियम के क्रियान्वयन से पूर्व (स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व) प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में विकास हेतु किए गये प्रयासों पर शोधार्थिनी का दृष्टिकोण।
2. सार्वभौमिक शिक्षा अधिनियम के क्रियान्वयन के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा के विकास की स्थिति का अवलोकन। विश्व बैंक परियोजना के अन्तर्गत 'सबके लिए शिक्षा' के विकास का अध्ययन।

सन् 1757 से 1813 तक प्राथमिक शिक्षा की स्थिति

प्लासी के युद्ध (1757) के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में अपने व्यापार के प्रसार के साथ ही भारतीय शिक्षा को नये अध्याय के रूप में इतिहास में जोड़ दिया। उस समय शिक्षा की स्थिति काफी असंतोषजनक थी यद्यपि प्राचीन शिक्षण संस्थानों के द्वारा सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन का पाठ पढ़ाया जाता था परन्तु विदेशियों ने अपनी राजनीतिक व आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए इन संस्थानों को पूर्णरूपेण से नष्ट–भ्रष्ट कर दिया था।

सन् 1813 से 1854 तक प्राथमिक शिक्षा की स्थिति

इस समयान्तराल में ईसाई मिशनरियों द्वारा शिक्षा की पद्धति का विकास किया गया तथा माध्यमिक व उच्च शिक्षण संस्थाओं का निर्माण करवाया। इन्हीं प्रयासों के तहत सन् 1813 में आज्ञा पत्र जारी किया गया जिसके अनुसार 'भारतीय साहित्य के पुनरुत्थान तथा शिक्षा के विकास के लिए इंग्लैण्ड सरकार ने कम्पनी को एक लाख रुपये प्रतिवर्ष देने के लिए स्वीकृत किया, परन्तु यह धनराशि भारत की विशाल जनसंख्या के लिए कोई ठोस या व्यापक योजना निर्धारित न कर सकी।

सन् 1854 से 1857 तक प्राथमिक शिक्षा की स्थिति

सन् 1854 के वुड के घोषणा पत्र के अनुमोदन पर ब्रिटिश सरकार द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी को, भारत के आम नागरिकों के नैतिक, बौद्धिक तथा आर्थिक स्तर को सुधारने हेतु धन स्वीकृत किया गया परन्तु इसका अधिकांश भाग माध्यमिक व उच्च शिक्षा पर खर्च होता गया। फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा के स्तर में कोई सुधार नहीं हो सका। प्रारम्भिक शिक्षा ज्यों की त्यों, अविकसित अवस्था में ही सरकती रही।

सन् 1855 में भारतीय कांग्रेस के नेताओं ने ब्रिटिश सरकार पर अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था पर जोर दिया। अतः निःशुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा उसकी मूलभूत मांग थी।

सन् 1857 से 1882 तक प्राथमिक शिक्षा की स्थिति

ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के शासन की बागडोर अपने हाथों में लेने के पश्चात् 1859 में स्टैनले के घोषणा–पत्र को जारी किया गया, जिसके अनुसार शिक्षा के उत्तरदायित्व को केन्द्र से प्रान्तीय सरकारों को हस्तांतरित कर दिया गया। शिक्षा की व्यवस्था के लिए आवश्यक धन की व्यवस्था, भूमि पर स्थानीय कर लगाकर की गयी साथ ही नगरों में भी मकानों पर कर लगाये गये, परन्तु कहीं–कहीं पर इस धन का प्रयोग शिक्षा के अलावा अन्य मदों पर भी किया जाने लगा। सन् 1871 में लार्ड कार्नियो ने इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था पर रोक लगा दी।

सन् 1882 से 1905 तक प्राथमिक शिक्षा की स्थिति

इस काल में ''भारतीय शिक्षा आयोग'' की स्थापना सर विलियम हण्टर की अधीनता में हुई थी। जिसकी सिफारिशों के अनुसार जनसाधारण की शिक्षा में प्रसार हेतु 'एलीमेन्ट्री एजूकेशन एक्ट'' स्वीकृत हुआ था तथा प्राथमिक शिक्षा का संचालन स्थानीय निकायों को सौंप दिया गया।

प्राथमिक शिक्षा के प्रसार हेतु देशी प्रयास

सन् 1893 में प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता को समझते हुए प्रथम प्रयास महाराजा साम्भाजीराव गायकवाड़ (बड़ोदा नरेश) ने किया। जिसे सन् 1906 ई0 तक सम्पूर्ण रियासत में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था कर दी गयी। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति एवं दुर्बल वर्गों की कुल 25 प्रतिशत जनसंख्या शिक्षित थी। शेष समस्त जनमानस अज्ञानता के अंधकार में भटक रहा था। इसी तरह शोधार्थिनी द्वारा 1995 से 2005 की जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार दत्तों का संकलन किया है साथ ही साथ संविधान के अनुसर प्राथमिक शिक्षा की विषमताओं को दूर करने के लिए क्या–क्या प्रयास किये गये हैं, का भी अध्ययन किया है तथा राज्य सरकार की वर्तमान नीति 'सबके लिए शिक्षा' के विकास, विश्लेषण एवं विवेचन किया है जो प्रस्तुत शोधग्रन्थ के अध्यायों में उल्लिखित है।

इस प्रकार ऐतिहासिक अध्ययन व विवेचन से ऐसा स्पष्ट हो रहा है कि सार्वभौमिक शिक्षा के विकास के प्रति सरकारें उतनी सजग नहीं हैं जितना उन्हें होना चाहिए था। सार्वभौमिक शिक्षा के विकास को महत्व प्रदान करना अति महत्वपूर्ण कार्य है इसलिए प्रस्तुत शोध समस्या उत्तर प्रदेश में 'सबके लिए शिक्षा के विकास का अध यन' अपने आप में महत्वपूर्ण एवं आवश्यक हो जाता है। यही कारण है कि शोधार्थिनी ने वर्तमान शिक्षा नीति का क्रियान्वयन, विकास तथा समस्याओं का उत्कंठापूर्वक अध्ययन किया है।

स्वतंत्र भारत में प्राथमिक शिक्षा की दशा

देश की गुलामी की जंजीरें जैसे ही टूटीं वैसे ही राष्ट्रनायकों एवं शिक्षाशास्त्रियों ने राष्ट्रीय प्रगति और आजादी की अक्षुणता के लिए प्राथमिक शिक्षा के महत्व का प्रथमतः प्रतिपादन किया। संविधान निर्माताओं ने राष्ट्र की इस इच्छा को अनुच्छेद–45 में इस प्रकार व्यक्त किया – ''संविधान लागू होने के 10 वर्ष के अन्दर 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास राज्य करेगा।'' इस भावना का आदर करते हुए राज्य सरकारों ने प्रयास किए। सन् 1946–47 में देश में प्रारम्भिक विद्यालयों की संख्या लगभग डेढ़ लाख थी, जिनमें 11.2 करोड़ बालक पढ़ते थे, जिन पर 18.27 करोड़ रुपये व्यय किये गये थे। तब कुल जनसंख्या में साक्षरता का प्रतिशत 12.2 प्रतिशत था। प्रथम पंचवर्षीय योजना के लागू होने के बाद से केन्द्र व राज्य सरकारें इस ओर निरंतर प्रयत्नशील रहीं। केन्द्र सरकार ने बालकों की एक राष्ट्रीय योजना बनाई जिसमें अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा, कठिन शारीरिक श्रम निषेध जैसे बाल कल्याण के 15 कार्यक्रमों की व्यवस्था को देखते देखते ही सातवीं पंचवर्षीय में कक्षा 1 से 5 तक के प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 537399 तथा 6 से 8 तक के विद्यालय की संख्या 137196 पहुँच गई। उत्तरोत्तर इसमें वृद्धि भी हुई। लेकिन अपव्यय, अवरोधन और जनसंख्या के विस्फोट ने इन आंकडों के ग्राफ को बेहद बेअसर बना दिया। लेकिन सामाजिक न्याय और प्रजातंत्र की सफलता के लिए प्रत्येक नागरिक को प्राथमिक शिक्षा सुलभ कराना आवश्यक है।

भारत में प्राथमिक शिक्ष के दो स्वरूप क्रमशः 'प्राथमिक शिक्षा' और 'बुनियादी शिक्षा' के रूप में दिखाई देते हैं। पहले स्वरूप में केवल बौद्धिक कुशलता के लक्ष्य को पूरा करने वाली शिक्षा का विधान है। इसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए जॉन रस्किन ने कहा था कि –

''शिक्षा के अभिप्राय व्यक्तियों को उन बातों की शिक्षा देना नहीं है जिन्हें वे नहीं जानते, शिक्षा का अभिप्राय

है उनको इस प्रकार का व्यवहार करने की शिक्षा देना, जैसा कि वे नहीं करते हैं।''

''कोठारी कमीशन ने सामान्य प्राथमिक शिक्षा में व्याप्त विभिन्नताओं को दूर करने, एकरूपता लाने तथा उसे व्यापक बनाने के लिए कुछ सुझाव दिये थे। जैसे सन् 1986 तक 12 वर्ष की शिक्षा हर बालक के लिए हो। कक्षा 1 से लेकर कक्षा 7 तक बहुत कम अपव्यय हो, जो बच्चे 14 वर्ष की आयु से पूर्व ही 7वीं कक्षा में पहुँच जायें और वे आगे पढ़ना नहीं चाहते तो उन्हें उसी कक्षा में रखा जाय, प्राइमरी स्कूल हर बच्चों को एक मील के अन्दर ही मिलना चाहिए। प्रगति की गति 80 प्रतिशत से 100 प्रतिशत तक हो तथा नेशनल कमेटी ऑफ एजूकेशन की सिफारिशों का पालन किया जाये।''

''बुनियादी शिक्षा'' का जन्म 1921 में हुआ था। महात्मा गाँधी ने तत्कालीन शिक्षा का विश्लेषण करते हुए वर्तमान शिक्षा के तीन दोष बताये थे, ''यह विदेशी संस्कृति पर आधारित है और इसका भारतीय संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सर्वोदय तथा हाथ की संस्कृति की उपेक्षा करके सिर की संस्कृति तक सीमित रहती है। विदेशी भाषा के माध्यम से वास्तविक शिक्षा असंभव है।''

उन्होंने 1937 में वर्धा शिक्षा सम्मेलन में शिक्षा के प्रति मौलिक विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि –

''शिक्षा से मेरा अभिप्राय व्यक्ति तथा बालक के सर्वांगीण विकास से है – अर्थात् मस्तिष्क, शरीर एवं आत्मा के विकास से। साक्षरता स्वयं में शिक्षा नहीं है इसलिए मैं बालक की शिक्षा का आरम्भ हस्तकला से करना चाहता हूँ एवं उसे शिक्षा के आरम्भ से ही उत्पादन योग्य बनाना चाहता हूँ। इस प्रकार प्रत्येक विद्यालय आत्मनिर्भर हो जायेगा।''

ड0 प्र0 में करीब पौने पाँच लाख बच्चे आज शिक्षा से वंचित हैं। इसमें 6 से 11 वर्ष के 2 लाख 28 हजार और 11 से 14 वर्ष के 2 लाख 45 हजार बच्चे शामिल हैं।

उत्तर प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा का महत्व :– सामाजिक न्याय और लोकतंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि देश के प्रत्येक नागरिक को कम से कम प्राथमिक शिक्षा सुलभ हो। लोकतंत्र और शिक्षा दोनों ही एक सिक्के के दो पहलू हैं। एक के अभाव में दूसरे की सफलता संभव नहीं। लोकतंत्र का आधार शिक्षित नागरिक होते हैं। जो चुनाव करते हैं और उन्हें चुना जाता है, दोनों के लिए शिक्षित होना अनिवार्य है। शिक्षित नागरिक अपने सभी कार्यों को अच्छी तरह से कर सकते हैं, इससे राष्ट्रीय उत्पादन में बढ़ोत्तरी होगी और देश में अमन–चैन रहेगा। प्रारम्भिक शिक्षा के अभाव में देश का सामान्य नागरिक न तो अपने अधिकारों का लाभ ले पाता है और न ही अपने कर्तव्यों को पूरा कर पाता है। अज्ञानता लोकतंत्र के लिए खतरा है। अतः प्रारम्भिक शिक्षा का जनतंत्र में सर्वाधिक महत्व है।

हमने प्रजातांत्रिक जीवन को अंगीकार किया है अतः इसके लिए उपयुक्त नागरिकों को ढालने का उत्तरदायित्व शिक्षा पर होता है। जनतंत्र में अवसरों की समानता में विश्वास किया जाता है। हमारे संविधान में प्रारम्भिक शिक्षा को आधार माना गया है, अतएव इस स्तर की शिक्षा व्यवस्था करना हमारा पुनीत कर्तव्य हो जाता है।

भारत में प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता और महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि यहाँ की तीन चौथाई जनसंख्या निरक्षर है। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार यहाँ कुल जनसंख्या में से 24755 लाख लोग साक्षर थे। निरक्षरता से अंधविश्वास और रूढ़िवादिता बढ़ती है। इन बुराईयों से छुटकारा पाने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के लिए प्रारम्भिक शिक्षा का प्रसार आवश्यक होता है। इसीलिए संविधान निर्माताओं ने संविधान के अनुच्छेद–45 में यह इच्छा व्यक्त की थी कि – ''संविधान लागू होने के दस वर्ष के अन्दर 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा।''[4] अगस्त 2000 को मानव संसाधन विकास मंत्री मुरली मनोहर जोशी जी ने कहा था कि ''1997 में सैकिया समिति की रिपोर्ट

में पाँच साल के प्राथमिक शिक्षा के लिए अतिरिक्त रूप से 40000 करोड़ रुपये की आवश्यकता बताई गयी है।''[5] जबकि तमस मजूमदार रागिति ने इस वर्ष की अवधि में सबकी प्राथमिक शिक्षा के लिए अनुमानित राशि 137000 करोड़ रुपये की आवश्यकता बताई 1998–99 के आकलन के अनुसार 11–14 वर्ष आयु वर्ग के स्कूल जाने वाले बच्चों में 80 प्रतिशत लड़के और 57 प्रतिशत लड़कियां हैं। सरकार ने स्वीकार किया कि वो अपने लक्ष्य को पूरा नहीं कर सकी लेकिन वह विभिन्न उपायों के माध्यम से 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देने का प्रयास करेगी।[6]

यह सर्वविदित सत्य है कि शिक्षा किसी भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास की धुरी होती है। शिक्षा का सम्बन्ध सिर्फ साक्षरता से ही नहीं है बल्कि शिक्षा चेतना और उत्तरदायित्व की भावना को जागृत करने वाला औजार भी है। शिक्षा को एक मापक या पैमाना के तौर पर देखा जाता है जिसके आधार पर व्यक्ति राज्य या देश का मूल्यांकन किया जाता है और यदि इस मूल्यांकन के दृष्टिकोण से हम भारत में साक्षरता की स्थिति को देखें तो 2001 की जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता दर 64.84 प्रतिशत है। पुरुषों की साक्षरता दर 75.20 प्रतिशत है एवं महिलाओं की 53.67 प्रतिशत।[7] भारत यूनेस्को के शिक्षा विकास सूचकांक में 2006 की तुलना में पांच पायदान नीचे लुढ़क गया। 2007 में 129 देशों की सूची में देश को 150वां स्थान मिला, जबकि पिछले वर्ष भारत सौवें स्थान पर था। इस रिपोर्ट के अनुसार भारत में 27 करोड़ लोग निरक्षर हैं जिनमें से ज्यादातर महिलाएँ हैं। यह रिपोर्ट यह भी बताती है कि भारत सहित 72 देश साक्षरता के लक्ष्य से दूर हैं। भारत को उन 15 विकासशील देशों में रखा गया है जहाँ शैक्षिक विकास की गति धीमी है। साक्षरता और स्कूली शिक्षा में भारत की दयनीय स्थिति को देखते हुए यूनेस्को की रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत 2015 के सहस्राब्दी लक्ष्य को हासिल नहीं कर पायेगा। भारत में शिक्षा का क्या स्तर है, इसकी तस्वीर राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) की रिपोर्ट 2005–06 से स्पष्ट हो जाती है। न्यूपा के तहत देश के कुल 604 जिलों में सर्वेक्षण कराया गया। इस सर्वेक्षण की रिपोर्ट से यह उजागर होता है कि देश में एक भी राज्य ऐसा नहीं है जहाँ सभी स्कूलों में पक्के भवन हों। राष्ट्रीय स्तर पर बात करें तो 46364 स्कूल बिना भवन के ही चल रहे हैं। इस रिपोर्ट में यही भी तथ्य उद्घाटित किया गया है कि जहाँ शिक्षण संस्थाएँ हैं वहाँ विद्यार्थी (32000 स्कूल) नहीं हैं। ऐसे स्कूलों में से 48 प्रतिशत प्राथमिक स्कूल हैं जो कि अधिकांशतः ग्रामीण इलाकों में हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन विश्वविद्यालय की इस रिपोर्ट के अनुसार 6.17 प्रतिशत स्कूल ऐसे हैं जहाँ छात्रों की संख्या 25 से भी कम है जबकि 170888 स्कूलों में छात्रों की संख्या 26 से 50 के बीच है। 23000 स्कूल ऐसे हैं जिनमें एक भी शिक्षक नहीं है।[8] इस स्थिति को क्या कहा जाय कि जहाँ स्कूल हैं वहाँ विद्यार्थी नहीं और जहाँ विद्यार्थी हैं वहाँ शिक्षक नहीं?क्या इस तरह का असंतुलन शैक्षिक स्तर को ऊँचा कर सकता है?शिक्षित नागरिक किसी भी देश का सबसे महत्वपूर्ण संसाधन होते हैं। जहाँ शिक्षा व्यक्ति में उत्पादकता क्षमता को बढ़ाती है वहीं देश और समाज में व्याप्त सामाजिक बुराईयों से लड़ने की क्षमता प्रदान करती है। पर खेद इस बात का है कि देश में आज भी शिक्षा की स्थिति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। योजना आयोग ने साक्षरता अभियान को महत्व देते हुए स्कूल शिक्षा के लिए 2008–09 में 25700 करोड़ रुपये का बजट मंजूर किया है। जो 2009–10 वर्ष की तुलना में यह साढ़े तीन हजार करोड़ रुपये से अधिक रहा। वर्ष 2015–16 में 67,075 करोड़ वर्ष 2017 में 79,685.95 करोड़ का अनुमान रहा। आयोग ने इसके साथ ही शैक्षिक स्तर पर भारत की स्थिति को और भी बेहतर करने के लिए प्री प्राइमरी स्कूल योजना भी स्वीकृत की है। इसके लिए 100 करोड़ रुपये के लगभग का प्रावधान है। लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए बजट पचास करोड़ से बढ़कर आज लगभग 100 करोड़ रुपये से अधिक कर दिया गया है।[9] जिसमें उत्तरोत्तर वृद्धि तो हो रही है किन्तु दशा में उत्तरोत्तर वृद्धि दिख नहीं रही है।

निष्कर्ष – उपरोक्त से स्पष्ट है कि शिक्षा हेतु बजट में यह वृद्धि प्रशंसनीय है पर मूल प्रश्न यह है कि क्या

बजट मात्र से शिक्षा की स्थिति सुधर जायेगी; शायद नहीं, क्योंकि पूर्व में भी शिक्षा के क्षेत्र में सरकार द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों की भरमार थी पर नतीजा शून्य रहा। इसका एक प्रमुख कारण वर्तमान शिक्षा का वह प्रारूप है जो डिग्री तो दिलवा सकता है पर जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध नहीं करा सकता। इसी कारणवश आम भारतीय विशेषकर ग्रामीण एवं गरीब तबके के लोगों के लिए स्कूली शिक्षा हासिल करना समय की बर्बादी है। शिक्षा का परम्परागत ब्रिटिशकालीन स्वरूप परिवर्तित होना आवश्यक है। यह तथ्य स्वीकार्य है कि शिक्षा सद्‌गुणों और सद्‌विचारों को बढ़ावा देती है पर ये बातें तब अर्थहीन हो जाती हैं जब व्यक्ति अपने लिए दो वक्त की रोटी का भी जुगाड़ नहीं कर पाता। जब तक शिक्षा को रोजगारोन्मुखी नहीं बनाया जायेगा तब तक भारत में शिक्षा का परिदृश्य नहीं बदलेगा। शिक्षा ऐसी हो जो बदलते आर्थिक पर्यावरण में प्रभावशाली हो अर्थात् नौकरियां हासिल करने और स्वयं को उद्यम शुरू करने लायक बना सके। यह कार्य तभी संभव है जब मौजूदा शैक्षिक ढ़ाँचे में बुनियादी फेरबदल कर सुधार प्रक्रिया को तेज किया जाये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dos. M. "Education in India", Atlantic Publications, 2004 New Delhi, p..9
2. Education Report 2004, State Govt. Publication, Lucknow.
3. पाण्डा, अनिल कुमार, ''भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएँ'' साहित्य रत्नालय, 2006, कानपुर, पृ.–69
4. सिंह, अजीत, ''प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण'' परिप्रेक्ष्य अंक–3, दिसम्बर, 1995
5. सर्वेक्षण रिपोर्ट, 2000–2005, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।
6. शिक्षा आयोग रिपोर्ट 2000–2005, शिक्षा मंत्रालय, राज्य सरकार, उ0प्र0, लखनऊ।
7. मेहता, अरुण सी., भारत में सबके लिए शिक्षा, परिप्रेक्ष्य दिसम्बर 1995 नीपा, पृ.–40
8. पाण्डा, अनिल कुमार, ''भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएँ'', साहित्य रत्नालय, 2010, कानपुर, पृ.–69–70।
9. रस्तोगी, के.जी. एवं मित्तल, एम.एम., ''स्वतंत्र भारत में प्राथमिक शिक्षा'', रस्तोगी प्रकाशन, 2016, मेरठ, पृ.–228।

❑❑

डॉ0 राम कमल राय तत्कालीन समय (सन् 1978 ई0–सन 2003 ई0) के साहित्य शिरोमाणि थे। इस समय में डॉ0 राम कमल के अति नजदीक रहने वाले परम सनेही मित्र एवं सहयोगियों प्रो0 सत्य प्रकाश मिश्र, गिरिराज किशोर, परमानन्द श्रीवास्तव, सूर्य प्रसाद दीक्षित, विश्वनाथ त्रिपाठी, भारत भारद्वाज, लक्ष्मी कान्त वर्मा, राजमल बोरा, अवधेश प्रधान, हरिनारायण राज, जय प्रकाश धूमकेतु, जैसे दिग्गज साहित्यकारों का सानिध्य उनको मिला।

✍ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

21वीं सदी में ई–गवर्नेंस के समक्ष चुनौतियाँ एवं सुझाव

डॉ0 निर्भय सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर–अध्यक्ष–शिक्षाशास्त्र विभाग
बी.वी.एम. (पी0जी0) कॉलेज बाह, आगरा।

किसी भी स्तर पर ई–गवर्नेंस का क्रियान्वयन एवं उपयोग भारतीय परिप्रेक्ष्य में लागू करना सरल कार्य नही है। पिछले कुछ वर्शो के दौरान हमारे देश की विभिन्न सरकारों ने सूचना प्रौद्योगिक की शुरूआत सरकारी कार्य प्रणाली में सुधार हेतु की थी। सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से ही ई–गवर्नेंस को प्रशासनिक व्यवस्था में तेजी से लागू किया जा रहा है–

ई–गवर्नेंस का मुख्य उद्देश्य नागरिको को अच्छी सेवाएँ उपलब्ध कराना तथा आन्तरिक उत्पादकता में सुधार करना है। यह निःसंकोच स्वीकार किया जा चुका है कि सरकारी कार्य प्रणाली में सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग एक कठिन प्रक्रिया है। हमारी नौकरशाही परम्परागत एंव रूढ़िवादिता का स्वरूप ग्रहण किये है। कागजी कार्यवाही व लालफीते युक्त फाइल की मानसिकता से बाहर निकलना आसान नही है। अतः ई–गवर्नेस को प्रशासनिक व्यवस्था में लागू करने से पूर्व उचित रणनीति एवं योजना की आवश्यकता है। ई–गवर्नेंस से यदि शासन व्यवस्था में सुधार सम्भव है व इससे अनेक लाभ है, तों वहीं पर ई–गवर्नेंस के समक्ष बहुत सी चुनौतियां विद्यमान है। किसी भी संगठन को साधारणतया कम्प्यूटरीकरण कर देना ही ई–गवर्नेंस नहीं होगा। नागरिकों में इसके माध्यम से नीति –निर्माण में सहभागिता बढ़ेगी अर्थात् IT के प्रयोग द्वारा बहुत से कार्य सम्भव व सरल हो गये है। जैसे–सरकार के लिए आवश्यक है कि सूचना उद्देश्यपूर्ण विश्वसनीय, प्रासंगिक, आसानी से प्राप्त होने वाली व समझने वाली हो। ई–गवर्नेंस एक नवीन उभरता हुआ तकनीकी क्षेत्र है। अतः इसके समक्ष अनेक चुनौतियाँ आना स्वभाविक है। भारत एक विकासशील देश है। यहाँ की नौकरशाही, प्रशासनिक व्यवस्था, शासन प्रणाली परम्परागत कागजी कार्यप्रणाली पर ही आधारित है जबकि सम्पूर्ण IT से सरोबार हो रहा है।

पिछले कुछ समय से भारत ने भी IT के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई है। यहां के नौकरशाह कम्प्यूटरीकरण व्यवस्था या ई–गवर्नेंस को उत्साहपूर्वक स्वीकार नहीं कर पा रहे है। ई–गवर्नेंस शासन व्यवस्था में विद्यमान अनेक बीमारियों की कारगर औषधि है। इसलिए सरकार तेजी से इसे अपना रही है। विकसित देशों की अपेक्षा भारत जैसे विकासशील देश में ई–गवर्नेंस के समक्ष अनेक चुनौतियां आयी है। क्योकि हमारे देश में साक्षरता का प्रतिशत कम है। विशेषकर ग्रामीण जनता में तो और भी कम है सूचना प्रौद्योगिकी की पहुँच अभी तक शहरी एवं सीमित लोगो तक ही है। जब तक आम लोगो तक यह नहीं पहुंच जाएगा, सफलता अधूरी ही है। ई–प्रशासन क्रियान्वयन के समक्ष आने वाली मुख्य चुनौतियाँ निम्नलिखित है –

1. सुविधाओं का अभाव – अभी स्थानों पर कम्प्यूटर को जोड़ने वाले नेटवर्क अभी तक तैयार नही किये जा सके। कम्प्यूटर जैसे संसाधनों की उपलब्धता कम है। परिणामस्वरूप आम नागरिक ई–गवर्नेस योजना से पूर्ण रूप से नही जुड़ पाए है। विभिन्न विभागों से सूचनाओं का एकत्रीकरण भी एक कठिन कार्य है। विशेशकर ग्रामीण क्षेत्रों में कम्प्यूटर, इन्टरनेट आदि की उपलब्धता की चुनौति का सामना शासन को करना पड़ रहा है। जब सड़के स्वास्थ्य, शिक्षा पेयजल, विद्युत जैसी सुविधाओं से ही ग्रामीण जनता वंचित है तो ई–गवर्नेस की बात करना बेमानी होगी। ग्रामीण विकास के आधाराभूत स्तर पर प्रशिक्षित, कार्यकुशल, ईमानदार एवं दक्ष कार्मिक तन्त्र का अभाव है।

2. खुफिया जानकारी के गलत इस्तेंमाल की सम्भावना – अगर उचित सुरक्षा तकनीको का इस्तेमाल नही किया गया तो कई बार जानकारी गलत जगह पर पहुंच सकती है। इसलिए इस बात का विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि गोपनीय सामग्री और दस्तावेजों की सुरक्षा तकनीकों आदि को पासवर्ड आदि के द्वारा सुरखित रखा जाए।

3. ई–गवर्नेंस के समक्ष स्थानीय भाषा की चुनौती – संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी (अनु0 343)। दो सौ वर्षों तक ब्रिटिश शासन का गुलाम होने के कारण भारत में गरीबी व अशिक्षा की जड़े बहुत गहरी है। यद्यपि स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत प्रत्येक क्षेत्र में तेजी से सत्त विकास की और प्रयत्नशील है। विकसित देशों की भांति भारत ने भी सूचना प्रैद्योगिकी के क्षेत्र में अपना परचम लहराया है। ई– गवर्नेंस की शुरूआत इसी का एक उदाहरण है। अतः ई–गवर्नेंस के समक्ष भाषा की चुनौती एक जटिल समस्या के रूप में उभर कर शासन व्यवस्था के समक्ष आई है। राष्ट्रभाषा देवनागरी लिपी होने के कारण उत्तरी भारत में लगभग हिन्दी ही लेखन और संवाद शैली में प्रयोग की जाती है। स्थानीय स्तर पर भी सैकड़ो भाषाएँ विद्यमान है। इस देश में 1652 से अधिक भाषाएँ बोली जाती है जिनमें से 63 भाषाएँ अभारतीय है। 22 भाषाएँ जिन्हें संविधान की 8वीं अनुसूची में सम्मिलित किया है। लगभग 46% जनता हिन्दी भाषा का प्रयोग करती है।

4. ई–गवर्नेंस के विकास में पारम्परिक नौकरशाही की भूमिका एक चुनौती – ई–गवर्नेंस के रास्ते में एक चुनौती यह भी है कि भारत में पारम्परिक नौकरशाही की मानसिकता अपनी जड़े गहराई से जमा चुकी है। यह रूढ़िवादिता से इतनी जकड़ी हुई है कि शासन व्यवस्था में परिवर्तन को स्वीकार करने में स्वंय को असहज महसूस करती है। कागजी कार्यवाही 'लाल–फीते युक्त फाइल, महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी स्वयं के पास होना आदि अपना अधिकार मानते है। ई–गवर्नेंस प्रणाली के माध्यम से यह व्यवस्था समाप्त हो जायेगी।

5. संसाधनों का अभाव – भारत में ई– गवर्नेंस की धीमी प्रगति में वित्तीय कमी भी विशेष रूप से रही है। धन के अभाव के कारण कम्प्यूटरीकरण व आटोमेशन की प्रक्रिया सभी राज्यों में तीव्र गति से नहीं हो पा रही है। सबसे महत्वपूर्ण बात ध्यान देने योग्य यह है कि हमारे देश में 'बौद्धिक संसाधन' की भी निरन्तर कमी हो रही है। तथ्यों से ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक वर्ष सूचना प्रौद्योगिक (आईटी) ज्ञाताओं का बौद्धिक प्रवाह हो रहा है। परिणामस्वरूप भारत में ई–गवर्नेंस की तेजी को कम किया है।

लिंग भेद की चुनौती – जनसंख्या का 50 प्रतिशत भाग महिलाओं का है। पुरुष प्रधान समाज होने के कारण प्रत्येक क्षेत्र में महिला पिछड़ी हुई। हमारी सामाजिक मानसिकता ने महिलाओं के पिछड़ेपन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। परिणामस्वरूप सरकारी प्रक्रिया के समक्ष भारतीय स्त्रियों को समान स्तर पर लाभ पहुँचाना एक कठिन चुनौती है। 1996–97 में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की साक्षरता दर 23,03,161 थी जो कुल साक्षरता की 34.1% है। जबकि आदिवासी महिलाओं के इन्जिनियरिंग एवं तकनीक विषय में मात्र 0.09 पंजीकरण थे। 2001 में साक्षरता दर बढ़कर 54.16 थी जबकि पुरुषों की संख्या 75.85 थी।

उपरोक्त आंकड़ों द्वारा महिलाओं का आधुनिक तथा तकनीक शिक्षा में पिछड़ापन स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होता है। जबकि सार्वजनिक क्षेत्र के लिए कई प्रकार की चुनौतियाँ है। ज्यादातर इन्टरनेट कैफे पुरुषों द्वारा ही प्रयोग में लाये जाते है।

जनता में जागरूकता की कमी – हमारे देश में शिक्षा के स्तर एवं विकास का समुचित अवलोकन किया जाये तो स्वतन्त्रता के प्श्चात से हमने शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय उन्नति नही की है। आज भी दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों को छोड़कर पूरे देश में निरक्षतरता का साम्राज्य व्याप्त है। सरकार द्वारा बेतहाशा धन खर्च करने पर भी परिणाम उतने अच्छे नही है। पूरे भारत में 74% जनसंख्या साक्षर है जिसे आंकड़ों द्वारा देखा जा सकता है।

सुझाव – यद्यपि बहुत से लोगों ने प्रश्न पूछने शुरू किये है 'क्या तकनीक हमारे शासन की सभी समस्याओं का उत्तर है? प्रशासन शासन प्रक्रिया का एक अखण्ड भाग है। स्वशासन अच्छे प्रशासन का सूचक है। अच्छे

प्रशासन का आशय है– भ्रष्टाचार मुक्त, पारदर्शी उत्तरदायी, जिम्मेदार और नैतिक प्रशासन। अब द्वितीय प्रश्न उठता है कि 'क्या ई– गवर्नेस का 'ई' अकेला ही भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की सभी समस्याओं को हल कर सकता है?

पूर्व राष्ट्रपति एवं वैज्ञानिक अब्दुल कलाम के अनुसार किसी भी देश के लिए वह समय दूर नही जब प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति के लिए ई – गवर्नेंस व्यवस्था को लागू जा चुका होगा। हमारे सामने यह एक बहुत बड़ी चुनौती है। क्या हमारे पास आवश्यकतानुसार ई– गवर्नेंस, ढांचा उपलब्ध है? यह भी सत्य है कि ई–गवर्नेंस की छिपी हुई ताकत से स्वशासन आयेगा, जो ई–गवर्नेंस की सफलता का सूचक होगा। लेकिन वास्तविक चुनौती यह है कि किस प्रकार ई–गवर्नेंस प्रोजेक्ट को सफलतापूर्वक विकसित व सुदृढ़ किया जाये। सभी नागरिको को ई–सेवाएँ सही जनता का अधिक से अधिक जागरूक होना ही उसका योगदान है।

भारत में कमी योग्य व्यक्तियों की संख्या में नहीं अपितु कमी निपुण अध्यापक या प्रशिक्षकों में प्रशिक्षण गुण की है। कुछ भी हो प्रशिक्षण की महत्वपूर्णता और कार्य करने की क्षमता की हमारे देश में विशेष आवश्यकता है। (IT) क्षेत्र में विश्लेषण और प्रबन्ध करने हेतु प्रशिक्षित मजदूरों को बढ़ाने की आवश्यकता है। उपरोक्त सभी उपायों के साथ यदि ई–गवर्नेंस को प्रभावी तरीके से लागू किया जाये तो अच्छे परिणामों की प्राप्ति सम्भव है। इन्टरनेट का अधिकतम प्रयोग अभी मनोरंजन एवं संचार के लिए एक यन्त्र की तरह किया जा रहा है। इन्टरनेट पर ही ई–कॉमर्स व्यापार का प्रयोग आशानुरूप माध्यम से हो रहा है। अभी तो मात्र 5% इन्टरनेट प्रयोगकर्ता नेट से खरीदारी कर रहे है। भारत में केवल 3% जनता के पास क्रेडित कार्ड है। जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में (USA) सम्पूर्ण व्यापार ई–कॉमर्स द्वारा ही होने लगा है।

उपरोक्त बिन्दुओं पर विवेचन करने के पश्चात् यही निष्कर्ष निकलकर आता है कि भारत में इन्टरनेट के विस्तार ने मुख्य चुनौती है। यहाँ पर इंटरनेट कनैक्टिविटी का मूल्य बहुत ज्यादा हैं दुर्भाग्य से भारत में इन्टरनेट की वास्तविक स्थिति विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्राों में बहुत दयनीय है।

राजनीतिक इच्छा का अभाव – जिस क्षेत्र में राजनीतिक इच्छा जितनी दृढ़ होगी, उस क्षेत्र में उसी गति से कार्य में तरक्की भी होगी। कहने का तात्पर्य है कि यदि ई–गवर्नेंस में राजनीतिक इच्छा विद्यमान है। वहाँ ई–गवर्नेंस महत्वपूर्ण हो सकती है शासन व्यवस्था में सुधार द्वारा स्वशासन राजनीतिक इच्छा के अभाव में सम्भव नही है। परिणामस्वरूप प्रशासनिक प्रक्रिया में गुणात्मक परिवर्तन नहीं हो सकता हैं कभी–कभी राजनीतिक इच्छा का अभाव ही ई– गवर्नेस की वास्तविक स्थिति का अवलोकन करने में एक मुख्य बाधा बनकर विश्लेषकों के सामने आता है।

सुरक्षा व्यवस्था के दृष्टिकोण से चुनौती – इन्टरनेट तथा नेटवर्क की तेज रफ्तार से हुई वृद्धि के साथ नेटवर्क की सुरक्षा बहुत महत्वपूर्ण हो गई है। निजी गुप्त सूचनाओं को जनसाधारण तक प्रचारित–प्रसारित कर सुरक्षा व्यवस्था एवं अन्य गोपनीय सूचनाएँ गैर–कानूनी ढंग से प्रेषित करने पर सुरक्षा व्यवस्था में सेंध लगाई जा सकती है यह कार्य नेटवर्क पॉकेट स्निफर द्वारा किया जाता है। ये एक सॉफ्वेयर तकनीकि को विकसित कर गैर कानूनी ढंग से अनाधिकृत व्यक्तियों को उपयोग करने हेतु एवं उपयोगी सूचनाओं को ग्रहण करने के लिए खाता संख्या पासवर्ड आदि उपलब्ध कराता है। इस प्रकार वह अनाधिकृति व्यक्ति गैर–कानूनी ढंग से उस कम्प्यूटर/सूचना तन्त्र का उपयोगकर्ता बन जाता है इस प्रकार सुरक्षा व्यवस्था को इससे गम्भीर खतरा उत्पन्न हो जाता है।

ई–गवर्नेंस और कानूनी चुनौतियाँ – ई–गवर्नेस परियोजना की सफलता और प्रक्रिया बहुत ज्यादा सरकार की भूमिका पर निर्भर करती है। जिसमें उसे अपने ऑपरेशन के लिए कानूनी पृष्ठभूमि को सही ढंग से विवेचित व्याख्यात किया हो। ई–गवर्नेस प्रक्रिया के लिए यह आवश्यक है कि इसे अपनाने से पहले कानूनी स्तर पर कागजी प्रक्रिया के साथ अपनाया जाये। OECD सरकार इस पृष्ठ की जरूरत के लिए पूरी जागरूक है। जिसमें वैधानिक

तकनीकि स्थानान्तरण उपलब्ध होगा जिससे ई– गवर्नेंस और ई–व्यापार दोनों का विस्तार होगा। उदाहरण के लिए–डिजिटल हस्ताक्षर हेतु कानूनी पहचान आवश्यक है यदि वे ई–गवर्नेंस का प्रयोग तकनीकि फॉर्म को जमा करने के लिए संवेदनाशील निजी या वित्तीय सूचनाएँ सरकार को दे रहे है। यह बिन्दु विकासशील देशों में कानूनी चुनौतियाँ की पहचान करता है। ई–गवर्नेंस स्वशासन से बुरे शासन की ओर परिवर्तित नही हो सकती। यह क्या कर सकती है? यह शासन को अधिक अच्छा बनाये, लेकिन इस उपलब्धि हेतु बाधाओं को हटाना होगा।

निष्कर्ष – उपरोक्त सभी बिन्दुओं पर विवेचन के पश्चात् संक्षेप में कहा जा सकता है कि आज ई–गवर्नेंस के समक्ष एक नहीं अनेक चुनौतियाँ है। आलोचकों का तो यहाँ तक कहना है कि सॉफ्टवेयर निर्यात तथा विदेशों में भारतीय सॉफ्टवेयर पेशेवर के सफल होने से भारत की गौरवशाली छवि बन जाना एक बात है, लेकिन देश में ई–गवर्नेंस को फायदे से 'ऑनलइन' चलाना बहुत वर्षो तक सपना ही बना रहने वाला है। ई–गवर्नेंस के लिए राजनेताओं का समर्थन, इच्छा शक्ति व तत्पर नौकरशाही चाहिए। नौकरशाही के रवैये में परिवर्तन लाना सबसे कठिन कार्य है। महज कम्प्यूटर खरीद लेना तथा नेटवर्किंग कायम कर लेना ई– गवर्नेंस की कोई पहचान नहीं है। अनेक सरकारी कार्यालय ऐसे है जहाँ ये सुविधाएँ काफी समय से है लेकिन वहाँ कार्य कागज पर ही होता है। कम्प्यूटर का इस्तेमाल प्रिन्ट आउट निकालने तक ही रह गया है। गत दो तीन वर्षो में IT के हल्ले में डेढ़ दो दर्जन सरकारी बेवसाइटें तैयार कर ली गई। लेकिन इन्टरनेट अपडेट करने का काम सरकारी रफ्तार से चल रहा है। कम्प्यूटर के द्वारा समस्त सूचना ऑन लाइन हो, यानी प्रत्येक वांछित टेबल, कार्यालय और शहर में सुलभ रहे तथा सम्पन्न हो चुके नवीनतम काम के परिप्रेक्ष्य में यह अपडेट होती रहे, तब ही उसे ई–गवर्नेंस की प्रक्रिया कहेंगे। समय स्थान पर उपलब्ध हो सके। इसके कुछ महत्वपूर्ण सुझाव का वर्णन निम्नलिखित रूप से किया जा रहा है–

ई–गवर्नेन्स में सर्वप्रथम यह प्रयास करना चाहिए कि विभिन्न सरकारी विभागों में एवं कार्योलयों को इन्टरनेट के जरिये एक–दूसरे से जोड़ा जायें। इसके लिए जरूरी है कि सभी कार्योलयों में कम्प्यूटर का उपयोग कर उन्हे आपस में जोड़कर एक नेटवर्क बनाया जाये। आम नागरिक इस नेटवर्क द्वारा सुचारू रूप से जुड़ सके, इसलिए विभिन्न जगहों पर कम्प्यूटर का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। बेवसाइट के माध्यम से आम नागरिक तक सभी जरूरी सूचनाओं को उपलब्ध करवाया जा सकता है। वेबसाइट एक सर्वोत्तम माध्यम है क्योंकि इसके द्वारा किसी भी कम्प्यूटर के द्वारा इन्टरनेट से जुड़कर ई–गवर्नेंस से पूर्ण फायदा प्राप्त किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. योजना अप्रैल 2007 पेज 35
2. साइबर कानून एवं अपराध प्रतियोगिता दर्पण जून 2005 पृष्ठ 2028
3. अनुपमा सक्सैना '' ई–गवर्नेन्स गुड गवर्नेन्स द इण्डियन कन्टैक्सट दी जनरल ऑफ पोलिटिकल साइंस वाल्यूम LXVI नं0 2
4. बी0 एल0 फाड़िया, लोक प्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेंशन पृ0 869

❑❑

शिक्षक प्रशिक्षण के स्ववित्तपोषित व अनुदानित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन

डॉ. सरोज यादव
(एसोसिएट प्रोफेसर)

दीपांजली यादव
एम. एड. (छात्रा)

शिक्षा विभाग
चौ. चरण सिंह पी. जी. कॉलेज

प्रस्तावना – आधुनिक शिक्षा के परिपेक्ष्य में पर्यावरण शिक्षा अपेक्षाकृत एक आवश्यक विषय है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर्यावरण अन्तर्सम्बन्धित है। स्थानीय पर्यावरण सम्पूर्ण पर्यावरण का एक अवयव है। पर्यावरण शिक्षा के जरिये प्रकृति की विविधताओं में छिपी इस एकता का बोध होता है। रूसो का कथन है कि ''प्रकृति के और लौटो'' इस अर्न्तमुक्त एकता को महसूस करने को शिक्षा का उद्देश्य जताता है।

हर्स कोविट्स के अनुसार पर्यावरण सभी बाहरी दशाओं और प्रभावों का योग है। जो प्राणी या अवयवों के जीवन और विकास पर प्रभाव डालते है। मानव अपने विचारों के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में पर्यावरण में सामंजस्य स्थापित करता है। प्राचीनतम ग्रन्थ, वेद, पुराण, विभिन्न धर्मों के उपदेश ग्रन्थ, शिलालेख तथ वर्षों से चली आ रही मान्यताओं, विश्वास इस तथ्य को पुष्ट और प्रभावित करती है कि मनुष्य का पर्यावरण के साथ अटूट सम्बन्ध है। अच्छा पर्यावरण सुखद जीवन के लिये अन्त्यन्त आवश्यक है। मनुष्य अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये प्राकृतिक संसाधनों का खूब दोहन कर रहा है। आज पर्यावरण प्रदूषण विश्वव्यापी समस्या है। इस समस्या के समाधान के लिये पर्यावरण जागरूकता का होना अत्यन्त आवश्यक है।

आज इको डेवलपमेन्ट, इको फार्मिंग, इको फ्रेंडली टेक्नोलोजी व इको पर्यटन आदि महज नवीन शब्द नहीं हैं। अपितु जीवन के हर पहल को इको यानि पर्यावरण के साथ जीने को व्यक्त कर रहे है। शिक्षा और दर्शन एक दूसरे के पूरक है। पर्यावरण शिक्षा का आधार, पर्यावरण दर्शन है। जिसका मूल है कि पर्यावरण ही उत्पत्ति, गति एवं मोक्ष का आधार है।

क्षिति जल पावक गगन समीरा
पंचरचित यह अधम शरीरा

समस्त विकास की क्रियायें इसी में उत्पन्न होती हैं, लय प्राप्त करती हैं, और नये विकास के लिये अपना बलिदान करती हैं। विभिन्न प्रकार की पर्यावरणीय समस्यायें यथा ग्लोबल वार्मिंग, आजोन परत, क्षय, वायु, जल, मृदा प्रदूषण, विनाशकारी चक्रवातों की आवृत्ति व तीव्रता में तेजी भूकम्प रहित क्षेत्रों में भूकम्प व उसके विनाशकारी प्रभाव, बाढ की विभीषिका, सूखे की प्रचण्डता, धरती का धीरे–धीरे बढ़ता तापमान आदि पर्यावरण की विशिष्टि एकता को नकारने का परिणाम है। जीवन और भौतिक पर्यावरण मिलकर एक तंत्र का निर्माण करते हैं। जो उसके बीच पारस्परिक अन्तर्सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है। इस तंत्र में किसी उपतंत्र या अवयव में जब किसी प्राकृतिक घटना या मानवीय विवेक द्वारा परिवर्तन किय जाता है, तो सम्पूर्ण तंत्र उस परिवर्तन को समायोजित करता है। तंत्र में जितनी विविधता अर्थात जितने अधिक अन्तर्सम्बन्ध विकसित होते हैं, उतनी ही अधिक समायोजन क्षमता होती है। यह तंत्र अपनी इसी क्षमता के कारण संतुलित व विकसित होता रहता है।

अध्ययन के उद्देश्य – शिक्षक प्रशिक्षण के स्ववित्तपोषित व अनुदानित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

परिकल्पना – शिक्षक प्रशिक्षण के स्ववित्तपोषित व अनुदानित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता के सन्दर्भ में अभिवृत्ति में अन्तर होता है।

उपकरण – प्रस्तुत शोध में स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का संकलन – प्रदत्तों के संकलन के लिये शोधकत्री ने अपने शोध में न्यादर्श के रूप में 50 छात्र–छात्रायें स्ववित्तपोषित संस्थानों के एवं 50 छात्र–छात्रायें अनुदानित संस्थानों के चुने है। न्यादर्श के चयन के पश्चात प्रदत्तों के संकलन हेतु सम्बंधित महाविद्यालयों के छात्र–छात्राओं से सम्पर्क करके प्रश्नावली भरवाई।

प्रदत्त संकलन के बाद उसे व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने तथा संख्यिकी अभिगणना हेतु सर्वप्रथम प्रश्नावली का अंकीकरण किया। प्रश्नों के उत्तर सें संबन्धित दो विकल्प हैं, जो सहमत/असहमत में है। अंकीकरण में सकरात्मक उत्तर के लिये '1' अंक तथा नकारात्मक उत्तर के '0' अंक प्रदान किया गया है। नकारात्मक प्रकार के उत्तरों का अंकन सकरात्मक प्रकार के विपरीत होता है।

विश्लेषण – आंकड़ों का विश्लेषण टी–टेस्ट से किया गया है।

न्यादर्श	विद्यार्थियों की संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (SD)	टी अनुपात (t)	सार्थकता
स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्रयें	50	30.4	10.39	2.6	1% सार्थकता = 2.33
अनुदानित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्रायें	50	26.88	12.78	...	5% सार्थकता = 1.66

प्राप्त t=2.6 मान एक पुच्छीय (One tailed test) के लिये टी0.05 अर्थात 5 प्रतिशत पर 1.66 से अधिक है, परन्तु टी0.01 अर्थात 1 प्रतिशत पर 2.33 से कम है। अतः टी का मान 5 प्रतिशत पर सार्थक है। तथा 1 प्रतिशत पर असार्थक है। अतः स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं का मध्यमान अनुदानित महाविद्यायलयों के छात्र–छात्राओं के मध्यमान 5प्रतिशत स्तर पर सार्थक रूप से अधिक होते हैं।

स्ववित्तपोषित एवं अनुदानित महाविद्यालयों में छात्र–छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता के प्रति अभिवृत्ति स्तर की सार्थकता की जाँच –

न्यादर्श	विद्यार्थियों की संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (SD)	टी अनुपात (t)	सार्थकता
स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र	25	28.44	11.48		1 प्रतिशत सार्थकता = 2.33
स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्रायें	25	32.16	8.6	2.10	5 प्रतिशत सार्थकता = 1.66

प्राप्त टी 2.10 मान एक पुच्छीय परीक्षण (One tailed test) के लिये 5 प्रतिशत पर सार्थकता 1.66 से अधिक है, तथा 1 प्रतिशत सार्थकता 2.33 से कम है। जो 0.55 पर सार्थक है।

न्यादर्श	विद्यार्थियों की संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (SD)	टी अनुपात (t)	सार्थकता
स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र	25	23.28	12.15	2.9	1प्रतिशत सार्थकता = 2.33
स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्रायें	25	30.48	12.32		5प्रतिशत सार्थकता = 1.66

प्राप्त टी 2.9 मान एक पुच्छीय परीक्षण (One tailed test) के लिये 5 प्रतिशत पर सार्थकता 1.66 से अधिक है, परन्तु 1 प्रतिशत सार्थकता 2.33 से कम है। अतः टी का मान 5 प्रतिशत स्तर पर सार्थक तथा 1 प्रतिशत पर असार्थक है अर्थात अनुदानित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्राओं का मध्यमान अनुदानित महाविद्यालयों के छात्रों के मध्यमान से 5 प्रतिशत पर सार्थक रूप से अधिक होता है।

अतः इससे यह ज्ञात होता है। कि शिक्षक प्रशिक्षण के स्ववित्तपोषित व अनुदानित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं की पर्यावरण जागरूकता के प्रति अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है। एवं यह भी ज्ञात होता है, कि अनुदानित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं में स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के छात्र–छात्राओं की तुलना में पर्यावरण जागरूकता अधिक पायी जाती है।

निष्कर्ष – अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है, कि शिक्षक प्रशिक्षण के स्ववित्तपोषित व अनुदानित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं की तुलना में अनुदाानित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं में पर्यावरण के प्रति जागरूकता अधिक पायी गयी। इसका मुख्य कारण है, कि स्ववित्तपोषित व अनुदानित महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं में उचित मार्गदर्शन, शिक्षकों, पुस्तकालय एवं संसाधनों का अभाव है। जिसकी वजह से उनकी जागरूकता स्तर से कमी आयी है। अतः हम कह सकते हैं, कि स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के छात्र–छात्राओं के लिये ज्ञान प्राप्ति के लिये जो साधन एवं संसाधन है, वो अत्यन्त कम होने के कारण उनकी जागरूकता के प्रति अभिवृत्ति कम है। जबकि अनुदानित महाविद्यालयों के छात्र–छात्राओं में अधिक जागरूकता है।

पर्यावरण हमारे अस्तित्व का मूल आधार है, फिर भी पर्यावरणीय समस्यायें दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। जिन पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चिन्तन करने के साथ ही साथ सामान्य स्तर पर चिन्तन करने की आवश्यकता है। अतः राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकसित एवं विकासशील देशों को चिन्तन करना चाहिये।

अब हमें तकलीफ एवं ज्ञान के तारतम्य को पर्यावरण संतुलन की दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। सम्पूर्ण जीव जगत के हित में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा मानवीय विचारों को अन्तर्राष्ट्रीय संधियों, विधियों, सम्मलेनों एवं विज्ञान से जोड़ने का सफल प्रयास करने की आवश्यकता है।

पर्यावरण सुरक्षा एवं सुधार के अभियान को व्यापक स्तर पर चलाने के लिये पूरे समाज की जिम्मेदारी है, इसीलिये इस लक्ष्य की प्राप्ति में शिक्षक की भूमिका विशेष रूप से मानी गयी है। शिक्षक का सम्बन्ध विभिन्न आयु

वर्ग के छात्रों से होता है एक पथ–प्रदर्शक की भांति वह समाज के विभिन्न समस्याओं से उन्हें अवगत कराकर उनका जीवन सफल, समाधान ढूढने हेतु प्रेरित कर सकता है। अतः शिक्षक छात्रों को उस स्तर पर तक प्रेरित करे, कि इस कार्य को वह अपनी व्यक्तिगत नैतिक जिम्मेदारी समझ व्यवहारिक रूप से महसूस कर सकें।

संदर्भ सूची

1. उपाध्याय, राधाबल्लभ (2008) पर्यावरण शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन
2. गोयल डा. एम. के. पर्यावरण शिक्षा, द्वितीय संस्करण–2012, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. शर्मा आर. एम. (2001) पर्यावरण शिक्षा, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
4. कपिल हंस कुमार (2005) संख्यिकी के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
5. डा. दशरथ सिंह, डा. एम. सी. पाल (2007) पर्यावरणीय अध्ययन, विजय प्रकाश मन्दिर, वाराणसी–02
6. डा. चतुर्भुज मामोरिया, डा. एस. एस. सिसौदिया संसाधन एवं पर्यावरणीय साहित्य भवन, पब्लिर्शस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा0 लि0।

❑❑

अपने जीवन रूपी तिनके की उड़ान को डॉ0 राय पाठकों के समक्ष बड़ी बेबाकी से रखते हैं। लगता नहीं कि वे मात्र अपनी जीवन–गाथा सुना रहे हों। हर उड़ान के पीछे एक मंतव्य, हर कथा के पीछे एक सधी दृष्टि, हर कार्य के पीछे एक आशावादी दृष्टिकोण, हर आशावादी दृष्टिकोण के साथ एक सकारात्मक सोच डॉ0 रामकमल राय को हिन्दी साहित्य का अजातशत्रु बनाती है। कुछ न छिपाने, सब कुछ दिखाने का नाम ही सृजन नहीं है। अपने अनुभवों, कार्यों, सोच आदि का समन्वित स्वरूप ही सृजन है। पारिवारिक रूप से समृद्ध होते हुए भी पारिवारिक चिन्ताओं से संघर्षरत एवं सामाजिक विसंगतियों से लड़ते हुए डॉ0 रामकमल राय की लम्बी अनुभव–यात्रा उन्हें 'उस विराट ऊंचाई पर ले जाती है, जहाँ से उनके न चाहते हुए भी वे समूचे समाज को दिखायी देते हैं।

✍ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख / लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण संरक्षण एवं सतत् विकास

डॉ0 निरपेन्द्र कुमार सिन्हा
सहा0 आचार्य–समाजशास्त्र विभाग
चौधरी चरण सिंह पी0जी0 कालेज, हैवरा, इटावा

दुनियां के असीम भोगवादी प्रकृत्तियों के कारण मानव जाति के द्वारा प्रौद्योगिक क्रांति का जिस प्रकार अनियंत्रित उपयोग करते हुए प्रकृति का दोहन हो रहा है, उससे धरती के पर्यावरण और उसके प्राणियों पर भयंकर प्रभाव पड़ रहा है। मानव अस्तित्व सहित वन–संपदा और पशु–पक्षियों का जीवन जोखिम में है। समुद्री जीव लगातार विलुप्त हो रहे हैं जिससे जल का परिस्थिति–तंत्र (इको–सिस्टम) बिगड़ रहा है। पौधे, जानवर, कीट, मछलियाँ और अन्य प्राणियों की प्रजातियाँ नष्ट हो रही है। इससे ऑक्सीजन के उत्पादन, पानी की स्वच्छता, परागों के विकसन आदि में कमी आई है। जीवाष्म ईधंन के प्रयोग और खेती के लिए वनों को काटे जाने से पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हुई है। 1998 के बाद से धरती पर 10 सर्वाधिक गर्म वर्श हुए है। जिनके ताप (ग्लोबल वार्मिग) से प्रकृति त्रस्त हुई है।

दुनिया के पर्यावरणविदों और वैज्ञानिकों ने यह महसूस किया है कि प्रकृति के साथ मानवीय दखल–अंदाजी के कारण विनाशकारी जलवायु परिवर्तन ने दुनिया को प्रलय की ओर धकेल दिया है। आगे आने वाले समय में कई जीव–जन्तु के विलुप्त होने की सम्भावना है। प्रकृति को दुरूस्त रखने की लड़ाई में मानवता हारने लगी है। इस लिए 21वीं सदी में विश्व के समक्ष सबसे गम्भीर चुनौती है 'पर्यावरण संरक्षण' की। पर्यावरण संरक्षण से तात्पर्य विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ पृथ्वी के अस्तित्व को बनाये रखने के विभिन्न उपाय करना है अर्थात् प्रकृति एवं मनुष्य के बीच मित्रता का सम्बन्ध ही पर्यावरण संरक्षण है।

यदि हम सृष्टि की प्रारम्भिक संरचना को देखे तो आदिम युग में मानव प्रकृति के साथ मिलकर रहता था। वह प्रकृति प्रदत्त कंदमूल और मांस का सेवन करता था। पेड़ के नीचे या पेड़ के पत्तों, लकड़ी और मिट्टी से बने हुये घर में रहता था। कहने का मतलब है कि उस समय पर्यावरण प्रदूषण का कोई प्रश्न ही नहीं था, परन्तु ज्यों–ज्यों सभ्यता का विकास होता गया प्रकृति प्रदत्त सम्पदा का दोहन शुरू हुआ और हमारा पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता गया। मशीनों के अविष्कार तथा औद्योगिक क्रांति के बाद बढ़ता हुआ प्रदूषण सभ्यता के चरण पर मानवता को निगलने के लिए तैयार हो गया। पर्यावरण प्रदूषण के कारण–बाढ़, सूखा, भूकम्प, अम्लीय वर्षा, अत्यधिक गर्मी अत्यधिक ठंड़क पड़ रही है, ग्लेशियर पिघल रहे हैं। यदि हम अभी नहीं चेते तो वो दिन दूर नहीं जब विनाश के बाद हमें पुनः आदिम युग में जाना पड़ें।

1970 के दशक में सतत विकास की अवधारणा का सूत्र हुआ जिसके अन्तर्गत विकास के उस उपागम पर ध्यान दिया गया जो कि पर्यावरण को क्षति न पहुचाएँ तथा प्राकृतिक संसाधनों को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित तथा संरक्षित रखा जा सके। इस संकल्पना की शुरूआत 1962 में हुई जब प्रसिद्ध वैज्ञानिक रैचल कार्सन ने 'द् साइलेंट स्प्रिंग' नामक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक पर्यावरण अर्थव्यवस्था तथा समाजिक पक्षों के मध्य परस्पर संबंधो के अध्ययन में मील का पत्थर साबित हुई। सतत विकास की अवधारणा विकास की एक नई अवधारणा है जिसमें एक ऐसे विकास तंत्र को विकसित किया जाता है जो कि प्रकृति व पर्यावरण के अनुकूल हो। सतत विकास मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच अंर्तसंबंध बताते हुए यह चेतावनी देता है कि मनुष्य पर्यावरण की कीमत पर विकास नहीं कर सकता क्योंकि इससे अंततः मनुष्य की ही हार है। सतत विकास के तीन प्रमुख स्तम्भों में

आर्थिक विकास, पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक समानता को सम्मिलित किया जाता है। अतः सतत विकास और पर्यावरण का आपस में बहुत ही सुग्रथित अथवा अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है क्योंकि बिना सतत विकास के पर्यावरण का संरक्षण अकल्पनीय है।

विकसित देश वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप अपने देश के नागरिकों के जीवन–स्तर को उठा तो दिये, लेकिन दूसरी तरफ उनके लिए कई संकटों को आमंत्रित कर दिया जैसे – ग्लोवल वार्मिग, अम्लीय वर्षा व जानलेवा बीमारियां आदि। बहुत सी ऐसी घटनायें हैं जो पर्यावरण प्रदूषण की समस्या की ओर संकेत करती है, वास्तविक खतरे की तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इसलिए आज पर्यावरण संरक्षण हमारे समक्ष एक चुनौती है।

प्रदूषण के विभिन्न स्वरूप

भूमि / मृदा प्रदूषण :– बढ़ती हुई आबादी के आवास तथा ईधन की खपत के लिये वनो को तेजी से काटा जा रहा है। रासायनिक खादो को प्रयोग कर अधिक आबादी के दूध के लिये अधिक पशुओं की जरूरत होती है, अधिक पशुओं अधिक चटाई करेंगे। फलस्वरूप भूमि का क्षरण हो रहा है। उद्योगो का कचरा, अवशिष्ट पदार्थ जमीन में जाता है जिससे जमीन की उर्वरा शक्ति कम हो जाती है। फलों तथा सब्जियों के ऊपर कीटनाशकों का छिड़काव किया जाता है। ये रासायनिक तत्व जमीन में जाते है, जमीन पर उत्पन्न फलो, सब्जियों, अनाजों का सेवन मनुष्य करता है तो उसके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अम्लीय वर्षा के कारण अम्लीयता बढ़ जाती है।

वायु प्रदूषण :– वायु के बिना जीवधारी के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। मनुष्य 24 घण्टों में 22 हजार बार श्वांस लेता है। शुद्ध वायु के अभाव में कई तरह की बीमारियाँ हो जाती है। जिसमें दमा, फेफड़ो का कैंसर, मस्तिष्क विकास, स्त्रियों में गर्भपात इत्यादि। रासायनिक प्रदूषण के कारण आँखों में जलन, धुंधला दिखाई देना, सिरदर्द, मिचली आदि की भी समस्या होती है। यहां तक कि प्रजनन क्षमता भी कम हो जाती है।

वायु प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण वाहनों की बढ़ती हुई संख्या है। वाहनो से उत्सर्जित हानिकारक गैसे वायु में कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डाई ऑक्साइड, नाइड्रोजन डाई ऑक्साइड और मीथेन आदि की मात्रा बढ़ रही है। औद्योगिक संस्थानों से उत्सर्जित सल्फर डाई–ऑक्साइड और हाईड्रोजन सल्फाइड जैसी गैसे प्राणियों तथा अन्य पदार्थो को काफी हानि पहुँचाती है। इन गैसों से प्रदूषित वायु में साँस लेने से व्यक्ति का स्वास्थ्य खराब होता ही है, साथ ही लोगों का जीवन स्तर भी प्रभावित होता है।

अभी कुछ दिन पहले देश की राजधानी दिल्ली में सुप्रीम कोर्ट ने दीपावली पर पटाखों पर प्रतिबन्ध लगा दिया था और इंडियन मेडिकल एसोसिएशन ने दिल्ली को पल्लिक हेल्थ एमरजेंसी ऑक्साइड, ओजोन, सल्फर ऑक्साइड स्मोक, पीएम आदि वायु में धुले हुये होते है। हवा में दो तरह के पी एम अर्थात् पर्टिकुलेट मैटर होते है। (1) पीएम– 2.5 (2) पीएम– 10 वायु में पीएम – 2.5 की मात्रा 60 ग्राम / एम 3 होनी चाहिए परन्तु दिल्ली में 590 ग्राम / एम 3 अर्थात् 10 गुना ज्यादा तक पहुंच गयी थी साथ ही पीएम – 10 की मात्रा 100 ग्राम / एम 3 होनी चाहिए जबकि दिल्ली में यह 950 ग्राम / एम 3 अर्थात् 9.5 गुना अधिक पहुंच गयी थी।

ध्वनि प्रदूषण :– बड़े–बड़े नगरों में गम्भीर समस्या बनकर सामने आ रहा है। अनेक प्रकार के वाहनों, लाउडस्पीकर और औद्योगिक संस्थानों की मशीनों के शोर ने ध्वनि प्रदूषण को जन्म दिया है। इससे अनिद्रा, चिड़चिड़ापन, उत्तेजना, उच्च रक्त चाप, बहरापन की समस्या हो सकती है। यहां तक कि गर्भस्थ शिशु की मौत हो सकती है।

जल प्रदूषण :– जल जीवन का आधार होता है। एक तरफ प्रदूषण के कारण जल शुद्ध नहीं रह गया है। दूसरी तरफ सिंचाई के अधिकाधिक साधनों के प्रयोग से भूगर्भ जल की मात्रा कम होती जा रही है। जल के लिये भविष्य में युद्ध से इंकार नहीं किया जा सकता। घरेलू मलमूत्र, कूड़ा, करकट, डिटर्जेन्ट नालियों के माध्यम से नदी में जाता है। औद्योगिक कचरा, रासायनिक तत्व भी नालियों के माध्यम से नदी में जाता है। परमाणु विस्फोट व

खदानों से निकले पदार्थ अंततोगत्वा नदी जल में जाते है। अम्लीय वर्षा का जल भी अन्य जल स्त्रोतों से होता हुआ नदीं में पहुंचाता है। जल प्रदूषण के कारण अतिसार, पीलिया, टायफाइड सिस्टोरोम हो जाता है। जापान में 1973 में चीसू कापोरेशन नामक उद्योग की नालियों से एसिटेल्डीहाइड नामक रसायन–बहकर सागरीय जल को प्रदूषित किया तथा इस जल में रहने वाली मछलियों के सेवन से लोग अंधे, गूंगे तथा बहरे हो गये। कुछ लोगों की मृत्यु भी हो गयी।

(विकिरण प्रदूषण) या रेडियोधर्मी प्रदूषण :– विकिरण प्राकृतिक तथा कृत्रिम दोनों होता है। आज स्वास्थ्य ऊर्जा तथा सैनिक उद्देश्यों के लिये परमाणु पदार्थो का उपयोग किया जा रहा है। परमाणु विस्फोट से अल्फा, बीटा, गामा आदि किरणों जैव मण्डल में फैल जाती है। रेडियोधर्मी पदार्थ मिट्टी तथा जल में सोंख लिये जाते है जिससे कैंसर की सम्भावना बढ़ जाती है। विकिरण का प्रमाण आनुवांशिकी पर पड़ता है। मनुष्य की हड्डी में टी0बी0 कैंसर और अन्य शारीरिक विकृतियाँ आ जाती है। पर्यावरण के प्रत्येक घटक (जैव व अजैव) एक दूसरे से अन्तर सम्बन्धित है वे एक दूसरे को प्रभावित करते है तथा प्रभावित होते है। इसलिये किसी एक में भी व्युतिक्रम उत्पन्न होने पर उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव सभी घटकों पर होता है जिसे प्राकृतिक निके (NICHE) कहते है। जैसे जंगलों को काटने से पानी कम बरसेगा। पानी कम बरसने से भूगर्म जल का दोहन होगा। जलवायु परिवर्तन से या तो वर्शा नहीं होगी या तेज वर्षा होगी तेज वर्षा से भूमि का अपक्षरण होगा यह नीले से होता हुआ नदियों में जायेगा जिससे उनका प्रवाह कम होगा।

पर्यावरण प्रदूषण के खतरे :– जीवन का आधार प्रकृति और पर्यावरण है किन्तु आज हमने अपने सुरक्षा कवच (आवरण) को संकट में लाकर खड़ाकर दिया है। 20वीं सदी से वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक एवं आधुनिक औद्योगिक उपलब्धियों ने मनुष्य को शक्तिशाली एवं स्वार्थी बना दिया है। वह अंधाधुंध विकास कर हरियाली (प्रकृति) के साथ खिलवाड़ कर रहा है। वैज्ञानिकों का मानना है कि– 'विकसित देश आज संसार में सर्वाधिक प्रदूषण फैला रहे है। व पर्यावरणविदों यदि संसाधनों एवं वैश्विक पर्यावरण पर दबाव को कम करना है तो वे अपनी अत्यधिक उपभोग प्रवृत्ति को कम करें। विकसित देश यह महसूस करें कि पर्यावरण की क्षति उनके समक्ष उत्पन्न सबसे आबादी अनियंत्रित रूप से बढ़ती रहेगी। सबसे बड़ा जोखिम है पर्यावरण का विनाश गरीबी, अशांति का चक्रव्यूह जो सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरणीय विध्वंस का कारण बनेगें। जिससे अनेक प्रकार के खतरे दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे है– जिन्हें निम्न बिन्दूओं में देखा जा सकता है–

1. आजादी के बाद से अब तक 55 लाख हेक्टेअर जंगल समाप्त हो चुके हैं।
2. शहरों के बेतहाशा विस्तार से नदियों व जंगलों की उपेक्षा हो रही है ।
3. प्लास्टिक/पॉलीथीन का उपयोग अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है जिसकी पर्यावरण के विनाश में प्रमुख भूमिका रही है।
4. वैश्विक समुद्री जल–स्तर बढ़ने की दर हर साल बढ़ती जा रही है।
5. वैश्विक तापमान 2.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ रहा है। जिसके 2020 तक 3 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाने का अनुमान लगाया जा रहा है।
6. समुद्री पक्षी, मछलियों तथा अनेक दुर्लभ प्रजाति के जीव–जन्तु लगभग समाप्त होते जा रहे है।
7. विश्व में पीने के पानी की समस्या दिनों–दिन विकराल रूप लेती जा रही है। UNO की 'विश्व जल विकास रिपोर्ट' में यह कहा गया है कि आने वाले 20 वर्षों में लोगों को मिलने वाली पानी की मात्रा वर्तमान समय की अपेक्षा एक तिहाई रह जायेगी।

पर्यावरण संरक्षण एवं सतत् विकास के लिए सम्भावनायें प्रयास एवं सुझाव :– विभिन्न प्रकार के प्रदूषण से बचने के लिये चाहिए कि अधिक से अधिक पेड़ लगाए जाए हरियाली की मात्रा अधिक हो। सड़कों के किनारे

घने वृक्ष हो। आबादी वाले क्षेत्र खुले हो, हवादार हो, हरियाली से ओत–प्रोत हो। कल–कारखानों को आबादी से दूर रखना चाहिए और उनसे निकले प्रदूषित मल को नष्ट करने के उपाय सोचना चाहिए।

एक अनुमान के तौर पर – पर्यावरण प्रदूषण के कारण वर्ष 2050 तक 30 प्रतिशत प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता में कमी होगी और 500 करोड़ व्यक्तियों को जल प्लावन होने से दूसरे क्षेत्रों में जाना पड़ेगा और जा भी रहे है। वर्ष 2023 तक भारत में गेंहू के उत्पादन में लगभग 30 प्रतिशत तक की कमी होने की सम्भावना है। एक तरफ जल स्तर घट रहा है तो दूसरी तरफ जल स्तर बढ़ने से असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

पर्यावरण प्रदूषण के इन गम्भीर खतरे को देखते हुए पर्यावरण संरक्षण के लिए वैश्विक स्तर पर सर्वप्रथम स्टाक होम में 1972 को चिंता व्यक्त की गई। इसके बाद सन् 1982 में नैरोबी सम्मेलन में पर्यावरण संरक्षण संबंधी कार्य योजनाओं की धीमी गति से क्रियान्वपन पर चिंता व्यक्त की गई। ओजोन परत पर खतरे को देखते हुए 16 सितम्बर 1987 में मॉन्ट्रियल प्रोटोकाल के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय संधि पर हस्ताक्षर किये गये। यह ओजन परत के संरक्षण के लिए वियना सम्मेलन में पारित प्रोटोकाल था। ऐसा माना जाता है कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय समझौते का पूरी तरह से पालन हो तो 2050 तक ओजोन परत ठीक होने की उम्मीद है। इसके बाद 14 जून 1992 को ब्राजील के रिओ डी जेनरो में पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें 150 देशों ने भाग लिया। इसमें हरित गैस उत्सर्जन, वन, जनसंख्या, प्रौद्योगिकी का हस्तान्तण, वित्त, पर्यावरण ह्रास। विनाश को लेकर विकसित तथा विकासशील देशों में मतभेद बना रहा। दिसम्बर 1997 में क्योटो सम्मेलन में विकसित तथा विकासशील देशों में कार्बन, डाई ऑक्साइड के उत्सर्जन में 5.2 प्रतिशत की कटौती पर सहमति हुई। रिओ–डी–जेनेरा (ब्राजील) में 2012 में पृथ्वी सम्मेलन की 20वीं वर्षगांठ मनाई गई। इसे रियो+20 के नाम से जाना जाता है। 26 नवम्बर से दिसम्ब 2012 के दौरान दोहा (कलर) में UNFCCC का सम्मेलन हुआ। दिसम्बर 2014 में पेरू की राजधानी लीमा में सम्मेलन हुआ। पृथ्वी सम्मेलन से लेकर लीमा तक विकासशील तथा विकसित देशों में मतभेद बना रहा परन्तु 'लीमा सम्मेलन' में 196 देशों के प्रतिनिधि इस बात पर सहमत हो गये कि वे ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन की दर में कमी करेगे। पेरिस सम्मेलन में इस पर हस्ताक्षर होगा। यह समझौता 2020 को प्रभावी होगा।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 48 (।) में राज्य को पर्यावरण संरक्षण करने का निर्देश दिया गया है। इसमें कहा गया है– "राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।" अनुच्छेद 51 (।) (6) में कहा गया है– "प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षण" की जिसके अन्तर्गत वन, झील, नदी और वन्यजीवों की रक्षा करें और उसका संवर्धन करें तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखें। पचंवर्षीय योजनाओं में भी पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान दिया गया है।

सरकार ने पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए निम्नलिखित कानून (अधिनियम) बनाये गये है–

1. पेस्टीसाइड एक्ट (1968)
2. वन्य जीव अधिनियम (1972)
3. वन संरक्षण अधिनियम
4. जल प्रदूषण एक्ट (1981)
5. वायु प्रदूषण निवारण अधिनियम (1981)
6. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (1986)
7. मोटर वाहन संशोधित अधिनियम (1988)
8. राष्ट्रीय पर्यावरण ट्रिब्यूनल अधिनियम (1995)

सही मायने में पर्यावरण संरक्षण एवं सत्त विकास के लिए सबसे जरूरी व सरलतम् उपाय है 'वृक्षारोपण'।

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवनकाल में कम से कम एक पौधा अवश्य लगायें, और सिर्फ लगाना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसकी परवरिष वृक्ष बनने तक करें। तभी वृक्षारोपण का कार्य सफल हो पायेगा। विभिन्न धर्मो व धर्मग्रन्थों में भी वृक्षों को जीवनदायिनी माना गया है। भगवान 'महावीर स्वामी' (जैन धर्म) ने भी वृक्षों को काटना एक बड़ा अपराध माना है।

पृथ्वी को बचाने के एक अभियान के तहत 'ओरेगान स्टेट यूनिवर्सिटी' में इकोलॉजी (पारिस्थितिकी) के प्रोफेसर विलियम जे0 रियल के नेतृत्व में विश्व वैज्ञानिकों के एक समूह ने मानवता के नाम एक चेतावनी जारी की है, जो बायोसाइंस नामक विज्ञान की एक महत्वपूर्ण पत्रिका में 13 नवम्बर 2017 को प्रकाशित हुई है जिसमें नवम्ब 2017 तक विश्व के 184 देशो के 15364 वैज्ञानिकों ने हस्ताक्षर किये हैं तथा मानव को आगाह करते हुए कहा है कि—'मानव जाति और प्राकृतिक जगत एक संघात की प्रक्रिया से गुजर रहा है। मानवजाति के क्रियाकलाप पर्यावरण को घोर आघात पहुँचा रहे हैं। इसलिए वैश्विक पर्यावरण और जलवायु के विषय में एक व्यापक सार्वजनिक बहस की जमीन तैयार करना जरूरी है। इस पर विभिन्न प्रकार की विचार की संभावनाएं भी है।

'एक वृक्ष एक जिन्दगी' अभियान के अन्तर्गत अनेक अनुकरणीय प्रयोग देश भर में चल रहे है। इस सन्दर्भ में 'हिमालयी पर्यावरण अध्ययन एवं सरंक्षण संस्था' (HESCO) के संस्थापक पद्मश्री डॉ0 अनिल जोशी लगभग 30 वर्षों से पर्यावरण संरक्षण के लिए कार्य कर रहे है। उन्होंने पर्यावरण को आम आदमी से जोड़कर जन—जन को पर्यावरण के प्रति जागरूक किया है। मेरा भी मानना है कि जब तक प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक नहीं होगा तब तक मानव और प्रकृति में असंतुलन की स्थिति व्याप्त रहेगी। इसके लिए व्यक्ति की अर्न्तचेतना का जागृत होना आवश्यक है। आज आवश्यकता है मनुष्य की प्रवृत्ति बदलने की उसे आत्म संयमी होना होगा, अपनी जन्मजात मनोवृत्तियों को बदलना होगा। पर्यावरण सुरक्षा के लिए प्रत्येक व्यक्ति को सचेत व प्रेरित करना पड़ेगा क्योकि जब तक आन्तरिक परिवर्तन नहीं होगा, वाह्य परिवर्तन संभव नहीं है।

संदर्भ सूची

1. कार्सन, रैचल, द् सांइलेट स्प्रिग, हॉगटन मिफलिन, (यू.एस.ए.), 2002
2. कुमार, अमित, पर्यावरण अध्ययन, विश्वभारती प0, 2009
3. इरफान हबीब, मनुष्य और पर्यावरण, राजकमल प्रका., नई दिल्ली, 2013
4. सस्टनेबल डेवल्पमेंट गोल्स, युनाइटेड नेशन्स, 2015
5. नई दिशायें, वार्षिकांक 2, 2005 एवं वार्षिकांक 3, 2006, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से उद्वत, नई दिल्ली
6. लघु पत्रिका संवाद, वागार्थ के लेख 'मानवता को चेतावनी' — अवधेश प्रसाद सिंह, भारतीय भाषा परिषद, पृष्ठ 81—82
7. मासिक पत्रिका — योजना, अंक जनवरी, 2014 नई दिल्ली
8. मासिक पत्रिका कुरूक्षेत्र, अंक 12, अक्टूबर 2015, नई दिल्ली

❑❑

दलित विमर्श के साहित्यिक–संदर्भ

डॉ0 विवेक सिंह
प्रवक्ता–हिन्दी
डायट, भदोही, उ.प्र.

भौतिकता की चकाचौंध और प्रतिगामी राजनैतिक एवं सामाजिक मूल्यों के कारण आज समाज समरसता के 'अखण्ड आनन्द' को भुलाकर सर्वतोभावेन विखण्डन की भावना द्वारा भारत के भाग्य–निर्माण में संलग्न है। अधिक दूर न भी जायें तो भी स्वतंत्रता पूर्व का सामाजिक सामरस्य आज विखण्डन की अनेकमुखी धाराओं में विभक्त होकर भारतीय लोक–मानस में प्रविष्ट हो गया है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि स्वतंत्रता पूर्व के सामाजिक सामरस्य में विभेद के अणु विद्यमान नहीं थे लेकिन आज विखण्डन की भावना ने भारतीय समाज की सत्ता को खण्ड–खण्ड कर दिया है। राष्ट्रीय अस्मिता के प्रतीक शीर्ष कर्णधार भी बँट गए। नेताओं के जन्म तथा पुण्य तिथि समारोहों के आयोजक, वक्ता व स्रोता; जिनका प्रायः सभी समाचार पत्रों में उल्लेख होता रहता है; लगभग एक ही जाति या समूह के लोग होते हैं। ऐसे समारोहों में स्वनामधन्य नेताओं का सम्बन्धित जाति के गौरव के रूप में चित्रण किया जाता है मानों उन्होंने मात्र अपनी ही जाति को परतंत्रता–पाश से मुक्त कराने हेतु शत्रुओं से मोर्चा लिया हो।

यही कारण है कि वर्तमान में एक सर्वथा नई बात यह देखने में आ रही है कि पूर्वकाल में जो जातियाँ अपने को ऊँचा कहलाना पसन्द करती थीं और जिन्हें अपनी उस तथाकथित ऊँचाई पर गर्व भी होता था वही जातियाँ अब विशुद्ध आर्थिक व राजनैतिक कारणों से स्वयं को निम्न जाति कहलाना चाह रही हैं। इन प्रश्नों के उत्तर हम तब तक नहीं प्राप्त कर सकते जब तक कि हमें यह ज्ञात न हो कि 'दलित' शब्द का अर्थ क्या है?

'दलित' शब्द का अर्थ दबाए गए, कुचले गए, पीड़ित किए गए, विपत्तिग्रस्त, शोषित अथवा प्रताड़ित व्यक्ति से है और इस अर्थ में तथाकथित जाति–विशेष या वर्ग–विशेष की कोई अवस्थिति नहीं है। ऐसे दबे–कुचले, सर्वतोभावेन प्रपीड़ित व्यक्ति की पीड़ा का जिस साहित्य में मार्मिक चित्रण हो या जो साहित्य ऐसे व्यक्ति से सम्बन्धित हो उसे 'दलित साहित्य' अभिधान से अभिहित किया जा सकता है, 'दलित' शब्द के इस अर्थ व 'दलित साहित्य' की उपर्युक्त परिभाषा के संदर्भ में यह कहना किसी भी प्रकार अनुचित नहीं होगा कि संसार का प्रथम काव्य 'रामायण' प्रथम दलित साहित्य भी है क्योंकि इसमें समाज द्वारा प्रताड़ित एक नारी की वेदना के मार्मिक चित्रण के साथ अन्यान्य कारुणिक प्रसंगों का भी चित्रण हुआ है।

दूसरी ओर आज आलोचकों द्वारा सामान्यतः दलित साहित्य उस साहित्य को कहा जा रहा है जो तथाकथित दलित जाति के लोगों द्वारा रचा गया होता है। इसकी एक विशेषता यह भी बताई गई है कि यह साहित्य उनके हितों के प्रति प्रतिबद्ध होता है और उसमें उनकी समस्याओं को उजागर भी किया जाता है। वैसे वास्तविकता यह है कि दलित–साहित्य से सम्बन्धित अवधारणाएँ अभी स्पष्ट नही हैं। और अभी आलोचक आधिकारिक रूप से यह कहने की स्थिति में नही हैं कि दलित साहित्य के प्रतिमान क्या हैं? साथ ही दलित साहित्य सम्बन्धी आलोचकों के उपर्युक्त विचारों में साहित्य के इतिहास के संदर्भ में स्पष्टतया विरोधाभास भी दिखाई देता है। यदि दलित साहित्य तथाकथित दलित जाति के लोगों द्वारा रचित साहित्य ही है तो रैदास, दादू, पीपा, धर्मदास, मलूकदास इत्यादि द्वारा रचित साहित्य दलित–साहित्य क्यों नहीं कहा जाता या फिर प्रेमचन्द्र, फणीश्वरनाथ रेणु, निराला प्रभृति साहित्यकारों ने अपने जिस साहित्य के माध्यम से दलितों की समस्याओं की वाणी दी और उनके हितों के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त की वह साहित्य दलित–साहित्य की सीमान्तर्गत क्यों नहीं है?

दलितों की एक त्रासदी और रही है कि जब–जब उनके किसी आंदोलन का नेतृत्व गैर दलितों के हाथों में हाता है वह अपने लक्ष्य तक पहुँचने से पूर्व ही समझौतावाद के दलदल में जाकर समाप्त हो जाता है, अपनी तमाम प्रगतिशीलता और मानवीय उदारता के बावजूद जाति की स्थिति आते ही दलित हितों की बात छोड़ अपनी जाति की भावनाओं के साथ जुड़ जाते हैं। जगदीश चन्द्र के 'धरती ध्न न अपना' का डॉक्टर बिसनदास प्रगतिशील कम्युनिस्ट कॉमरेड का प्रतिनिधित्व करता है जो केवल पोथीनिष्ठ सिद्धान्तों की बात करते हैं और किताबी व बौद्धिक बहसों के जरिए क्रान्ति लाने का सपना देखते हैं। इसलिए इन्सानियत के प्रति उतना दर्द उनके दिमाग में नहीं है जितना किताबी मार्क्सवाद है। चमारों को जरूरत है अनाज की, ताकि वे जिन्दा रहकर अपना संघर्ष जारी रख सकें जबकि बिसनदास और टहला सिंह अनाज की व्यवस्था के बजाय उनके लिए जलसा करने का प्रस्ताव करते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो उनकी इस त्रासदी का हल खोजने की बजाय राजनीति करते हैं। इतना जरूर होता है कि व्यक्ति–व्यक्ति के बीच द्वन्द्व में बिसनदास इन्सानियत का परिचय देकर काली का पक्ष लेते हुए चौधरी के लड़के को फटकार लगाता है और काली का इलाज करने उसके घर तक जाता है। लेकिन जाति–द्वन्द्व के समय वही बिसनदास अपनी जाति की भावनाओं के साथ ही जुड़ता है और मानवीयता को ताख पर रखकर काली को अनाज देने से इंकार कर देता है। दलितों का मन्दिर–प्रवेश भी इसी समझौतावाद का एक रूप है। दलित आंदोलन करता है मानवीय समता और सम्मान के लिए, इसके लिए वह चाहता है, विषमतामूलक ब्राह्मणवाद अर्थात् हिन्दुत्व से मुक्ति। वह नकराना चाहता है भाग्य और भगवान को, और स्वीकारना चाहता है ''अप्प दीपो भव'' के कल्याणकारी सूत्र को। किन्तु उसको ढकेल दिया जाता है मन्दिर की दहलीज के अन्दर जहाँ किसी भगवान या देवी–देवता के आगे नत–मस्तक हो वह 'अप्प दीपो भव' के विश्वास को छोड़ 'तमसो मा ज्योर्तिगमय' की याचना करने लगता है। महाराष्ट्र में कालाराम मन्दिर में प्रवेश के लिए आन्दोलन एक समय में बाबा साहब अम्बेडकर ने भी चलाया था किन्तु इसकी निस्सारता भी वह शीघ्र ही समझ गये थे और उन्होंने हिन्दू धर्म का परित्याग कर बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली थी। दलित चेतना का यह पक्ष हिन्दी उपन्यासों में कहीं दृष्टिगोचर नही ंहोता। ऐसा भी होता है कि दलितों का नेतृत्व करने वाले सवर्ण लोग ऐसे समझौते कर लेते हैं जिसमें दलितों का हित कम उनका अपना हित ज्यादा सधता है। 'धरती धन न अपना' में दलितों में धर्मान्तरण की चेतना दिखाई पड़ती है जिसमें चमारों के प्रति सवर्णों के छुआछूत और भेदभाव पूर्ण व्यवहार से तंग आकर नन्द सिंह ईसाई बन जाता है। भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'सीधी–सच्ची बातें' की मिस मण्डल हिन्दू धर्म की जाति व्यवस्था और छुआछूत से निजात पाने के लिए धर्मान्तरण करती हैं और ईसाई बन जाती हैं। किन्तु ईसाई बन जाने से भी उनकी सामाजिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होता है। सवर्ण समाज उनके साथ पूर्ववत् व्यवहार ही करता है। बाला दुबे के उपन्यास 'मकान–दर–मकान' में किस्नों और द्वारका भी ईसाई बन जाते हैं। कहने के लिए वे भंगी या चमार नहीं रहे, पर यथार्थ में ऐसा नहीं होता। अस्पताल में उनको नौकरी मिलती है तो झाड़ू–पोंछा लगाने की ही, कुछ उपन्यासों में दलितों द्वारा धर्मान्तरण कर मुसलमान बनने के भी उल्लेख हैं, किन्तु ईसाई या मुसलमान बनना दलितों की सामाजिक समस्या का कोई ठोस समाधान नहीं है। यह कुएँ से निकलकर खड्डा में जा गिरना है। धर्मान्तरण के नाम पर दलितों का ईसाई या इस्लाम धर्म ग्रहण करने के चित्रण के पीछे मूल मानसिकता बौद्ध धर्म से दलितों का ध्यान हटाने की दिखाई देती है ताकि दलित अपने मसीहा डॉ0 भीमराव अम्बेडकर क विचारधारा से कट जाएँ और एक सांस्कृतिक शक्ति के रूप में संगठित न हो सकें।

'रागदरबारी' के लंगड़ की बाबू के साथ हुज्जत को धर्म की लड़ाई कहना या दलितों में से ही अपने पण्डित बनने की घटनाएँ दलितों को श्रेष्ठत्व प्रदान नहीं करती हैं। बल्कि धर्म की घुट्टी पिलाकर उनकी क्रांति– चेतना को अवरुद्ध और कुन्द करती हैं। गोपाल उपाध्याय के उपन्यास 'एक टुकड़ा इतिहास' में बलेसर रैदास का लड़का बहुत बड़ा जनेऊ पहनता है। यह भी अन्य उपन्यासों की तरह दलितों की चेतना से अलग उनको हिन्दुत्व से गहरे तक जोड़ने का ही प्रयास है।

यह कहना भी कि स्वाधीनता आन्दोलन में दलितों का कोई योगदान नहीं है, एक बहुत बड़े सत्य को झुठलाना है। मातादीन भंगी, रामपत चमार, करिया मुण्डा, तिलकामांझी और झलकारी बाई से लेकर उधम सिंह तक सैकड़ों दलित वीर–वीरांगनाओं ने देश के स्वाधीनता आन्दोलन में बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया तथा अपने प्राणों तक का उत्सर्ग किया। किन्तु वर्णवादी मानसिकता के चलते देश के लिए दलितों के बलदान को न केवल महत्व नहीं दिया गया, अपितु उसकी पूरी तरह उपेक्षा भी की गई। इन वर्णवादी लेखकों की दृष्टि में हिन्दुत्व के उन्नायक तो राष्ट्रभक्त और राष्ट्रनायक है किन्तु राष्ट्र की अस्मिता, अस्तित्व और सम्प्रभुता के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले दलित देश–भक्तों का इतिहास के पन्नों में कहीं कोई जिक्र तक नहीं होता।

'रागदरबारी' उपन्यास में लंगड़ और सनीचर दो दलित पात्र हैं। दोनों दीन–हीन हैं। लंगड़ अपनी औलाद की उम्र के बद्री, रंगनाथ और रूप्पन सबको 'बापू' कहकर पुकारता है। वह शायद कबीरपंथी है– गले में कण्ठी पहने रहता है। तहसील से एक छोटी सी नकल लेने के लिए कई साल तक बाबू उसे बेवकूफ बनाता है और लंगड़ इसे धर्म की लड़ाई कहता हे। सनीचर बैद्य जी की बैठक में भंग घोटता है, उनका सेवक है। जो कोई भी जब चाहे तब उसे दुत्कार देता है और वह केवल ही–ही कर रह जाता है। स्वाभिमान तो उसके अन्दर है ही नहीं।

निराला के उपन्यास 'कुल्ली भाट' का कुल्ली भी लंगड़ और सनीचर की तरह ही दीनता और हीनता–बोध का शिकार है। कुल्ली से कहे गए लेखिक के इन शब्दों से कुल्ली की स्थिति को भलीभाँति समझा जा सकता है, ''जब आप मुझे इतना..... तब शुक्ल जी तो .....मैं तो उसके चरणों तक ही पहुँचता हूँ।'' जबकि कुल्ली शुक्लजी के यानी पं0 देवीदत्त शुक्ल के बड़े भाई जैसे थे। ऐसे में शुक्ल जी को कुल्ली के प्रति सम्मान और श्रद्धा व्यक्त करनी चाहिए, लेकिन उपर्युक्त वाक्य यह स्पष्ट करता है कि शुक्ल जी नहीं कुल्ली ही शुक्ल जी का सम्मान करते हैं और इतनी दीनता से दबकर करते हैं कि लेखक भी अचम्भित हो जाता है। कुल्ली की इस दीनता और अपने से छोटे शुक्ल जी के प्रति इतने सम्मान का कारण कुल्ली के अन्दर समाई जातीय हीनता है। कुल्ली को इस जातीय हनता से उबारने का कोई प्रयास उपन्यास में दिखाई नहीं देता। दूसरे कई उपन्यासों की तरह इस उपन्यास में भी कुल्ली के वर्णन में उसकी इस दीनता और हीनता को उसकी विनम्रता यानी उसके गुण के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। यह भारतीय हिन्दू–समाज व्यवसथा की क्रूर अमानवीयता पर पर्दा डालने जैसा है। इसके अलावा कुल्ली की मृत्यु के पश्चात गृहशान्ति के लिए लेखक स्वयं कुल्ली के घर जाकर अपने हाथों से हवन कराता है। निराला जी के सिद्धान्त और व्यवहार का द्वैत यहाँ उजागर हो जाता है। जिन सामाजिक पाखण्डों के विरोध की बात करके वह प्रगतिशील बनते हैं, परिवार–शुद्धि के लिए स्वयं हवन का पाखण्ड करते हैं अकेले निराला नहीं अधिकांश तथाकथित प्रगतिशीलों की हालत यही मिलेगी। सिद्धान्त रूप में जिन विसंगतियों और विकृतियों के खिलाफ गला फाड़–फाड़ कर चीखेंगे लेकिन व्यवहारिक जीवन में उन्हीं को जिएंगे और भोले–भाले दलितों का परम्परा के उसी इन्द्रजाल में उलझाए रहेंगे।

'गोदान' को गोबर और 'धरती धन न अपना' का काली गाँव से शहर जाते हैं, किन्तु फिर वापस गाँव लौट आते हैं। शहर से गाँव वापस लौटने की ये घटनाएँ इस बात की ओर इंगित करती हैं कि दलितों के लिए शहरों की अपेक्षा गाँव ज्यादा अनुकूल है। डॉ0 अम्बेडकर ने दलितों का आह्वान किया था कि जहाँ वे अल्पसंख्या में हैं, गाँव छोड़कर शहरों की ओर प्रयाण करें क्योंकि दलितों के साथ जुल्म और ज्यादती गाँवों में ही ज्यादा होती है और गाँवों में कोई सुनवाई नहीं होती है। जबकि शहरों में पुलिस थाने और दूसरी एजेन्सियाँ हैं, आवश्यकता पड़ने पर उन तक सहजता से पहुँचा जा सकता है। इन उपन्यासों के जरिए एक गलत सन्देश देने की कोशिश की गई है। जबकि व्यवहारिक सत्य यह है कि एक शोषित, पीड़ित, दलित एक बार गाँव छोड़कर शहर आ जाने पर नारकीय जीवन जीने के लिए वापस गाँव नहीं लौटता है। 'धरती धन न अपना' में कली पुनः गाँव छोड़कर जाता भी है तो चौधरियों के शोषण व अत्याचार से विद्रोह करके नहीं अपनी प्रेमिका ज्ञानों की हत्या कर दिए जाने से दुःखी होने पर ही। दलित चेतना से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

अतः यह कह सकते हैं कि सदियों से शोषित, प्रताड़ित एवं उपेक्षित लोकसमुदायों की अंतर्मन की अथाह चेतना और विद्रोह व्यक्त करने वाली साहित्यधारा दलित साहित्य है। इसमें स्वजनों द्वारा ही निर्धन, निर्बलों पर हुए अन्याय, अत्याचार, आतंक तथा आक्रोश का निर्मम निरावरण एवं वास्तविक चित्रण है। पीढ़ियों से श्रेष्ठ ठहराये गये सवर्णों की दीन दलितों के प्रति विकृत मानसिकता लज्जा को भी लज्जित करने वाले अमानवीय व्यवहार और विषमता के पाटों में समता के लिए छटपटाता दलित जीवन दलित साहित्य के वर्ण्य विषय हैं।

विश्व में दलित साहित्य का वृहत् एवं बहुआयामी स्वरूप केवल भारत में दिखाई देता है। कोटि दीनदलितों के उद्धारक तथा भारतीय संविधान के रचयिता डॉ0 बाबासाहब अम्बेडकर भारतीय दलित साहित्य की मूल प्रेरणा है, तथा वे ही जीवन, साहित्य एवं संस्कृति के ऊर्जा स्रोत है। कबीर, फूले, रैदास, तुकाराम, नामदेव बसवेश्वर जैसे महात्माओं की दिव्य वाणी दलित साहित्य की संजीवनी है। युगपुरुष डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के क्रांतिकारी व्यक्तित्व एवं कृतित्व से आत्मसम्मानित बने तथा सदियों से दबाये गये दलितों का हृदयरुदन ही दलित साहित्य है, जो 19वीं शताब्दी में सर्वप्रथम महाराष्ट्र में उमड़ पड़ा। डॉ0 गंगाधर पानतावणे द्वारा 'अस्मितादर्श, ने अनेक दलित प्रतिभाएँ साहित्य जगत को दी। अनेक कृतियाँ सम्मानित हुईं। अनेकों भारतीय भाषाओं में अनूदित हुई। इनमें अग्रणी है फकिरा (अण्णभाऊ साठ), बलुत (दया पवार), यादों के पंछी (प्र0ई0 सोनकांबले), पत्थर कटवा (लक्ष्मण गायकवाड़), उपरा (लक्ष्मण माने), अक्कर माशी (शरणकुमार लिम्बाले), छोरा कोल्हाटीका (किशोर काले), तराल अंतराल (शंकरराव खरात), मुक्काम पोस्ट देवा के गोठणे (माधव कोडविलकर), मेरे जन्म की चित्तर कथा (शांताबाई काम्बले), हकीकत और जटायू (केशव मेश्राम), घूँट भर पानी (प्रेमानंद गाज्वी), छावणी हिल रही है (वामन निंबालकर), उत्थान गुंफा (यशवंत मनोहर), दिशा (ज्योति लांजेवार), तीन पत्थरों का चूल्हा (विमल मोरे), ढोर (भगवान इंगले), भंडार भोग (राजन गवस), वतनवालों दास्तां तुम्हारी है (बासुदेव सोनवणे) इत्यादि।

महाराष्ट्र की नींव पर खड़े दलित साहित्य ने समूचे भारतवर्ष में अपनी साहित्यक सीमाएँ विस्तारित की हैं। इनमें मुख्य हैं मध्य प्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, कन्नड़, तमिल, उड़िया, आंध्र, केरल। हिन्दी साहित्य में नागार्जुन, रेणू, नेमिशराय, नरेश मेहता, सुखलाल, जय प्रकाश कर्दम जैसे नाम 'मैं भंगी हूँ' 'बलचनमा', छप्पर, जूठन अपने अपने पिंजड़े, शबरी कृतियों के साथ चर्चित हैं सतींद्र सिंह, गुरूदयाल सिंह, प्रेमगोरखी इन पंजाबी हस्ताक्षरों के संग बुदण्ण हिमगिरे, इनाम अवलिका, रंगनायकम्प, ओ0पी0 विजयन नम्बुदिरिका जैसी प्रतिभाएँ कर्नाटक, उड़िया, मलयालम दलित साहित्य में सक्रिय हैं। सदियों से नकारे गये, आदिवासी बहुजनों का दलित साहित्य मंगलमयी मूल्यों तथा सत्याभिव्यक्ति के कारण भारत एवं भारतेतर देशों के साहित्य में सम्मानित हो रहा है युगीन प्रवृत्तियों को परिलक्षित और उन्हें मानवता की ओर प्रवृत्त कर रहा है यही इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.कुल्ली भाट– सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
2.गोदान– मुंशी प्रेमचन्द
3.धरती धन न अपना – जगदीशचन्द्र
4.शबरी– नरेश मेहता
5.जूठन–
6.मैं भंगी हूँ–
7.हंस पत्रिका दलित विमर्श विशेषांक।

❑❑

उत्तर प्रदेश में दलित आंदोलन की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में

डॉ. अलका दीक्षित
रामकृष्ण नगर, कानपुर

बीसवीं सदी के प्रारंभिक चरण में पाश्चात्य नवजागरण के फलस्वरूप सामाजिक सुधारों के प्रति आस्थावान, प्रगतिशील बुद्धिजीवियों का एक वर्ग पनपने लगा। लोगों में देशभक्ति और राष्ट्रीय भावना के विचार प्रबल हो रहे थे। आगमन के साधन, नये आर्थिक और व्यवसायिक स्रोतों की उपलब्धता और शिक्षा एवं अनुकरण की प्रवृत्ति ने दलित जातियों में संस्कृतिकरण के भाव भर दिये हैं अतः बीसवीं सदी के प्रारंभ में उ.प्र. के दलित समाज का संस्कृतिकरण प्रारम्भ हो गया था।

आगरा उ.प्र. के जाटवों में आर्य समाज से प्रभावित होने तथा उच्च जातियों के रहन–सहन अपनाने की प्रवृत्ति देखी जा सकती थी। ओवन एम.लिंच (कोलम्बिया वि.वि.) ने इस संदर्भ में एक शोध अध्ययन प्रस्तुत किया जिसके अनुसार जाटवों के इस आन्दोलन ने पूरे उ.प्र. को प्रभावित किया। 1917 में 'जाटव वीर महासभा' का गठन किया गया जो बाद में 'जाटव प्रचारक मण्डल' कहलाया।[1] इन संगठनों का प्रमुख उद्देश्य जाटवों में शिक्षा को बुनियादी तौर पर प्रोत्साहित करना था।

यद्यपि अन्य जातियों में संस्कृतिकरण देखसुन कर अपने को आदि धर्म कहने वाले अछूतों के विपरीत जाटवों में जातिप्रथा के अन्तर्गत ऊपर उठने की कोशिश की। किन्तु बदलते राजनैतिक परिदृश्य ने सन् 1944–45 में 'आगरा परिगणित जाति संघ' की स्थापना हुई और उन्हें डॉ. अम्बेडकर के संघ से संबद्ध किया गया।[2]

अंततः अनुसूचित वर्गों की विशेषताएँ नई पहचान का आधार बन गईं और क्षत्रिय के मोह से उन्हें विलग होना पड़ा। जाटवों ने अब अपने को अस्पृश्य जातियों में पाया जिन्हें सवर्ण पहले ही अछूत समझते थे।[3] जाटव–चमार के अतिरिक्त अन्य दलित अनूसूचित जातियों में भी यही सब कुछ चल रहा था। खटिक जाति 'सोनकर' या 'सोमवंशी क्षत्रिय', 'कोरी' 'तंतुवायवैश्य', 'माहौर', 'महावर वैश्य' अथवा कोलि, राजपूत, ओढ़ 'राजपूत' तेली साहू, अहेरिया, 'हैहयवंशी क्षत्रिय' धोबी चंद्रवंशी वर्मा, पुष्कर सरोज, कुम्हार प्रजापति कहने में गौरव अनुभव करते थे। उन्होंने अब आत्ममंथन शुरू कर दिया था।

सबसे गिरी दशा भंगी जाति की थी। जो मैला ढोते थे, जूठन खाते थे, किसी भी जगह पहचान लिये जाने पर अपमानित होते थे। उनमें ईसाई सक्रिय थे। अतः शिक्षा आने लगी थी। शहरी लोगों को म्युनिसिपॉलिटियों में नौकरियाँ मिलने लगीं वे अपने को अब ऋषि वाल्मीकि की संतान कहने लगे।[4]

1937 से 1947 के दौरान पूरे पश्चिमी उ.प्र. में जिसमें आगरा, अलीगढ़, एटा, मेरठ, बरेली, सहारनपुर आदि प्रमुख थे। जाटव नवजागरण संदेश शहरों, कस्बों और गांवों तक में फैलता गया। अधिकांशतः गांवों में जाटव या चमार जूते के पेशे अथवा किसान थे या खेतिहर श्रमिक। आगे चलकर उनकी जीवनशैली में भी बदलाव आया वे भूमिहर बने। शीघ्र चमार जाटव युवकों में आजादी की लड़ाई में भीड़ का हिस्सा बनने के बजाय शिक्षा पाने की होड़ लग गई। जिससे दलित मुक्ति का संघर्ष और भी तेज हो गया। उन्हें वजीफे मिले, आर्थिक सहायता मिली और नौकरियाँ मिलने लगीं। अकेले उ.प्र. में सैकड़ों प्रदेश और अखिल भारतीय स्तर की नौकरियों में प्रवेश पा गये।[5]

उ.प्र. में और भी ऐसे अनेक दलित नेताओं के नाम गिनाये जा सकते हैं, जो स्वतंत्राता पूर्व भारत में और समाज

की प्रगति के लिए जागरूक रहे। जिन्होंने स्वतंत्राता आन्दोलन में भाग लिया। बाबू जगजीवनराम या डॉ. अम्बेडकर के साथ कार्य किया अथवा स्वतंत्रा रूप से दलितों में समाज सेवा का कार्य किया।

इनमें तिलकचंद कुरील (कानपुर), रामलाल कमलवंशी (कानपुर), डॉ. मानिक चंद जाटव–वीर (आगरा), भगवानदास और पं. कन्हैयालाल (हाथरस), डॉ. धर्मप्रकाश (बरेली), सेठ किशोरी लाल माहौर (आगरा), चौधरी बिहारी लाल (बिजनौर), रामप्रसाद टम्टा आदि के नाम प्रमुख हैं। आरक्षित सीटों पर जब लोग सांसद और विधायक बने तो दलित जातियों में जागरूकता, चेतना और अधिकारों के लिए संघर्ष करने की भावना का उदय होना स्वाभाविक था। शिक्षा के क्षेत्रा में उत्तरोत्तर प्रगति से उनकी मुक्ति और प्रगति के द्वारा प्रशस्त हुए। आज अनेक संसद सदस्य और विधायक, आयोगों के अध्यक्ष सदस्य या नौकरशाही के रूप में दलित हस्तियाँ मौजूद हैं।

उ.प्र. में साइमन कमीशन के आगमन पर डॉ. अम्बेडकर का साथ देने वाले दलित जाति के सुधारक स्वामी अछूतानन्द का जन्म छिबरामऊ तहसील, जिला फर्रूखाबाद उ.प्र. में चमार जाति में हुआ था। (नोट– स्वामी अछूतानंद का विस्तृत विवरण– पंचम अध्याय– दलित आन्दोलन के नायक नेता के अंतर्गत किया गया।)

स्वामी अछूतानन्द हरिहर ने आदि हिन्दू महासभा के द्वारा दलित आन्दोलन को और पैना किया। 1923 में महासभा का सम्मेलन इटावा में रामदयाल जाटव ने किया इसके पश्चात 1925 में इसका सम्मेलन कानुपर में हुआ। सन् 1944 में कानपुर में डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा स्थापित शेडयूल्ड कास्ट फेडेरेशन की एक विशाल सभा तिलक चन्द्र कुरील की अध्यक्षता में हुई जिसमें डॉ. अंबेडकर स्वयं शामिल हुए। डॉ. अम्बेडकर अपने अंतिम दिनों में 'रिपब्लिकन पार्टी' नामक राजनीतिक दल बनाना चाहते थे, किन्तु शीघ्र परिनिर्वाण होने की वजह से 1957 में यह पार्टी बनी। इस पार्टी ने 'परती जमीन' को आवंटित करने के लिए आन्दोलन चलाया।

दिसम्बर 1978 में कांशीराम ने अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े वर्ग और अल्प संख्यक समुदाय कर्मचारियों को संगठित करने के लिए बामसेफ (वैक्वर्ड एण्ड माइ नारिटी कम्युनिटीज एम्प्लाइज़ फेडरेशन) की स्थापना की। यह पूर्णतः गैर राजनीतिक एवं गैर आन्दोलनकारी संगठन था किन्तु इसमें दलित कर्मचारियों एवं अधिकारियों में जागरूकता एवं जुझारूपन भर दिया। चूंकि यह संगठन सरकारी कर्मचारियों से सम्बन्धित था अतः यह सरकार की नीतियों के खिलाफ कोई आन्दोलन नहीं कर सकता था। इसलिए बाद में आन्दोलन तीव्र करने के लिए दलितों का एक और संगठन डी.एस. फोर बनाया गया। 'डी.एस. फोर' (दलित, शोषित समाज संघर्ष समिति) का गठन 6 दिसम्बर 1981 में किया गया। इस संगठन ने दलित आन्दोलन को नयी धार प्रदान की।[6]

कांशीराम द्वारा तीन दशकों में जो सामाजिक राजनीतिक आन्दोलन चलाया गया वह दलित आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण चरण था। इस आन्दोलन की परिस्थिति 14 अप्रैल 1984 में 'बहुजन समाज पार्टी' के रूप में देखने को मिलती है। 'बाससेफ' और 'डी.एस. फोर' के द्वारा दलित चेतना के विस्तार को राजनीतिक संघर्ष से जोड़ा गया। दलित आन्दोलन को एक नवीन राजनीतिक कार्यशैली प्रदान करने वाले कांशीराम ने डॉ. अम्बेडकर की तर्ज पर ब्राह्मणवादी संस्कृति का विरोध किया। कांशीराम का एक सूत्राीय कार्यक्रम था कि बहुजन समाज को राजसत्ता पर नियंत्राण चाहिये। इसलिए वह कभी भी चुनावी घोषणापत्रा जारी नहीं करते थे। बसपा ने दलित आन्दोलन के नये राजनीतिक समीकरण बनाये हैं और सामाजिक न्याय तथा परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया है।

दलित गतिशीलता पर किये गये राम आहूजा के अध्ययन से पता चलता है कि यद्यपि दलित परिवारों और व्यक्तियों में ऊर्ध्व सामाजिक गतिशीलता की कुछ प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं और कुछ दलित उच्च प्रशासनिक पदों पर भी आसीन हैं फिर भी मोटे तौर पर दलितों ने प्रथम पाँच दशकों में कम प्रगति दर्शायी है। इन लोगों के लिए बनायी गयी अनेक कल्याणकारी योजनाओं के विषय में सांस्कारिक औपचारिकता है। वित्तीय प्रोत्साहनों और शैक्षिक आरक्षणों ने इन जातियों को बहुत कम वास्तविक लाभ पहुँचाया है।[7] 1991 में देश की कुल जनसंख्या के 16.48 प्रतिशत शक्ति के साथ तथा 15 प्रतिशत आरक्षण के सहित, सेवाओं में उनके लिए सुरक्षित स्थानों का लाभ

दलित नहीं उठा सके हैं। यदि एस.सी. / एस.टी. आयुक्त की रिपोर्ट तथा एस.सी / एस.टी. के राष्ट्रीय आयोग, जो सरकारी कार्यालयों एवं सार्वजनिक संस्थानों की नीतियों के क्रियान्वयन का संचालन करता है की रिपोर्ट तथा एकत्रित आंकड़ों का अध्यापन करें तो पता चलता है कि केन्द्रीय सरकारी विभागों, सार्वजनिक संस्थानों और राष्ट्रीयकृत बैंकों में 1993 में आरक्षण समूह ए के पदों के लिए 7 से 10 प्रतिशत, समूह 'बी' पदों के लिए 9 से 14 प्रतिशत, समूह 'सी' के लिए 13 से 19 प्रतिशत तथा 'डी' समूह के लिए 21 से 23 प्रतिशत था। (Bhargava B.S. & Avinash samal Protectine Disiriminalion & Development of Scs" in India lomou as buhar act Ministration, July Scpt 1998 Vol. XL. IV. No3513) यद्यपि 1965 से आगे निःसंदेह सभी श्रेणियों के पदों में एस. सी. सदस्यों की भर्ती की स्थिति में सुधार हुआ है लेकिन 'ए' और 'बी' के पदों में सन्तोषजनक प्रगति नहीं हुई है, जबकि समूह 'डी' में कुल पद निर्धारित मात्राा से भी आगे निकल गये हैं और समूह 'सी' में वे निर्धारित मात्राा में निकट है (15 प्रतिशत)। 'ए' और 'बी' समूह के सभी पद पूर्ण मात्राा में इसलिए नहीं भर पाते क्योंकि 'अहं' प्रत्याशी उपलब्ध नहीं होते। केन्द्र व राज्य सरकारों के आधीन विभिन्न पदों के लिए आवेदन करने की योग्यता के लिए कुछ आधारभूत शैक्षिक योग्यता आवश्यक होती है। 1991 में एस.सी. की साक्षरता 34.41 प्रतिशत थी हाईस्कूल स्तर पर दलितों का पास होने का औसत 53 प्रतिशत है। प्राथमिक से लेकर हाईस्कूल तक नामांकन का प्रतिशत मात्रा 15 प्रतिशत है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दलितों में गतिशीलता अभी अपेक्षाकृत गति नहीं पकड़ पायी है।

उत्तर प्रदेश संत कबीर और संत रविदास की धरती है। जहाँ से पंद्रहवीं सदी में ही वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था के विरुद्ध संतों ने मानव–मानव एक समान का संदेश दिया था। इसका व्यापक प्रभाव सम्पूर्ण भारत पर पड़ा। 1857 ई. के स्वतंत्राता संग्राम में जाति व्यवस्था से पीड़ित दलित समाज ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया। जिसका प्रमाण झलकारी बाई, बल्लू मेहतर, उदादेवी, महावीरी देवी, चेतराम जाटव आदि दलितों के बलिदान के बाद आगे संघर्ष में चौरी–चौरा काण्ड में शहीद दलितों के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दू धर्म की कुरीतियों एवं भेदभाव के खिलाफ आर्य समाज ने आवाज उठायी। इससे दलित आर्य समाज की ओर आकर्षित हुए। जिसके स्वामी अछूतानन्द हरिहर प्रमुख थे। उन्होंने दलितों को भारत का आदि हिन्दू बताया। स्वामी अछूतानन्द के प्रयासों से दलितों की विभिन्न जातियों में चेतना का संचार हुआ एवं सभाएँ बनने लगीं। चमार जाति के लोगों ने चमार महासभा, रविदास महासभा, जाटव महासभा, लखनऊ के आसपास पासियों ने पासी महासभा, धोबियों ने धोबी महासभा, बाल्मीकि महासभा इत्यादि का गठन किया। ये सभाएँ अपनी–अपनी जातियों को बुरे रीति–रिवाज, बाल–विवाह, शराब छोड़ने, लड़कों को पढ़ाने और स्वच्छता से रहने की सलाह देती थी। दलित जाति के सुखदेव भगत (1840–99) और निर्धिन राम (1920–1957) ने बलिया, गाजीपुर और बिहार के शाहांबाद छपरा जिलों में घूम–2 अपने लोक गीतों से दलितों में चेतना भरने का सराहनीय कार्य किया।[8]

इसी बीच स्वामी अछूतानंद समर्थक डॉ. अम्बेडकर के शेडयूल्ड कास्टस फेडरेशन में शामिल हो गये और दलित समस्याओं पर आन्दोलन चलने लगे। तिलक चन्द्र कुरील कानपुर प्रदेश के अध्यक्ष बने। उ.प्र. में आगरा, लखनऊ इलाहाबाद, कानपुर इसके केन्द्र बने अनेक दलित समाज के लोग सामने आये। डॉ. अम्बेडकर के आगरा कानपुर और लखनऊ दौरों का दलितों पर विशेष प्रभाव पड़ा। लखनऊ में चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु ने इस आन्दोलन के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें प्रकाशित कर महत्वपूर्ण योगदान दिया। महाथेर बोधानन्द, रामचरन निषाद, छेदीलाल साथी, गयाप्रसाद, शिवदयाल चौरसिया, बदलू राम रसिक, इलाहाबाद में राय साहब श्यामलाल, पहाड़ी भाग में रायसाहब हर प्रसाद अटम्टा ने इस आन्दोलन में विशेष योगदान दिया।[9]

शिक्षा के क्षेत्रा में उत्तरोत्तर प्रगति ने दलितों की मुख्य प्रगति को प्रशस्त किया। डॉ. अम्बेडकर ने 1954 में फेडरेशन के द्वारा चुनावों में दलितों के हितों की रक्षा का प्रयत्न किया। ये हित रक्षा नौकरियों में आरक्षण और राजनैतिक स्थितियों को सुदृढ़ बनाने के प्रयत्न तक ही सीमित रह गई। 1956 में यह फेडरेशन रिपब्लिकन पार्टी

में परिवर्तित हो गया। इसका उद्देश्य व्यवस्थित आधार प्रदान कर इसमें अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़ी जातियों को सम्मिलित कर इसमें गतिशीलता प्रदान करना था।

कोहन द्वारा पूर्वी. उ.प्र. के सेनपुर गांव के जैसवार चमारों में इसी प्रकार की प्रवृत्ति का अध्ययन किया गया है। सबसे पहली समस्या जाटवों में जाग्रति उत्पन्न करना था। इसके द्वारा वे जाति की नई परिभाषा से परिचित हुए और समाज में सम्मान के लिए नहीं वरन् जाति के लिए ऊँची स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे।[10]

उत्तर भारत में बुद्धप्रिय मौर्य, संघप्रिय गौतम, कांशीराम और मायावती जैसे नेताओं ने महात्मा फुले, बाबा साहब अम्बेडकर से ही सामाजिक परिवर्तन और दलित क्रांति का पाठ पढ़ा। यद्यपि इन नेताओं के विचार और कार्यशैली अलग रही, मौर्य और गौतम क्रमशः आर.पी.आई., कांग्रेस, भाजपा में रहे। कांशीराम ने डी.एस.फोर बाद में बहुजन समाजपार्टी संगठित की और सुश्री मायावती को सत्ता की कुर्सी पर आसीन किया।[11]

दलित आंदोलन के कारण दलितों ने अपनी वंचना और उसको दूर करने की चेतना के भाव जाग्रत हुए। इसके फलस्वरूप दलित वर्ग से जुड़े हुए राजनैतिक दलों का गठन होना शुरू हुआ। उ.प्र. में दलितों का मत परम्परागत रूप से कांग्रेस और रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया को जाता रहा। किन्तु 1960 के बाद यह एक तरफा कांग्रेस को मिलने लगा। 1967 के चुनाव में कांग्रेस को दलितों के 45.2 प्रतिशत मत मिले, जबकि 1971 में 47.1 प्रतिशत, 1980 में 52.8 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। जनता पार्टी 1977 एवं जनता दल 1989 के गठन के पश्चात दलितों को एक विकल्प मिला। किन्तु बहुजन समाजवादी पार्टी की स्थापना के पश्चात दलित स्थाई तौर पर उसे ही अन्य गैर राजनीतिक दलों के विकल्प के रूप में देखते हैं।[12]

गैर दलित राजनैतिक दलों और दलितों के सम्बन्ध अब संरक्षण और पीड़ित के नहीं बल्कि अब दलितों को भूमिका सत्ता प्रदान करने वाली शक्ति समूह के रूप में देखा जाने लगा है।

दलित आंदोलन के फलस्वरूप अनुसूचित जाति/जनजातियाँ संगठित होने लगीं। 'संगठित मतदान' के चलते गैर राजनीतिक दलों की निगाह इन पर गयी तो इन दलों में भी 'दलितहित' की बात जोर–शोर से उठने लगी। तकरीबन सभी गैर राजनीतिक दलों के अन्दर एक 'दलित प्रकोष्ठ' या दलित मोर्चे का गठन किया गया जिसका समन्वयक दलित ही होता है। गैर दलित राजनीतिक दलों के एजेन्टों में दलित से जुड़े मुद्दे अब प्रमुखता पाने लगे क्योंकि दलित आन्दोलन ने उन्हें यह एहसास दिला दिया कि बिना उनके गैर राजनीतिक दलों की सत्ता में भागेदारी मुश्किल है। दलित विमर्श के बिन्दू अब राजनीतिक मांग के रूप में स्थापित हो चुके हैं

दलित नेतृत्व ने जहाँ राजनीतिक सामाजिक संघर्ष करके समाज में भेदभाव एवं शोषण को खत्म करने का प्रयास किया वहीं स्वतंत्राता के बाद शिक्षित दलित बुद्धिजीवियों एवं दलित साहित्यकारों ने जो समाज में भेदभाव के दंश के भुक्तभोगी थे उन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं द्वारा जागरण का कार्य किया।

प्रथम्मा, सी. (1986) गुरुनानक जनरल ऑफ सोशलॉजी में यल ऑफ प्रोटेस्ट मूवमेन्टस् इन सोशल ट्रान्सफॉरमेशन में दलित विरोध के द्वारा सामाजिक परिवर्तन की ऐतिहासिक झलक दिखाई गयी है।

ओमुट गैल (1980) सोशियोलोजिकल बुलेटिन जनरल में कास्ट ऑग्रेइअन रिलेशन एण्ड ऑग्रेइअन कॉनफ्लिक्ट में संघर्ष के दो प्रकार बताये हैं– (1) जमींदार और विकास के बीच (2) दलित मजदूरों की मजदूरी, जमीन स्वतंत्राता। मजदूरी और जमीन के कारण सरकार के अन्तर्गत और न्याय का कारण प्रादेशिक स्तर के संगठनों के अन्तर्गत आता है।

अतः जो भी हो पर वास्तविकता रूप से भारत में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक दलितों से भेदभाव एवं अवसरों की असमानता को स्पष्टतः देखा जा सकता है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व से बौद्ध एवं जैन धर्म के माध यम से सामाजिक समरसता का संदेश दिया गया। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के द्वारा इस प्रक्रिया को और गति प्रदान की गयी। 18वीं शताब्दी के पुनर्जागरण से दलितों में चेतना एवं जागरूकता का संचार हुआ और विभिन्न दलित नेताओं ने परम्परागत रूप से बनाई गई शोषणकारी व्यवस्था की खुलकर आलोचना की। इस प्रकार महात्मा

बुद्ध से लेकर 'कबीर' ज्योतिबाफुले एवं अम्बेडकर के महती प्रयासों से दलित आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा।

इस क्रम में उत्तर प्रदेश में भी दलितोत्थान का कार्य भी जोर–शोर से चल रहा था। उत्तर प्रदेश में भी अनेक ऐसे दलित नेताओं का उद्‌भव हो चुका था जो अपने समाज के प्रति जाग्रत हो चुके थे। इसी बीच उत्तर–प्रदेश में महात्मा गांधी, दयानन्द सरस्वती, अम्बेडकर आदि नेता भी उत्तर प्रदेश में और उत्तर प्रदेश के इर्द–गिर्द अपने सम्मेलनों द्वारा दलितों को चेतना प्रदान और उ.प्र. में दलित आन्दोलन को गतिशीलता प्रदान की।

इस जाग्रति ने ही उ.प्र. को अनेक दलित नेता दिए, जिसमें तिलक चंद कुरील (कानपुर) डॉ. मानिक चंद्रजी (आगरा) किशोरीलाल माहोर (आगरा) चौधरी लाल (बिजनौर) आदि प्रमुख रहे हैं। उन्होंने दलितोत्थान के लिए अनेक सुधारात्मक प्रयास किये।

उत्तर प्रदेश जगजीवनराम द्वारा 'अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ' कांशीराम द्वारा बामसेफ, डी.एस. फोर. (दलित शोषित संघर्ष समिति) अन्ततः बहुजन समाज पार्टी द्वारा मायावती (दलित) को सत्ता प्राप्त दलित वर्ग की एक विशेष उपलब्धि थी।

इस प्रकार भारत के साथ–साथ उत्तर प्रदेश में भी दलितों के लिए अनेक सुधारात्मक कार्य गणना योग्य है।

सुधा पाई के अनुसार – सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जागृति के द्वारा दलित अपनी पहचान गढ़ रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. आधुनिक काल का दलित– आर. चन्द्रा, चंचरीक, कन्हैया लाल (2003), पृ. 87–88
2. भारत में दलित आन्दोलन (एक मूल्यांकन)– जातीय चेतना– ए.एल. चंचरीक, पृ. 180–181
3. पालिटिक्स ऑफ अनटचेविलिटी– ओवन, एस. लिंच,, पृ. 66–67
4. भारत में दलित आन्दोलन (एक मूल्यांकन)– जातीय चेतना, चंचरीक, ए.एल. पृ. 180–81
5. वही, पृ. 181–182
6. वही, पृ. 193–194
7. आधुनिक काल का दलित– चन्द्रा, आर., चंचरीक, कन्हैया लाल (2003), पृ. 365
8. भारतीय समाज– राम आहूजा, पृ. 75
9. भारत में दलित जागरण और उसके अग्रदूत, माता प्रसाद, पृ.
10. आधुनिककाल का दलित– आर. चन्द्रा, चंचरीक, कन्हैया लाल (2003), पृ. 99
11. वही, पृ. 85
12. भारत में दलित आन्दोलन (एक मूल्यांकन)– जातीय चेतना, पृ. 180–182
13. न्यू सोशल पॉलिटिक्स मूवमेंट ऑफ दलित अ स्टडी ऑफ मेरठ डिस्टिक, सुधा पाई, पृ. 154

❑❑

सामाजिक परिवर्तन के दौर में ग्रामीण महिलाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन

धर्मेन्द्र सिंह यादव
शोधार्थी
अतर्रा पी0जी0 कॉलेज अतर्रा, बांदा, उ0प्र0

महिलाएँ किसी भी समाज का एक अभिन्न अंग है। नारियॉ केवल रसोईघर तक सीमित नहीं है बल्कि वे पुरुषों के साथ विकास में पूर्णरूप से सहयोग कर रही है। ऐसे में समाज में नवीन धारणा को बल मिल रहा है। परिवार की आधार नारी है किसी भी देश के विकास के लिए वहाँ की नारी का विकास किये बिना संपूर्ण विकास संभव नहीं है। ज्यों–ज्यों महिला साक्षरता में वृद्धि होती आई है भारत विकास के पथ पर अग्रसर हुआ है। ऑगन से ऑफिस के कैरीडोर के कामकाज में भी बदलाव आया है। महिलाओं के शिक्षित होने से बालिका शिक्षा को बढ़ावा, बच्चों के स्वस्थ तथा सर्वांगीण विकास में तेजी आई है। शिशु मृत्यु दर में गिरावट, जनसंख्या नियंत्रण, प्रगति की गुंजाइश तथा स्त्री–पुरुष समानता के लिए जागरूकता आयी है। महिलाओं को सम्मानीय स्थान प्रदान करने की शुरुआत 1975 में यू0एन0ओ0 द्वारा 'विश्व महिला वर्ष' घोषित किये जाने के साथ हुई।

साहित्यिक पुनरावलोकन :– राम आहूजा के अनुसार, भारत के संदर्भ में प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन करने से दृष्टिगत होता है कि वैदिक काल में नारियों की दशा अत्यन्त उन्नत अवस्था में थी। उन्हें समाज तथा परिवार में विशेष स्थान प्राप्त था। उन्हें शिक्षा, विवाह, तथा धर्म आदि क्षेत्रों में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। पत्नी को परिवार में अर्द्धांगिनी का दर्जा प्राप्त था दोनों साथ–साथ यज्ञ करते थे। पुरुष नारी के बिना पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता था। उत्तर वैदिक काल में नारियों को वेद पाठ एवं यज्ञ की मनाही की गई। पुनर्विवाह निषेध तथा बाल–विवाह आरम्भ किये गये। सती प्रथा प्रारम्भ हुई बाद राजपूत काल में जौहर प्रथा प्रचलित हुई।

मध्यकाल में नारियों की दशा में ज्यादा गिरावट आ गई। इस काल में स्त्री शिक्षा पूरी तरह से समाप्त कर दी गई। आर्थिक पराधीनता, कुलीन विवाह प्रथा, अन्तर्विवाह, बाल–विवाह, अशिक्षा एवं संयुक्त परिवार प्रणाली को ऐसे माना गया जिनसे नारियों की स्थिति में अत्यन्त गिरावट आ गई। 19वीं सदी से आगे भारतीय समाज में नारियों की स्थिति सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक एवं राजनैतिक निर्योग्यताओं की शिकार रहीं। बहुपत्नी प्रथा, दहेज प्रथा को बढ़ावा मिला। अंग्रेजी शासनकाल में नारी की स्थिति में काफी सुधार होना प्रारम्भ हुआ जिसमें राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, श्रीमती एनी बेसेंट तथा महात्मा गांधी जी ने नारी उत्थान के लिए महत्वपूर्ण योगदान किया।

वर्तमान समाज में शिक्षा का व्यापक उद्देश्य है, नारियॉ केवल रसोईघर तक सीमित नहीं हैं बल्कि वे पुरुषों के साथ विकास में पूर्णरूप से सहयोग कर रही हैं। आर्थिक क्षेत्र में वे पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही हैं उन्हें तलाक के अधिकार के साथ पारिवारिक सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त है। राजनैतिक क्षेत्र में भी नारियॉ पुरुषों से पीछे नहीं है जिन्होंने अपने नाम की ख्याति फैलाई। स्व0 इंदिरा गांधी, फूलन देवी, जयललिता एक ओर हैं तो वहीं दूसरी ओर किरन बेदी, मायावती, रावड़ी देवी, डिंपल यादव, सुशमा स्वराज जैसी महिलाएँ प्रमुख हैं। ग्रामीण महिलाओं को स्थानीय स्तर पर पंचायतों के चुनाव में आरक्षण की सुविधाएँ भी प्राप्त हैं। शिक्षा के प्रसार, औद्योगीकरण, नगरीकरण, एकाकी परिवारों की संख्या में वृद्धि, नारियों में सामाजिक चेतना, अन्तर्जातीय एवं प्रेम

विवाहों के प्रचलन, राजनैतिक चेतना एवं वैधानिक सुविधाओं जैसे कारकों ने नारियों की प्रस्थिति को पुरुषों के बराबर लाने में सहायता दी है। राजनीति में प्रवेश के कारण शक्ति सम्पन्न पदों पर भी पहुँचने में सफल रही हैं।

महिलाओं की प्रस्थिति :– समाज में महिलाओं की प्रतिष्ठा एवं सम्मान बढ़ने के साथ ही उनकी भूमिकाओं में खास परिवर्तन नहीं आया है। आज भी ग्रामीण समाज में महिलाओं को घर के काम के साथ ही उन्हें खेतों व बाहरी कामों को भी करना पड़ता है। इसका असर उनकी सेहत पर भी पड़ा, ग्रामीण महिलाओं की समस्याएँ इस प्रकार हैं –

पारिवारिक समस्याएँ – भारतीय समाज पुरुष प्रधान है। भारत में परम्परागत रूप से पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार व्यवस्था है जिसमें परिवार के पुरुष सदस्यों को तो अनेक अधिकार एवं सुविधाएँ प्राप्त हैं किन्तु स्त्रियों को उनसे वंचित किया गया है। संयुक्त परिवार व्यवस्था में स्त्रियाँ दासी की तरह जीवन व्यतीत करती हैं। उनका जीवन खाना बनाने, बच्चों को जन्म देने, उनकी देख–रेख करने एवं परिवार के सदस्यों की सेवा में ही व्यतीत हो जाता है। स्त्रियाँ घरेलू हिंसा एवं मानसिक उत्पीड़न का शिकार रहती हैं। परिवार की शान–बान के लिए वे भेदभाव सहती हैं।

वैवाहिक समस्याएँ – ग्रामीण भारतीय समाज में बेरोजगारी की समस्या के कारण विलम्ब से विवाह एवं पति–पत्नी की वैवाहिक आयु सीमा बढ़ा है। दहेज एक अभिशाप के रूप में सामने आया है। महत्वाकांक्षा एवं बेमेल विवाह के कारण तलाक दर में वृद्धि हुई है। पुरुषों के समान स्त्रियों को अधिकार प्राप्त नहीं है।

वैश्यावृत्ति – यह एक सामाजिक नियंत्रण के साथ–साथ सामाजिक बुराई के रूप में उभर कर सामने आयी है। इसके कारण बाल विवाह, अविवाहित विधवाएँ, दहेज प्रथा, गरीबी एवं महत्वाकांक्षी होना, दुःखी वैवाहिक जीवन एवं स्त्रियों के लिए रोजगार के अपर्याप्त अवसर आदि ऐसे कारण हैं जिन्होंने इस बुराई को फैलाने में योगदान दिया है।

स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ – महिलाओं के स्वास्थ्य का निम्न स्तर होना, गरीबी, बेकारी, स्वास्थ्य के नियमों के प्रति अज्ञानता, लिंगानुपात में पुरुषों की अधिकता, स्त्रियों में मृत्यु दर की प्रबलता, विलम्ब विवाह, प्रसव काल में स्त्रियों की मृत्यु, आर्थिक पराश्रितता, लड़कों की अपेक्षा की अपेक्षा लड़कियों को अधिक महत्व देना, कुपोषण एवं स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव आदि उत्तरदायी हैं।

शैक्षिक समस्याएँ – राष्ट्रीय जनजागरण के अनुसार भारत में 1991 में महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत 39. 29 जबकि पुरुषों का 64.13 प्रतिशत था जो 2001 में क्रमशः 54.16 प्रतिशत तथा 75.85 प्रतिशत हो गया। 2011 में महिला साक्षरता 65.46 प्रतिशत तथा पुरुषों की 82.14 प्रतिशत हो गयी। उ0प्र0 की 2011 की जनगणना लिंगानुपात 908 प्रति हजार पुरुष एवं महिला साक्षरता 59.26 प्रतिशत तथा पुरुष साक्षरता 79.24 प्रतिशत है।

भारत में राष्ट्रीय गणना के अनुसरा 34.54 प्रतिशत अशिक्षित महिलाएँ हैं तथा उ0प्र0 में 40.74 प्रतिशत निरक्षर महिलाओं की संख्या लगभग 18.95 करोड़ है। व्यावसायिक शिक्षा जैसे डॉक्टरी, इंजीनियरिंग, वकालत एवं अन्य तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने वाली लड़कियों की संख्या बहुत कम है। ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा न दिलाने का कारण वहाँ की परम्परागत मानसिकता एवं पुरुषों को आत्मनिर्भर बनाने तक सीमित होना है।

आर्थिक समस्याँ – महिलाएँ चाहे कृषि के क्षेत्र में हो, उद्योग या किसी अन्य क्षेत्र में हो उन्हें दोयम दर्जे पर रखा जाता है। गावों में अधिकांशतः महिलाएँ कृषि कार्यों के साथ–साथ खनन, पशुपालन एवं श्रमिक कार्य भी संभालती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में संयुक्त परिवार प्रणाली, महिला अशिक्षा, पुरुषों पर निर्भरता, अज्ञानता, पर्दा प्रथा रूढ़िवादिता आदि कारणों से स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर तक ही सीमित है। पुरुषों के समान महिलाएँ कमाने के लिए बाहर नहीं जाती है। फलस्वरूप उन्हें अपने भरण–पोषण तक के लिए पुरुष पर निर्भर रहना पड़ता है एवं उनका दुर्व्यवहार सहना पड़ता है।

सामाजिक समस्याऍं – महिलाऍं चाहे खेतों में, कारखानों में, भवन निर्माण, खदानों या दफ्तरों में काम करें उनसे गृहकार्यों का निर्वाहन करने की आशा की जाती है। समाज में व्याप्त कुरीतियों जैसे दहेज प्रथा निषेध, भ्रूण हत्या पर प्रतिबन्ध, लिंग परीक्षण पर पाबंदी के प्रयासों का भारतीय समाज में ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि ये कुरीतियॉ ज्यादा फैल रही हैं। जहॉ एक ओर 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' अथवा ईश्वर प्रकाश पुॅज है तो नारी उसकी किरण है जो प्रकाश को चारों ओर बिखेर देती है वहीं दूसरी ओर मनु ने कहा कि हिन्दू महिला आजीवन पुरुष पर आश्रित है, बचपन में पिता के अधीन, विवाहोपरांत पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहती है। संपूर्ण विश्व में इन्हें सम्मान के साथ नहीं देखा जाता है। मैकबेथ में स्पष्ट कहा गया है कि पुत्र को जन्म देने वाली महिलाऍं ही सम्मान योग्य हैं। इजराइल में पुत्र के बिना परिवार अधूरा माना जाता है। चीन, जापान, थाइलैण्ड जैसे कई देशों में महिलाओं को तलाक देने का प्रमुख कारण पुत्र का जन्म न होना है।

धार्मिक परम्पराऍं, अंधविश्वास एवं ग्रामीण महिलाऍं – भारतीय इतिहास के पुनरावलोकन के आधार पर ग्रामीण महिलाओं को शूद्रों की भॉति वेदपाठ एवं अनेक धार्मिक क्रिया–कलापों से वंचित रखा गया। 1856ई0 में पुनर्विवाह को विधिक मान्यता प्राप्त हो जाने पर भी आज अनेक समाज में विधवाओं को पुनर्विवाह की पूर्णतः अनुमति नहीं है। छुआ–छूत तथा अंधविश्वास अभी भी व्याप्त है। महिला का अस्तित्व माता–पिता के रूप में ही स्वीकार किया जाता है। विभिन्न धर्मों, प्रथाओं तथा परम्पराओं के अनुसार इन्हें रंगा जा रहा है। संपूर्ण ग्रामीण समाज में परिवर्तन लाने के लिए सम्मिलित आन्दोलन की जगह अपने–अपने धर्म, जाति के विकास में सोंचने लगे तथा समाज में महिलाओं के विकास पर ध्यान न देकर उन्हें चार दीवारी में रहने के लिए बाध्य किया गया। उन पर कटाक्ष करना, फबतियॉ करना, जान–बूझकर गाली–गलौज करना, इन उत्पीडनों ने विभिन्न प्रकार के प्रभाव डालें हैं जैसे अंधविश्वास, स्वास्थ्य हीनता, चारित्रिक पतन, पारिवारिक जीवन की दुर्बलता एवं उनके भविष्य को भी अंधकारपूर्ण बनाया है।

अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में कहा जाता है कि ढोल, गंवार, शूद्र पशु तथा नारी उपरोक्त सभी पर बल प्रयोग करने का अधिकार है। कार्यस्थल एवं गृहस्थ जीवन में इनका शोषण एवं यौन उत्पीड़न, असहाय, बचाव शून्य, शक्तिहीन स्थिति दिखाई पड़ती है।

महिला लिंगानुपात एवं जीवन प्रत्याशा – ग्रामीण भारत मे लैंगिक भेदभाव अभी भी स्पष्ट है। 2011 की राष्ट्रीय दशकीय जनगणना के अनुसार महिला–पुरुष लिंगानुपात 944:1000 है, जिसमें सर्वाधिक केरल में 1099:1000 उ0प्र0 में 910:1000 तथा हरियाणा में सबसे कम 885:1000 है। केन्द्रशासित प्रदेशों में सर्वाधिक लिंगानुपात पुडुचेरी में 1047:1000 तथा दमन दीव में सबसे कम 589:1000 है। देश में महिलाओं की जीवन प्रत्याशा 2011 के अनुसार 64.2 वर्ष है जिसमें केरल में सर्वाधिक 74 वर्ष तथा सबसे कम मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ एवं झारखण्ड में 58 वर्ष है एवं उ0प्र0 में 60 वर्ष जीवन प्रत्याशा है।

दहेज उत्पीड़न – वैश्विक स्तर पर महिलाओं के प्रति भेदभाव व्याप्त है। भारतीय समाज में ग्रामीण महिलाओं की दहेज हत्या, अनेक प्रकार के घरेलू अत्याचार, उनकी पढ़ाई या भविष्य के बारे में ज्यादा ध्यान न देना, जल्दी शादी करना इत्यादि अनेक समस्याऍं उनकी स्थिति को और खराब बनाती है। महिलाओं के साथ अक्सर देखा गया है कि बचपन से ही भेदभाव किया जाता है। भारतीय समाज में पुरुष पर निर्भरता की ज्यादातर महिलाओं का भाग्य बन जाता है। भारतीय ग्रामीण समाज में लड़कियों को सामान्यतः बोझ समझा जाता है तथा इस प्रकार उनकी मानसिकता ही उनके विकास में बाधक सिद्ध होती है। दहेज वह उपहार है जिसे लड़की के माता पिता विवाह के उपलक्ष्य में अपनी इच्छा से वर पक्ष को देते हैं। वर मूल्य विवाह की एक शर्त है जिसे पूरा किए बिना विवाह नहीं हो सकता। व्यावहारिक रूप में यह वर का मूल्य है जो कि उसके माता–पिता उसकी योग्यता के अनुसार मांगते हैं एवं वर की पारिवारिक स्थिति से भी संबद्ध है। भारत सरकार द्वारा 2000 में जारी की गयी रिपोर्ट

के अनुसार प्रत्येक डेढ़ घण्टे में दहेज उत्पीड़न की शिक्षा महिला की मृत्यु हो रही थी वह 2011 की रिपोर्ट के अनुसार एक घण्टे में होने लगी है। एक दिन में 16 से 21 मौतें तथा प्रत्येक वर्ष में 6000 दहेज उत्पीडन के कारण हत्याएं हो रही है। नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो (NCRB) के अनुसार 8,233 वार्षिक हत्याएं दहेज उत्पीड़न के कारण हो रही है। जिसके कारण एवं प्रभाव निम्नवत् है :–

1. परम्परागत समाज का होना
2. जीवन साथी चुनने का सीमित क्षेत्र।
3. लड़कियों में विवाह का अनिवार्य होना।
4. कुलीन विवाह प्रथा, शिक्षा एवं व्यक्तिगत प्रतिष्ठा को महत्व।
5. संचार एवं यातायात के साधनों में वृद्धि के कारण दहेज प्रथा स्पष्ट होने लगी।

दहेज उत्पीडन के प्रभाव से बालिका शिशु हत्या में वृद्धि, ऋणग्रस्तता, बेमेल विवाह एवं आत्महत्या दर में वृद्धि, दो परिवारों में तनाव तथा कन्या का दुःखद वैवाहिक जीवन, स्त्री शिक्षा को बढ़ावा, अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन एवं महिला स्वावलम्बन की भावना में वृद्धि हुई है।

ग्रामीण महिलाओं की राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन – महिलाएँ पुरुष की जीवन साथी मानी जाती है इनकी राजनैतिक सहभागिता इस स्थिति में देखी जाती है कि उन्हें समानता एवं आजादी कितनी प्राप्त है? भारतीय संविधान में स्त्रियों की राजनैतिक सत्ता को मान्यता दिया जाना न केवल परम्परागत भारतीय समाज में विरासत में प्राप्त प्रतिमानों की तुलना में एक बिल्कुल नया कदम था। राजनैतिक समता की प्राप्ति में प्रमुख शक्ति उनकी राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़–चढ़कर सहभागिता थी। 20वीं एवं 21वीं शताब्दी में प्रारंभिक वर्षों में महिला संगठनों का प्रादुर्भाव हुआ जिसमें श्रीमती सरोजनी नायडू (प्रथम महिला राज्यपाल), सुचेता कृपलानी (प्रथम महिला मुख्यमंत्री), अरूपा आसफ अली (1942 ई0 की झाँसी की रानी की संबा से विभूषित), सिस्टर निवेदिता (स्वामी विवेकानन्द की शिष्या), एनी बेसेंट, प्रतिभा देवी सिंह पाटिल(प्रथम पूर्व राष्ट्रपति), जयललिता, ममता बनर्जी, मायावती (उ0प्र0 तीन बार मुख्यमंत्री रही), राबड़ी देवी (तीन बार बिहार पूर्व मुख्यमंत्री) आदि प्रमुख हैं। महिलाओं की राजनीतिक स्थिति का निर्धारण निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत की गई :–

1. चुनावों में मतदाताओं एवं उम्मीदवारों के स्थिति पर राजनैतिक प्रक्रिया में सहभागिता लेना एवं प्रभाव जानना।

2. राजनीति में सजगता, वचनबद्धता एवं सक्रिय सहभागिता जैसे राजनैतिक दृष्टिकोण को अपनाना, राजनैतिक कार्यवाही एवं व्यवहार में स्वायत्ता का निर्वाहन करना आदि।

महिलाओं को राजनीति में 47 प्रतिशत प्रतिनिधित्व की मान्यता है जबकि वास्तविकता में 15 प्रतिशत ही उनकी सहभागिता हो पायी है। ग्रामीण पंचायतों में महिला की सहभागिता विजय के पश्चात भी एक रबड़ स्टैम्प से ज्यादा उभरकर नहीं आ पायी है। महिलाओं को अभी तक लोकसभा व विधान सभाओं में 33 प्रतिशत आरक्षण का इंतजार है।

ग्रामीण महिलाओं की शैक्षिक स्थिति में परिवर्तन– राष्ट्र के विकास में महिला शिक्षा मूलभूत आधार है। पिछले कुछ दशकों से जैसे–जैसे महिला साक्षरता में वृद्धि हो रही है। भारत विकास के पथ पर अग्रसर हुआ है। महिलाओं के शिक्षित होने से न केवल बालिका–शिक्षा को बढ़ावा मिला बल्कि स्वास्थ्य एवं सर्वांगीण विकास में में भी तेजी आई है। शिशु मृत्युदर में गिरावट तथा स्त्री पुरुष मे काफी हद तक समानता बढ़ी है बल्कि आधुनिक भारत में महिलाएँ राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, प्रतिपक्ष नेता जैसे शीर्ष पदों पर आसीन हुई है। महिलाएँ देश की सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक, कला एवं ज्ञान–विज्ञान का स्तम्भ होती है। वर्तमान भारत में शिक्षित महिलाओं ने चिकित्सा, शिक्षा, सेवा, खेलकूद, अंतरिक्ष तथा विविध सरकारी व निजी कंपनियों, कुशल प्राचीन काल में

महिलाओं को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी, पतंजलि ने इन्हें 'शक्तिकी' शब्द का प्रयोग किया अर्थात भाला धारण करने वाली। बौद्धकाल में संघ में कुछ विदुषी नारियों का होना पाया जाता है। यद्यपि नारियों के लिए संघ के नियम कठोर थे फिर भी ज्ञान प्राप्ति के लिए अनेक नारियॉ संघ की शरण में जाती थी। अर्धांगिनी को अधम कहा जाने लगा। मध्यकाल में मुस्लिम सभ्यता पर्दा प्रथा के कारण नारी शिक्षा लुप्त प्राय हो गयी। बालिकाएँ शिक्षा से वंचित रहती थी। महिला शिक्षा कुलीन वर्गों तक सिमट कर रही गयी थी। जैसे इल्तुतमिश पुत्री रजिया सुल्तान। महिलाओं को कलाओं एवं हस्तशिल्प की शिक्षा दी जाती थी, महिला शिक्षा अनावश्यक समझी जाती थी। ब्रिटिश काल में राजा राम मोहन राय ने बाल विवाह तथा सती प्रथा को दूर करने का अथक प्रयास किया। स्वतन्त्रता पूर्व महिला शिक्षा के लिए 'वुड के घोषणा पत्र' की संस्तुति की गयी। हण्टर शिक्षा आयोग (1882) के अन्तर्गत महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए निरीक्षिकाओं की नियुक्ति की सिफारिश की गई। 1929ई0 में शारदा अधिनियम अजमेर के हरविलास शारदा द्वारा दी गई रिपोर्ट के आधार पर अधिनियम बना।

स्वतंत्रोत्तर काल में सरकार ने महिला शिक्षा के लिए कई नीतियॉ तैयार की गयी जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा समिति (1958) के दुर्गाबाई देशमुख समिति के नाम से जाना जाता है तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) से ग्रामीण महिला साक्षरता में जबर्दस्त उछाल आया। मॉ की गोद ही सबसे अच्छी पाठशाला है। स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने सच ही कहा है, 'एक पुरुष के शिक्षित तथा सुसंस्कारी होने का अर्थ है, अकेले उसी का उपयोगी बनना एवं एक मॉ शिक्षित, समझदार व सुयोग्य हो तो समझना चाहिए कि पूरा परिवार आदर्श रत्न बन गया, नर रत्नों की खदान निकल आयी।' इस तरह गुणवान व प्रबुद्ध परिवार एवं समाज के निर्माण के उत्थान के लिए 31 जनवरी 1992 को राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया ताकि कानूनी सुरक्षा कारगर ढंग से लागू की जा सके। समाज में इन्हें भी पुरुषों के समान स्थान मिले। महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए योजनाएँ बनाने के लिए प्रक्रिया मे भाग लेना, सुधार गृहों जेलखानों एवं समस्या समाधान करना तथा संबंधित अधिकारी तक पहुँचाना, उनके पुनर्वास तथा दशा सुधारने में सिफारिशें करना आदि शामिल है।

ग्रामीण महिलाओं की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन – समाज के विकास में महिलाओं का भी योगदान है। आज के दृष्टिकोण से कृषि, पशुपालन, व्यवसाय, हैण्डलूम के क्षेत्र में महिलाओं का अनुपात पुरुषों से अधिक है। महिलाएँ शारीरिक, मानसिक किसी भी दृष्टिकोण से पीछे नहीं है। ग्रामीण भारतीय महिलाएँ कार्यबल का अभिन्न अंग मानी जाती है। 'रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इण्डिया' द्वारा प्रदान की गई। सूचना के अनुसार महिलाओं की श्रम भागीदारी 2001 में 25.63 प्रतिशत थी। 1991 में 22.27 प्रतिशत, 1981 में 19.67 प्रतिशत की तुलना में वृद्धि है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ मुख्य रूप से कृशि कार्यों में 72.8 प्रतिशत शामिल होती है। शहरी क्षेत्रो में लगभग 80 प्रतिशत महिला श्रमिक संगठित क्षेत्रों में कार्य करती है जैसे घरेलू उद्योग, छोटे व्यापार सेवाएँ, भवन निर्माण आदि। महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु 'महिला व्यावसायिक प्रशिक्षण' कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। 1977 में 'वुमेन ट्रेनिंग विंग' की स्थापना की गई। विरासत के रूप में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 के अन्तर्गत भाई–बहन, पुत्र–पुत्री दोनों को पैतृक सम्पत्ति पर बराबर अधिकार दिया गया है। विभिन्न प्रकार के कौशल प्रशिक्षण देकर उन्हें ऋण उपलब्ध कराकर ग्रामीण महिलाओं का लघु एवं कुटीर उद्योग में भूमिका बढ़ाई गयी है। जिससे महिला का आर्थिक सशक्तिकरण हुआ है।

ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य एवं पोषण स्थिति में परिवर्तन – अरस्तु ने कहा था कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। परन्तु अधिकांश भारतीय ग्रामीण परिवारों में महिलाओं को जहॉ अत्यधिक कि्रयाकलापों का संपादन करना पड़ता है, उनके भोजन पर पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम ध्यान दिया जाता है। भले ही पुरुषों का क्रिया कलाप महिलाओं की तुलना में सीमित क्यों न हो उनके भोजन में पुरुषों से बची हुई सामग्री ही सम्मिलित होती है। परिणामस्वरूप महिलाएँ कुपोषण का शिकार हो जाती है तथा मातृत्व ग्रहण करने पर यह आने वाली

पीढ़ी को उत्तराधिकार में मिलता है। इसके प्रभाव से विभिन्न प्रकार की बीमारियॉ फैलती है। जिसके शिकार मॉ–बच्चे दोनों होते हैं। अन्य वर्गों की अपेक्षा श्रमिक वर्गों की स्त्रियों की स्थिति अधिक दयनीय है यह अनुमानित किया गया है कि भारतीय महिला औसतन आठ बार मातृत्व का गौरव प्राप्त करती है। कुपोषण का शिकार भारत की लगभग140 मिलियन महिलाएँ हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भी अधिकांशतः महिलाएँ घर के कार्यों का सम्पादन करने के पश्चात् खेतों में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करती हैं किन्तु जब सामाजिक अवधारणाएँ नहीं बदल जाती तब तक महिलाएँ इसी तरह अपने जीवन में कुपोषण का शिकार रहेगी। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उचित मात्रा में कैलोरी, प्रोटीन, विटामिन, वसा, खनिज, लवण, आयरन तथा कार्बोहाइड्रेट की आवश्यकता पड़ती है। इसके अभाव में कुपोषण की बीमारी फैलती है। ग्रामीण महिलाओं के पिछड़े स्वास्थ्य के कारणों में उन पर अतिरिक्त कार्यभार का होना, पर्याप्त भोजन न मिलना, सामाजिक रूप से उनके साथ भेदभाव का होना प्रमुख है।

कन्या भ्रूण हत्याएँ हरियाणा, पंजाब में प्रमुखतः हैं। ग्रामॉचलों की 40 प्रतिशत गर्भावस्था या प्रसव के समय अधिक रक्त स्त्राव या एनीमिया से पीडित हैं। गावों में ज्यादातर पेयजल संकट, स्वास्थ्य सेवाओं की समस्याएँ विद्यमान है। ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य संबंधी गुणात्मक एवं मात्रात्मक दशाओं में सुधार संबंधी किये गये प्रयास अभी भी अपर्याप्त हैं महिलाओं के लिए आधारभूत स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं (मातृत्व एवं शिशु स्वास्थ्य) से संबंधित सुविधाएँ परिवार नियोजन, चिकित्सीय सुविधाएँ एवं पोशाहार जमीनी स्तर पर पूर्णरूपेण क्रियान्वित होना शेष है।

ग्रामीण महिला विकास में पंचवर्षीय योजनाओं की महत्ता – प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना द्वारा ग्रामीण महिलाओं की समस्याओं के निदान के लिए कल्याण मूलक विचारध ारा पर ध्यान केन्द्रित किया गया। ग्रामीण स्वैच्छिक संगठनों में अनेक परिवार एवं बाल विकास योजनाएं प्रारम्भ की। स्टेट सोशल वेलफेयर एडवाइजरी बोर्ड की स्थापना की गयी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत मातृत्व एवं शिशु पालन केन्द्र आदि की व्यवस्था की गयी।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा को अति आवश्यक मान संबंधित सेवाओं, स्वास्थ्य, शिक्षा, पोषण तथा परिवार नियोजन पर अत्यधिक ध्यान केन्द्रित किया गया।

चौथी पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण महिला शिक्षा, रोगमुक्तीकरण तथा बच्चों के लिए भोजन जैसे मुद्दों को स्वीकारा गया।

पांचवीं पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के प्रशिक्षण पर विशेष एवं अधिकतम बल दिया गया इनकी सुरक्षा, पोषण, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, शिक्षा, रोजगार, गृह व्यवस्थापन एवं समाज कल्याण पर विशेष वरीयता दी गयी।

छठी एवं सातवीं पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया।

संक्रामक रोगों हेतु विशेष सावधान करना, भौतिक आधार भूत ढांचे स्वास्थ्य प्रशिक्षण मानव शक्ति की उपलब्धता में वृद्धि करना, प्राथमिक स्वास्थ्य सुरक्षा तथा स्वास्थ्य में कार्य को प्रमुखता देना, निरक्षरता उन्मूलन, रोग मुक्तीकरण तथा सुरक्षित जलापूर्ति हेतु तकनीक तथा सामाजिक मिशनों को निश्चित सम्मिलित करना जिसमें मातृत्व एवं शिशु सुरक्षा प्रभावित होगी। 11वीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत साक्षरता में वृद्धि करना, लिंगानुपात बढ़ाना, महिला मृत्युदर को घटाना, गांवों तक तकनीकी विस्तार को बढ़ावा देना आदि प्रमुख है।

केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड (C.S.W.B.)–स्वैच्छिक अभिकरणों को सहायता देता है। महिला कल्याण एवं विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत महिलाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा तथा बाल कल्याण कार्यक्रमों पर ध्यानाकर्षित किया गया –

1. सांविधिक दायित्व के अन्तर्गत जैसे अनैतिक व्यापार उन्मूलन अधिनियम, 1956 या प्रसूति हित लाभ अधिनियम 1961

2. अनिवार्य सेवाएँ एवं अवसर सुलभ कराने वाले विकास कार्यक्रम जैसे– शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रसूति एवं बाल कल्याण कार्यक्रम, परिवार नियोजन, पोषाहार तथा प्रशिक्षण आदि।
3. विधवाओं, वृद्धाओं एवं निराश्रित महिलाओं को सहायता देना, शहरी क्षेत्रों में नौकरी करने वाली महिलाओं के लिए सामूहिक आवास खोलना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की लड़कियों को छात्रवृत्तियाँ देना तथा आश्रम, स्कूलों में निःशुल्क आवासीय स्कूली शिक्षा का प्रबंध करना आदि।

ग्रामीण महिलाओं के लिए संवैधानिक उपचार – ग्रामीण महिलाओं को कानूनी संरक्षण प्रदान करने के लिए कई अधिनियम पारित किये गये जिनमें से कुछ निम्न हैं––––

1. सतीप्रथा निवारण अधिनियम 1829, संशोधन 1987 ई0 में।
2. विशेष विवाह अधिनियम 1872 संशोधन 1923, 1954 में।
3. हिन्दू विवाह पुनर्विवाह अधिनियम 1856
4. हिन्दू महिला का सम्पत्ति पर अधिकार अधिनियम 1937, संशोधन 1956, 2005 में
5. मुस्लिम विवाह विच्छेद अधिनियम 1939
6. हिन्दू विवाह अधिनियम 1955
7. हिन्दू विवाह विच्छेद अधिनियम 1955 संशोधन 1976 में।
8. समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976
9. कारखाना अधिनियम 1948, संशोधन 1976
10. बाल विवाह अवरोधक संशोधन अधिनियम 1978
11. अनैतिक व्यापार निवारण कानून 1986
12. दहेज निषेध संशोधन कानून– 1986
13. महिला का अभद्र चित्रण निषेध अधिनियम 1986
14. मुस्लिम महिला तलाक के अधिकारों का संरक्षण अधिनियम 1986
15. पंचायतीराज 72वाँ संविधान संशोधन अधिनियम 1992
16. घरेलू हिंसा अपराध अधिनियम 2005
17. कामकाजी महिलाओं का शोषण निरोधक अधिनयम 2013

अन्य प्रयास – ग्रामीण महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार के लिए कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य किये गये जो निम्न हैं –

1 रोजगार एवं आमदनी बढ़ाने वाली उत्पादन इकाइयाँ जैसे लघु एवं कुटीर उद्योग, कृषि, दुग्ध उत्पादन, पशुपालन, मछली पालन, खादी एवं ग्रामोद्योग, हथकरघा, हस्तशिल्प एवं रेशम विकास आदि में नारी को रोजगार देना शामिल है।
2. प्रौढ़ महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए समाज कल्याण बोर्ड द्वारा 1958ई0 में शिक्षा के सघन पाठ्यक्रम शुरू किये गये।
3. स्वास्थ्य एवं बाल कल्याण सेवाएँ जैसे वॉमेन हेल्पलाइन नं0 1090 शुरू करना, प्रसूताओं के लिए 108 नम्बर एम्बुलेंस बस सेवा शुरू किया जाना।
4. कार्यस्थलों पर उत्पीड़न व शोषण से सुरक्षा ipc की धारा 354 एवं 375 के अन्तर्गत उत्पीड़न व शोषण किया जाना कानून का उल्लंघन है। अनुच्छेद 19 में प्रत्येक नागरिक को अपनी इच्छानुसार जीविकोत्पार्जन

की आजादी प्राप्त है।

5. निःशुल्क शिक्षा के अन्तर्गत महिला अध्यापिकाओं की कमी पूरा करना, प्रशिक्षण संस्थान में वृद्धि लाया जाना तथा सहशिक्षा की समस्या को दूर किया जाना।
6. वयस्क महिलाओं के लिए सामाजिक शिक्षा, कौशल, नई–अभिवृत्तियॉ जारी कराना आदि सरकार द्वारा ग्रामीण महिलाओं की प्रस्थिति परिवर्तन के लिए प्रयास है।

ग्रामीण तथा शहरी, पिछड़े एवं सीमांत शहरी गावों की सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं में अत्यधिक विषमताऍ पाई जाती है। वर्तमान में उन्नति का दृष्य इससे की स्पष्ट हो जाता है कि महिलाओं ने अपनी सफलता के ऐसे–ऐसे झण्डे गाड़े हैं जो भले ही उनके समक्ष नई समस्याऍ पैदा करने वाले कारक बने हों लेकिन पुरानी रूढ़ियॉ हिल गई हैं, न्यायपालिका, कार्यपालिका एवं विधायिका, विमान पायलेट, चिकित्सा, अंतरिक्ष, खेलकूद तक में उन्होंने अपने को प्रस्थापित किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आहूजा, राम 2015. भारतीय सामाजिक व्यवस्था, जयपुरः रावत प्रकाशन,
2. चौहान, ब्रजराज 1988. भारत में ग्रामीण समाज, इटावाः ए0सी0 ब्रदर्स.
3. छापड़िया, मनोज.2008. स्त्री शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता नई दिल्ली सीरीयल्स पब्लिकेशन्स।
4. दुबे, एस0सी0.1955. (अनु0योगेश अटल.1975). भारतीय ग्राम, नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन.
5. देसाई, ए0आर0 1997 (अनु0एच0के0 रावत 2002). भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र. जयपुर : रावत प्रकाशन
6. सिंह, योगेन्द्र. 1973. मॉडर्नाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडीशन. जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स.
7. सिंह, जे0पी0 2003. सामाजिक परिवर्तन : स्वरूप एवं सिद्धान्त, नई दिल्ली : प्रेंटिस हॉल ऑफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड।
8. श्रीनिवास, एम0एन0 1978 चेजिंग पोजीशन ऑफ दी इण्डियन वोमेन. न्यू देल्ही : यूनीवर्सिटी प्रेस
9. श्रीवास्तव, प्रेम जी.2015. भारतीय महिलाएँ : परिवर्तन के दौर में. नई दिल्लीः अमेजिंग पब्लिकेशन्स
10. देवपुरा, प्रतापमल.2011. ग्रामीण विकास का आधार : आत्मनिर्भर पंचायतें. नई दिल्ली : राधाकृष्णन प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
11. जनगणना रिपोर्ट 2011. भारत सरकार

❑❑

प्रो0 राय ने जय प्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया एवं आचार्य नरेन्द देव के सम्पर्क से समता के केन्दीय मूल्य का उन्मेष पाया। डॉ0 राय ने समाजवादी आन्दोलनों में प्रखर भूमिका निभाई और कई बार जेल गए। सभी सरोकारों के बीच वह शाश्वत मूल्यों की तलाश में सदैव समर्पित रहे। आप में माननीय सम्बन्धों की उच्च मूल्यवत्ता कूट–कूट कर भारी हुई थी।इसमें कोई दो राय नही कि उपने समय के रचनाकारों की समालोचना में डॉ0 राम कमल राय एक उदार किन्तु न्याय और सत्य संचित मूल्यों के प्रति विशेष आस्थावान थे।

✍ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

प्रतिरोध की पहली कविता का जन्म काल

सोनी पाण्डेय
कृष्णानगर, मऊ रोड़, सिधारी, आजमगढ़–276001, (उत्तर प्रदेश)

स्त्री विमर्श के साहित्य से गुजरते हुए सोचती हूँ कि क्या स्त्री का मुखर स्वर यही है?क्या हजारों हजार साल से पितृ सत्ता की कैद में वंदिनी स्त्री मौन धर पीढ़ी दर पीढ़ी चौखट के अन्दर मात्र देह राग बन मौन रही ?,..और उसी क्षण कानों में एक शिशु का रुदन पड़ता है। आवाज की लय तेज है...बाहर खड़ी एक प्रौण स्त्री दूसरी से कहती है....जनमली धिया ....जनमली धिया,...मैं भावबोध तलाशते पूछ बैठती हूँ। ये कैसे आप कह सकती हैं कि धिया (बेटी) ही जनमी है?...अनुभव है रानी!...रोज पैदा कराते ये कान रुदन सुन जान लेते हैं कि बेटा है कि बेटी।बेटियाँ बड़ी कर्कश आवाज में रोती हैं।वह हँस रही है...मैं मुस्कुरा उठी।मिल गया उत्तर मुझे ,जिसकी तलाश में अब तक भटक रही थी।शायद शिशु बालिका का तीव्र रुदन ही प्रतिरोध की पहली कविता थी। अम्मा सउरी के बाहर बैठी गा रही है....

इ वेदना हमें ना सहाला
पिया के लाल कइसे कहइएं...

प्रसव की अथाह वेदना सहती स्त्री प्रत्यक्ष तो नहीं कह सकी कि पैदा किया मैंने और नाम हुआ तुम्हारा कि फलां को बेटा हुआ है,अपनी उस दबी हुई अन्तर चेतना को किसी सजग स्त्री ने इस गीत के माध्यम से आखिर पूछ ही लिया कि दर्द मैंने सहा...तुम्हारा ही पुत्र समाज में क्यों कहा गया.....

यह मेरी समझ से प्रतिरोध की दूसरी अलिखित कविता थी। जिस पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों को वेदों को पढ़ने से रोका गया ,वहाँ अनपढ़ भोली भाली ग्राम ललनाओं ने स्त्री जीवन संघर्ष के विभिन्न आयामों को लोक गीतों में पिरोया और मौखिक तौर पर आगे बढ़ाया। भारतीय समाज में संस्कार गीतों से लेकर ऋतु गीत,जाति गीत,विदेशिया,रोपनी से सोहनी तक के श्रम गीतों का प्रचुर भण्डार है,जिससे गुजरते हुए पाया कि जब दुनिया पुरुषों की मुट्ठी में थी ,यह औरतें ढ़ोलक की थाप पर कोरस में गाती ,स्त्री जीवन के विविध स्वरुपों की विपुल थाती सहेज रही थीं। ससुराल में खटती बहन जब भाई को अचानक देखती है तो अनुनय करते हुए कहती है..

कै मन कूटों भैया कै मन पीसों रे ना
भैया कै मन सिझवौं रसोइयां रे ना
सासू खांची भर बसना मंजावें रे ना
सासू पनिया पतरल से भरावे रे ना
सबका खियाऔं भैया ,सबका पियावों रे ना
इ दुरूख जिनी कहयों भैया अम्मा
के अगवां रे ना
अम्मा छतिया बिदारि मरि जैहैं रे ना....

इस गीत में ब्याहता बेटी कुछ ना कह कर भी अपने जीवन के कठोर संघर्ष की अभिव्यक्ति सहज कर बैठती है । जिस अन्तर वेदना को माँ से छुपाती रहीं बेटियाँ ,उसे किसी बेटी ने कभी शब्दों में पिरोया होगा और कूटते पीसते मांजते धोते गाया होगा ,जिसकी यात्रा दूसरी स्त्री के कानों के रास्ते कण्ठ तक पहुँच कर आगे बढ़ता चला

आया। आज भी मेरी माँ इस गीत को गाते हुए भावुक हो जाती है । यह स्त्री के मर्म की मार्मिक अभिव्यक्ति है।इन गीतों में गजब की संप्रेषणीयता है,...बेटी पैदा न हो, इसकी कामना करती औरत कहती है,.....

दूनों कर जोरि मइया सुरुज मनावें
सत्रू के धिया जनि होय
धियवा जनमले एकौ सुख नाहीं
न सुख माई न बाप
दर दर भटकी के खोजे वर बाबा
पथरी पे रगरेलें नाक....

बेटी का ब्याह एक बड़ी समस्या रही है.... वर की तलाश में भटकता पिता बस यही कामना करता है कि हमारे घर बेटी न जनमें। मेरे गाँव के पुरोहित कहा करते थे कि बेटी के जन्म पर औरत धरती के अन्दर नौ गज धसतीं है और बेटे के जन्म पर नौ गज ऊपर उठती है। सामाजिक असमानाता का यह रुप असंख्य लोक गीतों में मिलता है जिसमें स्त्रियाँ अपने साथ हो रही असमानता को मुखर होकर बेहद मार्मिक ढंग से निरुपित करती हैं.....बेटी को विदा करती माँ की करुण वेदना का शायद ही कहीं इतना मार्मिक उदाहरण मिले....

यथा—— बाँसवा के जरिया सुनरी एक रे जनमली,
सगरे अजोध्या में अँजोर रे।
सुनरी धियवा चुकवा चढ़ि रे बइठे,
आमा कावारवा धइले ठाढ़ रे ।
छाती चुरइली बेटी नयन ढ़रे लोरवा,
अब सुनरी भइलू पराय रे।
जाहु हम जनिती धियवा कोखी रे जनमिहें,
पिहितो मैं मरिच झराई रे।
मरिच के झाके झुके धियवा मरि रे जइहें,
छुटि जइते गरुवा संताप रे।
डासलि सेजिया उड़ासि बलु रे दिहिति,
सामी जी से रहिती छपाई रे।
बारल दियरा बुझाई बलु रे दिहिती,
हरि जी से रहिती छपाई रे।.....

बेटी विदा के मार्मिक वियोग की वेदना में स्त्री की हूक इस गीत में बेहद प्रभावी है।कहती है कि जिस सुन्दर बेटी को लाड़ो से पालती रही उसे विदा करने का दर्द कैसे सह सकेगी। गर वह जानती कि गर्भ में बेटी है तो तेज झार वाली मिर्च पीस कर पी उसे नष्ट कर देती पर बेटी वियोग न सहती।स्त्रियों के जड़ से उखड़ने की पीड़ा से भरे ब्याह के गीतों में बार बार यह तथ्य दिखाई देता है, वह जिस कुल गोत्र समाज में जन्म लेती हैं एक दिन वहीं से विस्थापित हो जाती हैं। इन गीतों में गाँव नगर तथा स्वजनों से वियोग का हहाकार साफ देखा जा सकता है।

चाँद सूरूज तोरे पईया लागूं
तिरिया जनम मतिदेव

जनम जनम की तिरिया दुखिनी

सासु ननद दुरूख देय।

स्त्रियों के मर्म को यदि जानना हो तो इन लोक गीतों की दुनिया में आइए... ये अपढ़ स्त्रियों द्वारा लिखी स्त्री विमर्श का सबसे सशक्त उदाहरण है। इनके पास अपनी बोली बानी के कुछ शब्द भर हैं...कुछ मिथक कथाओं की स्त्रियों का संघर्ष भर है...अलाप और विलाप है। ऋतुओं के हचलस नाद हैं तो बचपन के सुन्दर कजरौटे में सजी कजरी ठुमरी होली चौता आदि गीतों का समृद्ध संसार है, जिसमें वह अपने मन की बात कहती सुनती कोरस में गाती सुख दुख साझा कलती हैं। एक परदेसी की स्त्री सास से पूछती है....

सासु गोसाईं बड़ी ठकुराईन लागौं मैं चेरिया तुहारि रे

जौनी बनिज सासु तोरे पुत गये, सो बाटा देह बताइ।

वस्तुतः भोजपुरी लोक गीतों का स्त्री स्वर केवल मनोरंजन या मांगलिक उत्सवी गीत भर नहीं। यहाँ प्रतिरोध के तीव्र स्वर भी मुखर हैं।

सन्दर्भ संकेत

- सभी लोक गीत माँ की गीतों की डायरी से उद्‌धृत हैं,जिसे उन्होंने अपनी आजी और अन्य स्त्रियों से सीखा था।

❑❑

इलाहाबाद को सपनों की भूमि मानने वाले डॉ0 राय जब इलाहाबाद के विश्वविद्यालय में जब नौकारी पाते हैं तो अपने अध्यापन से एवं गरीब छात्रों की मदद कर इतने लोकप्रिय हो जाते हैं कि शायद ही कोई डॉ0 राम कामल राय जैसा लोकप्रिय अध्यापक इस कतार को पार कर पाया हो। शब्द कर्मियों की शब्द क्रीड़ा के माध्यम से की गई अभिव्यक्ति एक कौतूहल उत्पन्न करते हुए सहज ही मन को बेध देती है। ऐसा ही कुछ डॉ0 रामकमल राय की रचनाओं को पढ़कर अहसास होता है। किसी भी व्यक्ति की सोच एवं उसकी अभिव्यक्ति उसके अन्तर्मन में व्याप्त शब्दों का योग होती है। वह जो कुछ जैसा सोचता है,वही उसकी निजता बन जाती है।

✍ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

राजनीति में महिलाएँ—सशक्तिकरण का अधूरा सफर

डॉ0 गुलाब मीना
व्याख्याता—राजनीति विज्ञान
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज0)

राजनीति और सत्ता में भागीदारी रूपी पैमाने से किसी भी समाज के विकास का आकलन आसानी से किया जा सकता है क्योंकि सत्ता में भागीदारी होगी तो अधिकार मिलेंगे ओर अधिकारों से विकास होता है। आज के समय समाज के किसी भी वर्ग का राजनैतिक प्रतिनिधित्व बहुत मायने रखता है लेकिन भारतीय राजनीति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। उचित प्रतिनिधित्व के अभाव में विकास कैसा। ऐसा नहीं है कि भारतीय राजनीति हमेशा से महिला विहीन रही है। सिन्धु सभ्यता की खुदाई में प्राप्त मूर्तियाँ महिलाओं की श्रेष्ठ स्थिति को उजागर करती है। सिन्धु समाज मातृ सत्तात्मक था और राज्य व संपत्ति का उत्तराधिकार कन्याओं को मिलता था। वैदिक युग में पुत्र और पुत्रियों को शिक्षा, वेदों के अध्ययन में समान अधिकार प्राप्त थे। ऋग्वेद की ऋचाओं का सृजन करने में लगभग 20 महिलाओं ने भागीदारी की थी। ऋग्वेद में उप्पला, घोषा, विश्ववरा, गार्गी मैत्रेयी आदि उस समय की विदुषी दार्शनिक थी। पितृसत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था थी लेकिन फिर भी सम्पत्ति पर पति—पत्नी का संयुक्त अधिकार होता था। स्मृतिकाल में महिलाओं की स्थिति का क्षरण शुरू हो गया था। महिला शिक्षा का जिक्र नहीं था। बाल विवाह, कुप्रथा अस्तित्व में थी सम्पत्ति पर महिलाओं का अधिकार खत्म कर दिया गया। गुप्त युग में स्त्रियों के आज्ञाकारी—सहनशीलता के गुण अनिवार्य कर दिये। वेदों के अध्ययन पर प्रतिबंध लग गया था। सती प्रथा/जौहर प्रथा अस्तित्व में आ गयी थी। सल्तनत काल में भी महिलाओं की समाज व राजनीति में भागीदारी बनी रही। उस समय अधिकांश भारतीय भू—भाग मुस्लिम प्रभुत्व में था लेकिन ऐसे कट्टरपंथी माहौल के बावजूद रजिया, दिल्ली सल्नतन की पहली और अंतिम महिला सुल्तान बनी। मुगलकाल में महिलाओं की राजनैतिक स्थिति में आई गिरावट ब्रिटिशकाल तक लगातार जारी रही।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी महिलाएँ राजनीति में पूर्ण रूप से सशक्त नहीं हुई अभी भी उनकी दिनचर्या घर—परिवार, चूल्हे चौके और ग्लैमर—आर्टीकल तक ही सिमटी हुई है। सूची दुनिया में वीमेन लिबरेलाइजेशन का जोर है। परिणामस्वरूप काफी महिलाएं ''फाइनेंशियली इंडिपडैंट' तो हो चुकी है लेकिन राजनैतिक रूप से आज भी वो अपने पुरूष रिश्तेदारों पर ही निर्भर है। यह राजनीतिक जागरूकता की कमी ही है कि कुछेक नामों को छोड़ दे तो राजनीति में सक्रिय अधिकतर महिलाएँ आज भी कठपुतली ही साबित हो रही है। उनके द्वारा लिये जाने वाले राजनीतिक फैसलों के पीछे किसी ओर की सोच किसी और के ही विचार होते हैं, वे तो मात्र कठपुतलियों की तरह दूसरों के इशारों पर कार्य करती है। विश्व स्तर हम महिला सशक्तिकरण वर्ष मना चुके हैं लेकिन महिलाओं की राजनीति स्थिति नहीं सुधरी है। सन् 1995 में बीजिंग में चौथा 'विश्व महिला सम्मेलन' हुआ और सम्मेलन में बहस का मुख्य मुद्दा यही था कि कैसे महिलाओं को राजनीतिक रूप से सक्षम और सक्रिय बनाया जाए। आर्थिक स्थिति में सुधार के साथ—साथ राजनीति में भागीदारी भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। हमारा आधुनिक भारतीय समाज आज भी राजनीति में महिलाओं के लिए समान प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को अपनाने में पीछे हैं जिससे महिलाओं की भागीदारी अपेक्षाओं के अनुरूप बढ़ नहीं पा रही है। आज देश में महिलाएं जीवन के सभी क्षेत्रों में आगे आ रही है वे सभी क्षेत्रों में सफलता के झंडे गाड़ रही है। चाहे व्यापार—वाणिज्य हो या वायु सेना, शिक्षा, अनुसंधान सभी क्षेत्रों में महिलाएँ आगे आ रही है और सफल भी हो रही है लेकिन राजनीति के क्षेत्र में कदम रखने वाली महिलाओं की संख्या तो कम है ही, इस क्षेत्र में उनकी सफलता की दर और भी कम है।

यूं तो राजनीति का क्षेत्र प्राकृतिक रूप से ही काफी कठिन होता है, इसमें अपनी जगह बनाने के लिए हर किसी को तप तो करना ही पड़ता है, मेहनत करनी पड़ती है लेकिन महिलाओं के लिए तो ये राह और भी अधिक कठिन है। राजनीति में अपनी जगह बनाने की महत्वाकांक्षा रखने वाली महिलाओं के सामने कई ऐसी समस्याए (कठिनाइयाँ) भी होती है जिनका सामना उन्हें सिर्फ इसलिए करना होता है क्योंकि वे महिला है – प्रमुख कठिनाइयाँ इस प्रकार है –

1. राजनीति में महिलाओं के लिए सबसे बड़ी रूकावट है उनमें राजनीतिक सोच, राजनीतिक विचारधारा और राजनीतिक जागरूकता की कमी होना और इसका कारण है स्त्री अशिक्षा। आज भी अधिकार निम्न और अति निम्न वर्ग के परिवार, बालिकाओं के लिये शिक्षा को आवश्यक नहीं मानते क्योंकि पढ़ लिखकर भी तो उन्हें घर–गृहस्थी ही संभालनी है। घरेलू कामों के लिये शिक्षा की नहीं 'संस्कारों' की जरूरत होती है इसलिए बच्चियों को स्कूल भेजने की बजाय रसोई का काम दे दिया जाता है। आम भारतीय परिवारों की यह धारणा, महिलाओं के विकास के मार्ग का सबसे बड़ा कांटा है इनको समझना चाहिए कि औरतों का काम घर–परिवार चलाना ही नहीं, उन्हें सामाजिक–राजनैतिक निर्णयों में भागीदारी का भी अधिकार है।

2. हमारे यहाँ स्त्री अशिक्षा के लिए आर्थिक, सामाजिक कारण तो दोषी है ही, संसाधनों की कमी भी एक प्रमुख कारण है। राजनैतिक शिक्षा के अभाव में आम भारतीय महिला की न तो कोई राजनीतिक सोच होती है और न ही कोई राजनैतिक विचारधारा। गाँवों–कस्बों की ही बात नहीं बल्कि शहरों में पढ़ी लिखी महिलाएँ भी चुनावों में उसी उम्मीदवार को वोट देती है जिसे उनके परिवार के पुरूष सदस्य देते हैं। इन महिला मतदाताओं की अपनी व्यक्तिगत राजनैतिक पसंद–नापसंद नहीं होती। परिवार के पुरुष सदस्यों की इच्छा ही उनकी पसंद। शिक्षा के अभाव के साथ–साथ राजनैतिक जागरूकता की कमी भी महिलाओं के राजनीतिक विकास में आड़ें आती है।

3. मनी, मैसल्स और मैनपावर की तिकड़ी ने हमारी समूची चुनाव प्रणाली को ध्वस्त करके रख दिया है। इस चुनावी प्रवृत्ति का सबसे बुरा असर महिलाओं की राजनैतिक राह पर पड़ा है। धन, बल–बाहुबल के अभाव में महिलाएँ चुनावी नैया पार करने में असमर्थ होती है। जिन कारण उनकी सत्ता में भागीदारी उनका सपना बनकर रह जाता है। राजनैतिक सत्ता तक पहुंचने का एक मात्र रास्ता चुनाव लड़ना एवं बहुमत प्राप्त करना होता है। चुनाव लड़ना और जीतना मात्र योग्यता के बल पर ही संभव नहीं है इसके लिए धन–बल की जरूरत होती है। महिलाएँ आर्थिक रूप से कम ही आत्म निर्भर होती है इसलिए चुनावों के लिए पैसों का इंतजाम करना उनके लिए मुश्किल हो जाता है जिससे वो चुनावी दौड़ में पीछे छूट जाती है। महिलाएँ स्वभाव से कोमल और संवेदनशील होती है। आज जिस तरह के लोग राजनीति में चुनकर जा रहे हैं उससे लोगों के बीच इन संस्थाओं की गरिमा गिरी है। मंत्रियों द्वारा विधेयक फाड़ दिये जाते हैं। सदन में एक–दूसरे पर माइकों से हमला करना, ऐसे विपरीत माहौल में महिलाएँ राजनीति में आने से डरती है और अगर कुछ महिलाएँ हिम्मत करके आगे आती भी है तो वे राजनीति के अपराधिक माहौल से सामंजस्य नहीं बैठा पाती और धीरे–धीरे राजनीति से कटने लगती है और बाहर हो जाती है।

4. महिलाओं की शारीरिक–मानसिक संरचना भी उन्हें राजनीति में अनुपयुक्त बनाती है। सामाजिक कार्य विभाजन के आधार पर भी महिलाएँ प्राकृतिक रूप से दूसरों पर आश्रित रहती है, इसलिए वो भावनात्मक रूप से अधिक भावुक होती है। जो महिला पारिवारिक दायित्वों से मुक्त होकर अपनी मर्जी से राजनीति में अपनी जगह बनाने का प्रयास करती है तो समाज उस पर उंगली उठाने लगता है। यह सही है कि कुछ महिलाएँ राजनीति में अत्यन्त सफल हुई है लेकिन उनमें से मुख्यतः पीढ़ी दर पीढ़ी का प्रभाव रहता है। या किसी परिवार में पुरुष उत्तराधिकारी नहीं होता है तो भी महिला को नेता के रूप में आगे बढ़ा दिया जाता है इतना होने पर भी कोई भी महिला शासक या महिला राजनेता ने अपने चारों ओर महिला सलाहकारों– अधिकारियों को नहीं रखा। उनकी राजनैतिक क्रियाओं का नियंत्रण पुरुषों के हाथों में होता है।

5. भारत की जनसंख्या में करीब 50 प्रतिशत संख्या महिलाओं की है परन्तु सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक भागीदारी में उनका प्रतिशत बहुत ही कम है। पुरूषों और महिलाओं की सकारात्मक भागीदारी पर बड़े–बड़े भाषण हुए पर भाषणों में तथा वास्तविक स्थिति में बहुत भिन्नता है। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष में पुरुषों व महिलाओं ने समान रूप से भाग लिया। लाठी खाओ जेल भरो के नारे के साथ सबका एक ही संकल्प था कि अंग्रेजों को देश से बाहर निकालना है। आजादी के आंदोलन की लगभग हर धारा में हमें महिलाओं की सक्रिय भागीदारी मिलती है। भारतीय महिलाओं को 'देवी स्वरूपा' समझा गया है पर इस देवी को पर्दे के पीछे रखा। एक ओर राजनैतिक दल चुनाव से पूर्व महिलाओं को 33 प्रतिशत राजनैतिक आरक्षण का वादा करते हैं, दूसरी ओर जब चुनावों में 33 प्रतिशत महिला प्रत्याशियों के चयन की बात आती है तो आँखें फेर ली जाती है और तर्क प्रायः यह दिया जाता है कि जो जीत सके उसे ही टिकट दिया जाए जब संसद में बिल पारित करने की बात आती है तो लगभग सभी राजनैतिक दलों के नेता पीछे हट जाते हैं। राजनैतिक दलों के संगठनात्मक स्तर पर भी नियुक्तियों में महिला सहभागिता बहुत कम होती है जो बढ़नी चाहिए। महिलाओं को राजनेताओं के झूंठे वादों में न आकर खुद आत्मनिरीक्षण करना चाहिए कि उनका समाज एवं राजनीति में क्या स्थान है। फिर महिलाओं के लिये टिकटों के आवंटन का फैसला तो अधिकांश पुरूष ही करते हैं। कैसे वे इतनी आसानी से महिलाओं को सशक्त बना देंगे। महिला का ''माँ'' स्वरूप ही आज उसे कमजोर कर रहा है। उसे जुझारू बनना होगा। महिलाओं को पुरूषों की बैसाखियों पर नहीं चलना चाहिए उन्हें अपनी आन्तरिक क्षमता एवं शक्ति पर भरोसा कर अपना एक मजबूत आंदोलन बनाना होगा तभी महिला का वास्तविक स्वर मुखरित होगा। महिलाओं की राजनैतिक डगर काफी कठिन है, कांटे ही कांटे है लेकिन फिर भी आज महिलाएं राजनीति में अपना स्थान बना रही है। राजनीति में महिलाओं की सफलता आज उल्लेखनीय है, लेकिन राजनीति और सत्ता में महिलाओं की भागीदारी भी सार्थक होगी जब गांव की गलियों से होती हुई आम भारतीय महिला राजनैतिक गलियारों में पहुँचेगी।

महिलाओं की वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए यदि निम्नांकित प्रयास किये जाएं तो महिलाएक्र अन्य क्षेत्रों की भाँति राजनीति के क्षेत्र में भी प्रवेश कर महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने के साथ–साथ देश के विकास में भी अपना योगदान दे सकेगी।

1. आर्थिक आत्मनिर्भरता – यदि हम महिलाओं को समाज में उचित सम्भावित स्थान दिलाना चाहते हैं, तो उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाना आवश्यक है ताकि वे आत्मनिर्भर होकर देश के हित में यथाशक्ति योगदान दे सके। आर्थिक आत्मनिर्भरता किसी भी देश के विकास का सूचक मानी जाती है। इसी प्रकार महिला का सर्वांगीण विकास भी तभी संभव है जब वे धनोपार्जन के कार्यों में समान रूप से भाग लें। महिलाएँ पूर्णरूप से आत्म निर्भर हो सके। इसके लिए रोजगार के लिये उपलब्ध अवसरों में से 50 प्रतिशत अवसर उपलब्ध कराये जाने चाहिए। महिलाएँ जहाँ भी कार्य करें वहाँ शिशु गृहों की स्थापना की जाएँ ताकि वे अपना बहुमूल्य समय देश के विकास में दे सके।

2. पारिवारिक उत्तरदायित्वों को सहज बनाया जाए – वर्तमान आर्थिक संकट की स्थितियों में महिलाएं आर्थिक सहभागिता के लिये पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने का प्रयास कर रही है। ऐसी स्थिति में समस्त पारिश्रमिक उत्तरदायित्व केवल नारी पर छोड़ना उचित नहीं है। अब आवश्यकता इस बात की है कि चाहे स्त्री हो या पुरुष, दोनों ही पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक उत्तरदायित्वों का समान रूप से निर्वहन करे, यथा संभव एक दूसरे को पूर्ण सहयोग करें ताकि राष्ट्र प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सके।

3. सोचने–समझने का नजरिया बदला जाए – यद्यपि भारतीय कानून नारी को पूर्ण समानाधिकार प्रदान करते हैं किन्तु अधिकांश महिलाओं की स्थिति आज भी अत्यन्त शोचनीय है जहाँ एक ओर महिलाएँ हीन भावना से ग्रसित दिखाई देती है वहीं दूसरी ओर पुरुषों में भी यह भावना पायी जाती है, जिसके फलस्वरूप वे स्त्रियों को शारीरिक,

बौद्धिक एवं अन्य सभी दृष्टियों में हीन एवं स्वयं को सर्वोपरि समझते हैं, इसीलिए वे राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश उचित नहीं समझते। वे मानते हैं कि महिलाएँ राजनीति के क्षेत्र के लिये योग्य नहीं है वे महिलाओं को सदैव संदेह की दृष्टि से देखने लगते है। अतः पुरुषों को भी चाहिए कि वे महिलाओं के प्रति पूर्वाग्रहों का परित्याग करें और उन्हें भी बुद्धिजीवी नागरिक समझे। आवश्यकता इस बात की है कि महिलाएँ स्वयं को योग्य सिद्ध करने के लिए अथक परिश्रम करें ताकि राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय होकर प्रगति के पथ पर अग्रसर होने का प्रयास करें। अतः शासन द्वारा प्रदत्त कानूनी परिवर्तन के साथ—साथ सामाजिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आना चाहिए।

4. जैसे—जैसे देश पूंजीवादी विकास की ओर उन्मुख हो रहा है समाज में से नैतिक मूल्यों का संकट उत्पन्न हो गया है। विकास के साथ—साथ देश का सांस्कृतिक व सामाजिक वातावरण भी दूषित हो रहा है। ऐसी स्थिति में आवश्यकता इस बात की है कि सरकार महिलाओं की सुरक्षा की पूर्व गारंटी ले, महिलाओं के प्रतिदिन के बढ़ने वाले अपराधों के प्रति कठोर दण्ड का प्रावधान अपनाएं और दोषी व्यक्तियों को कठोर दंड़ दे ताकि वे असुरक्षा की भावना से निश्चित होकर स्वतंत्रतापूर्वक राजनीति में अपना योगदान दे सके।

5. पारिवारिक सामंजस्य की जरूरत — महिलाओं की राजनीतिक क्रियाशीलता हेतु पारिवारिक सदस्यों का सामंजस्य अति आवश्यक है। परिवार के सदस्यों को प्रत्येक स्तर पर उदार, प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाकर यथासंभव उन्नति के पथ पर अग्रसर कराने का प्रयत्न करना चाहिए। अधिकारों के साथ—साथ उत्तराधिकारों को भी वहन करना चाहिए।

6. प्रतिनिधि संस्थाओं में महिलाओं को समान सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्थिति प्रदान करने के लिए सेवाओं के साथ—साथ राजनीतिक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व करने वाले संस्थाओं विधायिका, संसद में कम से कम 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए ताकि पंचायत व नगर निकाय स्तर पर निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों द्वारा किये जाने वाले कार्यों को व्यावहारिक रूप दिया जा सके।

7. सत्ता में भागीदारी से किसी समाज व व्यक्ति का चौतरफा विकास होता है उसे अपने अधिकारों का ज्ञान हो जाता है। नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो. अमर्त्य सेन ने कहा है कि यदि वंचित वर्ग को अधिकार मिल जाए तो उनमें काबलियत अपने आप पैदा हो जाती है और उस वर्ग का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक विकास भी स्वतः हो जाता है। इन्हीं विचारों को अपना कर महिलाओं को उनके राजनैतिक अधिकार दे दिये जाए तो कोई कारण नहीं कि महिलाओं का विकास न हो।

8. समुचित शिक्षा व्यवस्था — प्रारंभ से ही बालक—बालिकाओं से समान रूप से शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। बालक—बालिकाओं की समान शिक्षा व्यवस्था के साथ—साथ तद्नुरूप स्वस्थ वातावरण के निर्माण का ही प्रारम्भ होगा तभी महिलाएं प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकती है और राजनीति में समुचित भागीदारी कर सकती है।

संदर्भ संकेत

01. सारस्वत, स्वप्निल य महिला विकास, एक परिदृष्य, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007

02. सिंह, निशांत य महिला राजनीति और आरक्षण, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2010

03. आर्य, साधना मेनन निवेदिता एवं लोकनीता सिनि य नारीवादी राजनीति, दिल्ली माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2016

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

महाभारत में स्त्री और पुरुष का यथार्थ : अम्बा के सन्दर्भ में

डॉ0 बबिता सिंह
असिं. प्रोफेसर – संस्कृत विभाग
चौधरी चरण सिंह पी.जी. कालेज, हेंवरा, इटावा

महाभारत कालीन हमारे पूर्वजों के समाज में स्त्री की हालत क्या थी? पुरुष के साथ उसके सम्बन्ध कैसे थे? स्त्री और पुरुष के आपसी सम्बन्धों को समाज किस निगाह से देखता था? यानी किस तरह के मूल्य विकसित किए थे समाज ने स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को लेकर? हम इस परिस्थिति से इसलिए दो चार होना चाहते हैं, क्योंकि मनुष्य–समाजों में मूल्यों के निर्धारण में, उनकी स्वीकृति या धिक्कृति में इन्हीं सवालों को अकसर मानक बना दिया जाता है। इसलिए उस समाज के बारे में, जिसे विपुल वैभव और तकनीकी सामर्थ्य सहज उपलब्ध थे, उस समाज में हमारे द्वारा आज उठाए गये इन सवालों के प्रति क्या नजरिया था? यानि क्या था तब की स्त्री का सामाजिक रुतबा ? और कैसा था स्त्री पुरुष सम्बन्धों का यथार्थ? जवाब देने के लिए हमारी शैली वही है।

तमाम सन्दर्भों को एक साथ रखकर देखें तो बड़ी ही अजीबोगरीब तस्वीर उस जमाने के पूर्वजों के समाज के बारे में उभरकर सामने आती है। एक तस्वीर यह उभरती है कि उस समाज में स्त्री की भूमिका काफी स्वतन्त्र और सम्मानित है। वह समाज स्त्री को अपना पति चुनने का अधिकार स्वभाववश दे रहा है। राज समाज ने इस अधिकार का सम्मान स्वयंवर प्रथा के रूप में किया तो सामान्य रूप् से कन्याओं को अपनी इच्छा से विवाह करने के ढेरों उदाहरण महाभारत में हैं।

महाभारत कालीन हमारे पूर्वजों के समाज ने स्त्री, पुरुष और उनके सम्बन्धों के यथार्थ को यथावत् स्वीकार किया हुआ था और क्रान्तिदर्शी व्यास ने इस यथार्थवादी सामाजिक मूल्य को इसी यथार्थवादी दृष्टि से हमारे सामने पेश कर दिया है। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं था कि काशिराज ने अपनी तीन बेटियों– अंबा, अम्बिका और अंबालिका की शादी के लिए शर्त रख दी कि जो सबसे बलवान् हो, वह उसकी बेटियों का स्वयंवरण करके ले जाए। जरा सोचिए कि तब का वह हमारा समाज कैसा रहा होगा, जब लड़कियों को वीर्यशुल्क बना दिया गया– यानि अपनी ताकत का प्रदर्शन करिए और शादी के लायक साबित होकर लड़की को ले जाइए, चाहे तो हरण कर लीजिए। वे वही दिन थे, जब कृष्ण ने बलराम के विरोध के बावजूद अर्जुन को उकसाया था कि वह उनकी बहन सुभद्रा का हरण करके ले जाए। बेषक सन्दर्भ अलग था, पर करीब–करीब उसी तर्ज पर काशिराज ने राजाओं को अपनी लड़कियों के स्वयंवर के लिए न्योता दिया और शर्त लगा दी कि जो सर्वाधिक शक्तिशाली हो, वह उनको ले जाए। जाहिर है कि विवाहेच्छुक राजाओं के हुजूम में वही इन तीन लड़कियों के हरण की जुर्रत कर सकता, जो सबसे ज्यादा शक्तिशाली होता।[1]

भीष्म ने वहाँ पहुँचकर वस्त्राभूषणों से अलंकृत हुई उन तीनों कन्याओं को देखा। तदनन्तर उन्होंने युद्ध के लिए खड़े हुए उन समस्त राजाओं को ललकारकर उन तीनों कन्याओं को अपने रथ पर बैठा लिया।

अपश्यं ता महाबाहो तिस्रः कन्याः स्वलंकृताः।
ततोऽहं तान् नृपान् सर्वानाहूय समरे स्थितान्।
रथमारोपयांचक्रे कन्यास्ता भरतर्शभ।।[2]

उस समय के सबसे शक्तिशाली योद्धा भीष्म ने इन तीनों का हरण कर लिया। भीष्म ने तो आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत अपने पिता शान्तनु के सामने लिया था, इसलिए अपने लिए तो वे तीनों कन्याओं का हरण करके लाए

नहीं थे। वे अपनी मॉ सत्यवती के पुत्र विचित्रवीर्य के साथ विवाह करवाने के इरादे से उन कन्याओं का हरण करके लाए थे। वे दाशराज की कन्या माता सत्यवती के पास जाकर कहते हैं। 'ये काशिराज की कन्याएँ हैं। पराक्रम ही इनका शुल्क था। इसलिए मैं समस्त राजाओं को जीतकर भाई विचित्रवीर्य के लिए इन्हें हर लाया हूँ'

इमाः काशिपतेः कन्या मया निर्जित्य पार्थिवान्।
विचित्रवीर्यस्य कृते वीर्यशुल्का हृता इति ।।[3]

अंबा भी उन तीन कन्याओं में से एक थी। उनका हरण विचित्रवीर्य से विवाह के लिए किया गया था। हरण के बाद वह कुरु राजप्रासाद में लाई गई थी। तो क्या इसी आधार पर अंबा को अपनी बहनों अंबिका और अंबालिका की तरह कुरुवंश की कुलवधू मान लिया जाए? मान भी सकते हैं। पर यह तर्क चूँकि कोई वजनदार नहीं है, इसलिए वैसा नहीं भी मान सकते, क्योंकि हम जानते हैं कि अंबा ने विचित्रवीर्य से विवाह नहीं किया था।

इसलिए कुरुवंश की कुलवधू मानें तो भी और न मानें तो भी, इसमें तो कोई संदेह नहीं है कि अंबा अपने युग की एक बहुत ही तेजस्विनी नारी थी और उसकी गणना उस समय की दूसरी चार तेजस्विनी नारियों–सत्यवती, गांधारी, कुन्ती और द्रौपदी के साथ ही की जा सकती है। चूँकि शेष चारों नारियॉ कुरुवंश की पुत्रवधुएँ हैं, इसलिए लालच हो सकता है कि इनके अंबा को कुरुवंश की पुत्रवधू मान लिया जाए। पर अगर वैसा मान लिया तो अंबा से वास्तव में अन्याय हो जायेगा। जिस आधार पर वह अपने समय के महापराक्रमी नायक भीष्म को बार–बार चुनौती दे रही थी, उसे देखते हुए अंबा को कुरुवंश की कुलवधू भला क्यों माना जाए! अगर उसने कुरुवंश की कुलवधू कहलवाया जाना स्वीकार कर लिया होता तो उसके जीवन में वह अद्भुत घटनाक्रम घटता ही नहीं जिस घटनाक्रम के कारण अंबा को अंबा कहा जाता है। अंबा शाल्व से प्रेम करती थी और भीष्म द्वारा सभी राजाओं को हराकर हरण करने की उसके पिता की शर्त पूरी करने के बावजूद वह विचित्रवीर्य से विवाह नहीं कर सकी।[4]

भीष्म को अंबा का हृदय सम्बन्ध समझने में देर नहीं लगी और उन्होंने उसे शाल्व के पास भिजवा दिया।

ततोऽहं समनुज्ञाप्य कालीं गन्धवतीं तदा।
मन्त्रिणश्चर्त्विजश्चैव तथैव च पुरोहितान्।।[5]

शाल्व ने अंबा को यह कहकर अपनाने से इनकार कर दिया कि जो पहले और की हो चुकी हो, ऐसी स्त्री को मैं अपनी पत्नी बनाऊँ, यह मेरी इच्छा नहीं है क्योंकि जिस नारी पर पहले किसी दूसरे पुरुष का अधिकार हो गया हो, उन बातों को जानने वाला मेरे जैसा राजा जो दूसरों को धर्म का उपदेश करता है, ऐसी स्थिति में अपने घर में कैसे प्रविष्ट कराएगा।

नहं त्वय्यन्यपूर्वायां भार्यार्थी वरवर्णिनि।
कथमस्मद्विधो राजा परपूर्वां प्रवेशयेत्।।
नारीं विदितविज्ञानः परेशां धर्ममादिशन्।[6]

अंबा को निराश होकर भीष्म के पास लौट आना पड़ा। उसने भीष्म से विवाह का आग्रह किया तो भीष्म का अपना तर्क था कि वे तो आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा से बँधे हैं, विवाह कर ही नहीं सकते। परिणाम? अंबा हर ओर से दूर हटकर या हटाई जाकर अकेली, अपमानित हो गई। एक नारी का इससे बड़ा अपमान क्या हो सकता है कि उसे इस तरह की तिरस्कृत स्थिति में अकेला छोड़ दिया जाए? इस सारे परिदृश्य में दो ही बातें महत्व की हैं। एक क्यों नहीं अम्बा ने उस वक्त अपने पिता काशिराज से शाल्व से अपने प्रेम के बारे में बलपूर्वक कहा और बलशाली द्वारा हरण किए जाने की शर्त से स्वयं को मुक्त करवा लिया? बात तो महत्व की है, पर उस पर एक सीमा से आगे बल इसलिए नहीं दे सकते, क्योंकि अंबा के मन में अपने पिता से अपने मन की बात न कह पाने का कोई भी कारण हो सकता है। इसलिए अंबा को संकोच में रह जाने के अलावा दूसरा कोई दोश हम दे नहीं सकते।[7]

पर भीष्म ने जो किया और उसके कारण अंबा को जैसा अपमाान अनुभव हुआ, उसका बदला लेने की जैसे ही अंबा ने ठान ली तो इस तेजस्विनी नारी का असली रूप हमारे सामने आना शुरू होता है। भीष्म की इस पूरी भूमिका में उसके मन में नारी को एक वस्तु मानने का भाव छिपा है, जो अन्यथा भीष्म के स्वभाव से मेल नहीं खाता। ठीक है कि काशिराज की शर्त थी कि जो सबसे शक्तिशाली हो, वह उनकी कन्याओं का हरण कर ले पर इस शर्त में यह आभास कहीं नहीं था कि आप किसी दूसरे के लिए भी अपने बल प्रयोग से कन्याओं का हरण कर सकते हैं। भीष्म से यहीं गलती हुई अपने दुर्बल और निर्वीर्य वंशज विचित्रवीर्य के लिए उन्होंने वही काम किया जो स्वयं विचित्रवीर्य के बस का नहीं था। इसलिए अंबा का भीष्म से कहना कि उन्होंने उसका हरण किया है तो वे ही उससे विवाह करें, ठीक था और भीष्म द्वारा इस तर्क को प्रतिज्ञा की दुहाई देकर मानना यकीनन अंबा का अपमान था जो भीष्म के हाथों हुआ। प्रतिज्ञा में बॅंधे होने के कारण भीष्म निष्पाप माने जा सकते हैं। काशिराज की प्रतिज्ञा पूरी न कर पाने के कारण शाल्व भी निरपराध माने जा सकते हैं। पर इन सबके कारण अंबा का जो अपमान हुआ उसका निराकरण कैसे हो सकता है?[8]

इन सबके पीछे अंबा को एक ही व्यक्ति दोषी नजर आया भीष्म। अम्बा ने भीष्म को उनसे अधिक बलवान् किसी योद्धा से पराजित करवाकर अपने स्वाभिमान की रक्षा की जाए। इसलिए अंबा ने परशुराम से कहा– मेरी विपत्ति का मूल कारण भीष्म हैं, जिन्होंने उस समय बलपूर्वक वश में करके मुझे उठाकर रथ पर रखकर हस्तिनापुर ले आये। अतः आप भीश्म को ही मार डालिये, जिसके कारण मुझे ऐसा दुःख प्राप्त हुआ है और मैं विवश होकर अत्यन्त अप्रिय आचरण में प्रवृत्त हुई हूॅं।

मम तु व्यसनस्यास्य भीष्मो मूलं महाव्रतः।
येनाहं वशमानीता समुत्क्षिप्य बलात् तदा।।
भीष्मं जहि महाबाहो यत्कृते दुःखमीदृशम्।
प्राप्ताहं भृगुशार्दूल चराम्यप्रियमुत्तमम् ।।[9]

अम्बा की प्रार्थना से द्रवित परशुराम ने पहले भीष्म से अनुरोध किया कि वह अंबा से विवाह करें परन्तु भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा की दुहाई दी तो फिर परशुराम ने भीष्म से प्रबल युद्ध किया। पर जैसे भीष्म को प्रतिज्ञा से डिगाना आसान नहीं था, वैसे ही युद्ध में हराना कहाॅं आसान था ? इसलिए जब अंबा परशुराम के हाथों भीष्म को पराजित नहीं करवा सकी तो फिर अंबा ने एक कठोर निर्णय लिया और कहा– मैं किसी भी प्रकार से पुनः भीष्म के पास नहीं जाऊॅंगी। मैं अब वहीं जाऊॅंगी, जहाॅं ऐसा बन सके कि समरभूमि में स्वयं ही भीश्म को मार गिराऊॅं। ऐसा कहकर रोश भरे नेत्रों वाली वह राजकन्या अंबा भीष्म के वध के उपाय का चिन्तन करती हुई तपस्या के लिए दृढ़ संकल्प लेकर वहाॅं से चली गई।

न चाहमेनं यास्यामि पुनर्भीश्मं कथंचन।।
गमिश्यामि तु तत्राहं यत्र भीष्मं तपोधन।
समरे पातयिश्यामि स्वयमेव भृगूद्वह ।।
एवमुक्त्वा ययौ कन्या रोशव्याकुललोचना ।
तापस्ये धृतसंकल्पा सा मे चिन्तयती वधम्।।[10]

तपस्या का भी एक विचित्र आभामंडल होता है। जिस व्यक्ति ने संकल्पपूर्वक स्वयं को किसी लक्ष्य से जोड़ लिया हैऔर उसमें अपनी मेधा व कर्म की पूरी शक्ति लगा दी, उसे हमने तपस्या माना और फिर उसे एक खास आभामंडल देने के लिए उसे किसी देवता की उपासना और देवता से मिले वरदान से जोड़ दिया। अंबा की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने उसे वरदान दिया कि तू रणक्षेत्र में भीष्म को अवश्य मारेगी और इसके लिए आवश्यकतानुसार पुरुषत्व भी प्राप्त कर लेगी दूसरे शरीर में जाने पर तुझे इन सब बातों का स्मरण भी बना रहेगा।

ऌनिश्यसि रणे भीष्मं पुरुषत्वं च लप्स्यसे।
स्मरिश्यसि च तत् सर्वं देहमन्यं गता सती ।।[11]

इस प्रकार से इस जन्म में तो नहीं, पर अगले जन्म में वह शिखण्डी बनकर भीष्म का वध करेगी। इसलिए संदेश यह है कि अंबा ने भीष्म के हाथों अपने साथ हुए अन्याय को आजीवन स्वीकार नहीं किया और उसके प्रतिकार के लिए वह तेजस्विनी आजीवन संघर्षरत रही। अंबा ने अपने संकल्प को आजीवन अपनी धुन बनाए रखा और कथाकार व्यास ने भी इस दुर्धर्ष और अपराजेय नारी के संकल्प को जन्म–जमान्तर का विषय बनाकर उसे और भी ज्यादा गतिशील बना दिया। अंबा ही शिखण्डी थी, इसे मानने या न मानने को हममें से प्रत्येक स्वतन्त्र है। पर अंबा ही शिखण्डी थी, यह बताकर व्यास ने अपना इरादा जाहिर कर दिया है कि अंबा की तरह वे भी न केवल भीष्म को उनके द्वारा किए गये अन्याय के लिए माफ नहीं करते, बल्कि भीष्म को दंड देने में वे अंबा से भी एक कदम आगे हैं।

महाभारत काल का समाज स़ी और पुरुष के संबंधों का जिस तरह से परिभाषित कर रहा था। उसमें अंबा का आचरण न केवल स्वछन्द नहीं है, बल्कि गरिमा से भरा है और उनकी तेजस्विता और प्रतिभा को भी दर्षाता है। भारतीय नारी आज भी उनकी ऋणी है जिन्होंने नारी के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य ही नहीं किया बल्कि जीवन के तमाम झंझावातों से निकल कर अपने मार्ग को सफल बनाया।

सन्दर्भ सूची

1. महाभारत का धर्मसंकट स्त्री और पुरुष के यथार्थ का स्वीकार सूर्यकान्त बाली पेज न0 49
2. महाभारत उद्योगपर्व 173 / 22,23
3. महाभारत उद्योगपर्व 174 / 2
4. महाभारत का धर्मसंकट स्त्री और पुरुष के यथार्थ का स्वीकार सूर्यकान्त बाली पेज न0 53
5. महाभारत उद्योगपर्व 175 / 1
6. महाभारत उद्योगपर्व 175 / 8,9
7. महाभारत का धर्मसंकट स्त्री और पुरुष के यथार्थ का स्वीकार सूर्यकान्त बाली पेज न0 54
8. महाभारत का धर्मसंकट स्त्री और पुरुष के यथार्थ का स्वीकार सूर्यकान्त बाली पेज न0 54
9. महाभारत उद्योगपर्व 177 / 38,39
10. महाभारत उद्योगपर्व 186 / 8–10
11. महाभारत उद्योगपर्व 187 / 13

❑❑

तीन तलाक के आइने में मुस्लिम महिलाएँ

डॉ0 रणविजय सिंह
असि0प्रोफे0–राजनीति विज्ञान
एम0जे0एच0 महाविद्यालय, आटा कालपी, जालौन

क्या है तीन तलाक?क्या होता है ट्रिपल तलाक?यह मुस्लिम समाज में तलाक लेने का यह जरिया है जिससे मुस्लिम आदमी अपनी बीवी को तीन बार तलाक बोलकर अपनी शादी रद्द कर सकता है। तलाक का यह जरिया मुस्लिम पर्सनल लॉ के हिसाब से कानूनी है, फिर भी बहुत सारी मुस्लिम महिलाएं इसका विरोध करती हैं। तीन तलाक के वजह से मुस्लिम महिलाओं को डर डर के रहना पड़ता है क्योंकि ये तीन शब्द उनकी जिन्दगी बर्वाद कर सकते है। यह मानवीय हकों का उल्लंघन है, भारतीय कानून के हिसाब से स्त्री और पुरुष दोनों को समान हक होते हैं, पर तीन तलाक के मामले में महिलाओं पर यह एक प्रकार से अन्याय होता है।

तीन तलाक के तहत मुस्लिम आदमी अपनी बीवी को बोलकर या लिखकर तलाक दे सकता है और बीवी का वहां होना जरूरी भी नहीं होता है, यहां तक कि आदमी को तलाक के लिए कोई वजह भी लेनी नहीं पड़ती है। आजकल के जमाने में तो तीन तलाक Facebook, Whatsapp पर भी दिया जाता है। तीन तलाक का पुरुषों पे ज्यादा प्रभाव नहीं होता पर उनकी बीवी पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। बच्चों की जिम्मेदारी, गुजारा करने के लिए पैसा कमाना, रहने के लिए घर, यह सब विपदाएं अचानक से उनके सामने आ जाती है। इस डर के चलते हुए बहुत सारी मुस्लिम महिलाएं शायद डर–डर के अपनी जिंदगी गुजार देती हैं। वह कोई बगावत नहीं करती। महिलाएं अपने भारतीय मौलिक अधिकारों से वंचित रह जाती है। बहुत सारे मुस्लिम बहुमत होने वाले देशों में तीन तलाक का रिवाज खण्डित किया है और उन्होंने तलाक के कायदे वर्तमान परिस्थितियों के हिसाब से बदल दिए है। यहां तक कि अपना पड़ोसी देश पाकिस्तान में भी तीन तलाक की प्रथा खत्म कर दी गई है। भारत को भी समय के हिसाब से बदलना पड़ेगा, 21वीं सदी में हम लोग महिलाओं को पीछे नहीं छोड़ सकते।

ट्रिपल तलाक आज मूल अधिकार की जगह एक राजनैतिक मुद्दा बन रहा है। हाल ही में वर्तमान सरकार लोकसभा के शीतकालीन सत्र में ट्रिपल तलाक बिल पारित करने में सफल हुई। इस विधेयक के अंदर ट्रिपल तलाक लेना कानूनी अपराध होगा, जिसके लिए मुस्लिम पुरुष को 3 साल की सजा हो सकती है। कुछ राजनीतिक दलों ने इसका विरोध भी किया। कांग्रेस जो मुख्य विरोधी पक्ष में है, उसने बिल का समर्थन किया, पर कुछ मुद्दों पर संशोधन की भी मांग की। लोकसभा में बी0जे0पी0 का बहुमत होने के कारण वह इस बिल को पारित कर पायी। यह बिल राज्य सभा में पारित होना अभी बाकी है। राज्य सभा में बी0जे0पी0 के पास बहुमत नहीं है वहां पे इस बिल पर ज्यादा विरोध होने की संभावना है।

हमारे समाज में एक सोच बहुत ज्यादा प्रभावशाली है और वो है बिना सोचे समझे किसी प्रथा को जन्म दे देना। सम्पूर्ण ज्ञान ना होते हुए भी लोग परम्पराओं को मान देने लगते हैं। फिर चाहे वे किसी अन्य के लिए दुखदायी ही क्यों न हो। कुछ इसी प्रकार की सोच का परिणाम है वर्तमान में प्रचलित तीन तलाक की परम्परा। तीन तलाक की परम्परा आज मुस्लिम समाज की महिलाओं के लिए एक अभिशाप बन गई है। इस परम्परा ने न जाने कितनी महिलाओं के जीवन को नरक बना दिया है और ये प्रथा न जाने कितने अनगिनत घर–परिवारों को नष्ट किया। आज अब धर्म और परम्परा के नाम पर सुधार की जरूरत एवं आवश्यकता है।

कुरान का सहारा लेकर भी तीन तलाक प्रथा का बचाव नहीं किया जाना चाहिए, दरअसल यह मामला पवित्र कुरान का नहीं बल्कि उसकी अलग–अलग व्याख्याओं का है। जबकि इस्लाम धर्म के सबसे पवित्र ग्रंथ कुरान में

तीन तलाक का जिक्र नहीं है। लेकिन पुरुष वादी सोच के चलते मुस्लिम समाज में यह कुरीति प्रचलित है। धर्म के आड़ में किसी भी नागरिक के मौलिक अधिकारों का अवैध हनन है। कई मुस्लिम बहुल देशों में निजी कानूनों में फेरबदल किए हैं और सबके सब प्रावधान एक–दम एक जैसे स्थिति में है। जो महिलाएं इसे प्रथा के खिलाफ आंदोलन चला रही है। वे इस्लाम और कुरान में आस्था रखती हैं, पर वे कहती हैं कि इस्लाम या कुरान ने उनके अधिकार छीनने को नहीं कहा है।

तलाक तलाक तलाक किसी भी शादीशुदा मुस्लिम महिला के लिए ये ऐसे शब्द हैं जो एक ही झटके में उसकी जिंदगी को जहन्नुम बनाने की कुव्वत रखते है। पिछले दिनों एक सर्वेक्षण की रिपोर्ट में देश की करीब 92 फीसदी महिलाओं ने मौखिक रूप से तीन बार तलाक बोलने से पति–पत्नी का रिश्ता खत्म होने के नियम को एक तरफा करार दिया है। यह सर्वे मुस्लिम महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक, शादी की उम्र, परिवार की आय, भरण पोशण तथा घरेलु हिंसा जैसे पहलुओं के आधार पर किया गया है।

तीन तलाक से एक पुरुष का जीवन स्वतंत्र हो जाए और एक महिला का जीवन अभिशाप बन जाए ऐसा नहीं होना चाहिए, यह उनके मौलिक अधिकारों के खिलाफ और न्याय संगत भी नहीं है। जब महिलाओं के लिए मजार में पाबंदी हट गयी। शनि मंदिर में महिलाओं को प्रवेश दे दिया। दक्षिण भारत में कुछ मंदिरों में महिला पुजारी ही भगवान का प्रसाद चढ़ाती है? असल कुरान में समाज में स्त्रियों की गरिमा, सम्मान और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए बहुत सारे प्रावधान किए है। तलाक के मामले में भी इतनी बंदिशें लगाई गई हैं कि अपनी बीवी को तलाक देने के पहले मर्दों को सौ बार सोचना पड़े। कुरान में तालक को न करने लायक काम बताते हुए इसकी प्रक्रिया को कठिन बनाया गया है। जिसमें रिश्ते को आखिरी दम तक बचाने की कोशिश, पति–पत्नी के बीच संवाद दोनों परिवारों के बीच बातचीत और सुलह की कोशिशें और तालक की इस पूरी प्रक्रिया को एक समय सीमा में बांधना शामिल है।

विश्व भर में कई मुस्लिम स्कॉलर ने तीन तालक को गैर इस्लामिक घोषित किया है। इन लोगों के अनुसार कुरान में इस तरह के किसी तलाक का जिक्र नहीं है। तीन तलाक इन दिनों फोन, टेक्स्ट मेसेज, फेसबुक, स्काइप, ईमेल आदि के जरिये किया जाने लगा है। और ऐसी घटनाओं की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है क्योंकि इस्लामिक नीति में ये कानूनी सही है, अतः पुरुषों को कोई खास फर्क नहीं पड़ता है वहीं दूसरी तरहफ वैसी स्त्रियां जो आर्थिक रूप से अपने शौहर पर निर्भर रहती हैं, उन्हें इस तरह के तलाक से आने वाली जिंदगी में काफी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। आर्थिक एवं सामाजिक परेशानियों के साथ–साथ वे भावानात्मक रूप से टूट जाती है, ऐसी महिलाओं को किसी भी तरह से जीवन निर्वाह का जरिया नहीं मिल पाता है। ऐसी महिलाएं अक्सर जिंदगी में अकेली पड़ जाती हैं इनके पास अपने बच्चों को पालने का कोई जरिया नहीं होता है। ऐसे अधिकतर केसों में तीन तलाक हो जाने के बाद आदमी अपने बच्चों बीवी की जिम्मेदारियों से खुद को अलग कर लेता है। समाज की कई मुस्लिम महिलाएं इस बात के डर में अपनी जिदंगी गुजार देती हैं कि उनके शाहुहार जाने कब ये तीन शापित शब्द कह दें और उनकी जिंदगी खत्म होने के कगार पर आ जाए।

केन्द्र सरकार ने हाल ही में देश के सर्वोच्च न्यायालय को कहा है कि तीन तलाक, निकाह हलाला और बहु विवाह जैसी प्रथाओं से मुस्लिम महिलाओं के सामाजिक स्तर को और उनकी गरिमा को ठेस पहुंचती है। साथ ही उन्हें वो सारे मौलिक अधिकार भी नहीं मिल पाते हैं जिसे हमारा संविधान हमारे लिए लागू करता है। सर्वोच्च न्यायालय में अपना लिखित मत देने से पहले सरकार ने कहा कि ये सभी प्रथाएं मुस्लिम महिलाओं को बराबरी का हक मिलने से रोकती है। आल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ ने कहा है कि मुस्लिम समुदाय में तलाक की संख्या बहुत कम है। इन लॉ बोर्ड के अनुसार कुछ लोग इस तरह का माहौल बनाने में लगे हैं कि मुसलमान समाज में तलाक की संख्या अधिक हो। विश्व भर में कई इस्लामी विद्वानों द्वारा इसकी खिलाफत लगातार की जा रही है

और कई देशों में इस तरह के तलाक पर पूरी पाबंदी लगा दी गयी है। आल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने ये ऐलान किया कि वे लोग जो बिना किसी जायज कारण के तीन तालक देते हैं, उन्हें मुस्लिम समाज से बहिष्कृत किया जायेगा। तीन तलाक मुस्लिम समुदाय में शादिया के तहत दिया जाता है। तीन तलाक की वजह से कई महिलाओं की जिंदगियॉ खराब हो जाती है।

भारतीय सिनेमा के जानी मानी हस्ती तथा स्वयं राज्यसभा के सांसद रह चुके जावेद अख्तर ने मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के इस नए कोड की निंदा की है। बोर्ड के महासचिव ने कहा है कि ''बोर्ड द्वारा जारी ये नाम कोड तीन तलाक के वजहों की शरिया के जरिये व्याख्या करेगा।'' साथ में ये भी कहा कि – ''ये कोड उन लोगों को सही रास्ते पर लाएगी जो लोग तीन तलाक का दुरूपयोग करते है।'' कई लोगों को ये बात शायद रास आई हो, किन्तु अख्तर साहब ने अपने ट्वीटस के जरिये धज्जियॉ उड़ा दी। जावेद अख्तर शुरू से ही तीन तलाक के खिलाफ रहे हैं और कई बार इसे बैन करने की मांग कर चुके है। अपने ट्वीट में अख्तर साहब ने लॉ बोर्ड के इस स्टेटमेंट को छल करार दिया है और लॉ बोर्ड के मिस्यूज वाले कथन का खण्डन करते हुए कहा है कि तीन तलाक स्वयं में एक अब्यूज है, लॉ बोर्ड छल से तीन तलाक को बनाए रखना चाहती है।

एक मुस्लिम महिला ने अपने मानवाधिकारों के लिए सुप्रीम कोर्ट में पी0आई0एल0 दायर कर दी। अभी हाल में ही सुप्रीम कोर्ट का निर्णय महिलाओं के पक्ष में आया है। सुप्रीम कोर्ट के अनुसार ई–मेल, फोन और Whatshapp तथा अन्य ऐसे साधन जिसमें पानी–पानी की सहभागिता न हो पर तलाक मान्य नहीं होगा। तलाक के लिए पति पत्नी दोनों का सामने होना अनिवार्य है, और इसके लिए कोर्ट में याचिका दायर करनी होगी। अगर महिला चाहे तो इसके खिलाफ कोर्ट में अपील कर सकती है। निश्चित रूप से सुप्रीम कोर्ट का निर्णय महिलाओं के आत्म सम्मान और उनके मानवाधिकार को मद्देनजर एक बहुत बड़ा फैसला है। इस फैसले से मुस्लिम महिलाओं को अपना खोया हुआ सम्मान एवं अपनी गरिमा की अस्मिता को अस्तित्व में रखने के लिए फायदा मिलेगा। हमारे समाज में तलाक का अर्थ है परित्याग करना। इसमें हर धर्म के अपने नियम और कानून हैं तलाक एक उर्दू शब्द है अगर हम बाकी देशों से तुलना करें बहुत से मुस्लिम देश जैसे– पाकिस्तान, श्री लंका, ईरान, इराक, सऊदी अरब, इन सभी देशों में तीन तालक पर प्रतिबंध है, पर हमारे देश में यह प्रथा आज भी बरगद के वृक्ष की तरह विशाल जड़ें फैलाये हुए है। जिससे न जाने कितनी मुस्लिम महिलाओं की जिंदगियां तबाह हो रही हैं और बसे बसाए घर उजड़ रहे हैं। उनके जीवन की खुशियां एक पल में छीनी जा रही हैं, जो बहुत ही अप्रकातिक एवं अमानवीय है। यह प्रथा आज भी भारत में चिंता का विषय बनी हुई है। इस प्रथा से निपटने के लिए कुछ मुस्लिम महिलाओं ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है, और सुप्रीम कोर्ट का फैसला भी इन महिलाओं के पक्ष में आया हुआ है। इन महिलाओं के संघर्ष की सही मायने में जीत हुई हैं जीत केवल इन महिलाओं की ही नहीं बल्कि उन सभी महिलाओं की हुई है जो इस प्रथा की शिकार होती थी।

बांग्लादेश की प्रसिद्ध लेखिका तस्लीमा नसरीन का इस प्रथा के संदर्भ में कहना है कि आज कल कितनी धार्मिक बातें होने लगी है। चैनल के चैनल है। मैने बांग्लादेश में देखा है। सन् 1960–70 के दशक में ज्यादातर महिलाएं हिजाब और बुर्का नहीं पहनती थी लेकिन अब लगभग 90 प्रतिशत लड़कियां, महिलाएं हिजाब पहन रही हैं और इससे समाज बदल रहा है क्योंकि सरकार धार्मिकता को लोगों के मन में भर रही है। मीडिया, सभी जगह टी0वी0, रेडियो, अखबार सभी धर्म की बातें कर रहे है। मस्जिद और मदरसे बन रहे है। मैं मानती हूॅ कि लोगों को ज्यादा समझदार बनाने की आवश्यकता है, दरअसल विश्व में थोड़ा टकराव है यह टकराव धर्मो के बीच नहीं है, टकराव है नए विचारों एवं पुराने रीति–रिवाजों के बीच। टकराव है समझदार तार्किक दिमाग वालों और अज्ञानी अंध विश्वासी लोगों के बीच टकराव है, जो आजादी में विश्वास करते हैं और जो नहीं करते हैं। यदि हम इस्लाम को अन्य धर्मों की तरह एनलाइटमेंट प्रक्रिया से होकर गुजरना होगा। सभी धर्म क्रिटिकल स्क्रूटनी से गुजरे हैं,

सेकुलर कहे जाने वाले लोग भी सब धर्मों की आलोचना करते हैं पर इस्लाम को बरी रखते हैं, छूते नहीं। यदि आप किसी भी प्रकार की आलोचना की स्वीकृति नहीं देते हैं तब हम समाज में कैसे बदलाव करेगें?सबसे बड़ी परेशानी वह यह है कि ये इस्लाम में जो हुज्जत है। जरूरत हुज्जत का भी है और बहस की भी। हमें वापस इस बात पर आना चाहिए कि बच्चे पढ़ तो बहुत रहे हैं लेकिन वो नहीं पढ रहे हैं जिससे इंसान बने। वे वो पढ़ रहे हैं जिससे वो मशीन बने और यह बहुत बड़ी बात है कि हमारा जो इंसान है वो पूरा भौतिक आदर्शों में बदल गया है। यह फर्क हमारे अंदर हम लोगों ने खुद पैदा किया है। हमारे वर्ग के अंदर ही तो हमारे दुश्मन हैं, जब तक आप इस्लाम को पढ़िएगा नही ंतब तक आप उसके कूड़े झाड़ भी नहीं सकते है।

मुस्लिम समुदाय में तीन तलाक की प्रथा ऐसे विरासत के रूप में घर कर गयी है जैसे घरों में मकड़ी के जाले लग गये हो। इस प्रथा से निपटने के लिए हम सबको जागरूक होना पड़ेगा और जो यह प्रथा बिना विचाराधीन चली आ रही है, समाप्त करनी है। जिससे हमारे समाज में वो महिलाएं सिर उठाकर जी सकें जो डर–डर के अपना पूरा जीवन ऐसे व्यतीत कर देती हैं, जैसे उनका अपना कोई जीवन ही नहीं है कोई सपने एवं उम्मीदें नहीं है। अपनी खुद की कोई आजादी नहीं है। सारा जीवन शौहर के नियम कानून पर टिका है जो कब वो तीन शापित शब्द बोल दे जिससे उन महिलाओं की जिंदगी नरक बन जाये। यह मुद्दा बहुत ही चिंतनीय एवं विचारणीय है। इस मुद्दे पर एक सार्थक पहल होनी चाहिए जिससे वे तमाम जिंदगियां उजड़ने से बच जाएं जो हर साल न जाने कितनी उजड़ जाती है। प्रकृति ने पुरुष और स्त्री एक समान बनाए गए हैं तो उनके हक भी एक समान होना चाहिए। धर्म, प्रथाएं समय के अनुसार बदलनी चाहिए। महिलाओं के समान हक का महत्व हमें देश को नई पीढ़ी को समझाना पड़ेगा। हमारी देश की आधी आबादी को हम पीछे रख के कभी भी प्रगति की ओर नहीं जा सकते। हमें ऐसे तीखें सवाल का उठाना पड़ेगा और उनको समझाना भी पड़ेगा और यह हर धर्म पर लागू होता है।

सन्दर्भ सूची

1. दैनिक जागरण, कानपुर 7 मार्च 2009।
2. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव : आज का भारत, कुछ अहम सवाल, कुछ बुनियादी समस्याएं, पैसिफिक पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 2011।
3. द टाइम्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली, 17 मई 2017।
4. कमलेश कुमार गुप्ता : महिला सशक्तिकरण, बुक एनक्लेव जयपुर, 2007।
5. अग्रवाल शारदा : आधी आबादी का यथार्थ भारतीय नारी, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010।
6. अमर उजाला, कानपुर, 21 जनवरी 2018।
7. आउटलुक, मासिक पत्रिका, अगस्त 2017।
8. Sharma R.A. 2003 fundamentals of Woman Special Education, A LAL book depoot meerut, Uttar Pradesh

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

भारत में वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली विकास की यात्रा

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
अध्यक्ष–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.

यह सत्य है कि ज्ञान और शब्दावली का विकास एक साथ होता है। हर नया ज्ञान भाषा से शब्दावली और अभिव्यक्ति की माँग करता है। जो अन्वेषक नए ज्ञान या विचार को जन्म देता है। वही उसे नाम या शब्द भी देता है। सामाजिक ग्राहता और मानकता पाने के लिए इस शब्द को प्रयोग की एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। मौलिक ज्ञान के साथ विकसित तकनीकी शब्द के विकास की यह एक सहज और प्राकृतिक प्रक्रिया है।[1]

वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान को जो लोग उधार लेकर अपनी भाषा में (अन्य देशों में विकसित) उतारना चाहते हैं। वहाँ शब्दावली विकास की प्रक्रिया एक भिन्न भाग का अनुसरण करती है। यह प्रक्रिया प्राकृतिक और सहज नहीं, सायास और नियोजित होती है, जिसमें तकनीकी शब्दों का नहीं बल्कि तकनीकी पर्यायों या समानार्थी शब्दों का विधान किया जाता है। मूल तकनीकी शब्द सीधे मूल संकल्पना से जुड़ा होता है, लेकिन पर्याय सामान्यतः उस संकल्पना के द्योतक किसी अन्य भाषा के शब्द का अनुदित रूप होता है। अन्वषेक के दिए नाम या शब्द पर कोई विवाद सम्भव नहीं है, लेकिन पर्याय प्रायः विवाद के घेरे में रहता है क्योंकि पर्याय का एकाधिक होना उसकी प्रकृति में ही है। पर्याय अन्वेषक की कृति नहीं, अनुवादक लेखक, या विषय विशेषज्ञ उसका निर्माता होता है, जो केवल सूचना को एक भाषा से दूसरी भाषा में अन्तरित करने का काम करता है।

भारत में जहाँ विज्ञान और टेक्नोलॉजी को अंग्रेजी भाषा पर निर्भर रखा गया है वहाँ समाज दो विपरीत समाजों में बँट गया है। एक समाज में विज्ञान और टेक्नोलॉजी की जानकारी रखने तथा सुविधा लेने वाला छोटा समाज तथा दूसरा अंग्रेजी विज्ञान से वंचित, विशाल समुदाय। इस तरह भाषा के द्वारा जनता को बुद्धिजीवियों, विज्ञान तथा प्रगति से वांछित कर दिया गया है। भारत में भाषा के मामले पर निर्भरता गुलामी की परिचायक है, क्योंकि जबसे विदेशी ताकतों ने आक्रमण करके यहाँ शासन स्थापित किया,तबसे यह भाषा की परनिर्भरता भी आरम्भ हुई। इस मानसिकता ने भारतीय मनीषी को कम विकलांग नहीं बनाया है। एक गुलाम देश शासक की हर चीज को सम्मान और भय की नजरों से देखता है। अंग्रेजों और अंग्रेजी के प्रति भारतीय बुद्धिजीवियों के मन में यही भाव है। भाषा की जड़ें समाज में गहरी होती हैं। चिंतन, संस्कृति, कला, विज्ञान इन सबसे देश–भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। गुलामी की मनोवृत्ति जब रक्त में घुली हो तो अपना सब कुछ भाषा तक हेय जान पड़ता है। सिर्फ अंग्रेजी के ही कारण जो बहुत ऊँचे पद पर बैठे हैं, वे सहज ही सुविधा एवं पद छोड़ना नहीं चाहते, बल्कि अपनी अगली संतानों के भीतर भी गुलामी की प्रकृति अनजाने ही डाल देते हैं। वे अंग्रेजी को विशिष्ट वर्ग की भाषा बनाए रखना चाहते हैं। वे अंग्रेजी को विश्व ज्ञान की खिड़की वगैरह कहते हैं। वस्तुतः सभी भाषाएँ ज्ञान की खिड़कियाँ हैं, फ्रेंच, जर्मन, चीनी, जापानी, अंग्रेजी आदि भाषाएँ जानना सीखना एक बात है, अपनी देश भाषा पर किसी विदेशी भाषा को प्रभुत्तव बना डालना और बात।[2]

किसी भी वैज्ञानिक की गई खोज या निष्पत्ति की अभिव्यक्ति प्रत्येक वैज्ञानिक शाखा के अन्तर्गत एक दूसरे के लिए बोधगम्य सामान्य शब्दों द्वारा ही संभव है। वैज्ञानिक भाषा की विशेषताः मूलतः संक्षिप्तता एवं सम्पूर्णता में ही निहित है। यह पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से ही संभव हो सकता है। जब कभी किसी वैज्ञानिक विषय का विवेचन विस्तार होता है, वहाँ पर उस विषय के आस–पास एक साहित्य का निर्माण होता है। इस साहित्य की

शब्दावली एक प्रकार के विशेष साहित्य का तकनीकी स्वभाव लेकर सामने आती है। ये शब्द परिभाषिक शब्दों के नाम से जाने जाते हैं। पारिभाषिक शब्द असल में अपने नियमों के आदान–प्रदान के लिए विशेषज्ञों द्वारा प्रयुक्त शब्द प्रतीत होते हैं जो किसी दूसरी भाषा से गृहीत, अनुकूलित या नवनिर्मित होते हैं। ये शब्द अपने में संक्षिप्त एवं विचारों के अंकन में काफी समर्थ होते हैं।

पारिभाषिक शब्दों की परम्परा भारत में विशेषतः व्याकरण, दर्शन, वैधशास्त्र, भौतिकी आदि क्षेत्रों में काफी पुरानी है। अर्थ विज्ञान, राजनीतिक एवं विधि के क्षेत्र मे भी कई पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त दिखाई देते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में से प्रयोग अत्यंत पुराने रहे। हॉलाकि मध्यकाल में इनका अभाव रहा। उस समय भारत की प्रतिभा प्रतिकूल वातावरण मे पूर्णरूप से विकसित नहीं हो सकी। लेकिन नए युग में पश्चिमी प्रभाव एवं सांस्कृतिक नवजागरण के फलस्वरूप विज्ञान एवं साहित्य में परम्परा के अनुवर्तन एवं प्राचीन साहित्य के पुनरूत्थान का कार्य होता रहा।[3]

वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली के निर्माण का कार्य हिन्दी मे नवजागरण के फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में शुरु हुआ। इस दिशा में सर्वप्रथम नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी दूसरा किया गया कार्य प्रशंसनीय है। इस सभा ने हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण का कार्य शुरु किया। सन् 1898 ई0 से लेकर सन् 1906 ई0 तक सभा ने कई वैज्ञानिक शाखाओं के लिए शब्दावली के निर्माण का कार्य किया। स्वतंत्रता के बाद जब समाज की सम्प्रेषण व्यवस्था में भारतीय भाषाओं को नई भूमिकाएँ प्रदान की गईं, तब इन भाषाओं को राजभाषा आधुनिक ज्ञान–विज्ञान और टेक्नालाजी की नई भाषिक माँगों को पूरा करने के लिए सक्षम और समृद्ध करने की आवश्यकता पड़ी। यहीं से भारतीय भाषाओं के आधुनिकीकरण और मानकीकरण की प्रक्रिया शुरु हुई। तकनीकी शब्दावली का निर्माण इसी प्रक्रिया का एक अंग है।

प्रश्न उठना लाजिमी है कि ऐसे भाषा समाज में जहाँ नई शब्दावली का विकास प्राकृतिक प्रक्रिया से होकर पर्यायों और नवनिर्मितियों के आधार पर हो, वहाँ विभिन्न भाषिक और सामाजिक दृष्टिकोणों का टकराव अवश्य भावी है। भारत में तीन परस्पर विरोधी विचारधाराओं ने शब्दावली निर्माण के कार्य को अत्यंत प्रभावित किया। एक ओर शुद्धतावादी विचारधारा के प्रतिनिधि डॉ0 रघुवीर ने समस्त अंग्रेजी शब्दों के बहिष्कार का संकल्प कर, संस्कृत की 520 धातुओं की सहायता से एक अंग्रेजी–हिन्दी तकनीकी कोश (1955) तैयार किया जिसमें वहिन्यान (मोटरकार), कूपी (बॉटल) और द्विचक्र (Bicycle) जैसे पर्यायों की भरमार थी। लेकिन भौतिकी (Physics), अभियंता (Engineer) तथा पंजीकरण (Registration) जैसे शब्द भी थे, जो बाद में ग्राह्य गये।

दूसरी ओर हिन्दुस्तानी कल्चर, सोसाइटी के प्रमुख पं0 सुन्दरलाल ने संस्कृत आधारित शब्दों का बहिष्कार कर हिन्दुस्तानी, ऊर्दू तथा बोलचाल के शब्दों के आधार पर तकनीकी शब्दावली बनाने का संकल्प लिया। इस आधार पर हैदराबाद से प्रकाशित अंग्रेजी–हिन्दी कोश (सन् 1953 ई0) में नार्मलियाना (Normalise), स्टैन्डर्डियाना (Standardise), पलटकारी (Seactionary) और मसनदी (Chairman) जैसे पर्याय दिए गए।

तीसरी ओर एक विचारधारा उन वैज्ञानिक, वकीलों और उच्च अधिकारियों की थी जो अंग्रेजी शब्दों का अनुवाद न कर उन्हें वैसे ही देवनगरी में लिख दिए जाने के पक्ष में थे, जैसे ब्लड, टेम्परेचर या फिजिक्स आदि।

हिन्दी भाषा–भाषी समाज ने तीनों में से किसी भी दृष्टिकोण को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया, क्योंकि एक ही दृष्टि केवल भाषा व्याकरण पर थी, प्रयोक्ता पर नहीं, दूसरे की दृष्टि केवल भाषा समाज पर थी, भाषा व्याकरण पर नहीं और तीसरे की दृष्टि केवल मौखिक भाषा रूपों के प्रतिमान पर। इसमें कोई दो राय नहीं कि भाषा समाज से अलग होती है, यह भाषिक सत्य वे नहीं समझ सके।[4]

हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली क विकास के इतिहास में मूल रूप से चार परम्पराओं का नाम गिनाया जा सकता है–

(1) प्राचीनतावादी या पुनरूद्धारवादी

(2) शब्द गृहवादी या स्वीकरणवादी

(3) प्रयोगवादी या हिन्दुस्तानीवादी

(4) समन्वयवादी या मध्यमार्गी।

तकनीकी शब्दावली के क्षेत्र में मानक पर्यायों का विकास करने और अखिल भारतीय स्तर पर सभी भारतीय भाषाओं के लिए शब्दावली निर्माण के सिद्धांत निरूपित करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने सन् 1961 ई0 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की। परस्पर विरोधी विचारधाराओं के बीच संतुलन स्थापित करते हुए आयोग ने शब्दावली विकास के जो सिद्धांत बनाए उनमें से चार विशेष उल्लेखनीय हैंः–(क) अन्तर्राष्ट्रीय विशेष तकनीकी शब्दों तथा कुछ विशेष कोटि के प्रचलित अंग्रेजी शब्दों को देवनगरी में लिप्यांतरित कर ग्रहण कर लिया जाए (प्रोटीन, मीटर) (ख) परम्परा से प्राप्त हिन्दी, ऊर्दू, हिन्दूस्तानी, अरबी–फारसी व तत्सम शब्दों को यथावत ग्रहण कर लिया जाए (दस्तावेज, शिनाख्त (ग) अन्य भारतीय भाषाओं में उपलब्ध तकनीकी शब्दों को आवश्यकतानुसार ग्रहण कर लिया जाए (साजग्रह, Green room, बंगला) और (घ) इन सबके बावजूद भी नये शब्दों का निर्माण जरूरी हो तो संस्कृत को आधार स्वीकार किया जाए, जिसमें सरलता का विशेष ध्यान रखा जाए।

अभी तक इस प्रक्रिया में तब से लेकर अभी तक विभिन्न ज्ञान शाखाओं के पाँच लाख से अधिक तकनीकी शब्द विकसित किए जा चुके हैं। जो विषयवार परिभाषिक शब्दों के रूप में उपलब्ध हैं। प्रयोग–प्रसार की दृष्टि से अब ये सभी शब्द कम्प्यूटर आधारित राष्ट्रीय शब्दावली बैंक के डाटा बेस में संचित व संसाधित किये जा चुके हैं जिससे कोश निर्माण प्रक्रिया में गति लाने के अतिरिक्त इन्हें (NICNET) उपग्रह के जरिए देश के विभिन्न केन्द्रों में तुरन्त प्रसारित किया जा सके।[5]

किसी भी तकनीक का पर्याय केवल अर्थ निर्धारित कर देने मात्र से मानक नहीं हो जाता। मानकीकरण प्रक्रिया के दो प्रमुख सोपान हैं–कोडीकरण और विस्तारीकरण। कोडीकरण का तात्पर्य है–रुपों की विविधता को कम से कम करना। शब्दावली के संदर्भ में इसका तात्पार्य है किसी शब्द के प्रचालित या उपलब्ध एक से अधिक पर्यायों में से एक का में चयन कर उसे उस अर्थ में स्थिर या रुढ़ करना। इसका प्राप्य लक्ष्य है– एक रूप (शब्द / एक अर्थ)

दूसरा सोपान है, विस्तारीकरण है जिसका तात्पर्य है व्यवहार या प्रकार्य की विविधता को अधिक से अधिक बढ़ाना। दूसरे शब्दों में, कोडीकृत या चयन किए गये पर्यायों का अधिक से अधिक व्यवहार क्षेत्रों में प्रयोग सुनिश्चित कर उन्हें प्रयोग सिद्ध बनाना। इसी सोपान में इन तकनीकी पर्यायों का प्रयोग परीक्षण, पुनरीक्षण और संशोधन भी होता है और इन्हें सामाजिक स्वीकृति या अस्वीकृति मिलती है।

इसमें कोई राय अलग नहीं कि पर्यायों के चयन का कोडीकरण सोपान का अधिकांश काम पूरा हो चुका है लेकिन व्यापक प्रयोग–प्रसार का सोपान अभी अधूरा है। शब्दावली का व्यापक प्रयोग–प्रसार सुनिश्चित करना शब्दावली निर्माण की अपेक्षा अधिक मुश्किल काम है। इसके लिए एक कल्पना रणनीति की आवश्यकता है। जैसे उच्च शिक्षा में माध्यम परिवर्तन सुनिश्चित करना, लक्ष्यवर्ग (प्रयोक्ताओं) से सम्पर्क स्थापित करना, सामाजिक ग्राहता और प्रयोगवत्ता की दृष्टि से शब्दावली प्रयोग का फील्ड सर्वेक्षण करना, शब्दावली के सम्बन्ध में जागरूता पैदा करना, निर्मित शब्दावली का पाठ लेखन के स्तर पर प्रयोग परीक्षण करना, उपयुक्त तकनीकी लेखन शैली का विकास करना और समस्त कोश निर्माण प्रक्रिया का आधुनिकीकरण करना।[6]

दूसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि जिन विषयों या व्यवहार–क्षेत्रों में हिन्दी के माध्यम से लेखन या अध्यापन का कार्य हो रहा है (जैसे प्रशासन, सामाजिक विज्ञान विषय या स्नातक स्तर तक विज्ञान) वहाँ उन विषयों से सम्बद्ध

नवविकसित तकनीकी शब्दावली का प्रयोग परीक्षण हो रहा है और आयोग के अधिकांश शब्दों को सामाजिक स्वीकृति मिल रही है। कुछ शब्दों के एकाधिकार पर्याय सामाजिक स्वीकृति के लिए अभी भी संघर्षरत हैं। कुछ शब्द हताहत भी हुए हैं। इसके विपरीत जिन विषयों में हिन्दी माध्यम ही स्वीकृति नहीं हुआ है (जैसे आयुर्विज्ञान, इंजीनियरी, प्रबंध विज्ञान और उच्च विज्ञान) उनमें नई शब्दावली को प्रयोग–परीक्षण का अवसर ही नहीं मिल पाया है। अतः इन विषयों की शब्दावली की सामाजिक ग्रहता के सम्बध में कोई अन्तिम निर्णय देना सम्भव नहीं।

तीसरा निष्कर्ष यह निकलता है कि भारत जैसे बहुभाषी देश में बहुपर्याप्तता या एक ही तकनीकी शब्द के लिए एकाधिक पर्यायों का प्रचलन एक सामान्य बात है। हिन्दी और ऊर्दू स्वयं पर्यायों की दो समानातर शैलियाँ प्रस्तुत करती हैं (निर्वाचन, चुनाव विधि, कानून) लेकिन दृष्टव्य है, बहुपर्याप्तता कई अन्य तत्वों की भी माँग हो सकती है–जैसे पाठक वर्ग, विषय, सन्दर्भ और सम्प्रेषण की रीति। उदाहरण के लिए, मौखिक तथा लिखित संम्प्रेषण या दूरदर्शन और संगोष्ठी के संम्प्रेषण में दो अलग–अलग पर्याय की माँग हो सकती है। इसी प्रकार अनुसंधान परक, छात्रोपयोगी और लोकप्रिय विज्ञान लेखन में तकनीकी पर्यायों के चयन, मानदण्ड अलग–अलग हो सकते हैं। इसलिए कई बार यह आवाज भी उठती है कि भारतीय समाज की अधिक क्षमता और भारत में विज्ञान लेखन की प्रारम्भिक अवस्था को ध्यान में रखते हुए हमें मानकता के प्रतिमान में कुछ लचीलापन लाना चाहिए और तकनीकीपन की थोड़ी कीमत चुकाकर भी हमें किंचित शिथिल लेकिन सुग्राह शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए। इस तर्क में सामाजिक वजन है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता है। यदि वजन न होता तो जो लेखक दुर्बोध तकनीकी पर्यायों के बजाय अंग्रेजी शब्द को देवनागरी में ही लिखकर प्रस्तुत कर देते हैं उन्हें समाज क्यों अघोशित स्वीकृति देता ?

इन सब नीतियों के आलोक के परिदृश्य में यह कहा जा सकता है कि आयोग की शब्दावली में कम से कम चार दृष्टिकोणों का विम्ब साफ नजर आएगा–

(1) एक अर्थ के लिए यथा संभव केवल एक पर्याय निर्धारित करने का आग्रह जिससे समानधर्मी शब्दों के बीच सूक्ष्म तकनीकी अर्थभेद की रक्षा हो सके। इसका एक प्रासंगिक परिणाम यह हुआ कि अर्थ की दृष्टि से शिथिल लेकिन लोक प्रचालित कई पर्यायों को कोश में स्थान नहीं मिल पाया।

(2) पर्यायों के चयन में अधिक प्रचलित होते हुए भी अनुर्बर (बाँझ) शब्दों के बजाय उर्वर शब्दों को प्राथमिकता देने का आग्रह, क्योंकि उर्वर शब्दों से अनेक शब्द व्युत्पन्न किए जा सकते हैं (विमान–हवाई जहाज, विधि, कानून)।

(3) तकनीकी शब्दों को अखिल भारतीय स्वरुप प्रदान करने का आग्रह जिसके फलस्वरुप पर्यायों के चयन में प्रायः संस्कृत मूल शब्दों को प्राथमिकता मिली, क्योंकि अधिकांश भारतीय भाषाओं में संस्कृत शब्द हिन्दुस्तानी या ऊर्दू की तुलना में अधिक बोधगम्य हैं।

(4) पयार्यों के चयन तथा निर्माण में परम्परागत तथा गैर–परम्परागत युक्तियों का प्रयोग जैसे परम्परा से प्राप्त शब्द (विशुवत रेखा, मुआवजा), नया अर्थ देकर प्राचीन अथवा अप्रचलित शब्दों का पुनःरूझान (संसद, अकाशवाणी) अर्थ विस्तार (जनगणना, लाभांश) आदि।

निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी में तकनीकी प्रयुक्ति (Register) क्षेत्र में भी व्यापक शब्द भण्डार उपलब्ध हैं किन्तु उसके प्रयोग के अवसरों की कमी है, जिसे सरकार ही प्रदान कर सकती है। सही भाषा–प्रयोक्ता विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उच्चस्तर का कार्य कर सकता है। ऐसे अनुवादकों का एक केन्द्रीय संस्थान बनाने की आवश्यकता है। कोई भी भाषा निरन्तर प्रयोग के द्वारा ही जीवन्त और प्रखर बनी रहती है। हिन्दी में यदि लगातार चिंतन, लेखन, अनुवाद कार्य होते रहे तो हिन्दी की वास्तविक ऊर्जा का परिचय हमें मिल सकेगा।

इसके लिए वैज्ञानिक में साहित्यकार की संवेदना तथा साहित्यकार में वैज्ञानिक चेतना का होना सोने में सुहागा होगा। विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों में कार्यरत लोगों की भाषा के प्रति मानसिकता बदलने की आवश्यकता है। शब्दावली–निर्माण का संबंध सिर्फ आकस्मिक ज्ञान से नहीं बल्कि व्यवहारिक क्षेत्रों से होना चाहिए। अनपढ़, कामगार, मजदूर, मिस्त्री आदि जिन शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। उन्हें कोशकार को स्वीकार करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। विज्ञान और तकनीकी ज्ञान स्वभाषा के माध्यम से सहजता से प्राप्त किया जा सकता है और साथ ही व्यक्त भी किया जा सकता है।[7]

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भाषा, संस्कृति और लोक, डॉ0 दयानिधि मिश्रा,पृ. 72
2. हिन्दी विविध व्यवहारों की भाषा–सुवास कुमार, पृष्ठ 48
3. राजभाषा हिन्दी प्रगति और प्रभाव, डॉ0 इकबाल अहमद, पृष्ठ 93
4. भाषा, सांस्कृतिक और लोक, डॉ0 दयानीधि मिश्र, पृ0 73
5. भाषा, संस्कृति और लोक–डॉ0 दयानिधि मिश्र, पृ0 74
6. भाषा, संस्कृत और लोक, पृ0 75
7. हिन्दी विविध व्यवहारों की भाषा, डॉ0 सुवास कुमार, पृ0 64

❑❑

डॉ0 राम कमल राय साहित्य की सरसता, सजग, संवेदना और सूक्ष्म विषद विवेचना की प्रवहमान त्रिवेणी थे। डॉ रामकमल राय अध्यपाक, लेखक और राजनीति कर्मी के साथ–साथ एक यायावार भी थे। यात्राएँ उन्हें प्रिय थीं। वे मुक्त मन से पर्वत प्रदेशों और सुदूर अंचलों की यात्राएँ किया करते थे।

✍ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय भावना

डॉ0 मोहम्मद इकबाल सिद्दीकी
असि0 प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
यदुराई देवी कनौजी लाल महाविद्यालय कबीरपुर, उन्नाव उ0प्र0

हिन्दी साहित्य अपने आविर्भाव काल से ही अत्यन्त उदारवादी भावनाओं से ओत–प्रोत रहा है। हिन्दी साहित्य के वीरगाथा अर्थात् आदिकालीन साहित्य का मूल्याकंन करने पर यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि इस काल के रचनाकार समाज और देश की दशा से कभी भी तटस्थ नही रहे है। आदिकालीन साहित्य अधिकाशतः राजतंत्रीय व्यवस्था के आस पास घूमता रहा है। इस काल के रचनाकारों की देश भक्ति, राष्ट्रीय चेतना आश्रयदाताओं के राज दरबारों तक ही थी। हिन्दी साहित्य का मध्यकाल भारत का वह काल था जिसमें भौगोलिक सीमाओं एवं धर्म प्रेरित शासकों की नितियों के कारण वह अपनी एकता और अखण्डता खो चुका था। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन में सन्तों एवं भक्तों द्वारा धार्मिक, सांस्कृतिक एकता के लिए बराबर प्रयास होते रहे। भक्ति आन्दोलन का आविर्भाव दक्षिण में हुआ, आलवार सन्तों ने देश को एक नयी दिशा दी। भक्ति की यह स्त्रोतास्विनी अजस्र रुप से सिन्ध, पंजाब बंगाल, महाराष्ट्र, काश्मीर, आन्ध्र एवं तमिलनाडु आदि प्रान्तों में प्रवाहित होती रही। जिसके फलस्वरुप विभिन्न जनपद एवं प्रान्त राष्ट्रीय एकता के सुदृढ़ सूत्र में बंधे। भारतेन्दु युग में आकर राष्ट्रीय चेतना और राजनीतिक चेतना में कोई अन्तर नहीं रह गया और द्विवेदी युग में आकर यही राष्ट्रीय चेतना विद्रोही चेतना का रुप धारण कर लेती है और अनेक कवियों तथा लेखकों ने गांधीजी के नेतृत्व को स्वीकार किया साथ ही अपनी कृतियों के माध्यम से राष्ट्र की रक्षा के लिए स्वतंत्रता की लड़ाई में सर्वस्व समर्पण कर देने के लिए उत्साहित किया। यहाँ आते आते राष्ट्रीय चेतना की प्रकृति में इतना बदलाव आया कि पूर्ववर्ती राष्ट्रीय चेतना को पहचानना कठिन हो जाता है। पर आधुनिक काल के साहित्कारों ने परम्परा और आधुनिकता का समन्वय कर जिस आधुनिक राष्ट्रीय भावधारा को पुष्पित–पल्लवित किया है उस में राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त का स्थान सर्वोपरि है।

जब हम देश प्रेम, राष्ट्र प्रेम अथवा देशभक्ति की बात करते है तब वह उस स्थिति मे ही सभंव है जब व्यक्ति को अपने और राष्ट्र की समस्त भौगोलिक एवं सांस्कृतिक सम्पत्ति से लगाव हो, वस्तु स्थिति यह है कि राजनीतिक परिवेश में जिसे राष्ट्रीयता की संज्ञा दी जाती है उसे ही साहित्य की भाषा में देश प्रेम देशभक्ति और राष्ट्र प्रेम की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। राष्ट्रीय महिमा का गुणवान, राष्ट्र की स्वाधीनता और स्वतंत्रता हेतु राष्ट्रवासियों को आत्मोत्सर्ग के लिए प्रेरणा देना, राष्ट्रीय एकता और अखण्डता हेतु प्रोत्साहित करना देश की गौरवपूर्ण संस्कृति के प्रति तीव्र घृणा एवं क्षोभ जागृत करना, राष्ट्र की सामूहिक उन्नति, प्रगति एवं समृद्धि हेतु जनमत तैयार करना शासकीय दमन का साहस के साथ विरोध करना राष्ट्रीय भावना है। राष्ट्रीय भावना की उक्त कसौटी पर जब हम मैथिलीशरण गुप्त को रखते है तब देखते है कि गुप्तजी का समूचा रचना संसार राष्ट्रीय भावना से मंडित है। वह उनकी देशभक्ति और राष्ट्रीय चेतना ही थी जिसके लिए जेल भी जाना पड़ा। अंग्रेजी शासन द्वारा भारत को लूटते देख उनका राष्ट्र प्रेमी ह्दय व्यग्र हो उठा, यही एक सबसे प्रबल कारण था कि गुप्तजी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्वदेशवासियों को ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह करने के हेतु प्रोत्साहित किया। ग्रामोत्थान, अहिंसा, सत्याग्रह, हिन्दू–मुस्लिम एकता आदि भावनाओं को साहित्य की वीणा से झंक्रित किया। 1912 में तीनों खण्डो में प्रकाशित 'भारत–भारती' पूर्णतः राष्ट्रीय भावनाओं की पोषक है। इस में प्रचीन भारत के उज्जवल अतीत का वर्णन है। वर्तमान भारत की विषम आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति के उल्लेख के साथ भावी भारत के लिए ऊषा की पहली किरण है। 'भारत–भारती' के आरम्भ में ही गुप्त जी समस्त भारतवासियों को उनके उज्जवल अतीत से अवगत कराते है –

''हम कौन थे, क्या हो गये है और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।''

हकीकत यही है कि गुप्तजी 'भारत–भारती' के माध्यम से यही कहना चाहते है कि राष्ट्रव्यापी समस्याओं का समाधान तब तक नहीं हो सकता जब तक कि समस्त आर्य सन्तान एक नहीं होंगे। अतः अतीत कालीन वैभव उनकी असीम शक्ति का स्मरण के गरिमामय सन्दर्भो के दृष्टान्तों द्वारा गुप्तजी ने राष्ट्र को उदबुद्ध किया है। राष्ट्रीय चेतना और पुनर्जागरण की भावना जागृत करने का सर्वप्रथम सकल प्रयास गुप्त जी की भारत–भारती में हुआ है। 'भारत–भारती' गुप्त जी की अनुपम काव्य कृति है। जिसके प्रकाशन से सम्पूर्ण हिन्दी साहित्यजगत राष्ट्रीय भावना से आप्लावित हो उठा और वह हिन्दी प्रेमियों का कण्ठहार बन गई। 'भारत–भारती' तत्कालीन भारत, जिसे अन्यना सर्वस्व क्षोभ कर दिया था की जनता के राष्ट्रीय विचारों की संवाहिका बनी, फिर क्या था समूचा राष्ट्र आन्दोलित हुआ, अंगेज महाप्रभुओं के मस्तिष्क झन्ना उठे और परिणाम यह हुआ कि कवि और उसकी कृति दोनों ही अंग्रेज महाप्रभुओं के कोप का भाजन बने। यही नहीं 'भारत–भारती' पर प्रतिबंध लगा और उसकी प्रतियां जब्त कर ली गयीं और प्रकाशन तक बन्द कर दिया गया। 'भारत–भारती' का वर्तमान खण्ड गरीबी, भुखमरी, अविद्या, ढोंग आदि के सजीव वर्णनो से भरा पड़ा है जिसके माध्यम से राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने सम्पूर्ण देश में सामाजिक चेतना लाने का स्तुत्य प्रयास किया। उनका राष्ट्र प्रेमी मन राष्ट्रीय समृद्धि हेतु वेचैन हो उठता है और देश की अवनति का वर्णन करते हुए वे लिखते है –

''दुःशीलता दासी हमारी, मूर्खता महिशी सदा।
है स्वार्थ सिंहासन हमारा मोहमन्त्री सर्वथा।
यों पावरपुर में राजपद हा कौन पाना चाहता ?
चढ़कर गधे पर कौन जन बैकुण्ठ जाना चाहता?

एक राष्ट्र का सदस्य होने के नाते गुप्तजी के लिए यह आवश्यक था कि अंग्रेज महाप्रभुओं की मुट्ठी में कैद भारत की आजादी को कैसे मुक्त कराया जाय? इसके लिए गुप्तजी ने देश की सम्पूर्ण जनता को एकता के सूत्र में बाँधने का अनवरत प्रयास किया और राष्ट्र प्रेम जैसी पुनीत भावना को जनमानस मे ंप्रतिष्ठित करने के साथ गुप्तजी ने देश की अखण्डता एवं एकता के लिए एक शासन और एक राज्य का होना आवश्यक माना। यदि एक राष्ट्र अथवा देश कई राज्यों में विभक्त हो या उस देश अथवा राष्ट्र में कई राजा हों तो उस राष्ट्र की शान्ति बिखर जाती है और वह देश प्रगति के लिए उन्होंने समस्त देशवासियों को एकता के सुदृढ़ बन्धन में बँध जाने का सन्देश दिया –

''एक राष्ट्र न हो, बहुत से हो जहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।''

इस दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि देश की जिस एकता और अखण्डता की बात आज चर्चा का विषय बनी हुई है, हमारी सरकार और उसके विभिन्न राजनीतिक तन्त्र जिस भावात्मक एकता का स्वांग सच रहे है और उसके लिए ढिंढोरा पीटते फिर रहे है, उस एकता की शंखनाद गुप्त जी ने पराधीन भारत के समय ही किया था, गुप्तजी ने देश में रहने वाले विभिन्न जाति, धर्म, सम्प्रदाय, क्षेत्र, संस्कृति एवं भाषा के लोगो को विविध रंगों एवं सुगन्धों वाले सुन्दर सुमनों से निर्मित एक हार (माला) का रुप दिया है, जिस प्रकार एक हार के सृजन में विभिनन सुमनों (पुष्पों) का योगदान आवश्यक हो जाता है उसी प्रकार देशोत्थान और उसकी एकतारुपी माला (हार) के निर्माण के लिए विभिन्न जाति संस्कृति धर्म और भाषा–भाषियों की भूमिका वांछनीय है इसका वर्णन 'भारत–भारती' के भविष्य खण्ड में हुआ है –

''आओ मिले सब देश बांधव, हार बनकर देश के
साधक बने सब प्रेम से सुख शान्तिमय उद्देश्य के।''

कविवर मैथिलीशरण गुप्त जी ने राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के लिए विविध पत्रों का उद्घाटन बड़ी सतर्कता और दूरदर्शिता के साथ किया है। अकेले 'भारत–भारती' ही हमारे अन्दर राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध करने के लिए पर्याप्त है, फिर भी ऐसा नहीं कि राष्ट्र कवि की अन्य कृतियों में राष्ट्रीय भावना का अभाव है। कवि की सभी कृतियां व्यापक राष्ट्रीय चेतना, देशभक्ति और देश प्रेम की पवित्र भावना से मंडित है। साकेत, जयभारत, जयद्रथ बध आदि रचनाओं में राष्ट्र प्रेम की समग्रता के दर्शन होते है। ''साकेत'' गुप्तजी की एक युग प्रतिनिधि रचना है, जिसमें राम कथा को अधार बनाया गया है। विषय भाषा, शैली एवं उददेश्य सभी दृष्टि से युग सापेक्ष रचना है जिससे महाकाव्य की गरिमा प्राप्त है। 'साकेत' के सभी पात्र आधुनिक है विशेषतः 'साकेत' के नारी पात्र राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत हैं। तत्युगीन परिवेश में उनकी भूमिका सर्वथा अनुकरणीय है। यह गुप्तजी जैसे महान रचनाकार से ही सम्भव था। आधुनिकताबोध जितना गुप्त जी की रचनाओं में हमें देखने को मिलता है, उतना आधुनिक युग के किसी अन्य रचनाकार में नहीं मिलता। गुप्त जी को भारत के अन्दर अतीत का अथाह ज्ञान था। जिसके आधार पर उन्होंने भावी भारत के पुनर्निर्माण का जोरदार समर्थन भी किया, जो उन्हें एक श्रेष्ठ रचनाकार के रुप में प्रतिष्ठित करता है। अंग्रेजी दासता के प्रति लोगों में विक्षोभ की भावना उत्पन्न हो गयी थी। जिसकी चरमपरिणति भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के रुप में हुई और समूचा देश आन्दोलित हो उठा। मैथिलीशरण गुप्त का सहित्याकार ह्रदय इसे अनदेखा नहीं कर सका और अपने साहित्य सृजन को राष्ट्रीय आन्दोलन से पूर्णतः जोड़ा। गुप्त जी ने ऐतिहासिक एवं पौराणिक पात्रों को प्रतीको के रुप में चित्रित कर उन्हे प्रासंगिक बनाया है। मैथिलीशरण गुप्त जी के आख्यान अत्यन्त प्रसिद्ध है, 'जयद्रथबध' से लेकर 'साकेत', 'द्वापर' ''सिद्धराज'' 'काबा और कर्बला' तथा 'जयभारत' तक हमें पुरानी कथाएं और प्राचीन वीरयोद्धाओं की भाषाएं सुनने को मिल सकती है किन्तु ऐसा नहीं है कि महाभारत और पुराणों की कथा को गुप्तजी ने ज्यों का त्यों ग्रहण किया है, जहां कहीं अन्याय आदि की बात आयी है गुप्तजी ने उनका खुलकर विरोध किया है। साकेत को ही लें बात हो रही है, लंका में बन्दिनी सीता जी पर कवि कहना क्या चाहता है?

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षस के बन्धन में
सिन्धु पार वह विलख रही व्याकुल मन में।

इस प्रकार 'साकेत' की सीमा समुद्र पार अंग्रेज शासकों के बन्धन में जकड़ी भारत लक्ष्मी के रुप में अपना स्वरुप अधिक मुख करती है। इसके बाद भी किसी के समझ में बात न आती हो तो कवि आगे भी कहता है –

सजे अभी साकेत बजे हां जय का डंका
रह न जाय अब कहीं किसी रावण की लंका।

यहाँ गुप्त जी ने पूर्ववर्ती राम कथाओं के रावण की बात नहीं की अपितु वर्तमान रावण की बात है। राष्ट्रीय चेतना गुप्त जी के जीवन का अंग बन चुकी थी, जो साकेत जैसे परम्परित काव्य में भी अभिव्यक्त हुई 'साकेत' के सभी पात्र इस रुप में उपस्थित किये गये है कि वे वर्तमान प्रसंग में राष्ट्रीय भावना की पवित्र धारा के अपरिहार्य अंग बन गए है। 'साकेत' के राम न्याय और सत्य की विजय हेतु संघर्ष का मार्ग अपनाते है तो सीता भी उनका सहयोग करती हुई दिखाई पड़ती है। चित्रकूट प्रसंग में सीता का साधारण मानवीय हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। 'साकेत' की सीता पूर्ण रुपेण आत्मनिर्भर है –

औरो के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ,
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।

इस प्रकार सीता जी का सूतकातना और बुनना हमारे समक्ष गांधी जी के चरखा गीत को उपस्थित करता

है और इसके प्रति गुपत जी पूर्णतः निष्ठावान दिखाई भी देते है। 'साकेत' की सीता का स्वरुप समाज से विकास के रुप में और अधिक पूर्णता को प्राप्त करता है। सूत कातने बुनने तथा चरखा गीत से सीता को सम्बद्ध कर कवि ने उनमें आधुनिक राष्ट्रीय भावना को निवेसित करने का सफल प्रयास किया है। गुप्तजी अपने रचनाकाल की अवधि में यदि किसी से बहुत अधिक प्रभावित हुए है तो वह राष्ट्रपिता महात्मा गांधी थे। देश की आजादी के लिए गांधी जी द्वारा देशव्यापी आन्दोलन चलाया जा रहा था। राष्ट्र की रक्षा के लिए गांधी जी ने सांस्कृतिक, धार्मिक सामाजिक क्षेत्र में लोगों की मानसिकता को भी सुधारने का प्रयास किया क्योकि इसके अभाव में स्थायी स्वराज्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी इसके लिए गांधी जी ने समाज के उपेक्षित वर्ग को भी महत्व दिया और अछूतोद्धार जैसे विभिन्न कार्यक्रमों को राष्ट्रीय आन्दोलन की महत्वपूर्ण कड़ी के रुप में स्वीकार किया। भारत में रामराज्य की स्थापना ही गांधी जी का मुख्य उद्देश्य था। गांधी जी की इस विचाराधारा का प्रभाव हमें साकेतकार में भी देखने को मिलता है। 'साकेत' पात्रों की अवतारणा राष्ट्रीयता भावना की अभिव्यक्ति के लिए हुई है ऐसी बात नहीं है। क्योकि गुप्तजी की अन्य रचनाओं में भी उनके पात्र अपने युग का प्रतिनिधित्व करते है। ''काबा और कर्बला'' 'द्वापर' के बलराम में भी मातृभूमि के लिए बलिदान हो जाने की बात पाई जाती है –

एक एक सौ सौ अन्यायी कंसो को ललकारो ।
अपनी पुण्य भूमि के ऊपर धन जीवन सब वारो।

गुरुकुल बनी यह उक्ति कि देश की उन्नति के लिए जाति, कुल एवं सम्मान की रक्षा के लिए अपने को बलिदेवी पर चढ़ा देना सच्चे अर्थो में राष्ट्रीय भावना का परिचायक है।

जिस कुल जाति देश के बच्चे दे सकते है यों बलिदान
उसका वर्तमान कुछ भी हो भविष्य है महामहान।

गुप्तजी रचनाओं में संघ शक्ति की भावना का अत्यन्त सफल चित्रण हुआ है सब धर्मो, जातियों एवं ऊँच नीच जैसे निम्न विचारों को त्याग कर सबको एक हो जाने का संदेश दिया गया है उनका विश्वास था कि जब तक समस्त भारतवासी अपनी जातीयता, क्षेत्रीयता एवं धार्मिक कट्टरता जैसे घृणित विचारों की होली नहीं जला देंगे तब तक राष्ट्रीय एकता कायम ही नही असम्भव है। अतः स्वदेश संगीत में राष्ट्रीय एकता जैसी पुनीत भावना के प्रति कविवर गुप्त जी अधिक सजग दीखते है–

हिन्दू मुसलमान सब भाई, निज नवीन नव गान।
वैष्णव, बौद्ध जैन आदि हम उस पर हिंसा करें कि प्यार,
त्याग्रह है कवच हमारा, कर देखे कोई भी वार
हार मान कर शत्रु स्वयं ही यहाँ करेंगे वित्राचार।

'मंगलघट' में भी राष्ट्रीय एकता और अखण्डता पर बल देते गुप्तजी ने इस बात को और अधिक स्पष्ट कर दिया है कि यदि सभी जाति धर्म में एक रुपता आ जाय अर्थात वे आपस में एक जुट होकर रहें तथा परस्पर सौहार्द्र से रहकर सभी सबके लिए कल्याण की कामना करें तो देश की अपने आप समृद्धि होगी। देश महान होगा और उसके स्थायित्व की अधिक संभावना रहेगी। 'पृथ्वीपुत्र' में भी यही बात कि राष्ट्रीय उत्थान के लिए हिलमिलकर कार्य करना चाहिए कही गई है। 'आओ मिलकर करें राष्ट्र के लिए कठिन भी कृत्य' राष्ट्रीय भावना के सन्दर्भ में जब हम साहित्य अथवा साहित्यकारों की भूमिका को देखते है, निःसंकोच रुप से कहना पड़ता है कि राष्ट्रीय एकता को कायम रखने के लिए हमारे देश की सेना, बन्दूकों, बडे–बडे युद्धक विमानों, टैंकों, ऐटमबम तथा अन्य अनेक आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग करती है उसी प्रकार राष्ट्रीयता की रक्षा साहित्य अथवा साहित्यकार भी करता है। वह देश की एकता और अखंडता के लिए हमारे अन्दर क्रान्तिकारी विचार, बलिदान होने की भावना उत्पन्न करता है।

अन्त में हम कह सकते है कि मैथिलीशरण गुप्तजी न केवल राष्ट्र प्रेम एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए साहित्य के माध्यम से जनमानस को उद्‌बुद्ध किया अपितु स्वयं जेल जाकर अपनी राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है। गुप्त जी की सम्पूर्ण रचनाओं में युगबोध और राष्ट्रीयता परिलक्षित होती है। यह उनके रचनाकार व्यक्तित्व की ही विशेषता है कि उनके समस्त पात्र एक सर्तक एवं जागरुक प्रहरी की भांति अपने अपने दायित्व एवं युग का प्रतिनिधित्व करते है। राष्ट्रीय भावना के पीछे भारतीय साहित्कारों की एक लम्बी परम्परा रही है। जिसमें मैथिलीशरण गुप्त का स्थान सर्वोपरि है। वैसे तो इनका रचना संसार आद्योपान्त राष्ट्रीय गर्जना से आपूर्ण है साथ ही तत्कालीन विषय सामाजिक स्थितियों का जितना सजीव वर्णन किया है वह उन्हें महाकवि गरिमा पर प्रतिष्ठित करता है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त एक ऐसे सरस्वती पुत्र है, जिनकी साहित्यिक वाणी आने वाले दिनों में भारतीय समाज तथा राष्ट्र के निवासियों में देशोत्थान एवं राष्ट्रीय समृद्धि के लिए बलिदान हो जाने की भावना जागृत करती रहेगी और राष्ट्र कवि के रुप में मैथिलीशरण गुप्तजी युगों–युगो ंतक राष्ट्रप्रेमियों द्वारा याद आते रहेंगें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत भारती – अतीतखण्ड – मैथिलीशरण गुप्त
2. भारत भारती – वर्तमानखण्ड – मैथिलीशरण गुप्त
3. भारत भारती – भविश्यखण्ड – मैथिलीशरण गुप्त
4. सकेत – द्वादश सर्ग – मैथिलीशरण गुप्त
5. मंगलघट – मातृमन्दिर – मैथिलीशरण गुप्त
6. युग और कविता – मैथिलीशरण गुप्त
7. यशोधरा – मैथिलीशरण गुप्त
8. जयभारत – मैथिलीशरण गुप्त
9. पृथ्वीपुत्र – मैथिलीशरण गुप्त
10. जयद्रथ बध – मैथिलीशरण गुप्त
11. गुरुकुल – मैथिलीशरण गुप्त
12. राजा–प्रजा – मैथिलीशरण गुप्त

❑❑❑

स्त्री–विमर्श : वर्तमान कथा साहित्य के संदर्भ में

डॉ. सविता मसीह
हिन्दी विभाग
शासकीय स्नातक महाविद्यालय, सिवनी

स्त्री विमर्श समाज में स्त्री की स्थिति और जीवन मूल्यों की प्राप्ति और अधिकारों की प्राप्ति के लिये किये गये संघर्ष और प्रयासों पर चर्चा है। आज यह एक स्वीकृत माप–दण्डों पर आधारित समीक्षा प्रणाली है जो मानव जीवन के सभी अंगो और गतिविधियों की पुर्नव्याख्या के लिए संभावनाएँ बनाती है। परिवार – समाज के शक्ति समीकरणों कला साहित्य जैसे आत्म प्रकाशन के माध्यमों की बुनियाद में स्थित "राजनीतियों" को स्त्री–विमर्श के जरिए समझने के प्रयास हो रहे है। स्त्री–देह, स्त्री प्रजनन क्षमता, स्त्री देह की शुचिता ये माध्यम है जो पुरुष वर्चस्व को सम्मिलित करते रहते है। हमारा साहित्य, दर्शन, घर्म, इतिहास सब इसी पुरुष–प्रधान पितृसत्ता का विस्तार है और स्त्री की परवश्ता को वैधता प्रदान करने के लिए इस्तेमाल किये जाते है। स्त्रीवादी साहित्यालोचना की रोशनी में साहित्यिक गतिविधि के प्रत्येक क्षेत्र का पुनरीक्षण किया जाना एवं उसको वैध स्थान दिलाने के लिए उसकी अलग परम्परा को स्थापित करने का उद्‌देश्य लक्षित करता है।

विगत वर्षो में साहित्य और चिन्तन को जिन विचारों ने प्रभावित किया है उनमें स्त्री मुक्ति का प्रश्न स्त्री–विमर्श के केन्द्र मे है। इस दौरान साहित्यिक गोष्ठियों, परिचर्चाओं और पत्रिकाओं के विशेषांक में स्त्री–विमर्श छाया रहा है। स्त्री विमर्श पर कई महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई जैसे मैत्रैयी पुष्पा की 'खुली खिड़कियॉ' तथा "सुनो मालिक सुनो" नासिरा शर्मा की "औरत के लिए औरत", अनामिका की मन मांझने की जरूरत, गीताश्री की स्त्री आकांक्षा के मानचित्र नीलम कुलश्रेश्ठ की 'जीवन की तनि डोर' क्षमा शर्मा की "स्त्रीवादी विमर्श" समाज और साहित्य, मनीशा की 'हम' सभ्य औरतें 'वृन्दा कारत की' जीना है तो लड़ना होगा' तथा स्त्री विमर्श पर क्लासिक का दर्जा रखने वाली मेरी वाल्सन क्राप्ट की 'ए वेन्टीकेशन ऑफ द लाइट' का हिन्दी अनुवाद 'स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन।' ये सभी पुस्तकें स्त्री–विमर्श को सोचने समझने की दृष्टि तो देती ही है। वैश्वीकरण और भूमंडल से उपजी समस्याओं के साथ नारी विमर्श को सयुक्त भी करती है । "साहित्यिक दृष्टि से नारी विमर्श का एक छोर अगर पितृसत्तामक व्यवस्था के निरीक्षण पुनरीक्षण से जुड़ता है तो दूसरा स्त्री नियति को उसकी समग्रता और विविधता में जानने से वैदिक युग पौराणिक युग में स्त्रियॉ हमेशा से सम्मान पाती रही हैं। मध्ययुग की बर्बरता कुरीतियों, कुप्रथाओं ने उन्हें दयनीय बना दिया था।"[1]

मध्य युग में मीरा ने तो अपनी स्वतंत्रता प्रकट करते हुए कहा :–

"छाड़ि दई कुल की कानि कहा करै कोई
संतन ढिग बैठि–बैठि लोकलाज खोई।।"[2]

मीरा के समान ही भक्तिकाल में एक ओर कवयित्री 'ताज' की वाणी सुनाई देती है :–

"सुनो दिल जानी मेरे दिल की कहानी
तुम दर्स्त ही बिकानी बदनामी भी सहोगी मै
हॉ तो मुसलमानी हिन्दवानी मै रहौगी मैं।"[3]

आधुनिक काल के साहित्य ने स्त्री की दशा सुधारने में काफी योगदान दिया है। शिक्षा के प्रचार–प्रसार मे स्त्री संघर्ष और चेतना को बढ़ाया। मिल, जर्मेन, ग्रीयर, केट मिजेठ सिमॉनद वोउवा जैसे विदेशियों ने भी स्त्री –

विमर्श को साहित्य का केन्द्र बनाया। भारतीय साहित्यकार जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, मैथलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र कुमार इलाचन्द जोशी, अज्ञेय, यशपाल नागार्जुन उपेन्द्रनाथ अश्क, ममता कालिया, नमिता सिंह, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती प्रभाखेतान, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, मधु संधु आदि साहित्यकारों ने स्त्री–विमर्श को नई परिभाषा दी।

जयशंकर प्रसाद ने कामायनी मैं 'श्रद्वा' को आदि शक्ति के रूप में उसका वैचारिक पक्ष रखा।

'नारी तुम केवल श्रद्वा हो
विश्वास रजत नग पग तल में।'[4]

निराला ने 'वह तोड़ती पत्थर में' गरीब मजदूर स्त्री की परिस्थिति का चित्रण करते हुए उसे भी जीवन की आराधिका ही माना। सुमित्रानंदन पंत ने भी स्त्री के जीवन के विविध चित्र प्रस्तुत किये हैं।

प्रेमचन्द्र ने 'गोदान' में स्त्री के गुणों पर लिखा हैं – "पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह देवता बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आने से वह कुलटा हो जाती है।"[5]

जैनेन्द्र ने सुनीता, त्यागपत्र उपन्यास में स्त्री विमर्श को रेखांकित किया।

आचार्य हाजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में प्रखर स्त्री विमर्श का चित्रण किया है। निपुणिका में वह साहस है जो जीवन मूल्यों से मुर्दा होते जा रहे समाज को ललकारने का साहस रखती है। वह बाणभट्ट से कहती है – तुम असुर–गृह युद्ध में आबद्व–लक्ष्मी का उद्वारा करने का साहस रखते हो। मदिरा के पंक में डूबी हुई कामधेनु को उबारना चाहते हो।[6]

धूमिल की पंक्तियों में –

'लोहे का स्वाद लोहार से नहीं
घोडे से पूछो
जिसके मुँह में लगाम है'

धूमिल की इस कविता से नारी विमर्श की प्रमाणिकता और गहराई स्वयं सिद्व होती है।

"स्त्री विमर्श एक नए समाज की संरचना का संकल्प है। ऐसा समाज जहॉ पुरुष कर्ता न हो और स्त्री कर्म न होकर कर्ता हो।"[7]

नगमा जावेद कहती है – "इस विमर्श ने पितृसत्तामक मूल्यों के दोहरे मानदण्डों, लिंग भेद की राजनीति व सामाजिक संरचना के अन्तविरोधों पर उंगली रखी है। बर्बर स्त्री विरोधी व्यवस्था ने सदियों तक स्त्री को कदम–कदम पर रौदा है। उसके व्यक्तित्व को नकारते हुए उसकी गरिमा का हनन किया है। पुरुषवादी वर्चस्व ने स्त्री के गले में सतीत्व, मातृत्व, नारीतत्व के फंदे डालकर उसे अपना गुलाम बनाया है। स्त्रीवादी लेखन मर्दवाद की प्रभुता को अस्वीकार करता है।"[8]

साहित्यिक सन्दर्भो में स्त्री विमर्श संबंधी दस्तक आधुनिक युग की देन नही हैं। महिलाओं द्वारा रचित स्त्री विमर्श का प्रथम दस्तावेज थेरिगाथा लगभग 2500 वर्षो पुराना साहित्य है। इसमें स्त्रियों की मुक्ति कामना के साथ गौतम बुद्व के समय की स्त्रियॉ तत्तकालीन मूल्यों पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। मराठी भाषायी ताराबाई शिन्दे की पुस्तक 'स्त्री–पुरुष' तुलना (1882) का भी महत्व है। सावित्री बाई फूले की स्त्री की प्रथम आत्मकथा है जो पुरुष वर्चस्व के खिलाफ संघर्ष का प्रतीक है। साहित्य में नारी संघर्षो के लेखन में उषा – मित्रा, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान आगे आई। हिन्दी कहानी की प्रथम लेखिका 'बंग महिला की दुलाई वाली' कहानी में स्त्री यातना, संघर्ष और मुक्ति को वाणी देने की कोशिश की गयी है। महादेवी वर्मा स्त्री–विमर्श और स्त्री मुक्ति की अगुवा के रूप में उनका निबंध 'श्रृंखला की कडियॉ' टूटने चटकने को व्यक्त करता है।

'फूल नहीं चिगांरी है, हम भारत की नारी है।' यह चर्चित नारा सातवे दशक के नारी आन्दोलन का है। स्त्री–विमर्श और स्त्री चेतना का उत्कर्ष इसी दरम्यान लक्षित होता है। इसलिए सातवें दशक के उत्तरार्द्ध के लेखन में नारीवादी विचारधारा अधिक परिपक्व होती दिखाई देती है। भारतीय लेखन में इस्मत चुगताई पहली शख्सियत थी, जिन्होनें स्त्री के स्वायत अनुभवों को कथा कृतियों में अंकित किया। फलतः औरतें वस्तु न होकर हाड–मांस की मनुष्य बन गयी। हिन्दी में यह पहल कृष्णा सोबती ने की। हिन्दी कथा साहित्य में लेखन के माध्यम से स्त्री की देह, उसकी आकांक्षा, समानाधिकार और व्यक्ति स्वतंत्रता के मुद्दे अधिक प्रखर ढंग से अभिव्यक्त करती हैं।

महिला लेखन में घर, परिवार ही नहीं समाज का विस्तृत केनवास भी प्रतिफलित है। जो स्त्री विमर्श को विभिन्न कथाओं के द्वारा व्यक्त करता है इनमें प्रमुख है।

मन्नू भण्डारी – मन्नू भण्डारी का 'आपका बंटी' उपन्यास कथा लेखिका का सारा संकट परम्परा और आधुनिकता के द्वन्द का है। शकुन के शब्दों में शकुन क्रियावादी नहीं, प्रतिक्रियावादी है – 'तलाक से मिली मुक्ति से भी आगे प्रकाश नहीं।'[9]

उषा प्रियंवदा – इन्होनें 'पचपन खम्बे लाल दीवारे' 'रूकोगी नहीं राधिका' 'शेष यात्रा' 'अन्तवर्षी' आदि के कथानक में आधुनिक नारी के जीवन की उदासी अकेलेपन का संत्रास, अब घुटन, छटपटाहट, महत्वाकांक्षी की दौड भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति की टकराहट अंकन में स्त्री विमर्श को व्यक्त किया है।

कृष्णा सोबती – कृष्णा सोबती ने 'मित्रों मरजानी' के रूप में नारी के बदलते सामाजिक संदर्भो और परम्परा से भिन्न विद्रोही नारी 'मित्रों' को प्रस्तुत कर आधुनिकता बोध और स्त्री विमर्श को व्यक्त किया है – "मांस सज्जा से बनी नारी जिसमें स्नेह भी है, ममता भी मॉ बनने का हौस भी और एक अविरल बहती वासना सरिता भी।"[10]

मृदुला गर्ग – स्त्री विमर्श को व्यवहारिक धरातल देती आपकी कृति 'कठगुलाब' जिसमें विवाह संस्था के औचित्य पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है – स्त्री उत्पीड़न का मूल केन्द्र है विवाह संस्था – "विवाह या प्रेम का अर्थ एक अन्य प्राणी का मुझ पर और मेरा उस पर इस तरह निर्भर होना कि एक न रहने पर दूसरे को दुःसह मर्मान्तक पीड़ा से गुजरना पड़ता हैं।[11]

नासिरा शर्मा :– इन्होनें विवाह संस्था को नई अर्थवत्ता दी है। वह कहती है – "शादी जरूरी है। मगर इतनी भी जरूरी नहीं कि – रास्ते में (कोई) आ टकराए और उसी के साथ निकाह पढ़वा लिया जाये। उसे शौहर के साथ एक साथी की भी जरूरत होती है।"[12]

ममता कालिया – मर्दवादी सोच के खिलाफ स्त्री–विमर्श को व्यक्त करता उपन्यास एक पत्नी के नोट्स का अन्तर्विरोध यह कि स्त्री को पुरुष–वर्चस्व भोगना पड़ता है। कविता अपने को न तो पति की सम्पति मानती है और न ही 'भोगवस्तु' वह बौद्विक लड़ाई लड़ते हुए स्वयं की उपस्थिति दर्ज कराती है।"[13]

मैत्रयी पुष्पा :– मैत्रेयी पुष्पा के 'झूला नट' की शीलो "चाक" की सारंग नैनी दोनों ही रूढ़िबद्व परम्पराओं का जोरदार विरोध करती वस्तु से व्यक्ति होने का प्रयत्न करती है। शीलों सामाजिक नीतियों पर प्रश्न चिन्ह लगाती है – "बेटों के चलते रस्म रीत भूलकर बहुओं की पीठों के लिए कोड़े लिए फिरती हो तुम बूढ़ी जनी।" चाक की सारंग नैनी देह–मुक्ति स्त्री की अस्मिता का महत्वपूर्ण प्रश्न है – "औरत और जमीन बिना मालिक के नही रहती।" वह महज वंश वृद्विका साधन नही है। स्त्री विमर्श के सभी आयामों –यौन मुक्ति, नारी –चेतना , नारी अधिकार और सहअस्तित्व को विश्लेषित किया गया है।[14]

प्रभा खेतान :– स्त्री की अस्मिता, अस्तित्व के प्रति सजगता आदि सच को उजागर करता उनका लेखन चाहे वह "छिन्नमस्ता" की प्रिया हो, "आओ पेपे घर चले" की प्रभा हो, या "पीली ऑधी" की पदम्वती या सोमा आदि के द्वारा यह तर्क दिया है – "औरत कहॉ नही रोती और कब नहीं रोती? वह जितना रोती है उतना ही औरत होती जाती है।" पितृसत्तामक समाज स्त्री विरोधी है। वह अपने को हानि में डालकर स्त्री को खुला आकाश क्यो देना चाहेगा?[15]

राजी सेठ :– इन्होनें 'तत्सम' और 'निश्कवच' में स्त्री विमर्श को दखल दिया है। राजी सेठ का 'तत्सम' में विचार है – "जरा न्याय देखों अपने भगवान का मकुआ आदमी अकेला रह जाय तो तूफान खड़ा हो जावे और औरत के लिए पत्ता भी न हिले जबकि वह हर तरह से मजबूर है–– यह नियति किसी पुरुष की होती है तब? एक के लिए मात्र निजी घटना –जीवन का दुख एक सा दुख की छाया कितनी अलग–अलग क्यो?"[16]

चित्रा मुद्गल :– स्त्री की क्षमता का आकलन 'देह' से नही सम्पूर्ण व्यक्तित्व से हो, 'आवां' यही वकालत करता है। "मत भूलो औरत के अस्तित्व का तिलिस्म उसकी देह से ही उपजता है।"[17]

चन्द्रकांता – चन्द्रकांता का उपन्यास 'कथासतीसर' का प्रतिपाद है पुरुषसत्ता समाज में औरत हर उम्र में असुरक्षित होती है औरत की यौनिकता 'स्त्री हिंसा का सबल पक्ष है। वंशवाद को अस्वीकृत कर नसीम कहती है– "सभी से कह दो यह नसीम की बेटी है। मैनें उसे जना है। मै रहूगीं तो यह भी रहेगी।"[18] लेखिका ने स्त्री की कोख को महत्व देकर स्त्रीवादी विमर्श को बल दिया है।

अलका सरावगी :– 'शेष कादम्बरी' स्त्री विमर्श के एक नये आयाम (वृद्वावस्था) को विश्लेषित करता है औरत अपने होने की सार्थकता सिद्ध करती है – "औरत तूने जब भी किसी कोने में पुरुष से अलग कुछ बनाया है, तो तुझे इसकी कीमत देनी पड़ी है।"[19]

मधु संधु :– नारी विमर्श लघु कथाओं के संदर्भ में लेख है कि नारी विमर्श पितृसत्तामक के हिंसक व्यवहार, प्रहार, दुर्व्यव्यवहार एवं शोषण करने वाली मानसिकता पर विचार करता है। इस लेख के अंतर्गत जर्मन ग्रीयर कहती है – "औरत पैदा तो साथिन के रूप में हुई थी पर गुलाम बन गई। उसे गुलामी की लंबी आदत हो गयी है। पिंजरे का दरवाजा खोल दिया गया था, लेकिन बुलबुल ने उड़ने से इंकार कर दिया था।"[20]

मंजुल भगत :– 'टूटा हुआ इन्द्रधनुष' में लेखिका ने विवाह संबंधी विचार के विषय में रेखांकित किया है। तिरछी बौछार की नैना कहती है– "मै रेस के घोडे की तरह किसी की जॉच पड़ताल के लिए नही बैठूँगीं। मै बेजान गुड़िया की तरह सज कर नहीं बैठूगीं। मै एक बार मै हॉ नहीं कर सकती।[21] 'फ्री लान्सर' व 'एक औरत' की जिंदगी परम्परागत नैतिक बन्धनों को समाप्त कर नये स्त्री समाज को प्रस्तुत करती है।

शुभा वर्मा :– शुभा वर्मा के उपन्यासों में नारी कल्पना नारी की मानसिकता भी पुरुष सदृष्य उन्मुक्ता की आकांक्षा करती हैं। 'मोहतरमा' उपन्यास नैतिक मूल्यों को नकारने वाली स्त्री की व्यथा को व्यंजित करती है – शहला का कहना है – "अगर शादी का अर्थ बच्चे पैदा करना पति की नौकरानी बनकर रहना है तो उसे शादी नहीं करनी उसका मानना है कि जिस प्रकार पुरुष के लिए खुली हवा रोशनी चाहिए वह स्त्री के लिए भी तो जरूरी है" ।[22]

मेहरूनिशा परवेज :– मुस्लिम लेखिका होने के नाते मुस्लिम समाज की स्त्रियों का दर्द पहचानती है वे उनके तौर तरीकों से परिचित है। मुस्लिम परिवारों में भी स्त्रियों को आजादी नही है धार्मिक मान्यताओं से घिरी हुई है और फिर घर्म का प्रश्न चिन्ह होने पर इन परिवारों की स्त्रियों पर ज्यादा विमर्श नही होता।

'कोरजा' ऑखों की दहलीज अकेला पलाश में रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था से मुक्ति की छटपटाहट इनके लेखन का लक्ष्य है। दहेज की समस्या भी मुख्य है – "माना कि ये लोग कहते है कि लड़की को एक जोड़े में विदा कर दो आज तो ऐसा कह रहे हैं।" पर कल यही लोग लड़की को ताना देगें कि तेरे मायके से तो कुछ नही मिला। मैने दुनिया देखी हैं। मैं जानती हूँ अपनी गरज के समय शेर भी बकरी बन जाता है।"[23]

डॉ निरूपमा सेवती :– ने 'बटता हुआ आदमी', 'पतझड़ की आवाजें' मेरा नरक अपना है 'दहकन के पार' आदि के द्वारा नौकरी पेशा नारी जीवन के विविध पहलुओं का चित्रण किया है। नगरों की शिक्षित नारी और उसकी स्वतंत्रता, नारी वेश्या जीवन रोमांटिक बोध और उससे मोहभंग, सेक्स एवं संवेदानाओं से भरा चित्रण करने में सिद्धहस्त है। "तुषार के सामने एक ओर समस्या यह है कि वह माँ बनने के अधिकार से वंचित है। जो अधिकार

उसे प्रकृति से प्राप्त है।" उसमें मानव हस्तक्षेप वह नहीं सह सकती है। यह गैर मानवीय कानून ही व्यक्ति की निजता को छलनी करते हैं। लेकिन यह कानून जब स्त्री सुरक्षा के लिए बनाया गया है। विवाह और मातृत्व तो फिर अविवाहित मॉ क्यों नहीं बन सकती अगर गर्भावस्था में ही विधवा बन जाये तो भी उसे यह अधिकार तो रहता ही है।[24]

मालती जोशी :– मालती जी ने स्त्री विमर्श के मुद्दे देहमुक्ति से जोड़ने की कोशिश की है। "उन्होनें नारी जनित यौन विषयक रूढ़ियों और यौन स्वतंत्रता की पैरवी भी की है। औरत चाहे निम्न वर्ग की हो या सम्भ्रान्त जनजाति की हो या आदिवासी उसका सुख–दुख एक सा है।"निष्कासन उपन्यास में एक विधवा नारी की विवशता का चित्रण किया है – "दफ्तर में सबकी दृष्टि में एक मौन उपालंभ उत्तर आया। जो आँखे पहले आदर में झुक जाती थी अब बेवाकी से मेरा पीछा करती है। जब–जब केबिन से बुलावा आता है लगता है जैसे में घूरती हुई आँखों का गार्ड ऑफ आनर लेती जा रही हूँ।"[25]

गीतांजलि श्री :– समकालीन कथा लेखन में 'अनुगॅूज' के जरिये अपनी पहचान बनाने वाली गीतांजली श्री का पहला उपन्यास 'माई' है। प्रस्तुत कृति में संयुक्त परिवार की तीन पीढ़ियों के बीच सरकते, छूते व छोड़ते मूल्यों की टकराहट, असंतोष, बुद्वि को ऑख देने की तत्परता है, "माई सदियों से पीड़ित नारी का प्रतीक है, जिसकी अपनी देह, मन या इच्छा पर कोई अधिकार नहीं होता। माई जो शाश्वत है, जो मुझमें है, जो आग में, राख में हमेशा रहेगी, जिसके आगे में शीश नवाती हॅू। उससे लडॅूगीं।"[26]

ऋता शुक्ला – "नारीवाद का नया विमर्ष प्रस्तुत करना उसका उपन्यास 'अरूधंती' की मुख्य नायिका अरूधंति उपेक्षित, संघर्षशील जीवन के साथ अपने लक्ष्य तक पहुॅचती है। "संघर्ष करने की क्षमता केवल स्त्री में ही है। अरूधंती अपने संघर्ष के माध्यम से पाठकों के मन में करूणा उत्पन्न नहीं करती अपितु समाज के समक्ष स्त्री के एक शिक्षित व जागरूक रूप को प्रदर्शित करती है जो अपने अधिकारों के प्रति सदैव सचेत रहती है।"

सुषमा वेदी :– नारी वेदना से रूबरू कराता सन् 2009 में प्रकाशित उपन्यास 'मैने नाता तोड़ा' भारतीय समाज की परम्परागत असलियत की गहरी पड़ताल करता हुआ एक औरत का आत्मकथन है। जहॉ नारी को लिंग भेद की समस्या का सामना करना पड़ता है साथ ही बलात्कार जैसी पीड़ा दंश सहने वाली अबोध बालिका का जीवन मौत से भी बदत्तर स्थितियों से होकर गुजरता दिखाया गया है। रितु का यह कहना, "चौदहवे साल ने अचानक मुझको बड़ा कर दिया था। इस तरह बड़ा कि जिन्दगी का रूख ही पलट गया। वह नाता तोड़ती है उस चुप्पी से, जो औरत को अपने पर होने वाले अनाचार को जबान नहीं देने देती।"[27]

नारी विमर्ष लघु कथाओं के परिप्रेक्ष्य में भी एक महत्वपूर्ण आयाम को लेकर व्यक्त हुआ है जिसमें महिला कथाकारों के साथ–साथ पुरुष कथाकारों की लेखनी भी मुखरित हुई है।

नारी विमर्ष पितृसन्ताक के हिंसक व्यवहार, प्रहार, दुर्व्यव्यवहार एवं शोषण करने वाली मानसिकता पर विचार करना है। वेट्टी फ्रायडन, जान स्टुअर्ड मिल, जर्मन ग्रीयर, सीमोन बोउवार जैसी विचारधारा के साथ स्वदेशी विचारधारा जिसके सूत्र भूमण्डलीकरण से सीधे जुड़े है। जिस समय सीमोन द वोउवा फ्रांस में 'द सेकण्ड सेक्स' लिख रही थी, उसी समय महादेवी वर्मा भारत में 'मेरे प्रिय संभाषण' लिख रही थीं। "नारी विमर्श का औचित्य तब और भी स्पष्ट हो जाता है जब हम उसके ऐतिहासिक धर्म समाज के अंतर्गत देखते है कि दुर्वासा हो दुष्यंत –एक शाप देता है और दूसरा पहचानने से इंकार कर देता है। गौतम हो या इन्द्र एक बलात्कार करता है दूसरा शिला बना देता है रावण हो या राम एक अपहरण करता है और दूसरा परित्याग कर देता है। युधिष्ठर हो या दुर्योधन एक जुए में हारता है दूसरा चीरहरण करता है। कितने युग बदले कितनी परतन्त्रताऍ अपनी मौत मरी, कितनी स्वतंत्रताऍ आई पर पुरुषतंत्र ने नारी को उपमानव ही माना। उसका क्षेत्राधिकार दोयाम दर्जे को रखा।"

वैश्वीकरण के दौर में या भूमण्ड़लीकरण के प्रपंच मे नारी श्रद्वा नहीं मुद्दा बन गई है नारी आज भी अपहरण

घरेलू हिंसा, दहेज ,प्रताड़ना, बलात्कार दंश कन्या भ्रूण हत्या की पीड़ा से पीड़ित है।

"बाहर आने पर भी तो उतनी ही लहु–लुहान होती है,
जितनी अंदर रहने पर जान नहीं पा रही कहाॅ कम कहाॅ ज्यादा।"[29]

स्वतंत्रता के पश्चात् कथा साहित्य के व्यापक रचना पलक पर नारी के बहुआयामी पक्ष की अनगिनत आकृतियाॅ तात्कालीन लेखकों ने उकेरी है"। युगों युगों से रूढ़िगत संस्कार एवं परम्परा से ग्रस्त नारी का व्यक्तित्व मौलिक उदभावनाएँ करता है वह वर्तमान लेखन से स्पष्ट दिखाई देता है। संबंधों के बदलते स्वरूप और उसके संघर्शो को रेखांकित करती शिवानी की कहानी 'ऊंचाई' में स्त्री का तन और उसका मन दोनों पर उसका अपना अधिकार है जिसे वह किसी को भी सौंप सकती है– "शरीर देने के बाद औरत के लिये अस्वाभाविक हो जाना क्या अनिवार्य है?" कृष्णा सोबती की 'ऐ लड़की माॅ बेटी का संवाद है, "सोचने की बात है मर्द काम करता है तो उसे इवज में अर्थधन प्राप्त होता है। औरत रात–दिन जो खटकती है वह बेगार के बेगार के खाते में ही न .... वह अपनी खोज–खबर न लेगी तो कौन उसे पूछने वाला।"[30]

नारी विमर्श कहानियों का आधार स्वरूप व्यक्त करती मृदुला गर्ग की 'यहाॅ कमलनी खिलती है।' आम–औरत की मानवीय संवेदना की पराकाष्ठा है 'मेरा घर कहाँ' नासिरा शर्मा 'मर्द होते हुए' मधु कांकरिया 'यह भी सही है वह भी सही है' अलका सरावगी 'धरोहर उर्मिला शिरीष ' आहटे' मृणाल पाण्डे ज्वालामुखी के गर्भ में मालती जोशी 'कोरजा' 'मेहरूनिशा परवेज' 'बात एक औरत की' कृष्णा अग्निहोत्री प्रभृत्ति अनेक कहानियाॅ स्त्री विमर्श के मायने तलाशती समाज से संवाद करती है'।

समकालीन लघु कथाओं के अंतर्गत डॉ. कविता सूद की 'अलग–अलग सूरज में माॅ के लिए बेटी–बेटा दोनों के लिए अलग–अलग सूरज है। अलगाववादी संस्कृति की ओर संकेत करती है। लडकियाॅ उम्र भर मायके –ससुराल में अपनत्व को खोजती रहती है'। सुधा गुप्ता की घरौदा की बहन भाई के घर में अपने को अजनबी पाती है। बेटों के जन्म पर कांसे की थालियाॅ पीट–पीट कर खुशी करने वाली औरते एक बार सोच में पड़ गई हैं'। सुषमा श्रीवास्तव की 'करम और जुगत' की मुनिया स्कूल चलाती है, चुनिया, पंच बन चुकी है पुनिया खेतों में टेक्टर चलाती है और दादी का कुलतारन कुल डुबोता है।"[31]

लघु कथाओं में औरते अतिरिक्त मानसिक क्षमता लेकर आई है'। मुकेश साहनी की 'ईश्वर' की विधवा कैंसर पीड़ित पति की अस्थियाॅ नदी में प्रवाहित करते ही उसके ऑसू सूख जाते है'। अनुकम्पा नियुक्ति पाने के बाद स्वंय ईश्वर हो जाती है। डॉ. महाश्वेता चर्तुवेदी की 'फर्क' में विधवा सधवा सहागिन –दुहागिन में कोई अंतर नही है – "तुम्हारा मरद दुनिया छोड़ गया और हमारे मरद ने सात फेरों की कसम तोड़कर शराब से रिश्ता जोड़ा है।"[32]

नारी विमर्श आधुनिकता के उत्तर आधुनिक रूपों को स्पर्श कर रहा है कनु भारतीय की 'कारण' में बेटी एकल परिवार से विद्रोह करती कहती है – "आपकी इसी एकल सोच की वजह से ही दीदी ने एक अच्छे परिवार के कई हिस्से करवा दिये।" कामकाजी औरत और पुरुष कुदृष्टि को किशन बजाज की आकर्षण 'में प्रस्तुत किया गया है– "यानी औरत सिर्फ औरते है"। देवलोक की हो या मृत्युलोक की।"[33]

औरतों को अंधविश्वास से जोड़कर सदैव उन अपराधों की सजाऐ दी जाती है" जो उन्होनें किये ही नहीं। अमृत जोश की 'मनहूस' की नौकरी पेशा विधवा रमा कहती है – "मनहूस में नही आपका बेटा था जो मेरी जिंदगी मे आकर मुझे विधवा बनाकर चला गया। बताइये मुझे उसके परिवार से क्या मिला? वैधवय, आपके जले कटे ताने और अपशब्द।"[34] डॉ. के रानी की विद्रोह की औरत पैरों पर खड़ी होकर विद्रोह करती है– इस औरत ने अन्न दाता के रूप को चुनौती दी है। किरण बजाज की 'अपाहिज में स्त्री ने विवाह जैसी सनातन संस्था के मानदंड बदल दिये है।

"अपाहिज मानसिकता औरत को हर पल उसकी औकात बताने मे लगी रहती है 'मधु संधु की बिगड़ैल औरत

'औकात बताने वालों को औकात बनाकर दिखाने में जुटी है। पितृसत्ता के अचेतन में बैठा है कि औरत की अकल चोटी के पीछे होती है। वह पॉव की जूती है। आटे का ऐसा दीपक जिसे अंदर रखो तो चूहे और बाहर रखो तो कौऐ नोच–नोच कर खा जाएॅगें। वह ढोल गॅवार ताड़न की अधिकारी है। उसे पुचकार कर, लताड़कर गुर्राकर तोड़कर, दूध पानी का हवाला देकर या फिर यंत्रवादी शांत स्वर में दबाना ही दबाना है। अन्यथा वह कुछ भी कर सकती है। चोटी कटवा, बाल लहरा मुहावरों को झुठला सकती है। गले में डालने वाले हीरों जड़ी जूती बन सकती है। दीपक ज्योति से ज्वाला बन सब कुछ जला सकती हैं। ढोलिया स्वर से कानों के पर्दे फाड़ सकती है। विदेशों से उच्चतम शिक्षा ले उच्चासन पर सुशोभित हो सकती है। धन संपदा से हिस्सा छीन कुल गोत्र बदलवा सकती है।"[35]

कथा साहित्य के द्वारा नारी मे जो परिवर्तन आया है। वह इन नारी पात्रों में अहंकार, स्वाभिमान, अधिकार और निर्णय लेने की क्षमता को प्रदर्शित करते हैं। पाकिस्तानी लेखिका तहमीना दुर्रानी व बांग्लभाषी तस्लीमा नसरीन का क्रान्तिकारी लेखन तो पूरी फिजा को ही झकझोर देता है। सभी लेखिकाओं का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से यही कहना है कि नारी को सामाजिक रूढ़ियों ने दोयम दर्जे का बनाया है। शास्त्रों की दुहाई देकर शूद्र ही मारे जाते है, और स्त्रियॉ मरती है, सांस्कृतिक सामाजिक दबाबों के कारण पुरुष व्यवस्था से वह अभी पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकी है। नारी को मुक्त करने के लिए संघर्ष अभी भी शेष है। ऐसा नही कि स्त्री विमर्ष में पुरुष लेखकों, कथाकारों का योगदान न हो। स्वतंत्रता पूर्व के कथाकारों में प्रेमचन्द्र के गोदान की धनिया समाज के बनाये कायदे–कानूनों के खिलाफ जाकर मानवीयता के कानून द्वारा चुनौती देती है। यशपाल के 'दिव्या' उपन्यास में तो नारी स्वातंय का अक्स बहुत चटख है। जयशंकर प्रसाद का नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' पुरुष के आतंक से नारी मुक्ति की समस्या को चित्रित करता है। स्वांतत्रयोतर रचनाकारों में राजेन्द्र यादव ने स्त्रीविमर्श अभियान में स्त्री मुक्ति की वकालत की है। कृष्ण बलदेव वैद्य का 'नर–नारी' सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चांद चाहिए' सत्येन कुमार 'नदी को याद नही' और धर्मेन्द्र गुप्त के उपन्यास 'रंगी हुई चिड़िया' के वर्ण–विषयों में स्त्री –चेतना के ही विविध रंग लक्षित होते है।

स्त्री लेखन में स्त्रियों के दृष्टिकोण से जीवन को देखा और दर्शाया है। इस क्रम में अनेक ऐसी अनुभूतियों ने कथा साहित्य को समृद्ध किया है, जो अब तक अछूती थी। यह अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है। स्वानुभूति और सहानुभूति का आसरा छोड़कर अपनी राहत और मंजिल खुद पाना चाहती है। उसे पुरुष समाज रेखांकित नहीं कर सकता। महादेवी वर्मा के शब्दों में "पुरुष के द्वारा नारी का चित्रण अधिक आदर्श बन सकता है, परन्तु यर्थात् के समीप नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है, परन्तु नारी के लिए अनुभव।"[36] स्त्री और पुरुष आज भी इस पितृसत्तामक समाज के जैविक, आर्थिक, सामाजिक धरातल पर भिन्न हैं।

स्त्री विमर्श पर आधारित उपरोक्त समस्त सभी लेखन का सार एक स्वर में इस पर अपनी आस्था दर्ज करता है कि स्त्री को समाज में मनुष्य समझा जाये। नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण की अनिवार्य आवश्यकता है। सामाजिक स्वस्थ परिवर्तन की दिशा व दशा अपने आप तय होती है। अर्थात् यह एक प्रक्रिया है। स्त्री विमर्श की अवधारणा से आधी आबादी को योग्य नागरिक बना सकते है। परिवर्तित मनः स्थिति आधी आबादी को अपने अधिकार, कर्तव्य की याद दिलाता है, उन्हें उसके लिए संघर्ष की प्रेरणा देता है, जिसका एकमात्र अंतिम उद्देश्य सभ्य और सुसंस्कृत समाज का पुर्ननिर्माण करना है।

संदर्भ ग्रंथ

1. भारतीय मीड़िया और भारतीय जीवन मूल्य–संपादक, डॉ. तनूजा चौधरी।
2. मीरा पदावली, पृ.15।
3. संस्कृति के चार अध्याय –रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 326।

4. कामायनी –जयशंकर प्रसाद।
5. गोदान – प्रेमचन्द्र।
6. बाण भट्ट की आत्मकथा – आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी।
7. उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री – डॉ0 शशिकला त्रिपाठी वि.वि. प्रकाशन, वाराणासी।
8. .... फिर वही ....
9. .... फिर वही ....
10. कृष्णा सोबती के उपन्यासों में स्त्री का स्वरूप – अनीता नायक ।
11. महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि –डॉ. अमर ज्योति, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुरं
12, वही
13. वही
14. मैत्रयी पुष्पा के उपन्याासों में नारी समस्याएँ एवं आधुनिकता बोध – डॉ. सविता मसीह – आधारना ब्रदर्स, कानपुर।
15. हिन्दी के समकालीन महिला उपन्यासकार – डॉ. एम. वेकटेश्वर अन्नपूर्णा प्रकाशन साकेत नगर, कानपुर।
16. वही
17. वही
18. वही
19. वही
20. वही
21. वही
22. भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास, डॉ. एस. अखिलेश, रीवा।
23. वही
24. वही
25. वही
26. वही
27. संवेद जन., फर. 2003, संपादक–डॉ. शुकदेव सिंह, वाराणासी।
28. वही
29. वही
30. वही
31. वही
32. वही
33. वही
34. वही
35. वही
36. कृतिका – संपादक डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, उरई (जालौन)।

❑❑

किसान व मजदूर जीवन की त्रासद–गाथा : गोदान

डॉ. धनंजय सिंह
109 / 1, रमेश पार्क, लक्ष्मी नगर, दिल्ली –92

गोदान को हिंदी उपन्यास परंपरा में जो गौरव मिला है, वह किसी उपन्यास को नहीं मिला. अन्तरराष्ट्रीय और अंतरभाषायी स्तर पर अगर किसी औपन्यासिक कृति को सबसे अधिक जाना और माना गया है तो वह 'गोदान' ही है. प्रेमचंद (1880–1936 ई.) का उपन्यास सम्राट होना भी मुख्यतः इसी उपन्यास पर निर्भर था. हालाँकि प्रेमचंद उपन्यासकार से बड़े कहानीकार हैं. प्रेमचंद का यह उपन्यास सन 1936 में आया था. इसमें उत्तर प्रदेश के बनारस के आस–पास के किसी गाँव की किसी किसान परिवार की कहानी है. अपनी समग्रता और व्यापकता में यह कहानी इतनी महत्त्वपूर्ण हो गयी है कि गोदान अपने जमाने के भारतीय किसान और भारतीय देहात की ही कहानी बन गाया है. इसी कारण इसे किसान जीवन का महाकाव्य की भी संज्ञा दे दी गयी है. लेकिन इसमें शहर की कहानी भी उसी रूप में आ गयी है।

प्रेमचंद का यह पहला उपन्यास है जिसमें किसी प्रकार के आदर्शवादी समाधान की चेष्टा नहीं की गयी है. जो उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों में है. इस उपन्यास में समस्याओं का प्रस्तुतिकरण यथार्थवादी ढंग से हुआ है. इसमें समस्याओं से यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य में निबटा गया है. किसानों का ऋण, शोषण और गरीबी को इसमें प्रमुखता से उभरा गया है. इनके समाधान के लिए प्रेमचंद ने किसी दैवी चमत्कार या शोषकों के ह्रदय परिवर्तन का सहारा नहीं लिया गया है. इसमें जो समस्याएं आयी हैं उनका समाधान यथार्थवादी तो है ही, उसमें प्रेमचंद की तटस्थता, उनके विश्लेषण की मौलिकता तथा तीखापन विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रेमचंद ऐसे प्रथम भारतीय उपन्यासकार हैं जिन्होंने उपन्यासों का उपयोग समाज और जीवन की आलोचना के लिए किया है. उन्होंने अपने उपन्यासों में उन समस्याओं को चित्रित किया है, जो वर्तमान युग से जुड़ी हुई हैं और जिहें हर व्यक्ति अनुभव करता है. प्रेमचंद एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जहाँ भेद–भाव के अभिशाप से मानवता पीड़ित न हो, किसी प्रकार का शोषण न हो और आदमी की पहचान सम्पति और जाति के पैमाने से न हो. गोदान में उनका वही उदेश्य प्रमुखता से उभरा है. इस उपन्यास का प्रधान उदेश्य है– किसान जीवन की समस्याओं का चित्रण करना, उसके शोषण का चित्र प्रस्तुत करना और उसकी दिन–हीन स्थिति से समाज को परिचित कराना. किसान का शोषण कौन करता है तथा उसका शोषण कितने मुहानों पर होता है और उस शोषण के लिए समाज के कौन–कौन लोग उतरदायी हैं– इसका सजीव चित्रण गोदान में हुआ है.उपन्यास मनोरंजन की वस्तु नहीं, बल्कि वह जीवन की सच्चाइयों को उजागर कर हमें सोचने–विचारने को विवश करता है और संघर्ष की प्रेरणा देता है।

प्रेमचंद से पहले साहित्य के पात्र समाज का अभिजात वर्ग होता था. राजे–महाराजे, तालुकेदार. सेठ–साहूकार, नगर–वधुएँ इत्यादि. प्रेमचंद हिंदी के पहले कथाकार हैं जिन्होने अपनी कला–कृतियों के लिए ऐसे पात्रों को चुना जो साहित्य के लिए निर्धारित मानदंडों पर खरे नहीं उतरते थे. जब प्रेमचंद ने होरी, धनिया, गोबर, झुनिया, भोला आदि को अपनी कथा–कृतियों का नायक या चरित्र बनाया तो साहित्य के जानकारों को लगा कि भला इन लोगों पर कोई साहित्य कैसे लिख सकता है. प्रेमचंद के इस व्यवहार ने उनके सौंदर्य–बोध को काफी धक्का लगा. जो रचनाकार अपने समय की जरुरत को पहचानते हैं और समाज में होने वाले परिवर्तन को आत्मसात करते चलते हैं, वे ही अंततरू उस समाज के व्याख्याता बनते हैं और अपनी पहचान बनाते हैं. प्रेमचंद ने साहित्य की पूरी तरह

से परिभाषा ही बदल दी. उन्होंने उपन्यास के बहाने साहित्य का उदेदश्य बतलाया कि 'हम साहित्य को मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नहीं समझते. हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें चित्रण की स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सर हो, जीवन की सच्चाई का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचौनी पैदा करे, सुलावे नहीं. |

प्रेमचंद का रचनात्मक विकास स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में हुआ था. उसकी प्रेरणा उनकी रचनाओं में शिरा प्रवाही रक्त की भांति मौजूद है. साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी शासन की की दमनकारी और उत्पीड़क नीतियों के प्रति उनके मन में गहरी घृणा थी. अपने निर्माण कल में ही, जब वे उर्दू के लेखक थे, सन 1908 में 'सोजेवतन' की जब्ती, 'सिडीशन' का आरोप और सरकार के कोप भाजन के रूप में वे इसका पर्याप्त सबूत दे चुके थे. अपनी मानसिक बनावट और रचनात्मक सरोकारों में बेहद प्रतिबद्ध थे।

साहित्य जगत में जब प्रेमचंद साहित्य में आये तो उनके सामने दुर्गाप्रसाद खत्री जैसे उपन्यासकार थे जो रोचकता और कल्पनाशीलता के अगार थे. उनको चुनौती देना आसान नहीं था. इसके अलावा उनके सामने विदेशी भाषाओ में लिखे गए अनेक ऐसे मास्टरपीस भी थे जो अनुदित होकर भारतीय भाषाओं से आ चुके थे. भारतीय भाषाओं में भी अनेक विशिष्ट रचनाएँ लिखी जा चुकी थीं. मसलन गुजराती में 'सरस्वती चन्द्र', तमिल में वेदनायागम पिल्लई का 'प्रताप मुदालियर चरितं'. इन उपन्यासों को वही सम्मान मिल चूका था जो आज हिंदी में 'गोदान' का है।

गोदान में किसान जीवन की त्रासदी :

गोदान को किसान जीवन का महाकाव्य की संज्ञा दी गयी है. इस उपन्यास की रचना से पहले प्रेमचंद 'प्रेमाश्रम' लिख चुके थे. जिसमें जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण का उल्लेख किया था. प्रेमाश्रम एक तरह से गोदान की पूर्व पीठिका था. प्रेमचंद के लेखन का सरोकार ग्रामीण खासकर किसान वर्ग से था. वे उनकी पीड़ा, शोषण, कठिनाईयों से भली–भांति परिचित थे और वे चाहते थे कि जमींदारी प्रथा समाप्त हो जो किसानों के शोषण के लिए बहुत कुछ उतरदायी थी. प्रेमचंद ने कहीं किसी लेख में लिखा है कि 'क्या यह शर्म की बात नहीं कि जिस देश में नब्बे फीसदी आबादी किसानों की हो, , कोई उस देश में कोई किसान सभा , कोई खेती का विद्यालय, किसानों की भलाई का कोई व्यवस्थित प्रयत्न न हो.'

गोदान में प्रेमचंद ने 'होरी' के रूप में जिस चरित्र की परिकल्पना की है वह अपने 'वर्ग' का प्रतिनिधित्व करता है. मतलब एक सामान्य किसान के समस्त गुण–दोष होरी में विद्यमान है. सभी किसानों की हालत कमोवेश होरी जैसी ही है. अवध क्षेत्र के 'बेलारी' गाँव का होरी पांच बीघे जमीन का मालिक एक सामान्य किसान है और सबका नरम चारा है. जमींदार, पटवारी, सूदखोर महाजन, पुलिस, बिरादरी तथा धर्म के ठेकेदार सब उनका शोषण करते हैं और अंततरू शोषण का शिकार होरी किसान से मजदूर बनने को विवश हो जाता है.

प्रेमचंद द्वारा किसान के शोषण की जो कथा प्रस्तुत की गयी है, वह कहीं भी अतिरंजित नहीं लगती. गाँव का भौगोलिक परिवेश, खेत–खलिहान, रीति–रिवाज, पात्र, एवं चरित्रांकन सभी दृष्टियों से प्रेमचंद ने यथार्थ पर दृष्टि केन्द्रित की है. हालाँकि प्रेमचंद 'गोदान' की रचना से बहुत पहले किसान जीवन की परिवेश की समस्या से रचनात्मक स्तर पर जूझ रहे थे कि किस प्रकार किसान दिन से दीनतर होता जा रहा है. 'सवा सेर गेहूं' (1924 ई.) के रचनाकाल से ही उनकी यह सोच विभिन्न कहानियों में जन्म ग्रहण कर रही है. ऐसा लगता है कि होरी की कथा 'मुक्तिधन' (1924 ई.), अलग्योझा (1929 ई.), 'सद्गति' (1930 ई.), 'पूस की रत' (1935 ई.) आदि कहानियों में अंकुरित और पुष्पित होती चली आ रही है. प्रेमचंद की सोच का पग–पग पर परिचय देते हुए तथा विराट रूप 'गोदान' के विस्तृत फलक पर प्रतिविम्बित होता है.

होरी एक छोटा किसान है. जमीन का मालिक होने के कारण वह 'महतो' कहलाता है. पूरे उपन्यास में कहीं

भी उसकी जाति की चर्चा नहीं है. फिर भी उसकी जाति के बारे में बताया जाता है कि वह पिछड़ी जाति से नाता रखता है. हिंदुस्तान में अधिकांशतः यही लोग किसान हैं. किसानी में एक मरजाद होती है. यह एक परंपरागत सोच है. गोदान में होरी के बहाने यह सोच अभिव्यक्त हुई है. ''जैजात किसी से छोड़ी जाति है कि छोड़ देंगें? खेती से क्या मिलता है? एक आने नफरी की मजूरी भी तो नहीं पड़ती है. जो दस रूपये महीने का नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खता–पहनता हैय लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता. खेती छोड़ दें, तो और करें क्या? नौकरी कहीं मिलती नहीं? फिर मरजाद भी तो पलना ही पड़ता है.खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है.''

वस्तुतः वह किसानों के पेशे से आजिज आ गया होरी है जो आज भी हमारे ग्रामीण समाज में साँस ले रहा है, जो खेती को केवल 'मरजाद' निभाने के लिए ढो रहा है. एक छोटी सी भू सम्पति उससे छोडते नहीं बनती है. जैजात का एक मोह है, जो उससे छोड़ते नहीं बनता है. प्रेमचंद साहित्य में कृषक का यह दर्द बड़ी गहराई से चित्रित है कि कैसे वह एक कृषक से धीरे–धीरे मजदूर होते जाता है. 'सवा सेर गेहूं' का शंकर सात साल में किसान से मजदूर हो गया, "सात साल गुजर गए. विप्रजी विप्र से महाजन हुए, शंकर किसान से मजदूर हो गया." भारतीय गांवो की समाज दृआर्थिक स्थिति का, उस स्थिति का जिसमें किसानों का मजदूरों के रूप रूपांतरण होता आ रहा है, प्रेमचंद बहुत ही प्रमाणिक अंकन करते हैं. शोषण की अनेक शक्तियां – जमींदार, महाजन, पटवारी, पुलिस आदि जहाँ तेजी से किसान को मजदूर होने की स्थितियों में धकेलती हैं, वहीँ उसकी अलग्योझे की सनातन बीमारी इस प्रक्रिया को और भी तेज कर देती है. 'सवा सेर गेहूं' में ही विप्र के गेहूं के कर्ज को ही नहीं अपितु अलग्योझे को भी इस स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है. "उसका छोटा भाई मंगल उससे अलग हो गया था. एक साथ रहकर दोनों किसान थे, अलग होकर मजदूर हो गए थे." यह समस्या प्रेमचंद को इतनी परेशान कर रही थी कि कई कहानियों में अलग्योझे की समस्याओं को तो वे उठाते ही हैं, 'अलग्यौझा' शीर्षक से ही दो कहानियों की रचना करते हैं. अलग्योझे से भी घर की 'मरजाद' जाती है. इस सन्दर्भ में आलोचक पुशपाल सिंह के कथन उल्लेखनीय है – " 'गोदान' का होरी इन दोनों छोरों को पकड़ता हुआ 'मरजाद' की चादर को उड़ने से बचाना चाहता है. बचाने इस चेष्टा में वह स्वम् लहुलूहान ही नहीं होता, निःशेष हो जाता है. पर यह चादर नहीं बच पाती है. वस्तुतः होरी उस सब संघर्ष और भारतीय ग्रामीण समाज के रूपांतरण की प्रक्रिया का प्रतीक है. जिसे आज भी छोटा किसान उसी रूप में जी रहा है." बेशक प्रेमचंद 'गोदान' की रचना से बहुत पहले से कृषक जीवन या कहें भारतीय ग्रामीण परिवेश की इस समस्या से रचनात्मक स्तर पर जूझ रहे थे.

गोदान का होरी तथाकथित एक ऐसा किसान हैं जो एक मजदूर से बेहतर जीवन नहीं जीता है. लेकिन एक किसान की ठसक उसके भीतर कूट–कूटकर के भरी हुई है. होरी खेती की मरजाद रक्षा के लिए क्या–क्या पापड़ नहीं बेलता है. वह जिन संघर्षों से होकर गुजरता है, शोषण की जिन शक्तियों से लोहा लेता है, वे सब न केवल होरी की अपितु किसी भी छोटे किसान की जिंदगी की परिचित सच्चाई है. जमींदार, पटवारी, ब्राह्मण– सभी उसका शोषण करते है– नरम चारा समझ कर. इन सब स्थितियों के चलते होरी को जीवन में सुख का एक दिन भी नसीब नहीं होता. "जीवन में ऐसा तो कोई दिन ही नहीं आया कि लगन और महाजन को देकर कभी कुछ बचा हो." खाने को घर में दाने नहीं और पहनने को वस्त्र नहीं. गोदान में भी बहुत सूक्ष्मता से चित्रित हुआ है. होरी की दरिद्रता का चित्रांकन देखिये – "होरी भोजन करके पुनिया के मटर के खेत की मेड पर अपनी मडैया में लेता हुआ था. चाहता था शीत को भूल जाये और सो रहे, लेकिन तार–तार कम्बल और फटी हुई मिर्जई और शीत के झोकों में गीली पुआल. इतने शत्रुओं के सम्मुख नींद में आने का साहस नहीं था. आज तम्बाकू भी नहीं मिला कि उसी से मन बहलता. उपला सुलगा लाया था, पर शीत में वह भी बुझ गया. बेवाई फटे परों को पेट में डालकर और हाथों को जांघ के बीच में दबाकर और कम्बल में मुंह छिपाकर अपनी ही गरम सांसो से अपने को गरम करने की चेष्टा कर रहा था. पांच साल हुए, यह मिर्जई बनवाई थी. धनिया ने एक प्रकार से जबरदस्ती बनवा दी थी, वही जब

एक बार काबुली से कपडे लिए थे, जिसके पीछे कितनी सासंत हुई, कितनी गलियां खानी पड़ी. कम्बल उसके जन्म से भी पहले का है. बचपन में अपने बाप के साथ वह इसी में सोता था, जवानी में गोबर को लेकर इसी कम्बल में उसके जाड़े कटे थे. और बुढ़ापे में आज वही कम्बल उसका साथी है, पर अब वह भोजन को चाबनेवाला दांत नहीं, दुखने वाला दान है." यह दर्दनाक वर्णन दो कारणों से जरुरी था. एक तो ये कि 'मिर्जई और कम्बल की ऐतिहासिकता' के कारण, दूसरे साधनहीन किसान की खेती के लिए किये गए कमालों के परिचय के लिए।

'किसानी' और 'मजूरी' की स्थितियों को प्रेमचंद बहुत बार, कई पात्रों के सहारे सामानांतर रखकर देखते हैं. वे पात्र भली–भांति जानते हैं कि मजदूरी में खेती से अच्छी स्थिति है किन्तु खेती उनसे छोड़ते नहीं बनती है. मजदूरी में पहले गोबर उतरता है. यह तथ्य हमारे सामाजिक रूपांतरण की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है. आज भी गांवों में यही प्रक्रिया है कि किसान की तंगहाली से परेशां बेटा शहर की ओर पलायन करता है. अंतर केवल शिक्षा का आया है. शिक्षा की पूंजी लेकर गोबरों की जमात दिल्ली, कलकत्ता, कानपुर, आसाम, बम्बई, पंजाब इत्यादि बड़े नगरों की ओर कल–कारखानों में मजूरी करती है या छोटी–मोटी आफिस की या प्राइवेट फार्मों की नौकरी. गोबर ने सुन रखा है कि शहर में पांच–छः आने की मजदूरी मिल जाति है. पांच आने रोज बचने का गणित जब वह फैलाता है तो उसे लगता है कि एक ही साल में सवा–सौ रुपैया बचाकर जब वह गाँव पहुचेगा तो दातादीन और पटेसरी भी उसका सम्मान करेंगे, घर का 'दलिदर' भी दूर हो जायेगा और सबके चेहरों पर खुशहाली आ जाएगी. केवल एक ही शंका है, जिसकी गोबर विशेष परवाह नहीं करना चाहता, "यही तो लोग कहेंगे कि मजूरी करता है. कहने दो. मजूरी करना कोई पाप तो नहीं." कभी– कभी मजदूरी न मिलने की अनिश्चय की स्थितियां हैं, वे तो खेती में भी हैं ही. "यहाँ भी तो सुखा पड़ता है, पाला गिरता है. ऊख में दीमक लगती है जौ में गेरुई लगती है, सरसों में लाही लग जाति है." गोबर ही नहीं धनिया जैसी अलख जगाने वाली नारी भी मजूरी में कोई बुराई नहीं समझती है. जब भोला होरी के बैल खोलकर ले जाना चाहता है तो होरी से धनिया का यह कथन मजदूरी करने का पक्ष लेता है, – "उनका पेट भरे, हमारे भगवान मालिक है. हमारे हाथ तो नहीं कट लेंगे? अब तक अपनी मजूरी करते थे, अब दूसरों की मजूरी करेंगे. भगवान् की मर्जी होगी तो फिर बैल बछिया हो जायेंगे. और मजूरी ही करते रहे तो कौन बुराई है." किन्तु यह धनिया का आवेशपूर्ण उत्तर है. वास्तव में तो वह भी तो होरी के साथ खेती की मर्यादा बचाने के लिए संघर्ष करती है।

होरी जिन स्थितियों से गुजर कर मजदूरी तक पहुंचा है, आज तक किसी भी किसान के मजदूर बनने की यही प्रक्रिया चलती आ रही है. इस दृष्टि से 'गोदान' हमारे समाज–आर्थिक रूपांतरण की प्रक्रिया का बहुत ही सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करता है. प्रत्येक खेतिहर को इस प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है– गरीबी की मार दृ अलग्योझा – कर्ज की मार – बैलों की जोड़ी में से एक का या दोनों का बिक जाना – आधे साझे की खेती – खेतों की नीलामी, बिक्री या किसी तरह भी हाथ से निकलना – और अन्ततः मजदूरी।

होरी को इन स्थितियों से गुजरना पड़ता है, उसके माध्यम से मानों प्रेमचंद पूरे भारतीय ग्रामीण समाज को उसके वर्तमान और भविष्यत् से प्रस्तुत करते हैं. इन स्थितियों में थोडा–बहुत अंतर परिस्थितियों वश है. आज भी छोटे किसान को गरीबी झेलनी पड़ती है किन्तु इस हद तक नहीं, की 'जेठ लगते–लगते ही घर में अनाज का एक दाना भी न' रहे. होरी की जब सारी फसल 'डांड की भेट' चढ़ जाती है तो पांच–पांच पेट खाने वाले और "गर में अनाज नदारद. दोनों जून न मिले, एक जून तो मिलना चाहिए. भर–पेट न मिले, आधा पेट तो मिले. निराहार कोई कई दिन रह सकता है. उधर ले तो किससे? गाँव के छोटे– बड़े महाजनों से तो मुंह चुराना पड़ता था. मजूरी करे भी तो किसकी? जेठ में अपना ही कम ढेरों था. ऊख की सिंचाई लगी हुई थी, लेकिन खली पेट मेहनत कैसे हो?" होरी की गरीबी के कई बहुत मार्मिक चित्र 'गोदान' में हैं, किन्तु गरीबी घर में एक और ही तरह की कावं कावं, गृह–कलह के रूप में देती है.

होरी अपनी गरीबी के चलते ही ऊख बेच कर भोला के गाय के रूपये अदा करने का 'कौल' नहीं निभा सका. भोला होरी के दोनों बैल खोल ले जाता है. और यहीँ से होरी के मजदूर बनने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है. बैलों के बिना खेती संभव नहीं थी. "किसान के बैल मर जायं तो उसके दोनों हाथ कट जाते हैं. होरी के दोनों हाथ कट गए थे.और सब लोगों के खेतों में हल चल रहे थे. ... होरी के खेत किसी अनाथ अबला के घर की भांति सूने पड़े थे. होरी दिन भर इधर–उधर मारा मारा फिरता था. कहीं इसके खेत में जा बैठता, कहीं उसकी बोआई करा देता. इस तरह कुछ अनाज मिल जाता. धनिया, रूपा, सोना, सभी दूसरों की बोआई में लगी रहती थीं. जब तक बुआई रही, पेट की रोटियां मिलती रहीं, विशेष कष्ट नहीं हुआ.मानसिक वेदना तो अवश्य होती थी. पर खाने भर को मिल जाता था. रात को नित्य स्त्री–पुरुष में थोड़ी–सी लड़ाई हो जाति थी." इस चित्रण में अंतिम दो वाक्य विशेष रूप से ध्यातव्य हैं, जो कल तक अपने खेतों में काम करते थे, आज दूसरों के खेतों में काम कर रहे हैं. मजदूरों की तरह मानसिक वेदना तो होती ही और गरीबी का अनमोल वरदान पति– पत्नी में नोक–झोंक. कर्ज देने वाला अकेला दातादीन नहीं अपितु मंगरू, नोखे, पटेसरी, झिंगुरी सिंह सभी होरी जैसे किसान की शोषक शक्तियां है, इन्हीं के हाथों गाँव की व्यवस्था नियंत्रित होती है. शोभा का होरी से यह पूछना कि "इन महाजनों से भी कभी गला छूटेगा कि नहीं" और होरी का यह उत्तर कितना यथार्थ है, "इस जन्म में तो कोई आशा नहीं है. हम राज नहीं चाहते, भोग–विलास नहीं करते, खली मोटा–झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं. वह भी नहीं सधता." कर्ज का यह विष किसान के लिए धीमा जहर सा था. इस कर्ज की समस्या को रामविलास शर्मा ने गोदान की प्रमुख समस्या बताई थी. उन्होंने यह भी कहा था कि गोदान में शोषण का रूप दूसरा ही है' रायसाहब के कारिंदे सीधे होरी का घर लूटने नहीं जाते, मगर होरी लूटा जाता है. कचहरी–कानून के सीधे हस्तक्षेप के अभाव में भी जमीन छीन जाती है.

गाँव की शोषक शक्तियां होरी को अपने चक्र–व्यूह में घेर कर छोटे–बड़े प्रहार तो कर ही रही थी. किन्तु अब उसे धराशायी करने के लिए पटेसरी पटवारी और मंगरू साह ने ऊख नीलम करने की योजना बनायीं. ऊख नीलम हो जाती है और वही स्थिति आ जाती है जिसे होरी जिन्दगी भर बचाता रहा है. और वो जमीन को रेहान पर गिरवी रख देना. धनिया खिसियाकर होरी से प्रश्न करती है कि ' मगर जमीन रेहन पर रख दोगे तो करोगे क्या?' होरी का एक ही उत्तर है – 'मजूरी'. मगर जमीन दोनों को प्यारी थी. उसी पर तो उनकी इज्जत और आबरू टिक्की थी. 'जिनके पास जमीन नहीं वह गृहस्थ नहीं, मजूर है.' केवल होरी ही नहीं भोला भी तो मजूर हर. पूरे गाँव के किसान इसी प्रक्रिया से गुजर रहा है. होरी जीवन भर संघर्ष करता रहा, लेकिन हिम्मत कभी नहीं हारा. यहाँ तक कि मौत तक वह लड़ता रहा. वह इस संसार से जिस रूप में विदा होता है लगता है कि उसका मरण एक सामान्य नहीं बल्कि एक महामरण है. एक पूरी किसान वृति की त्रासद मृत्यु है वह।

गाँव और शहर का द्वंद्व :

गोदान में दो–दो कथाएं साथ साथ चलती हैं. इनमें से एक कथा किसान जीवन से सम्बंधित ह्रोरी–धनिया की कथा है. और दूसरी कथा में शहरी जीवन है. जिसके पात्र उद्योगपति खन्ना, मिर्जा, मेहता, मालती, संपादक ओंकार नाथ. और इन कथाओं को जोड़ने वाले हैं राय साहब अमरपाल सिंह. क्योंकि एक ओर जमींदार होने की वजह से गाँव से उनका जुडाव है और शहरी पात्रों से से उनकी मित्रता है.

गोदान में ग्रामीण कथा का सम्बन्ध कृषक शोषण से है जो लगभग दो सौ पृष्ठों में है और नगर की कथा लगभग सौ पृष्ठों में है. नगर की कथा इस उपन्यास में बाहर से जोड़ी हुई नहीं है अपितु वह इस उपन्यास के लिए अपरिहार्य है, क्योंकि प्रेमचंद का विचार है कि किसान के शोषण का पूरा चित्र तब तक नहीं उभरता जब तक उसमें नगर की कथा न हो. आचार्य नलिन विलोचन शर्मा का मानना है कि असम्बद्ध सी लगने वाली इन दोनों कथाओं के माध्यम से भारतीय जीवन को समग्रता से व्यक्त किया गया है.

नगर में रहने वाले मिस्टर खन्ना पूंजीवाद के प्रतिनिधि हैं. वे मिल मालिक हैं तथा चीनी मिलों के डायरेक्टर हैं. राय साहब भले ही खन्ना के मित्र हो, किन्तु वे स्वार्थी इतने हैं कि रायसाहब की सहायता में अपना स्वार्थ पहले देखते हैं. मजदूरों का हर तरह से शोषण करते हैं. मजदूरों की मजदूरी घटने पर प्रोफेसर मेहता ने उन्हें जिस तरह लताड़ा वह उल्लेखनीय है. मजदूरों की दुर्दशा का जो चित्र मेहताजी ने इन पंक्तियों में खिंचा है, वह आँख खोल देने वाला है– "आपके मजदूर बिलों में रहते हैं, गंदे–बदबूदार बिलों में, जहाँ आप एक मिनट भी रह जायं तो आपको उलटी हो जाय. कपडे जो वह पहनते हैं, उनसे आप जूतें भी न पूछेंगे. खाना जो वह खाते हैं, वह आपका कुत्ता भी न खायेगा." इस उद्धरण से वर्ग वैषम्य का बोध होता है. यह विषमता गाँव में भी विद्यमान है. होरी अपनी मिर्जई को रोज नहीं विशेष अवसरों पर पहनता है और रात के समय जो कम्बल वह खेत की रखवाली के समय ओढ़ता है, वह उसके पिता ने खरीदा था और अब जीर्ण–शीर्ण हो चुका है. रायसाहब दशहरे के उत्सव पर नही बीस हजार खर्च कर देते हैं. यह पैसा किसानों से ही 'शगुन के रूप में जोर जबरदस्ती वसूल किया जाता है.'

खन्ना के माध्यम से प्रेमचंद ने औद्योगिक अशांति, बाजारवाद, भौतिकवाद आदि को भी व्यक्त किया है. गोबर उस उभरती चेतना का प्रतीक है जो शोषण के विरुद्ध विद्रोह करता है और शोषण के उस चक्र से मुक्त होने के लिए शहर को पलायन करता है. गोबर ही किसान वर्ग का ऐसा पात्र है जो शहर और गाँव की कथा को जोड़ता है. गाँव के नौजवानों का वह 'हीरो' बन चुका है. वे भी चाहते हैं कि उसके साथ शहर चले और धन कमायें. कैसी विडम्बना है कि गाँव का किसान और शहर के मजदूर दोनों ही शोषण के शिकार हैं, किन्तु वे एक दूसरे के परेशानियों से परिचित नहीं है और न उनमें किसी प्रकार का संपर्क सहयोग है जबकि शोषक वर्ग के दोनों पात्र शहर के खन्ना साहब और गाँव के जमींदार रायसाहब एक दूसरे के मित्र और सहयोगी हैं यही नहीं बल्कि गाँव के किसानों में एकता नहीं है. जबकि गाँव के सारे साहूकारों में एकता है.

प्रेमचंद इसके माध्यम से यह बताना कहते हैं कि किसान और मजदूर जब तक एक मंच पर नहीं आयेंगे तब तक इसी प्रकार शोषण के शीर्ष बनते रहेंगे. अलग–अलग और अकेले लड़ने पर उनकी लड़ाई सफल नहीं हो सकती. स्पष्ट ही प्रेमचंद ने यहाँ प्रगतिवादी दृष्टि का समर्थन किया है.

गाँव के नैतिक और मानवीय मूल्य भी गोदान में सुरक्षित दिखाएँ गए हैं. भोला कहता है – 'भला आदमी वही है जो दूसरों कि बहू बेटियों को अपनी बहू बेटी समझें.' यह नैतिक मान्यता आज भी गाँव को शहर से अलग करती है क्योंकि शहर की यह विशेषता नहीं होती है. ग्रामीण जीवन में होरी जैसा चरित्र भी मिल जाते है, जो अपने उसी भाई हीरा के घर की देखभाल करते हैं, जिसने उसके भाई की गाय को जहर देकर मार डाला था और गाँव से भाग गया था. यह भ्रातृभाव इस अवमूल्यन के दौर में भी ग्रामीण संस्कृति में देखे जा सकते हैं. निश्चय ही गोदान में ग्रामीण जीवन की बाह्य झलक ही नहीं है, बल्कि उसमें ग्रामीण संकृति के आंतरिक रूप की झलक भी मिलती है. झुनिया तो फिर भी धनिया के बेटे गोबर की प्रेमिका थी, इसलिए धनिया ने उसे अपने घर में जगह दी, किन्तु सिलिया जो दातादीन के बेटे मातादीन की प्रेमिका थी, उसको भी अपने घर में पनाह दिया, जबकि सिलिया जाति से दलित थी.

प्रेमचंद के द्वारा किसान व मजदूरों के शोषण की जो कथा प्रस्तुत की गयी है, वह कहीं भी अतिरंजित नहीं लगती. न तो उनका किसान अवास्तविक है और न उसका शहरी मजदूर. गोदान की यही विशेषता उसे 'यथार्थ' के निकट लाती है. गाँव का भौगोलिक परिवेश, खेत–खलिहान, रीति–रिवाज, पात्र एवं चरित्रांकन सभी दृष्टियों से गोदान समृद्ध है. इस प्रकार प्रेमचंद ने शहर और गाँव दोनों स्तरों पर जो कुछ दिखाई दिया उसकी अभिव्यक्ति उन्होंने प्रामाणिक रूप में गोदान में किया. निःसंदेह गोदान में गाँव और शहर की कथाएं एक दूसरे की पूरक हैं और उन दोनों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर उनका नियोजन किया है.

निष्कर्ष : कुल मिलकर कहा जा सकता है कि गोदान का मूल्यांकन करते समय होरी से होती हुई रौशनी

गुदड़ी तक पहुँचती है. गोदान उनकी कहानियों और उपन्यासों के विकास–क्रम में परिणति जैसा है. प्रेमचंद का महत्व इसी में है कि उनका रचनात्मक जगत विकासशील है, स्थिर नहीं. उनसे पहले के उपन्यासकारों के उपन्यासों में दुनिया और काल की दृष्टि से रहित दुनिया है. उनमें कल्पना, जादू, तिलस्म, स्वप्न और आवेग ही उनके तत्व हैं. लेकिन पहली बार प्रेमचंद ने कथा साहित्य का सौन्दर्यबोध ही बदल डाला. उपन्यास का स्वाद उन्होंने पहली बार निम्न–जन की जीवन–स्थितियों के चित्रण में लगाया. गोदान का होरी हिंदुस्तान के किसान का प्रतिनिधि चरित्र बनकर उभरता है.

सन्दर्भ संकेत

- साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ 13, 1936
- प्रेमचंद, गोदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2004, पृष्ठ 18
- सत्य प्रकाश मिश्र (स.), गोदान का महत्व, (इलाहाबाद : सुमित प्रकाशन, 1997), पृष्ठ स. 102
- प्रेमचंद, गोदान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 2204, पृष्ठ 100
- वही, पृष्ठ 100
- वही, पृष्ठ 128
- वही, पृष्ठ 113
- वही, पृष्ठ 128
- वही, पृष्ठ 125
- वही, पृष्ठ 149
- वही, पृष्ठ 153

❑❑

जीवन पर्यन्त चलना ही जिन्दगी है के आग्रही, दृढ़ संकल्प के साथ अपने सृजनलोक से व्यक्तिलोक तक की यह यात्रा रामकमल राय सन् 1978 ई0 से शुरू कर सन् 2003 ई0 तक की कालावधि के बीच करते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि अज्ञेय को पढ़ना, सोचना, समझना और लिखना, प्रकाशित करना रामकमल राय की अज्ञेय के प्रति लगाव और निष्ठा का परिमाण है। अज्ञेय पर काम करने वाले हर पाठक, शोधार्थी के लिये प्रो0 रामकमल राय की अज्ञेय पर लिखी चारों पुस्तकें–अज्ञेय सृजन और संघर्ष, शिखर से सागर तक, शेखर : एक जीवनी–विविध आयाम, अज्ञेय सृजन की समग्रता संदर्भ ग्रन्थ के रूप में प्रयुक्त होती रहेंगी। वास्तव में देखा जाए तो समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सम्मान पाकर गौरवान्वित होते हैं तो कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिनका सम्मान कर समाज स्वयं गौरवान्वित होता है। डॉ0 रामकमल राय के सृजन को पढ़कर हर पाठक यह गर्व महसूस कर गौरवान्वित होता है।

✍ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

दलित साहित्य की कविताओं में प्रतिरोधी मूल्य

डॉ0 कमलेश सिंह नेगी
सहायक प्राध्यापक–हिन्दी
चन्द्रशेखर आजाद शासकीय स्नातकोत्तर अग्रणी महाविद्यालय सीहोर, मध्यप्रदेश

विकृतियों के कारण मानव द्वारा प्रताड़ित, प्रभ्रमित, प्रशोषित एवं अधिकार वंचित मानव की मुक्ति के लिए आदिकाल से ही उदारवादी, प्रज्ञाशील, मानवतावादियों का संघर्ष निरन्तर चलता आ रहा है। चार्वाक, गौतम बुद्ध, सरहपा, संत कबीर, रविदास, महात्मा फुले एवं बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर की एक लम्बी वैचारिक परम्परा अनवरत गतिमान है।

''पता नहीं धर्म के नाम पर
किस हिंसक ने लिखा
दूध पीते अबोध बच्चों को जलाना
माँ–बहनों को रायफलों से भूनना
चना मटर और मकई की तरह
आदमी को चीखते हुए आग में फेंकना
आज बेलछी, आगरा या नारायणपुर हो,
सब जगह एक ही चीख आती है
बचाओ–बचाओ।[1]

कवि प्रेमशंकर की उक्त कविता प्रतिरोध को अभिव्यक्त करते हुए, एक नये प्रकार के साहित्यिक सौंदर्य का प्रादुर्भाव करती है। हमारे समाज का एक ऐसा तबका जो सदियों से उपेक्षित, बंचित रहा है। ढेर सारी बंदिसों के नीचे दबा रहा। उसे अपना स्वतंत्रतापूर्वक काम करने और बात रखने का अधिकार नहीं था। प्रतिरोध करने का तो सवाल ही नहीं उठता है। 1960 के दशक के बाद एक नये साहित्यिक आन्दोलन का जन्म होता है। दलित साहित्य के माध्यम से नये–कवियों का प्रादुर्भाव होता है। जिनकी कविताओं में प्रतिरोध की ज्वाला धधक रही है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में घटित सभी प्रकार की घटनाओं का उसके मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जहाँ तक प्रश्न है दलित वर्ग का तो इस वर्ग को जन्म से मरण तक सुबह से शाम तक किसी न किसी प्रकार से मानसिक प्रताड़ना का शिकार पहले भी बनाया जाता था और आज सुशिक्षित समाज में भी। कोई न कोई चुभने वाली बात कह दो व्यक्ति एकाध नहीं कई दिनों तक मानसिक रूप से परेशान हो जाएगा। इसी प्रकार की रणनीति एक विशेष वर्ग द्वारा दलितों का मानसिक शोषण करने के लिए अपनाई है। शिक्षा संस्थानों, कार्यालयों और गली मुहल्लों में मानसिक प्रताड़ना का कुचक्र चलता रहता है। इस प्रकार की घटनाओं, सामाजिक अत्याचारों का व्यक्ति के मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है इसे वह हम तभी महसूस कर सकते हैं। दलित कवि स्वयं भुक्तभोगी होकर ही वेदना को अपने शब्दों में प्रकट करता है। सवर्ण प्रायः दलितों को 'अक्करमाशी' या 'ढेढ़', चमार, चूहड़, सरकारी दामाद, कोटेवाला आदि संबोधनों से द्वारा मानसिक रूप से प्रताड़ित करते हैं। 'अक्करमाशी' एक मराठी शब्द है जिसका अर्थ है अवैध सम्बन्धों से उत्पन्न संतान या जारज संतान'। इस प्रकार के सम्बोधन इनके सामने इनके पूर्वजों की विकृतियों को खोलकर रख देते हैं जो सर्वाधिक आहत करने वाले होते हैं। कवि जय प्रकाश कर्दम ने इसी प्रकार के भावों को प्रकट करते हुए लिखा है–

''मेरा उपहास मत उड़ाओ
मेरे खून को मत खौलाओ
अपनी माँ के कुकर्मों के कारण
नहीं हूँ मैं अक्करमाशी
मैं उसकी विवशता का परिणाम हूँ।''[2]

मानसिक प्रताड़नाओं के फलस्वरूप जन्मी ये कविताएं व्यवस्था में प्रतिरोध को जन्म देती हैं। आज के कवि का इस प्रकार कसी जाने वाली फब्तियों से खून खौलता है। गंगा सहाय मीणा इसी विचारधारा पर कुठाराघात करते हुए लिखते हैं कि–

''वर्णश्रेष्ठताजनक सामाजिक आरक्षण
भकोस रहे कुछ सज्जन
चाणक्य प्रणीत साम–दाम–दण्ड–भेद में से
मकूल पेंच भिड़ाकर
बस इसी योग्यता के बूते
अपने लिए और अपनी परवर्ती पीढ़ियों के लिए
कई सरकारी पद सहज ही हथियाते रहे
और यकीनन
इतने कुछ के बावजूद
वे ताजिंदगी आरक्षण–मन से रहे कोसों दूर
जीभर संवैधानिक आरक्षणभोगियों और
उसके प्रणेता बाबा साहेब अंबेडकर को
पानी पी पीकर कोसते गरियाते रहे।'' (गंगा सहाय मीणा : आरक्षण बनाम आरक्षण)

निर्मला पुतुल, ने भी अपनी कविताओं के माध्यम से दलितों के साथ होने वाले भावनात्मक, आर्थिक, शारीरिक अन्यायों का वर्णन किया है। दलित स्त्रियों को तो सवर्ण अपनी सम्पत्ति मानते ही आए हैं। प्राचीन काल में तो विवाहोपरांत प्रथम रात्रि के समय दलितों को अपनी नवविवाहिता पहले ठाकुरों, शासकों के यहाँ भेजनी पड़ती थी और वह जब तक चाहे उसे अपने यहाँ रखकर उसका शारीरिक शोषण करता था। उसके बाद कहीं दलित को यदि शोषक मेहरबान हो जाए तो स्त्री सुख नसीब होता था। 'यौन शोषण' समाज का बहुत ही घिनौंना रूप रहा है जिसे दलित समाज ने सदियों तक झेला है। इसका जिक्र दलित कवि अपनी कविताओं में अपनी माँ, बहनों से होने वाले बलात्कारों और देवदासियों के साथ होने वाले यौन शोषण के रूप में करते रहे हैं। इनकी कविताएं भावनात्मक, शारीरिक तथ्य को उजागर करती हैं निर्मला पुतुल की निम्नलिखित कविता –

''मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में
वे घृणा करते हैं हमसे
हमारे कालेपन से
हँसते हैं, व्यंग्य करते हैं हम पर
वे नहीं चाहते
हमारे हाथों का छुआ पानी पीना
हमारे हाथों का भोजन
सहज ग्राह्य नहीं होता उन्हें
वर्जित है उनके घरों में हमारा प्रवेश

प्रिय है तो बस
मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने
जंगल के फूल, फल, लकड़ियाँ
खेतों में उगी सब्जियाँ
घर की मुर्गियाँ
उन्हे प्रिय हैं
मेरी गदराई देह
मेरा मांस प्रिय है उन्हें।''[3]

समाज में रचा–बसा 'विद्वेष' रूप बदल–बदल कर झांसा देता है। दलित कवि के सामने ऐसी भयावह स्थितियां निर्मित करने के अनेक प्रमाण हर रोज सामने आते हैं, जिनके बीच अपना मार्ग तलाशना कठिन होता है। सभ्यता, संस्कृति के घिनौने षड्यंत्र लुभावने शब्दों से भरमाने का उपक्रम करते हैं। दलित के लिए नैतिकता, अनैतिकता और जीवन मूल्यों के बीच भेद फर्क करना कठिन हो जाता है, फिर भी उम्मीद बाकी है। एक दलित कवि का यही प्रयत्न होता है कि इस भयावह त्रासदीमय वातावरण से मनुष्य स्वतंत्र होकर प्रेम और भाईचारे की ओर उन्मुख हो, जिसका अभाव हजारों साल से साहित्य और समाज में परिलक्षित होता रहा है। प्राचीन काल से मध्यकाल तक उसे अपना दर्द कहने तक की इजाजत नहीं थी। प्राचीन वर्ण–व्यवस्था तथा वर्तमान में अंतर यह है कि आज कवि अपनी बात को रोषपूर्ण ढंग से कहने की स्थिति में है, जो वह पहले नहीं कह सकता था। दलितों को आजीवन सवर्णों ने स्वयं से दूर रखा यहाँ तक मरघट में भी। इसी स्थिति का बोध कराती हैं रघुवीर सिंह की प्रस्तुत पंक्तियां –

''ओ ! मेरे गांव !
तेरी जमीन पर
घुटी–घुटी सांसों के साथ
चलना पड़ता है अलग–थलग
लड़खड़ाते कदमों से
चलना पड़ता है अलग–थलग
मरने के बाद भी
जलना पड़ता है अलग–थलग।।'' (डॉ. रघुवीर सिंह, दीर्घा, पृष्ठ सं. 13)

मंदिर में उपासना या पूजा तो दूर की बात है उनमें दलितों का प्रवेश तक वर्जित रहा है और तो और किसी भी स्थान पर उन्हें कार्य करने तक सामाजिक स्वीकृति उच्च वर्ग ने नहीं दी। डॉ. जगदीश गुप्त के शब्दों में वेदना स्पष्ट झलकती है –

''कर रहा तप शूद्र कोई
अधोमुख दंडक गहन में स्वर्ग का सुख लूटने की
लालसा को लिए मन में
चाहता है एक दिव्य कृपाण
किन्तु जाएंगे उसी के प्राण।।''[4]

श्री जगदीश गुप्त 'शम्बूक' नामक काव्य में शम्बूक नामक दलित महान तपस्वी के माध्यम से दलित वर्ग का प्रतिरोध उजागर करते हैं। शम्बूक के द्वारा घोर तपस्या करते समय राम ने उनका सिर काट दिया। दलितों के प्रति अपमान एवं शोषण तथा अन्याय की यह विषाक्त भावना समाज के मस्तक पर निश्चित ही कलंक है। समाज की

इस कुत्सित विचारधारा का दर्शन निम्नलिखित पंक्तियों में किया जा सकता है –

''हे राम! तुम्हारी रची
रक्त की भाषा में
हर बार
तुम्ही से कहता है
शम्बूक मूक
तज कर्म–वेद–पथ
मानव समाज की
ऊर्धमुखी मर्यादा में
तुम गए चूक।''[5]

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलितों के दर्द और संघर्ष के कवि हैं। वे अपनी पीढ़ी के लोगों में आँसुओं का सैलाब नहीं, बल्कि विद्रोह की चिनगारी देखना चाहते हैं। उनकी पीढ़ी के दलितों ने अपने स्वाभिमान और सम्मान के लिये उन गाँवों से शहरों में पलायन किया, जो उनके लिये हिन्दुओं के 'घेटो' (यातना शिविर) थे। शहरों में आकर, उन्होंने जुलूसों को देखा और अपने लिये भी संघर्ष का रास्ता चुना। 'तनी मुट्ठियाँ' कविता में कवि इन्हीं दलितों का प्रतिनिधित्व करता हुआ कहता है, यथा–

''मेरी पीढ़ी सदियों के अभिशाप को
कंधों पर लादे
गाँव से शहर तक आयी है
खड़ी देख रही है दोराहे पर
मशाल लिये जाते जुलूस को।
मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर
खोद लिया है संघर्ष
जहाँ आँसुओं का सैलाब नहीं
विद्रोह की चिन्गारी फूटेगी
जलती झोंपड़ी से उठते धुएँ में
तनी मुट्ठियाँ रचेंगी
तुम्हारे तहखानों में
नया इतिहास।''

शम्बूक और एकलव्य दलित कविता में दलित अस्मिता के प्रतीक के रूप में प्रयोग किये जाते रहे हैं। पर, ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'शम्बूक का कटा सिर' कविता में हर युग में शम्बूक की शहादत का चित्रण किया है। यथा–

''यहाँ गली–गली में
राम है/शम्बूक है
द्रोण है/एकलव्य है
फिर भी सब खामोश हैं/कहीं कुछ है
जो बन्द कमरों में उठते क्रन्दन को
बाहर नहीं आने देता/कर देता है
रक्त से सनी उंगलियों को महिमामंडित।''

इस कविता के द्वारा उन्होंने हिन्दी के उन तथाकथित सहानुभूतिवादी कवियों को आईना दिखाया है, जिन्होंने

कभी भी दलित–विरोधी राज व्यवस्था के खिलाफ इसलिये आवाज नहीं उठायी, क्योंकि वे उस व्यवस्था से लाभान्वित होते थे। इसलिये, दलित कवि ने 'हथेलियों में थमा सिर' कविता में दो–टूक शब्दों में कहा–

''गली के मुहाने पर
खाँसता सदियों का अभिशाप
समय की गिनती भूल चुका है
साथ ही भूल चुका है
साँझ और सबेरे का अन्तर।''

हर कोई इंसान है तथा वह अपनी योग्यता एवं प्रतिभा के अनुसार कार्य कर सकता है। यह बात दूसरी है कि एक वर्ण को असवर्ण एवं दलित मानकर उसे उसके अधिकारों से वंचित कर दिया गया है। अब दलितों को उनके अधिकार प्रदान करने के लिए कवि कटिबद्ध है, दलित कविता इसका प्रबल प्रमाण है, कवि जगदीश की कविता –

''मैने जब माँगा
जन्म–सिद्ध अधिकार
आत्मा के शिखरों को छूने का
स्वयं खड्ग–पाणि हो
उतर आये हिंसा पर
मर्यादा पुरूषोत्तम।''[6]

डॉ. पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी अपनी 'अलगाव की चोट' कविता में दलित समुदाय पर होने वाले उस सामाजिक अन्याय की व्याख्या करते हुए कहते हैं –

''तुम्हारी इस सत्ता व्यवस्था ने
सार्वजनिक कुओं–तालाबों से पानी लेने
सड़कों पर चलने
अपनी पसंद के कपड़े एवं जेवर पहनने
खाना खाने स्कूल में पढ़ने
गाँव बस्ती में घर बनाकर रहने का अधिकार
छीनकर इसको छुओ मत इसके साथ खाओ मत
और इसके साथ विवाह मत करो
वर्जनाओं–प्रतिबंधों की काल कोठरी में
कैद किया और अस्पृश्य बना दिया मुझे।।''[7]

स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्ष बाद आज भी दलितों की बस्तियां, गाँवों, कस्बों और शहरों में बाहर की ओर होती हैं उन्हें अन्य जातियों के लोगों के साथ उनके गली मुहल्लों में रहने का अधिकार नहीं है। जो कि संवैधानिक प्रावधानों तथा कानून के सतही स्तर पर कार्यान्वयन की कमी को उजागर करता है परन्तु कार्यान्वयन करने के लिए उत्तरदायी भी तो उच्च वर्ग ही है और सदियों पुरानी रूढ़ियां आज भी उनके मस्तिष्क पर शासन करती हैं। परिणाम भोगता है दलित वर्ग। शिक्षित होने के उपरांत कुछ लोग आधुनिकता के दौर में छोटी–मोटी नौकरी करने योग्य हो गए हैं और अच्छे रहन–सहन की लालसा में गांवों से कस्बों और शहरों की ओर जाने लगे हैं। अपना गाँव, शहर का निवास छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर जाने रहने के लिए अधिकांशतः मकान किराए पर लेना आवश्यक होता है परन्तु दलित जाति के व्यक्ति के लिए मकान किराये पर लेना आसान काम नहीं होता है यही

भाव दलित कविता में प्रतिरोध के रूप में सामने आता है—

> ''घर की तलाश
> इस अपरिचित बस्ती में
> घूमते हुए मेरे पैर थक गए हैं
> अफसोस! एक भी छत
> सर ढकने को तैयार नहीं।
> हिन्दू दरवाजा खुलते ही
> कौम पूछता है और
> नाक भौं सिकोड़ —
> गैर सा सलूक करता है
> नमाजी दरवाजा
> बुत परस्त समझ
> आँगन तक जाने वाले रास्तों पर
> कुंडी चढ़ाता है
> अब यही सोच रहा हूँ मैं
> कि सामने वाले दरवाजे पर
> दस्तक नहीं, ठोकर दूँगा।''[8]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि दलित साहित्य शोषण रहित मानवतावादी एवं समतावादी समाज की स्थापना का पक्षधर है। दलित आन्दोलन समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और सामाजिक न्याय आदि मूल्यों की स्थापना का पक्षधर है। दलित साहित्यकारों ने दलित साहित्य के द्वारा 'स्व' की खोज में निकले पूरे समाज का पूर्व परम्पराओं से विद्रोह एवं अपनी अस्मिता की स्थापना का एक विनम्र प्रयास है। दलित साहित्य का विद्रोह रचनात्मक विद्रोह है। निश्चित लक्ष्य और उद्‌देश्य को दृष्टिगत रखते हुए यह साहित्य धार्मिक, जातिगत, राजनैतिक, शैक्षिक एवं साहित्यिक स्थितियों को बदलने के लिए संघर्षरत चेतना उत्पन्न करता है। यही चेतना दलित कवियों की कविताओं में प्रतिरोधी स्वरों के रूप में अभिव्यक्त होती है।

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी दलित कविता — डॉ. रजत रानी 'मीनू', नवभारत प्रकाशन, अशोक नगर, शाहदरा, दिल्ली—93, प्रथम संस्करण — 2009, पृष्ठ—122
2. गूँगा नहीं था मैं (कविता संग्रह) — जयप्रकाश कर्दम, अतिशय प्रकाशन, हरिनगर,दिल्ली, प्रथम संस्करण—1997, पृष्ठ—44
3. नगाड़े की तरह बजते शब्द : निर्मला पुतुल, (मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नजर में कविता से), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण—2005, पृष्ठ सं. 72
4. शम्बूक (काव्य) : डॉ. जगदीश गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ—11
5. शम्बूक (काव्य) : डॉ. जगदीश गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ सं. 1
6. शम्बूक (काव्य) : डॉ. जगदीश गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ सं. 99—100
7. डॉ. पुरुषोत्मक सत्यप्रेमीः मूक मोटी की मुखरता, पृष्ठ सं. 12
8. दलित निर्वाचित कविताएँ संपादक — कँवल भारती, इतिहास बोध प्रकाशन, बी—239, चन्द्रशेखर नगर इलाहाबाद, प्रथम संस्करण— 2006, देखिए पृष्ठ— 51, 52

❑❑

दलित आंदोलन एवं मानवाधिकार

डॉ0 अनुपमा यादव
सहायक प्राध्यापक–राजनीति विज्ञान,
शासकीय स्नातकोत्तर महा.,भेल, भोपाल (म.प्र.)

भारतीय समाज शताब्दियों से सामाजिक भेदभाव का शिकार रहा है। हमारे देश में समाज के कुछ वर्गों को समाज के सामान्य वर्गों की तुलना में सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों की दृष्टि से दयनीय स्थिति में रखा गया, हमारा समाज प्रारम्भ से ही धर्म, विचारों प्रचलनों तथा तरह–तरह की सूझ–बूझ से विभाजित रहा है। मोटे तौर पर यह दो भागों में विभाजित है। पहला भाग नीची जातियों के बहुमत का है, जो शताब्दियों से अपमानित होते रहे हैं। दूसरा थोडे से मुट्ठी भर लोग जो सारा आनन्द प्राप्त करते हैं, अपने आपको श्रेष्ठ कहते हैं और बहुमत की कीमत पर जीते हैं। एक का कल्याण दूसरे की आपदा है और यही इसका पारस्परिक सम्बन्ध है।[1] समाज में दूसरे श्रेष्ठ वर्ग अर्थात् सवर्णों द्वारा दलितों का प्रायः शोषण किया जाता रहा है। "दलित" शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के दल धातु से हुई है, जिसका अर्थ है तोड़ना, हिस्से करना या कुचलना। हिन्दी शब्दकोश में इसका अर्थ मसला हुआ, दबाया हुआ, रौंदा हुआ, मान–मर्दित किया गया कहा गया है। अंग्रेजी में दलित शब्द के लिए डिप्रेस्ड कास्ट अनुवाद मिलता है। स्वामी विवेकानन्द एवं रानाडे ने दलित शब्द, महात्मा गाँधी ने हरिजन शब्द तथा भारतीय संविधान ने दलित जातियों के लिए "अनुसूचित जाति" शब्द का प्रयोग किया है। हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द्र जी ऐसे पहले साहित्यकार हैं, जिन्होंने समाज के कमजोर वर्ग दलित,नारी या पशु को अपनी रचनाओं का केन्द्र बनाया। उन्हें पढ़कर यह अनुभव होता है कि वे दलित की पीड़ा एवं यातना को स्वयं जीकर विश्वसनीयता प्राप्त करते हैं। उनके साहित्य में सर्वत्र "दलितों, कृषकों, मजदूरों, स्त्रियों की पीड़ा उनकी बेगारी का यथार्थ चित्रण एवं उससे मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा सर्वत्र दिखाई पड़ती है।[2]

भारतीय समाज में ऋग्वैदिक काल से ही सामाजिक जीवन में वर्ण भेद की झाँकी देखने को मिलती है। लेकिन जातिगत भेदभाव नहीं दिखाई देता। प्रारम्भ में गौर वर्ण के आर्य श्रेष्ठ व श्याम वर्ण के अनार्य दस्यु कहलाये, परन्तु कालान्तर में सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने हेतु आर्यों के समाज का भी विभाजन हो गया, जिसके द्वारा कार्यों के आधार पर समाज को चार वर्णों में बाँटा गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चार वर्णों की उत्पत्ति ब्रह्मा जी से हुई। इस तथ्य के प्रमाण ऋग्वेद, मनुस्मृति, गीता, महाभारत आदि अनेक प्राचीन धर्म ग्रंथों से मिलते हैं। सर्वप्रथम ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में शूद्र शब्द का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

"पद्भ्यां शूद्रो अजायत अर्थात ब्रह्म के पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए, इसका अर्थ विद्वानों ने अपने–अपने तरीके से लगाया अधिकांश ने इसका भाव निकाला कि शूद्रों का जन्म समाज के अन्य तीन वर्णों की सेवा करने के लिए हुआ। यहीं से आदर एवं अनादर अर्थात सम्मान और अपमान की धारा सदा के लिए प्रवाहित हो गई। जबकि इसी पुरुष सूक्त के तीसरे मंत्र में यह भी कहा गया है कि "पदोऽस्य विश्वा भूताति" अर्थात उस पुरुष के पाद हैं। संसार के सभी प्राणी अब जब संसार के सारे प्राणी उस पुरुष के पाद में हैं, तब मानव मानव में भेदभाव की कल्पना व्यर्थ है। यह सत्य है कि चातुर्वर्ण व्यवस्था ऋग्वैदिक समाज की वास्तविकता थी लेकिन यह भी सत्य है कि इसके निर्धारण का आधार व्यक्ति के गुण एवं कर्म थे। इतिहास साक्षी है कि प्राचीनकाल में दलितों को कर्म के अनुसार उच्च स्थान प्राप्त थे। रामायण रचयिता वाल्मीकि निम्न जाति से थे, महाभारत रचयिता व्यास एक धीवर कन्या से उत्पन्न हुए थे। महात्मा विदुर दासी पुत्र थे। रैदास जाटव, कबीर जुलाहा, सेनभगत नाई। ये सब प्रख्यात भगवत

भक्त हुए, जिन्हें ईश्वर की प्राप्ति हुई। कर्मानुसार शूद्र वर्ण उच्च वर्ण प्राप्त कर सकता था तो उच्च वर्ण निम्न वर्ण प्राप्त करते थे। महाभारत के शांतिपर्व के 188 एवं 189वें अध्याय से यह ज्ञात है कि प्राचीनकाल में सभी मानव ब्राह्मण थे और कालान्तर में कर्मों के ह्रास के कारण अन्य वर्णों का सृजन हुआ। समय के प्रवाह के साथ–साथ यह वर्ण व्यवस्था गुण व कर्म की बजाय जन्म पर आधारित होती चली गयी। इसी के आधार पर जातियाँ बनीं फिर उससे अनेक उपजातियाँ उत्पन्न हुईं और इनमें ही आपसी संघर्ष होने लगा। इस प्रकार भारतीय समाज प्राचीनकाल से लेकर आज तक जाति व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था के द्वन्द्व से जूझ रहा है। इसी निम्न और श्रेष्ठ के द्वन्द्व में एक क्रांतिकारी लहर निम्नतर वर्गों में पहुँची, जिसने विचारों की शक्ति पैदा की है। बहुत बड़ी संख्या में इन बहुमत वाली नीची जातियों में यह सवाल उठ खड़ा हुआ है कि कौन और क्या इस अन्याय को कर रहा है?हमारे अधिकार क्या हैं? हम कैसे इस अन्याय को उखाड़ फेंक सकते हैं?[3]

इस बड़े जाति विरोधी आंदोलन के मुख्य नायक ज्योतिबा फुले, बाबा साहेब अम्बेडकर और ई.वी. रामास्वामी पेरियार थे। इनके अतिरिक्त सारे भारत में हर स्तर पर सांस्कृतिक, आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से कई लोग शोषण की व्यवस्था पर प्रहार कर रहे थे।[4] दलित आंदोलनों में न केवल हिन्दू समाज की विकृतियों और ज्यादतियों की आलोचना की गई साथ ही हिन्दू धर्म के ऊपर भी प्रहार किया। आंदोलनकारियों का कहना था कि यह समाज जातियों में बंधा हुआ है और अतार्किक है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि हिन्दू धर्म संस्कृति नहीं रहा है बल्कि सारा धर्म जबरदस्ती लादा हुआ है। यदि हम शोषण से बचना चाहते हैं तो इस बात की आवश्यकता है कि नीची जातियाँ इस लादे हुए धर्म को नकार दें। दलित अपने आपको गैर हिन्दू के रूप में परिभाषित करें और एक नई धार्मिक पहचान को प्राप्त करें। ज्योतिबा फुले ने दलितों को एक ऐसा पथ दिखाया जिस पर दलित समाज और अन्य समाज के लोगों ने आगे चलकर दलितों के अधिकारों के लिए आंदोलन किए एवं कई लड़ाई लड़ीं फुले ने ना केवल दलितों के अधिकारों की पैरवी की बल्कि यह भी प्रयास किया कि यदि दलितों को जागरूक बनाना और उन्हें आगे बढ़ाना है तो उन्हें अधिकारों के साथ–साथ शिक्षा भी देनी होगी। सबसे पहले दलित विद्यालय की स्थापना का श्रेय भी फुले को ही जाता है।[5]

ज्योतिबा फुले ने जहाँ दलित आंदोलनों का सूत्रपात किया वहीं डॉ. भीमराव अम्बेडकर का ने इसे समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का काम किया उनका कहना था सामाजिक लोकतंत्र के बिना राजनीतिक लोकतंत्र अधूरा है। उन्होंने यह महसूस किया कि दलित जातियाँ अपनी निर्योग्यताओं से छुटकारा केवल हिन्दुओं के समान अधिकार प्राप्त होने पर ही कर सकती हैं। उन्होंने स्वयं यह अनुभव किया कि भारत में एक वर्ग विशेष को मानवीय अधिकारों से वंचित रखकर उसके ऊपर अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक निर्योग्यताएँ थोपी गईं तथा उसे अस्पृश्य एवं हीन बना दिया गया। उन्होंने अस्पृश्यता को समाप्त करने की कानूनी पैरवी की।

12 नवम्बर सन् 1930 ई0 के प्रथम गोलमेज सम्मेलन में अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व की माँग की। इसी माँग को उन्होंने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में पुनः जोरदार ढंग से ब्रिटिश सरकार के समक्ष रखा जिसके परिणामस्वरूप सम्मेलन की समाप्ति के बाद 17 अगस्त सन् 1932 ई0 में तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेम्जे मेकडोनल्ड ने "साम्प्रदायिक पंचाट" की घोषणा की। इस घोषणा में हरिजनों व दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व एवं मताधिकार प्रदान किये गये। इसके बाद ही दलितों को गाँधी जी व अम्बेडकर के प्रयासों से आरक्षण सहित अनेक लाभ हुए।

भारतीय संविधान के शिल्पकार के रूप में उन्होंने दलित हितों एवं अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित की ताकि सभी मनुष्यों के समान वे गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें। इस हेतु सभी स्वतंत्रता संग्राम के दृष्टाओं और पुराधाओं के साथ मानवाधिकार की अनिवार्यताओं को स्वीकार किया गया। सभी ने यह महसूस किया बुनियादी मानवाधिकार के बिना प्राप्त की गयी स्वतंत्रता बेमानी है। इसलिए भारतीय संविधान में मानवाधिकारों को वैधानिक

दर्जा प्रदान किया गया। वस्तुतः "मानव अधिकार का सम्बन्ध व्यक्ति की गरिमा एवं आत्म सम्मान से है, जो मानव की पहचान तथा मानव समाज के संवर्द्धन के लिए आवश्यक है।[6] संविधान में मूल अधिकारों के अन्तर्गत विधि के समक्ष समानता, भेदभाव का निषेध, अस्पृश्यता का अन्त, सरकारी सेवाओं में आरक्षण, आदि प्रावधानों के द्वारा दलितों के सम्मान, स्वाभिमान, उत्थान, उनके हितों के संवर्द्धन का प्रयास सुनिश्चित किया गया एवं कठोर दण्ड का प्रावधान भी किया गया। ऐसी जागृति ने वास्तव में अनुसूचित जाति/जनजातियों में आत्म चेतना जागृत और सम्मान की भावना उत्पन्न की।"[7] लेकिन इसके बाद भी दलितों पर अत्याचार शोषण का सिलसिला थमा नहीं फलतः स्वतंत्र भारत में दो शताब्दियों तक दलित आंदोलन निष्क्रिय रहे। लेकिन सन् 1970 ई0 के प्रारम्भिक वर्षों में ये आंदोलन फिर उठ खड़े हुए। इस बार दलित और उनके संगठन स्पष्टतः अग्रिम पंक्ति में थे, जिनको अन्य पिछड़ा वर्ग कहा गया उनके पीछे थे यद्यपि संविधान द्वारा अनुसूचित जाति/जनजाति को अन्य नागरिकों की भाँति ऊपर उठाने हेतु आवश्यक मानवीय अधिकारों और सदियों से सामाजिक अन्याय को समाप्त कर, सामाजिक न्याय दिलाने के उद्देश्य से कल्याणकारी योजनाओं द्वारा संरक्षण एवं उत्थान हेतु हरसम्भव प्रावधान एवं प्रयास किये गये। प्रत्यक्ष रूप से संरक्षणात्मक उपाय भारतीय संविधान के अनुच्छेद–45 में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में इस प्रकार उल्लिखित है –

"राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्ट तथा अनुसूचित जातियों, जनजातियों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।"[8]

इन संरक्षणात्मक उपायों के अन्तर्गत संसद एवं विधान सभाओं में राजनीतिक सेवाओं में उचित प्रतिनिधित्व, अस्पृश्यता निवारण, हिन्दू धार्मिक संस्थाओं में खुलापन, शैक्षिक संस्थाओं में निर्बाध प्रवेश, सामाजिक शैक्षिक व आर्थिक उन्नति के विशेष प्रयास करना, मानवीय भावनाओं के दुर्व्यवहार पर प्रतिबन्ध और बेगार व बन्धुआ मजदूरी पर प्रतिबन्ध, अनुसूचित जातियों व जनजातियों को प्रदत्त इन सुविधाओं, जिनमें अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों का विकास हो, से सम्बन्धित मामलों के अन्वेषण हेतु विशेष अधिकारी की नियुक्ति करना आदि, इन संवेधानिक उपायों के अतिरिक्त दलितों की दशाओं में सुधार हेतु भारत सरकार द्वारा दो आयोग भी गठित किये गये। इन संवैधानिक उपचारों एवं सरकार द्वारा अन्य कल्याणकारी योजनाओं के फलस्वरूप अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्गों के लोगों में उत्पन्न जागृति, आत्मविश्वास के फलस्वरूप उच्च वर्गों के विरूद्ध एक आक्रोश भी उत्पन्न हो गया और दूसरी तरफ उच्च वर्ग के लोग सदियों से प्राप्त मुफ्त के दासों के हाथ से निकल जाने एवं प्रभुता जमाने की प्रवृत्ति पर पहुँचने वाले आघात को अनदेखा न कर पाने की स्थिति में मानसिक रूप से असंतुलित अवस्था को प्राप्त होने लगे, जिससे समाज में वर्ण–संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी[9] और इससे दलित आंदोलनों को और अधिक बल मिला। यह बात अलग है कि आरम्भ में दलित आन्दोलन दलित की अस्मिता की लड़ाई लड़ रहा था, उसके जमीनी प्रश्नों से दो हाथ कर रहा था, उसके हिस्से में आये हुए अपमान, उपेक्षा, वर्ण नीचता और व्यवस्था की विसंगतियों से वह संगठित होकर लड़ रहा था किन्तु जैसे–जैसे दलित राजनीति में सक्रिय होता गया, सत्ता में अपना हिस्सा माँगने लगा, जो पहले अस्मिता, अस्तित्व और रोटी के प्रश्न को लेकर लड़ रहा था। वह अब अपने दलित होने की पहचान को मिटाकर जीवन के हर क्षेत्र में आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ने लगा[10] लेकिन वास्तविकता को फिर भी वह झुठला नहीं पाया अनेक जगह उसे लगने लगा कि देश में जातिगत भेदभाव की जड़ें बहुत गहरी हैं। आज भी दलितों पर होने वाले अत्याचार व उनके अधिकारों के हनन के मामले थमे नहीं हैं। उनमें निरन्तर वृद्धि हुई है। यद्यपि अस्पृश्यता के मामले कुछ कम हुए हैं, लेकिन उन्हें नगण्य नहीं कहा जा सकता, दलित महिलाओं, विद्यार्थियों के साथ दुर्व्यवहार, मन्दिरों में उनके प्रवेश पर रोक एवं धार्मिक कृत्य पर रोक, मतदान से रोकना आदि अनेक तरीकों से मानवाधिकारों पर आघात किया जा रहा है। भारतीय सन्दर्भ में चाहे वह प्राचीनकाल

रहा हो चाहे मध्यकाल एवं आधुनिक काल दलितों के सन्दर्भ में निःसंदेह मानव अधिकारों के परिपेक्ष्य में आदर्श स्थिति का अभाव रहा है।[11] डॉ0 आम्बेडकर जी के इस वाक्य को सही मायने में आज चरितार्थ करना होगा कि–"जाति संस्था का नाश ही समानता का निर्माण जब तक जाति, वर्ण व्यवस्था की विसंगतियों का त्याग दोनों वर्गों (सवर्णों–दलितों) द्वारा नहीं किया जाएगा। तब तक मानवाधिकार आहत होते रहेंगे और दोनों वर्ग कुछ न कुछ गँवाते रहेंगे।''[12] यह तो निश्चित है कि जातीय संरचना को समाप्त किये बगैर हमारा सामूहिक विकास सम्भव नहीं होगा और ना ही राष्ट्र का विकास सम्भव होगा, इसलिए हम सबको यह अंगीकार करना होगा–

"जात पाँत का नाश
सबका साथ, सबका विकास।"

सन्दर्भ–ग्रंथ

1. पाटिल, मुकुन्दराव, दीन मित्रा, जून 1913, कल्चरल रिवोल्ट इन ए कोलोनियल सोसायटी : पृ.–157
2. "कृतिका" अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका, वर्ष–8, अंक 15–16, जनवरी –दिसम्बर 2015, पृ.–167
3. ओमवेट की पुस्तक "कल्चरल रिवोल्ट", पृ.–122
4. गेल ओमवेट अनुवादक नरेश भार्गव, दलित और प्रजातांत्रिक क्रांति, पृ.–4
5. हाशिये की आवाज, नवम्बर 2016, वर्ष–11, अंक–11, पृ.–16
6. एन.एन. ओझा–क्रॉनिकल "भारत की सामाजिक समस्याएँ", पृ.–228
7. डॉ0 डी. वेकेटवरलू, हरिजन अपर कास्ट कन्फिलिक्टस, 1990, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, पृ.–156
8. सी.पार्वथन्मा शैड्यूल कास्ट एण्ड ट्राइब्स, पृ.–10 एवं भारतीय संविधान
9. सारस्वत, अक्षेन्द्र नाथ "सामाजिक न्याय मानवाधिकार और पुलिस", पृ.–271
10. डॉ0 सूर्यनारायण रणसुभे, "दलित चेतना की पहचान", पृ.–174
11. पुनीत कुमार, "मानव अधिकार एवं भारतीय लोकतंत्र", पृ.–15
12. खत्री, हरीश कुमार "मानवाधिकार", पृ.–55

❑❑

किसी भी लेखक का लेखन मन की आकुलता, संवेदनशीलता का परिणाम उसके सृजन में मानवीय संघर्षों, सामाजिक परिवेश में होने वाले परिवर्तन का यथार्थपरक चित्रण होता है। कल्पना के विशाल फलक पर जब यह वास्तविकता का उद्देलन, भावोद्गार प्रकट करता है तो शिखर से सागर, अज्ञेय : सृजन एवं संघर्ष जैसी कृति की सर्जना होती है। शब्दों का मायाजाल बुने बगैर भाव–संवेदनाओं की अभिव्यक्ति कर चिंतक डॉ0 रामकमल राय ने सृजन की आकुलता को अपनी इन रचनाओं में दर्शाया है।

✍ dlk;k mijkDRk fo"k; ij viu lkekftd Kku] vuHko dh lhekvk dk /;ku e j[kr g, 'kk/ki.k] rF;ijd ,o 0kKkfud rdk l ;Dr 'kk/k vky[k@y[k Hkt dj jpukRed lg;kx nu dk d"V djA

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित उपासना का स्वरूप एवं भक्ति साहित्य पर उसका प्रभाव

डॉ0 नीरज कुमार सिंह
असिस्टेण्ट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
चौ0 चरण सिंह पी0जी0 कालेज, हेंवरा, सैफई, इटावा

भारतीय धर्मग्रन्थों में श्रीमद्भगवद्गीता का विशेष महत्व है जहाँ एक ओर वह वेद उपनिषदों का सार है, वहीं दूसरी ओर परवर्ती साहित्य पर उसकी अमिट छाप है। इस महानग्रन्थ में मानव जीवन के परम् लक्ष्य के अनेक साधन बताये गये हैं, जिनमें उपासना (भक्ति) का विशेष महत्व है।

उपासना जीवन का आवश्यक अंग तथा धर्म का अन्तस्तत्व है। धर्म का मुख्य उद्देश्य जीवन में सब प्रकार की उन्नति करते हुये इस लोक व परलोक दोनों ही में कल्याण का सम्पादन करना है और जीवन का भी मुख्य लक्ष्य यही होता है। इसके लिये धर्म शास्त्र में जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष बताये गये हैं। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि धर्मानुकूल अर्थ और धर्मानुकूल काम ही ग्राह्य है। जिनके द्वारा इस जीवन में सर्वोच्च उन्नति और मोक्ष दोनों ही प्राप्त की जा सकती हैं।[1]

जीवन के किसी अंग में यदि अपूर्णता, अभाव या प्रतिकूलता हो तो उसे उपासना के द्वारा पूर्ण एवं अनुकूल किया जा सकता है और इसके लिये हमारे शास्त्रों में विविध प्रकार की उपासनाएँ बताई गई हैं। हजारों श्रद्धालुजन श्रद्धा और विश्वास पूर्वक उनसे लाभ प्राप्त करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं। शास्त्रों में आरोग्य के लिए सूर्य की उपासना, विद्या के लिए उमा सहित भगवान शिव व भगवती सरस्वती की उपासना, शक्ति के लिये भगवती दुर्गा की उपासना, धन, वैभव, सम्पत्ति के लिए पराम्बा भगवती लक्ष्मी की उपासना, काम के लिए कामदेव की उपासना, स्त्री–पुत्रादि लौकिक तथा स्वर्गादि पारलौकिक उपलब्धियों के लिए भगवान श्री कृष्ण, भगवान श्रीराम, भगवान शंकर तथा पराम्बा जगदम्बा की विविध उपासनाएं लोक में अनन्त काल से प्रचलित हैं। संसार के पश्चात स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति के लिए भी अनेक उपासनाएँ शास्त्रों में बताई गई हैं। विविध यज्ञों तथा विविध देवताओं की उपासनाओं के द्वारा स्वर्गादि लोक, विष्णुलोक, शिव लोक, ब्रह्म लोक, साकेत तथा गौलोक आदि लोकों की प्राप्ति होने की अनेक कथाएँ हमारे पुराणों में बहुलता से प्राप्त होती हैं। यही नहीं परमेश्वर के निर्गुण निराकार स्वरूप की उपासना से मोक्ष की प्राप्ति भी योग शास्त्र तथा भगवद्गीता आदि दर्शन ग्रन्थों में निर्देशित की गई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ज्ञान, कर्म, योग, तप आदि स्वतंत्र प्रतीत होते हुये भी उपासना या भक्ति से पृथक नहीं है। इस प्रकार जीवन की समग्र पूर्णता तथा मोक्ष प्राप्ति बिना उपासना के संभव नहीं है। उपासना ही पशुभाव युक्त मनुष्य को ऊपर उठाकर मनुष्य, देव एवं ब्रह्म बनाती है। उपासना व्यष्टि को समष्टि से जोड़ती है। उपासना का स्वरूप अत्यन्त व्यापक और सर्वकालिक है।

उपासना का वास्तविक अर्थ उप अर्थात् समीप में बैठना, इसका आशय यह हुआ कि हम किस प्रकार अपने इष्ट के निकट स्थित हो सकते हैं। ज्ञान पक्ष में हम किस प्रकार सच्चिदानंदघन, निजात्मस्वरूप के सन्निकट होकर उसको प्राप्त कर सकते हैं।'उपासना' शब्द संस्कृत साहित्य का है। संस्कृत के सभी शब्द प्रकृति–प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न होते हुये भी प्रकृति–प्रत्यय के समुदित अर्थ का प्रतिपादन करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार उपासना शब्द में उप, आस् और अन्–ये तीन अंश हैं। इनमें उप उपसर्ग, आस् उपवेशने, धातु और भाव अर्थ में युच् (अन्) प्रत्यय है। उपासनम् उपासना अर्थात् शास्त्रविधि के अनुसार उपास्यदेव के प्रति अजस्र तैलधारा की भांति

दीर्घकालपर्यन्त चित्त की एकात्मता को उपासना कहते हैं। आचार्य शंकर के अनुसार 'उपासनं नाम यथा शास्त्रमुपास्यस्यार्थस्य विषयीकरणेन सामीप्यमुपगम्य तैलधारावत् समानप्रत्ययप्रवाहेण दीर्घकालं यदासनं तदुपासनमाचक्षते।''[2] उपासना के समानार्थक शब्द सेवा, वरिवस्या, परिचर्या तथा सुश्रूषा इत्यादि हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उपासना और भक्ति दोनों ही एक हैं इनमें कोई अन्तर नही है, दोनों ही समान कल्याण कारक हैं। जो उपास्य है वही भजनीय है। कोषादि गन्थों के अनुसार 'पूजादिष्वनुरागो भक्तिः' अथवा 'स्वस्वरुपानुसंधानं भक्तिः' अर्थात् जहां एक ओर पूज्य के प्रति अनुराग, प्रेम, स्नेह भक्ति है वहीं स्वरुपानुसंधान भी भक्ति है।[3] इस प्रकार हमारे सामने उपासक, उपास्य और उपासना अथवा भक्त, भजनीय और भक्ति– ये तीन तत्व उपस्थित होते हैं। उपासक आराधना करने वाले अर्थात् दीर्घकालपर्यन्त उपास्य के स्वरूपगुणादि में चित्तवृत्ति का सतत प्रवाह करने वाले को कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी तथा ज्ञानी चार प्रकार के उपासक (भक्त) बताये गये हैं।[4] उपासक और उपास्य की विविधता से इनके कई भेद हो जाते हैं। यद्यपि वास्तविक रूप से सर्वत्र आत्मा ही उपास्य है। आत्मातिरिक्त कोई न उपास्य है और न कोई उपासक। 'यः सर्वज्ञः स सर्ववित्', 'एको दाधार भुवनानि विश्वा' तथा 'अनश्नन्नन्याभिचाकशीति'[5] आदि वाक्यों से परमात्मा अथवा पुरुषसूक्तानुसार विष्णु उपास्यदेव कहे गये हैं। रुद्रसूक्त के अनुसार एवं अन्यत्र 'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्यं इमाल्लोकानीशत ईशनीभि'।। 'तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्। पतिं पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीढयम्।।''[6] इत्यादि श्रुतिवचनों के अनुसार महेश्वर, रुद्र अथवा शंकर उपास्यदेव ठहरते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र संसार के सर्ग, स्थिति और प्रलय के कारण है, इसलिये वे उपास्यदेव ठहरते हैं। उनके अतिरिक्त 'विश्वसारादिन्द्र उत्तरः', इस श्रुति से इन्द्र भी उपास्यदेव निश्चित होते हैं उपासना की विविधता के आधार पर ही विभिन्न सम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ जैसे निर्गुणोपासना, सगुणोपासना, नामोपासना, ज्ञानोपासना, प्राणोपासना, ध्यानोपासना, कर्मोपासना, यंत्र–मंत्र–तंत्रोपासना अथवा शैव, वैष्णव, शाक्त, ब्राह्म, सौर गाणपत्यादि सम्प्रदाय । त्रिगुणात्मक सृष्टि में उपास्य देव, उपासना प्रक्रिया और उपासक के गुणों के आधार पर उपासना का वर्गीकरण करते हुये श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है–'यजन्ते सात्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः। प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः।।[7] अर्थात् सात्विक् निष्ठावाले पुरुष देवों का पूजन करते हैं, राजसी पुरुष यक्ष और राक्षसों का तथा अन्य जो तामसी मनुष्य हैं, वे प्रेतों और मातृकादि भूतगणों का पूजन किया करते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जो जिस देवता की उपासना करता है, वह उसी देवता के अनुरूप हो जाता है तथा अन्त में वह उसी देवता के स्वरूप अथवा लोक को प्राप्त होता है। यद्यपि सम्पूर्ण चराचर जगत देवता, दैत्य आदि अनेक रूपों में अभिव्यक्त होने वाला परम तत्व एक ही है। किन्तु उपासना भेद से उस परम तत्व के विविध रूप देवताओं की उपासना करने से साधक के जीवन, उसके शरीर की आकृति आदि पर उस उपास्य देवता का प्रभाव पड़ता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है– यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः। भूतानि यान्ति भूतेज्या मद्याजिनोपि माम्।।[8] अर्थात् देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं। पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं। भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मेरा पूजन करने वाले भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं। इसीलिय मेरे भक्तों का पुनर्जन्म नहीं होता। भक्त और भगवान के बीच में बराबर की चाहत होती है– ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याःपार्थसर्वशः।।[9] अर्थात् जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।

उपासना के विविध रूपों में कहीं भी परस्पर विरोध या वैमनस्यता की गुंजाइश नहीं है। उपासना प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अपना एक निज भाव है। इसमें दूसरे के साथ बैर या विद्वेष का कहीं भी स्थान या अवकाश नहीं है। लौकिक स्वरूप में उपासक सम्पूर्ण विश्व में एक मात्र अपने उपास्य का ही दर्शन करता है और इस स्थिति में सम्पूर्ण विश्व उसके उपास्य का स्वरूप होकर उसका अपना निज अत्यन्त प्रिय आराध्य ही हो जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है 'यो माम् पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति' ।।[10] इसी भाव को मानस में गोस्वामी जी कहते है–सीय राम मय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोर जुग पानी।। विश्व में एक मात्र अपने उपास्य के दर्शन की स्थिति में उपासक निरवैर, निरहंकार एवं सर्वात्म रूप से स्थित हो जाता है।[11] इसी भाव को श्रीरामचरित मानस में भी अभिव्यक्त किया गया है– उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध।।

उनमें सामन्जस्य, सहनशीलता, सहिष्णुता, सार्वजनीन प्रेम आदि शुभ भावों की प्रधानता हो जाती है। वास्तविक अर्थों में आत्मस्वरूप, नित्य एवं सर्वव्यापक तत्व को प्राप्त करने का माध्यम है उपासना। जिसमें एक व्यक्ति अपने को समग्र रूप से विकसित कर व्यष्टि से समष्टि हो सकता है। जीव ब्रह्म हो जाता है। इसी को उपनिषद में अहं ब्रह्मास्मि कहा गया है।शंकराचार्य ने अपनी विवेक चूड़ामणि में लिखा है–मोक्षकारणसाम्ग्र्यां भक्ति रेव गरीयसी।।[12]

अर्थात् मोक्ष प्राप्त के साधनों में भक्ति ही श्रेष्ठ है। इसी को श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है–

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरन्ति नित्यशः। तस्माहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।[13]

यहाँ सुलभ शब्द महत्वपूर्ण है जिसका सीधा अर्थ भगवत्प्राप्ति है। परन्तु जो साधक अपने प्रभु की अनन्य शरणागति को पकड़ लेते हैं वे सहज में ही समस्त कर्मों को करते अथवा न करते हुये भी मुक्त हो जाते हैं। ज्ञान के साथ–साथ यदि प्रभु की शरणागति हो जाये तो सोने में सुगन्ध आने के समान है। इसीलिये गीता में कहा गया है–

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः। श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः।।[14]

जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक दोष दृष्टि को त्यागकर अर्थात इन्द्रिय संयम, मनन, ज्ञान, तत्परता और निष्ठा द्वारा मन, बुद्धि आदि के दोषों को दूर करके परमात्मा के बतलाये मार्ग के अनुसार चलते हैं वे सहज ही कर्मबंधन से मुक्त हो जाते हैं। ऐसे अन्य भक्तों को ईश्वर स्वयं ही ज्ञान देकर अपने स्वरूप की प्राप्ति करा देता है। भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं–

तेषां सतत् युक्तानं भक्तां प्रीति पूर्वकम्। ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्ति ते।।[15]

अर्थात् उन निरन्तर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेम पूर्वक भजने वाले भक्तों को वह तत्व, ज्ञान, रूप, योग स्वयं देता हूँ। जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं। इसकी तुलना श्रीरामचरितमानस के कथन से की जा सकती है– सोइ जानहिं जेहि देऊ जनाई। जानत तुमहिं तुमहीं होई जाई।। इसीलिए सगुण भक्त अपने समस्त कर्मों का फल अपने परम आराध्य प्रभु को सौंपकर निश्चिन्त हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण का गीता में स्पष्ट उद्घोष है–

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेम वाहम्यहम्।।[16]

अर्थात जो अनन्य प्रेमी भक्त जन मुझे परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं ऐसे मेरे से नित्ययुक्त भक्तों के योग क्षेम का मैं स्वयं वहन करता हूँ। अन्यत्र गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं–

अनन्यचेताःसततं यो मांस्मरतिनित्यशः।तस्याहं सुलभः पार्थ नित्य युक्तस्य योगिनः।।[17]

अर्थात् उस अनन्य चित्त से मेरा स्मरण करने वाले मुझ में नित्य युक्त हुए योगी के लिए मैं सहज में ही सुलभ अर्थात् प्राप्य हूँ। अनन्य शरणागत भक्त को समस्त पापों से मुक्त करने का भी उत्तरदायित्व भी भगवान स्वयं वहन करते हैं। गीता में अन्यत्र भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।[18]

अर्थात् सम्पूर्ण धर्मों–कर्मों को मुझमें त्यागकर केवल मुझ सर्वाधार परमेश्वर की शरण में तू आ जा। मैं तुझे सभी पापों से मुक्त कर दूँगा तू शोक मत कर। यहाँ 'माम' पद सभी स्थलों पर भगवान के सगुण स्वरूप का

बोधक है। सगुण साकार प्रभु अपने अनन्य प्रेमी शरणागत भक्त की बालक–शिशु के समान रक्षा करते हैं। तभी गोस्वामी जी ने मानस में स्पष्ट रूप से प्रभु द्वारा कहलवाया है–

मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी। बालक सुत सम दास अमानी।।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखई महतारी।।[19]

इसलिए भक्त निर्गुण–ज्ञान साधना की अपेक्षा सगुण साधना को स्वीकार करके अपना सर्वस्व प्रभु को समर्पित कर निश्चिन्त होकर सदा प्रसन्न रहते हैं। ऐसे भक्तजन सर्वभूतहित रत होकर अहर्निश भगवान की सेवा में मगन रहते हैं, जन्म–मरण के चक्र से मुक्त होने के लिए भी अपनी प्रभु से प्रार्थना न करके केवल उनके स्नेह की कामना करते हैं। उनके लिये तीनों लोकों का वैभव भी तुच्छ होता है।[20]

केवल सदाचारी भक्तों पर ही प्रभु की कृपा या अनुग्रह होता हो ऐसा नहीं है। यदि दुराचारी भी भगवान के शरणागत होकर सेवा करने लगे तो प्रभु उसे भी शुद्ध कर धर्मात्मा और सज्जन बना देते हैं। भगवान के भक्त का वह चाहे जैसा भी हो कभी अनिष्ट नहीं होता।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वचच्छान्तिनिगच्छति । कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।[21]

बाल्मीकि रामायण में भी कहा गया है जो मेरी शरण में आकर एक बार भी सच्चे हृदय से कह देता है कि मैं आपका ही हूँ'' उसको मैं सम्पूर्ण प्राणियों से अभय (सुरक्षित) कर देता हूँ– यह मेरा व्रत है।'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।अभयं, सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।[22]

इसकी तुलना रामचरितमानस से की जा सकती हैं–

जौ नर होय चराचर द्रोही । आवै सभय सरन तक मोही।।
तजि मद मोह कपट छल नाना । करहुँ सद्य तेहि साधु समाना।।
कोटि बिप्र वध लागहिं जाहू । आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू।।
सन्मुख होहि जीव मोहि जबहिं । जनम कोटि अध नासहुँ तबहीं।।[23]

दुष्ट दुराचारी भी यदि प्रभु के श्री चरणों में अपने को निश्च्छल भाव से समर्पित कर दे ंतो श्री भगवान आगे का रास्ता स्वयं ही बना देते हैं। साधना–परिस्थितियाँ अपने आप बनने लगती हैं और मार्ग प्रशस्त होने लगता है। तभी तो मानस में कहा गया है कि–

मोहि भजहि मन तजि कुटिलाई । राम भजे गति केहि नहि पाई।।

उपासना भगवान को प्राप्त करने का श्रेष्ठ और सुलभ साधन तो है ही साथ ही वह स्वयं साध्य भी है। इसी दृष्टि से भक्ति को पंचम पुरुषार्थ कहा गया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्रीमद्भगवद्गीता ने जहाँ अनन्यप्रेम और शरणागति भाव द्वारा उपासक एवं उपास्य के मध्य परस्पर समान उत्कण्ठा एवं प्रेम भाव होने का प्रतिपादन किया वहीं उपासक के कल्याण का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व स्वयं उपास्य द्वारा वहन करने की प्रतिज्ञा के निदर्शन से उपासना (भक्ति) को नये आयाम दिये हैं । ज्ञान और भक्ति की एकता प्रतिपादित करते हुए भक्ति की श्रेष्ठता और पूर्णता प्रतिपादित की है। उपासना की इस गंगा ने परवर्ती साहित्य को अत्यन्त प्रभावित किया।

सन्दर्भ सूची

1. यतोऽभ्युदय निश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः वैशेषिक सूत्र
2. श्रीमद्भगवद्गीता 18/3 शांकर भाष्य
3. जगद्गुरुशंकराचार्य स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज कल्याण उपासनांक गीताप्रेस गोरखपुर वर्ष 42 पृष्ठ 7

4. श्रीमद्भगवद्गीता 7/16
5. मुण्डकोपनिषद् 1 । 1 । 9 तथा 3 । 1
6. श्वेताश्वतरोपनिषद् 3 । 2 तथा 6 । 7
7. श्रीमद्भगवद्गीता 17/4
8. श्रीमद्भगवद्गीता 9/25
9. श्रीमद्भगवद्गीता 4/11
10. श्रीमद्भगवद्गीता 6/30
11. श्रीमद्भगवद्गीता11/55 व 18/54,55
12. विवेक चूडामणि 32
13. श्रीमद्भगवद्गीता 8/14
14. श्रीमद्भगवद्गीता 3/31
15. श्रीमद्भगवद्गीता 10/10
16. श्रीमद्भगवद्गीता 8/22
17. श्रीमद्भगवद्गीता 8/14
18. श्रीमद्भगवद्गीता 18/66
19. श्री रामचरितमानस, अरण्य काण्ड 42/5–8
20. श्रीमद्भागवत महापुराण 3/28/13 तथा 11/2/53
21. श्रीमद्भगवद्गीता 9/30–31
22. वाल्मीकि रामायण 06/18/33
23. श्रीरामचरितमानस सुन्दर काण्ड 43/1–2 तथा 47/ 2–3

❑❑

वर्तमान समय में गीता की प्रांसगिकता का विभिन्न धर्मों से तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. पुष्पा देवी
बी.एड.विभाग
एम.बी.एम.गर्ल्स डिग्री कालेज कानपुर

संसार के विभिन्न धर्मों को जानने, पढ़ने और समझने के बाद अन्ततः गीता का अध्ययन मनन और चिन्तन करने पर मनुष्य निष्कर्ष रूप में पाते है कि गीता समस्त धर्मों का सार है, यहाँ तक कि वेद, उपनिषद, शास्त्र, पुराण, सभी धार्मिक ग्रन्थों का निचोड़ तत्व गीता ही है। यह बताती है कि मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य अथवा परमागति आत्मोपलब्धि है यही परम पुरुषार्थ है यही मोक्ष है।

श्लोक – योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञान कर्म च भक्तिश्च ऽन्योऽस्ति कुत्रचित्। श्रीमद् भगवत 11/20/6

हे धंनजस्य। योग में स्थित होरक केवल ईश्वर के लिए कर्मकर। उसमें भी ईश्वर मेरे पर प्रसन्न हो जाये, इस संग, को छोड़कर कर्मकर। फल तृष्णारहित पुरुष के द्वारा कर्म किये जाने पर अन्तः करण की शुद्धि से उत्पन्न होने वाली ज्ञान प्राप्ति तो सिद्धि है और उससे प्राप्त असिद्धि है।

विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि हिन्दू धर्म में यह विश्वास है कि ईश्वर सृष्टिकर्ता और संहारक दोनों है जबकि जैन दर्शन चेतना को जीव का स्वरूप धर्म मानता है। बौद्ध दर्शन में आन्तरिक विशेषताओं का वाहक आरम्भिक काल में द्वादसाँग प्रतीत्य समुत्पाद सिद्धान्त में विकसित कर दिया गया था। सिक्ख धर्म में गुरु–शिष्य परम्परा को अत्यधिक महत्व दिया गया है। इन्होंने ईश्वर प्राप्ति का मार्ग प्रेम और श्रद्धा बताया है। पारसी धर्म और यहूदी धर्म में आत्मा की अमरता में विश्वास तथा मनुष्य को विचारों एवं कर्मों आदि के लिए स्वयं उत्तरदायी ठहराया गया है।

"वह परमात्मा वृहत् है, दिव्य है अचिन्त्य है सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है दूर से दूर है और पास से पास है। हृदय गुहा में छिपा है जो सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान सर्वव्यापक परमात्मा है जिसका ज्ञानमय ताप है उस ब्रह्म से यह नाम, रूप और अन्न ये तीनों वस्तुएँ पैदा होती है सबको बनाने वाला वही है वह अशरीरी है और सब शरीरों में व्याप्त है वह अस्थिरों में स्थिर है वह महान है और विशु है। कठोपनिषद् 1/2/21

इस प्रकार जब हम प्रत्येक धर्म का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि जहाँ गीता में जीवन और आत्मा या ब्रह्म के प्रत्येक पक्ष का दृढ़ता के साथ उल्लेख किया गया है वहीं सभी धर्मों में जीव और ब्रह्म या मानव जीवन के किसी एक पक्ष को लेकर विस्तृत व्याख्या की गई है। वहाँ तक कि प्रत्येक धर्मग्रन्थ सिर्फ पाप और पुण्य की व्याख्या करने में ही अधिक जोर देते है न कि जीवन जीने की कला और पद्धति की व्याख्या करते है।

Aim of Study

हिन्दू धर्म ही नहीं अपितु विश्व के अन्य धर्मों में भी खोजने पर सर्वजनीन विश्व रूपात्मक एकमूल तत्व अवश्य ही मिल सकता है। इसी विश्वास के साथ विभिन्न धर्मों में गीता के तुलनात्मक अध्ययन को जनमानस तक पहुँचाने के उद्देश्य से इस लेख को लिखने का प्रयास किया है।

गीता यह नहीं बताती कि पाप क्या है? पुण्य क्या है? बल्कि गीता कर्म, ज्ञान और भक्ति की पद्धति बताती है जिसे जानकर या पढ़कर मनुष्य स्वयं आत्मसमीक्षा करके अपने कल्याण का मार्ग ढूंढ सकता है गीता किसी एकपक्ष की बात कभी नहीं करती बल्कि दो चीजों दो पक्षों या द्वत्व की बात करती है जिससे एक तीसरी बात

निकल कर आती है जिसे कहते है योग –

यह योग ही जीव का कल्याण और पतन करता है व्यक्ति किसी भी वर्ण आश्रम देश, धर्म, सम्प्रदाय, मत आदि का क्यों न हो इस ग्रन्थ को पढ़ते ही इसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। हर एक दर्शन के अलग–अलग अधिकारी होते है किन्तु गीता की यह विलक्षणता है कि अपना उद्धार चाहने वालें सब के सब इसके अधिकारी है।

समत्वं योग उच्यते–अर्थात् समता ही योग है समता परमात्मा का स्वरूप है अतः समता अन्तः करण में निरन्तर बनी रहनी चाहिए।

यहाँ भगवान अर्जुन से कहते हैं –

योगस्थः कुरू कर्माणि सगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्वयसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते।

हे अर्जुन अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्यों के लिए मैने तीन योग मार्ग बताये हैं ज्ञान योग, कर्मयोग और भक्ति योग। इसके सिवाय दूसरा कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है।

भौतिक दृष्टि से जीवात्मा के तीन स्वरूप होते हैं स्थूल सूक्ष्म एवं कारण। स्थूल शरीर का निर्माण पंचभूतों से होता है और इसका विकास अन्न से होता है इसीलिए इसे अन्नमय कोष कहते हैं। सूक्ष्म शरीर को लिंग शरीर कहते हैं। इसके द्वारा आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान होता है। सूक्ष्म शरीर के तत्व है पंचज्ञानेन्द्रियां पंचकर्मेन्द्रियाँ पंचप्राण मनस् बुद्धि आदि। शंकराचार्य–विवेकचूडामणि पृ. 31–33

अतः जितने भी धर्मों का उदय इस भौतिक जगत में हुआ चाहे वह हिन्दू हो या बौद्ध, जैन, ईसाई सिक्ख पारसी मुस्लिम यहूदी आदि सभी धर्मों में आत्मा की सत्ता और उस परमसत्ता के अस्तित्व को स्वीकार किया है तथा आत्मोपलब्धि की बात कही है क्योंकि इस आत्मा से ही मोक्ष निर्माण या स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

Hypothesis - अध्ययन –

सभी धर्मों का गहन अध्ययन करने के उपरान्त यह बात सत्य सिद्ध हो जाती है कि प्रत्येक धर्मावलम्बियों ने उस परमसत्ता को स्वीकार किया है तथा उसे प्राप्त करने के लिए अनेकानेक विधान भी बताये है अतः विभिन्न धर्म ग्रन्थों के सारतत्व के रूप में गीता का उदय हुआ, जिसमें विभिन्न दर्शनों के सिद्धान्तों के पृथक–पृथक मार्ग बताये जो योग के नाम से जाने जाते हैं। गीता का प्रत्येक अध्याय एक विशेष सिद्धान्त का प्रतिपादक है जो उस तथ्य की सत्यता को योग शब्द के द्वारा उजागर करने का प्रयास है। गीता का ज्ञान मात्र आध्यात्मिक सिद्धान्त ही नही है बल्कि व्यावहारिकता का प्रबल पक्षधर है। व्यवहार में किस प्रकार सात्विकता का समावेश हो और मानव मात्र से अज्ञान का परदा हटे, इस प्रकार के ज्ञान को भी स्पष्ट किया गया है। यहाँ बताया गया है कि राजस् ज्ञान तो सत् और तम दोनों के मध्य रहता है। जहाँ सत् से मेल होने पर यह ब्रह्म चक्र में पहुँच जाता है वहीं तम के साथ होने पर यह मानव कल्याण के सारे मार्ग बन्द कर देता है इसीलिए इसे निरा अज्ञान की संज्ञा दी गई है तथा भगवान श्री कृष्ण ने इसे ज्ञान कहने की आवश्यकता नहीं समझी।

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्नविन्न विचालयेत्।।

अर्थात् प्रकृतिजन्य गुणों से (सत्, रज और तम) अत्यन्त मोहित हुए अज्ञानी मनुष्य गुणों और कर्मों में आसक्त रहते है परन्तु उन गुणों और कर्मों के तत्व को ठीक तरह से न जानने के कारण मन्दबुद्धि अज्ञानियों को पूर्णतया जाननेवाला ज्ञानी मनुष्य विचलित न करें।

बौद्ध दर्शन में गौतम बुद्ध ने संसार में दुःख का कारण है और इस दुःख को दूर करने के उपाय है और दुख से मुक्त होने के पश्चात आत्मा आनन्द स्वरूप हो जाती है और जीव निर्वाण प्राप्ति का अधिकारी बन जाता है बौद्ध दर्शन पूर्णतया करुणा पर आधारित है। बुद्ध बोधिप्राप्ति के पश्चात् लोककल्याण के लिए घूम–घूमकर जनता को उपदेश देना आरम्भ किया। अतः गीता की तरह इस बौद्ध दर्शन में आत्मोपलब्धि और आनन्द स्वरूप आत्मा की

प्राप्ति ही सर्वोपरि है।

जैन धर्म में भी हिन्दू धर्म की तरह जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष को माना गया है मोक्ष जीव का कर्म पुद्‌गलो से सम्बन्ध विच्छेद की अवस्था है। इन्होंने ईश्वर की सत्ता को प्रमाणित करने के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण का सहारा नहीं लिया क्योकि यह अतीन्द्रिय है। ईश्वर को प्रमाणित करने के लिए अनुमान प्रमाण का सहारा लेना पड़ता है।

जैन दर्शन चेतना को जीवका स्वरूप धर्म मानता है। जीव में स्वभावतः अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त वीर्य एवं अनन्त आनन्द होता है।'' जैन दर्शन मत में जीवको अनन्त चतुष्ट्य से युक्त माना जाता है।

हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, धर्म दर्शन की रूपरेखा पृ.सं. 37

जैन धर्म में जीव का कारण शरीर धारण करने को ही उसका बन्धन माना गया है जीव अपने पूर्ण जन्मार्जित कर्मों के फलस्वरूप अनेक योनियों से सम्बद्ध होकर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है।

शिव स्वरूप सहाय, प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन पृ. 200

इसी प्रकार सिख धर्म में गुरु शिष्य परम्परा को अत्यधिक महत्व दिया गया है गुरु का आध्यात्मिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान हैं सिख धर्म पूर्णरूपेण ऐकेश्वरवादी है।

''सिक्ख धर्म के अनुसार यह अन्ततः एक गुण है इस गुणात्मक अनन्ता का कोई नैतिक या धार्मिक अर्थ नहीं है। वह आत्म चेतना से भी सम्बद्ध नहीं है वह तो दिक् कल्पना से सम्बद्ध है और दिक् गणना मानव सीमित है।

प्रभाकर माचवे, सुरेन्द्र नारायण दत्तुआर

विभिन्न धर्मों में ईश्वर कल्पना, पृ.सं. 91

अन्ततः हम कह सकते हैं कि गीता का सम्पूर्ण सार वासुदेव सर्वम् में है गीता में एक परमात्मतत्व के सिवाय दूसरे का जिक्र ही नहीं क्योंकि गीता सब कुछ परमात्मा है ऐसा मानती है और इसी को महत्व देती है। संसार में बौद्ध धर्म का प्रतीत्य समुत्पाद यानि कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है और भगवान कृष्ण ने कार्य से कारण के रूप में और प्रभाव रूप में यह बताया है। कि सर्वत्र मैं ही हूँ।

Result & Findings

निष्कर्ष रूप से सम्पूर्ण सार यह कहता है कि मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य परमागति को प्राप्त करना या आत्मोपलब्धि है। यही गीता का सच है।

भगवान कृष्ण ने गीता को योग में स्थित होकर कहा। योग में स्थित होकर कहने का तात्पर्य है कि सुनने वाले का हित किसमें है, उसके हित के लिए क्या कहना चाहिए? भविष्य में जो भी सुनेगा अथवा पढ़ेगा उसका हित किसमें होगा। इस प्रकार सभी साधकों के हित में स्थित होकर गीता कही है।

कर्म योग ज्ञान योग, भक्तियोग, ये तीन ही योग है शरीर को लेकर कर्मयोग है आत्मा को लेकर ज्ञान योग है और शरीर तथा आत्मा दोनों के मालिक (भगवान) को लेकर भक्ति योग है।

भगवान ने गीता के आरम्भ में आत्मा को लेकर और फिर शरीर को लेकर क्रमशः ज्ञानयोग और कर्मयोग का वर्णन किया है फिर ध्यान योग का वर्णन किया है क्योंकि यही मानव कल्याण का परम साधन है। मानव जीवन प्राप्त करने का पूर्ण उद्देश्य तभी पूरा होगा जब प्रत्येक प्राणी गीता को अपने जीवन में उतार लेगा। मानव जीवन के दो संसार होते है परा (अभौतिक) और अपरा (भौतिक) और दोनों संसार में चरमोत्कर्ष उपलब्धि के लिए गीता का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि अगर व्यक्ति भौतिक जीवन में पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हुआ यानि अर्थ वैभव यश कीर्ति सुख–सुविधायें आदि नहीं प्राप्त कर पाया तो उसका यह अपरा जगत अधूरा रह जायेगा और यदि वह आध्यात्मिक जगत में अपनी आत्मशक्ति का विस्तार नहीं कर पाया तो उसे परा जगत की प्राप्ति नहीं हो पायेगी और परा जगत या आत्मोपलब्धि के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन तथा यम, नियम प्राणायाम प्रत्याहार, ध्यान धारणा, समाधि आदि का पालन करना बहुत जरूरी है और प्रत्येक धर्म हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई, बौद्ध जैन, पारसी सभी इन नियमों और उपदेशों को मानते है। इसलिए गीता सारे धर्मों और दर्शन का निचोड़ है

गीता में सारे धर्म और दर्शन विद्यमान है लेकिन गीता किसी दर्शन या धर्म के अन्तर्गत नहीं आती है।

Discussion & Suggestion

विभिन्न धर्मों की ओर दृष्टिपात करने के पश्चात् हम पाते है कि विश्व का प्रत्येक धर्म अपने आप में विशिष्ट है तथा विश्व की प्रत्येक क्रिया सप्रयोजन होती है। और संसार के प्रत्येक धर्म ने उस परम् सत्ता के शक्तिशाली स्वरूप को स्वीकार किया है। जहाँ हिन्दू धर्म में उसे ईश्वर के नाम से जाना जाता है वही जैन धर्म में तीर्थकारों का दर्शन, उनका बताया ज्ञान व चरित्र निर्माण ही मोक्ष का साधन है। बौद्ध धर्म में बुद्ध शरणम् गच्छामि तथा इसाई जिसे God और मुस्लिम जिसे अल्लाह कहकर पुकारते हैं लेकिन इतने सारे धर्म इतने नाम सब एक ही दिशा की ओर संकेत करते है और अन्ततः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि सभी धर्मों ने उस परम सत्ता को स्वीकार किया है लेकिन उपभोक्तावादी संस्कृति, पाश्चात्य देशों का अन्धानुकरण, विचारों में प्रदूषण तथा सारे भौतिक संसाधन थोड़े समय में एक साथ पा लेने की प्रबल इच्छा ने आज के मानव को दिग्भ्रमित कर दिया है उसमें मानवता पूरी तरह विखण्डित हो रही है प्रेम के अभाव में भ्रातृत्व भाव की चूले हिल रही है। चारो तरफ आतंक और भय का साया है हर व्यक्ति अनिश्चितता में जीवन जी रहा है लेकिन दिशा भ्रमित हर व्यक्ति समय से आगे निकालने की कोशिश कर रहा है। ऐसे में गीता ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो सम्पूर्ण मानव जाति को सही रास्ता दिखा सकती है उसके सारे भ्रम, भय और अनिश्चितता को दूर कर सकती है तथा वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे वाक्य को चरितार्थ कर सकती है।

स्वामी रविशंकर ने कहा है कि ''जिस प्रकार सृष्टि में विविधता दृष्टि गोचर होती है उसी प्रकार विभिन्न धर्मों में परमात्मा नाम की अभिव्यक्ति भी अनेक नामों से होती है किन्तु वह प्रत्येक हृदय में बीज रूप में व्याप्त है।''

अतः हम कह सकते हैं कि गीता अन्तर्राष्ट्रीय ग्रन्थ है। गीता का हर स्तर के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए ताकि छात्र छात्रायें प्रारम्भ की कक्षाओं से गीता के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सके और उसे अपने जीवन में एक मार्ग दर्शिका के रूप में उपयोग कर सके। गीता जीवन जीना सिखाने के साथ–साथ जीवन की हर समस्या का समाधान भी सिखती है।

दूसरा यह कि न्यायालय में गीता के ऊपर हाथ रखकर शपथ नहीं दिलवाना चाहिए क्योंकि गीता धार्मिक ग्रन्थ के साथ–साथ परम प्रबोधिनी और जीवन दर्शिका है ऐसा करना खुलेआम गीता का अपमान करना है। क्योंकि जिस प्रकार हवा का गुण सर्वत्र अपनी ठण्डक और प्राणी मात्र को जीवन प्रदान करना है उसी प्रकार गीता व्यक्ति को ज्ञान, कर्म और भक्ति के योग द्वारा जीवन जीने की पद्धति सिखाती है तथा मानव मात्र को कल्याण का रास्ता दिखाती है। अतः निष्कर्ष रूप में यह सत्य प्रमाणित होता है कि गीता की किसी भी धर्म ग्रन्थ या धर्म से तुलना करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सब धर्मों की बुनियादी एकता–भगवान दास, चौखम्भा विद्याभवन चौक वाराणसी 221001–1991
2. गुरुनानक देव जीवन और दर्शन– मिश्र जयराम, लोकभारती प्रकाशन 15–ए महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद–1997।
3. धर्मदर्शन की रूपरेखा – सिन्हा हरेन्द्र प्रसाद मोतीलाल, बनारसीदास 1996।
4. श्रीमद्भगद्गीता – स्वामी रामसुखदास साधक संजीवनी टीका, गीताप्रेस गोरखपुर।
5. श्रीमद् भगवद्गीता – कृष्णकृपा श्री मूर्ति यथारूप, गीता प्रेस, गोरखपुर।
6. कुरान सार–विनोवा, सर्वसेवा संघ, वाराणसी 1993।
7. पवित्र वचन–विलीवर्स, चर्च पब्लिकेशन्स मंजाडी पोस्ट तिरूवल्ला–5 केरल 2001।
8. भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा–पाठक राममूर्ति अभिमन्यु प्रकाशन हाउस इलाहाबाद–1997।
9. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण – पाण्डेय संगमलाल सेण्ट्रल पब्लिसिंग – 1999।
10. गीता का तात्विक विवेचन – आचार्य भास्करा नन्द लोहनी, उ.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी लखनऊ।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा का स्वरूप और निष्कामकर्म

डॉ. बदलू राम शास्त्री
व्याख्याता संस्कृत
बाबू शोभाराम राजकीय कलामहाविद्यालय, अलवर (राजस्थान)

भगवद्गीता संस्कृत साहित्य का अद्वितीय ग्रंथ है। यह दर्शन ग्रंथ होने के साथ–साथ धर्मग्रंथ भी है। संसार में इसका महात्म्य इसलिए अधिक है क्योंकि इसमें दर्शन के गूढ़ रहस्यों को बड़ी सरलता से समझा दिया गया है जिससे अल्पबुद्धि व्यक्ति भी आत्मा, परमात्मा, जगत, ईश्वर आदि के रहस्य को आसानी से जान ले। गीता एक ऐसा दर्शन है जो सांसारिक जनों को अपने सांसारिक कर्त्तव्य पूरा करते हुए भी मोक्ष प्राप्ति का मार्ग दिखलाती है। यह अलौकिक ग्रंथ मनुष्य के धर्म अर्थ, काम, मोक्ष, पुरुषार्थ चतुष्ट्य सिद्धि की ओर प्रवृत्त करते हुए मुक्ति प्राप्ति का मार्ग दिखाता है। मनुष्य जीवन किस तरह सुखद व तनाव मुक्त रहते हुए सार्थक किया जा सकता है यह गीता सिखाती है।

सही अर्थों में मनुष्य का धर्म क्या है? उसका अन्तिम लक्ष्य क्या है? वह अपना अन्तिम लक्ष्य मोक्ष, कैसे प्राप्त कर सकता है? मनुष्य एक नैतिक, आध्यात्मिक कर्त्तव्य क्या है? आदि प्रश्नों का उत्तर गीता में कर्मयोग से मिलता है।

सदियों से मानव की जिज्ञासा, आत्मा, परमात्मा को जानने की रही है। सभी दर्शनों के मूल में यही प्रश्न रहा जो अपने अपने तरीके से आत्मा, परमात्मा, जगत आदि तत्वों का रहस्य उद्घाटित करते रहे, किन्तु गीता से इतर दर्शनों ने इन तत्वों का ऐसा स्वरूप निरूपित किया जो साधारण बुद्धिमान व्यक्ति की समझ से बाहर था। अतः दर्शन सामान्य जन से दूर होता गया और केवल बुद्धिजीवियों के शास्त्र विनोद के लिए रह गया। ऐसे समय में गीता का प्रादुर्भाव हुआ और साधारण जन भी जगत के रहस्य को जानने की जिज्ञासा रखने लगा तथा गीता को पढ़कर या सुनकर आत्मा, परमात्मा, जगत को गूढ़ रहस्यों को जान गया।

"गीता में आत्मा का स्वरूप"

भगवद्गीता गीता में आत्मा जैसे गूढ़ रहस्य को अतिसरलता से भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा प्रकट किया गया है। यह गीता के द्वितीय अध्याय में वर्णित है। कुरुक्षेत्र के युद्ध में जब कौरवों तथा पाण्डवों की सेनाएँ युद्ध के लिए आमने सामने आक्रमण हेतु तैयार खड़ी थी, ऐसे विषम समय में शत्रु सेना में सम्बन्धी जनों को देखकर परमयोद्धा अर्जुन को मोह उत्पन्न हो गया और उन्होंने अपने सारथी भगवान श्रीकृष्ण से युद्ध नहीं करने की बात कही तथा धनुष बाण छोड़कर दुःखी होकर रथ पर ही बैठ गए।

एतान्न हन्तुमिच्छामि ध्वनतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्य राजयस्य हेतोः किं नु महीकृते।।[1]
एवमुक्तवा हृषीकेशः गुडाकेशः परंतपः।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्तवा तूष्णीं बभूव।।[2]

अर्जुन से प्रतिपक्षी सेना में अपने सम्बन्धी जनों पर प्रहार नहीं करने की बात सुनकर तथा अर्जुन को विषाद में डूबा हुआ देखकर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आत्मा की अमरता तथा कर्म की निष्कामता का उपदेश देते हुए कहा–

हे पार्थ! ऐसे कायर मत बनो। क्योंकि यह कायरता तुम जैसे वीरों का शोभा नहीं देती। तुम अपने हृदय ही दुर्बलता त्याग दो और उठ जाओ।

हे अर्जुन! तू जो मरने मारने की बात कह रहा है यह पूर्णतः अज्ञानता से युक्त है क्योंकि बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी मृतों या जीवितों के लिए शोक नहीं करते। क्योंकि न कोई मरता है और न कोई जन्म लेता है। हे अर्जुन ऐसा नहीं है कि तू, मैं तथा ये संसार के जीव पहले नहीं थे और भविष्य में नहीं होंगे? अर्थात् हम पहले भी थे अब भी हैं और आगे भी रहेंगे क्योंकि आत्मा अजर अमर है तथा नित्य है। आत्मा कभी भी मरती नहीं है यह तो तुम्हारा भ्रम है। पंच तत्व से निर्मित, आत्मा के इस देह में जैसे बचपन, यौवन व बुढ़ापा आदि दशाएँ आती हैं, वैसे ही अगली दशा देहान्तर प्राप्ति होती है अर्थात् प्राणि का आत्मा इस शरीर को छोड़कर दूसरे नए शरीर में प्रविष्ठ हो जाता है। अर्थात् नया शरीर धारण कर लेता है। आत्मा का विनाश कोई नहीं कर सकता। ये शरीर नाशवान है अथवा अपने–अपने मूल पंच महाभूतों में विलीन होने वाला है। किन्तु आत्मा नित्य रहता है।

यदि कोई यह सोचता है कि वह मारता है या यह सोचता है कि वह मारा जाता है तो वे दोनों ही यह नहीं जानते कि आत्मा न मरती है न मारी जाती है। आत्मा न कभी जन्म लेती है और न कभी मरती है। यह तो अजर, नित्य, शाश्वत और प्राचीन है। शरीरों के मरने पर भी यह मरती नहीं है।

य एनं वेत्ति यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतौ नायं हन्ति न हन्यते।।[3]

जो पुरुष आत्मा के इस अविनाशी रूप को समझ लेगा, वह किसे मार सकता है अथवा किसे मरवा सकता है? क्योंकि जब हमें ज्ञान है कि आत्मा अमर है तो हम उसे कैसे मार सकेंगे।

गीता में आत्मा को नित्य, अविनाशी, शुद्ध, विर्निकार कहा है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं
पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[4]

यह आत्मा किसी भी काल में न तो जन्म लेता है और न कभी मरता है, न यह उत्पन्न होकर फिर उत्पन्न होने वाला है। यह आत्मा तो अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मर जाने पर भी आत्मा नहीं मरता है।

जब आत्मा का ये शरीर रूपी वस्त्र पुराना हो जाता है जो आत्मा इस पुराने शरीर को त्याग कर नया शरीर उसी प्रकार धारण कर लेता है जैसे मनुष्य अपने जीर्ण शीर्ण वस्त्रों को उतारकर नए वस्त्र धारण कर लेता है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्याति संयाति नवानि देही।।[5]

आत्मा मरता नहीं हैं, केवल शरीर मरता है क्योंकि उसमें से जीव तत्त्व चला गया आत्मा तो उस शरीर से निकालकर अन्य नए शरीर में चला जाता है। वह नया शरीर उसे उसके कर्मों के आधार पर मिलता है। शरीर आत्मा का वस्त्र होता है जिससे वह आवृत रहता है।

आत्मा तो ऐसा शाश्वत तत्त्व है जिसे न कोई शस्त्र काट सकता है, न अग्नि इसे जला सकती है, न जल उसको गीला कर सकता है और न ही हवा इसे सुखा सकती है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लैदयन्त्यापो न शोषयति मारूतः।।[6]

यह आत्मा तो अछेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है, अशोष्य है। नित्य है तथा सर्वगत है, स्थाई व अचल और सनातन है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।।[7]

यह आत्मा तो अव्यक्त रहता है। यह शरीर धारण करने पर शरीर रूप में व्यक्त दिखाई देता है लेकिन शरीर से निकल जाने पर फिर अव्यक्त हो जाता है तथा दूसरा शरीर धारण करने पर फिर व्यक्त रूप में आ जाता है। इस संसार में कोई इसे अद्भुत रहस्य के रूप में देखता है और कोई इसका वर्णन बड़े अद्भुत रहस्य के रूप में करता है और दूसरे इसका वर्णन बड़े अद्भुत रहस्य के रूप में सुनते है। इस आत्मा का वर्णन सुनकर भी इसे कोई जान नहीं पाया है।

आत्मा तो अव्यक्त, अचिन्त्य, अविकारी है

अव्यक्तोऽयमचिन्तेऽयम्
विकायोऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं
नानुशोचितुमर्हसि।।[8]

आत्मा नित्य, अवघ्य है।

देही नित्यमवध्योऽयं
देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि
न त्वं शोचितुमर्हसि।।[9]

प्राणियों के शरीर में स्थित आत्मा वास्तव में परमात्मा ही है। यह साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देने वाली होने से अनुमन्ता है। सबका धारण–पोषण करने वाला होने से भर्ता, जीवरूप से भोक्तता, शुद्ध सच्चिदानन्द होने से परमात्मा है।

उपद्रष्टानुमन्ता च।
भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो
देहेस्मिन्पुरुषः परः।।[10]

गीता में कहा है कि जिस प्रकार एक सूर्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक आत्मा सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित कर देता है।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं
लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षत्री तथा कृत्स्नं
प्रकाशयति भारत।।[11]

गीता में काम, क्रोध तथा लोभ इन तीनों को नरक का द्वार कहा गया है। ये तीन आत्मा का नाश करने वाले है अर्थात आत्मा को अधोगति की ओर ले जाने वाले है। अतः मनुष्य को इन तीनों का त्याग कर देना चाहिए।

त्रिविधं नरकस्येदं
द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा।
लोभस्तस्मादेतत्रयं त्यजेत्।।[12]

शरीरधारी इन प्राणियों के शरीर में आत्मा नित्य है, अवध्य है। इसलिए आत्मा के मरने मारने के विषय में चिन्ता नहीं करनी चाहिए। आत्मा को अजर अमर शाश्वत मानते हुए मनुष्य निष्काम भाव से फल की कामना नहीं करते हुए अपना कर्म करता रहे।

"गीता में निष्काम कर्म"

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आत्मा की अमरता का रहस्य बतलाते हुए निष्काम कर्म का उपदेश दिया क्योंकि निष्काम कर्म से कर्मों के फल का क्षय हो जाता है तथा जन्म–मरण के बन्धन से आत्मा मुक्त होकर परम सत्ता में विलीन हो परमानन्द को प्राप्त हो जाता है। गीता के द्वितीय अध्याय में ही भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हे! अर्जुन तुम मारने या मरने का विचार त्याग कर निष्काम भाव से धर्म का पालन करो, क्योंकि मनुष्य के लिए अपने धर्म का पालन सबसे बड़ा होता है। यदि तुम अपने धर्म का पालन नहीं करते हुए युद्ध नहीं करोगे तो पाप को प्राप्त करोगे। अपने धर्म का पालन करने में तुम्हें दोनों तरफ लाभ है क्योंकि यदि युद्ध में मारे गए तो स्वर्ग को प्राप्त करोगे और यदि जीते तो इस पृथ्वी का भोग करोगे।

इसलिए सुख–दुख, लाभ–हानि, जय–पराजय को समान करके अपने धर्म का पालन करते हुए युद्ध करो। यही योग हे। इस मार्ग पर चलकर कभी भी मनुष्य को विपरीत फल प्राप्त नहीं होता है।

हे अर्जुन तुम्हारा केवल कर्म करने का अधिकार है, फल का नहीं। तुम्हारा उद्देश्य कर्म का फल नहीं होना चाहिए। तुम कर्म के फल का कारण मत बनो और तुम्हारा अनुराग अकर्मों में भी नहीं होना चाहिए।

कर्मव्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।[13]

इसलिए योग में स्थिर होकर कर्म करो। सब प्रकार की आसक्ति त्याग कर सफलता असफलता को समान करके कर्म करना ही समत्व योग कहा जाता है।

योगस्थः कुरू कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्चते।।[14]

अतः गीता में निष्काम कर्म को सबसे बड़ा मुक्ति का मार्ग बताया है। मनुष्य को अपना कर्म बिना फल की आसक्ति के करना चाहिए फिर चाहे उसमें लाभ हो अथवा हानि, दुःख मिले या सुख हार हो या जीत। कर्म के अच्छे बुरे फल को समान करके अपने कर्त्तव्य का निर्वहन मनुष्य करे। निष्काम कर्म करने से कर्मों के फल नष्ट हो जाते है और कर्म के अच्छे या बुरे फल का अधिकारी, करने वाला नहीं बनता है।

दूर्णे ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणा फल हेतवः।।[15]

बुद्धियुक्त व्यक्ति अर्थात् फल की इच्छा किये बिना कार्य करने वाला कर्मों के अच्छे बुरे फल को यहीं छोड़ देता है। इसलिए है अर्जुन तू योग में स्थित होकर कर्म कर, योग ही कर्मों में कुशलता है।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्वः योगः कर्मसु कौशलम्।।[16]

हे अर्जुन जिन लोगों ने बुद्धि को ईश्वर से मिला लिया है तथा योगपूर्णक कर्मों के फल का विचार न करते हुए अपने कर्म का, कर्त्तव्य का पालन करते हैं वे जन्म–मरण के बंधन से मुक्त हो जाते हैं और वे फिर इस संसार में जन्म नहीं लेते, मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं व्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्म बन्ध विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनायम्।।

अतः सार यही है कि आत्मा परमेश्वर का अंश होता है, वह अजर, अमर, शाश्वत, सर्वव्यापि, अच्छेद्य अदाह्य अक्लेद्य व अशोष्य है। आत्मा अपने कर्मों के फल के कारण जन्ममरण के बंधन मैं बंधकर पुनः–पुनः विभिन्न योनियों में जन्म लेता रहता है। जब मनुष्य बिना फल की इच्छा किए अपना कर्त्तव्य कर्त्ता है तो उसके कर्मों का फल उससे छूट जाता है। कर्मों के फल समाप्त हो जाने पर आत्मा का पुनर्जन्म का बंधन भी छूट जाता है और फिर उसे संसार में नहीं आना पड़ता अपितु परमविराट परमेश्वर भगवान की परमसत्वा में समाहित होकर परमानन्द को प्राप्त हो जाता है।

सन्दर्भ संकेत

1. श्रीमद्भगवद्गीता 1/34
2. श्रीमद्भगवद्गीता 2/9
3. श्रीमद्भगवद्गीता 2/19
4. श्रीमद्भगवद्गीता 2/20
5. श्रीमद्भगवद्गीता 2/22
6. श्रीमद्भगवद्गीता 2/33
7. श्रीमद्भगवद्गीता 2/24
8. श्रीमद्भगवद्गीता 2/25
9. श्रीमद्भगवद्गीता 2/30
10. श्रीमद्भगवद्गीता 13/22
11. श्रीमद्भगवद्गीता 13/33
12. श्रीमद्भगवद्गीता 16/21
13. श्रीमद्भगवद्गीता 2/47
14. श्रीमद्भगवद्गीता 2/48
15. श्रीमद्भगवद्गीता 2/49
16. श्रीमद्भगवद्गीता 2/50

❑❑

विखंडनवादी विमर्शों के दौर में उम्मीदों की कविता

डॉ0 ललिता यादव
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी
एन0ए0एस0 कॉलेज, मेरठ

विखंडनवादी विमर्शो के दौर में स्त्री उत्पीड़न के अनेक स्तरों को, परत दर परत खोल कर, तीखी प्रतिक्रियाओं और विद्रोही तेवर के साथ रचित कविता, भले ही स्त्री की बात हो रही है, और बड़े सशक्त ढंग से हो रही है का संतोश दे जाये, पर यह कविता स्त्री या समाज को किसी मुकाम पर ले जाने का द्वार खोले ऐसा होता कम ही दिखता है। स्त्री–जीवन के अनेक पहलुओं पर बात करतीं अनामिका बड़े सहज ढंग से, सहज अभिव्यक्ति के औजारों से, स्त्री जीवन की विडंबनाओं को उकेरतीं, दरों–दीवारों में कैद स्त्री की नियति को काट छांट कर उम्मीद का जो रोशनदान खोलती हैं वह रोशनदान ही उनकी कविता की विशिष्टता बन जाता है। अनामिका के ही शब्दों में–''तकलीफ खतरनाक चीज़ होती है। उससे यह उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि वह अनंत काल तक अंधेरे कोनों में मुंह लपेटे पड़ी रहेगी!'' स्त्रियों को 'न्याय चाहिए पर वे जानती हैं कि अन्याय का प्रतिकार अन्याय नहीं, एक दमन–चक्र का जवाब दूसरा दमन चक्र नहीं।'' पर प्रतिरोध और प्रतिशोध के तीखें तेवर अपनाए बिना भी चीजों को बदलने की पहल की जा सकती है। वह पहल दिखती है अनामिका की कविताओं में। जहाँ स्त्री अपनी मुक्ति के लिए मूल्य नहीं चुकाती, वरन वह सब कुछ जो उसके स्त्रीत्व के लिए जरूरी है को बचाते, सहेजते हुए मुक्ति का द्वार खोलती है। मदन कश्यप भी मानते हैं–''अनामिका हिन्दी की ऐसी पहली महिला कवि हैं, जिन्होंने अन्तर्वस्तु से आगे बढ़कर भाषा, शिल्प, सौन्दर्य और आस्वाद के स्तर पर कविता को नया धरातल दिया।''[1] आस्वाद को स्वीकृति के स्तर में बदलना निश्चित रूप कठिन कार्य है, जिसका निर्वाह सहज रूप से अनामिका के काव्य में हुआ है।

अनामिका की 'पतिव्रता' शीर्षक की पतिव्रताएं पतियों से त्रस्त जीवन की स्थितियों पर विचार करतीं हैं। मुक्ति हेतु वह गाँधी के सत्याग्रह को अपना, लम्बे–लम्बे अनशन भी रखती हैं, पर कोई आकर नहीं मनाता। उम्र के साथ अशक्त पति का आचरण नम्र होता है–

''बीमार से रगड़ा क्या झगड़ा क्या
मैंने साध ली क्षमा।'' वही, पृ0 52

स्त्री क्षमा ही नहीं करती अशक्त हो चुके पति से तादात्म्य भी बिठाती है। उसे पति के खर्राटे भी मीठे लगते हैं। कान लगाकर सुनती रहती है कि वह सपनों में उसे आवाज देता हो–

''जो रोज इतने दिन
ये कान सुनने को तरसे.....
कोई ऐसी बात जिससे बदल जाए
जीवन का नक्शा,
रेती पर झम–झम– झमक–झम कुछ बरसे....!'' वही, पृ0 52

अनामिका की स्त्रियाँ अपनी विशिष्ट दैहिक, मानसिक और भाषिक संरचना पर गर्व करती हैं। जो स्त्री की नैसर्गिक विशेषता है, वह भला शर्म का कारण कैसे हो सकती है। शर्मनाक तो आरोपित दोहरे मापदंड है, जिन पर पुनः विचार करने की जरूरत है। 'स्त्रियां' कविता में अपनी स्थिति स्पष्ट करती स्त्री कहती है –

''पढ़ा गया हमको
जैसे पढ़ा जाता है कागज
बच्चों की फटी कॉपियों का.........
देखा गया हमको
जैसे कि कुफ्त हो उनींदें
देखी जाती है कलाई घड़ी.......!
सुना गया हमको
यों ही उड़ते मन से.....
भोगा गया हमको
दूर के रिश्तेदारों के
दुःख की तरह!'' वही, पृ0 36

एक दिन स्त्री अपने को इंसान घोषित कर पुरुष को प्रशिक्षित करना शुरु करती है–

''हमें कायदे से पढ़ो एक–एक अक्षर
जैसे पढ़ा होगा बी.ए. के बाद
नौकरी का पहला विज्ञापन!
देखों तो ऐसे
जैसे कि ठिठुरते हुए देखी जाती है
बहुत दूर जलती आग!
सुनों हमें अनहद नाद की तरह
और समझो जैसे समझी जाती है
नयी–नयी सीखी हुइ भाषा!'' वही, पृ0 37

सम्पूर्ण परिमण्डल में व्याप्त नाद जो सृष्टि को लय प्रदान कर करता है, उससे तादात्म्य स्थापित करती प्रकृति स्वरूपा स्त्री, अपने व्याकरण नियम और छन्द पुरुष के समक्ष रख देती है, आज की स्त्री की इन आवश्यकताओं को समझने के लिए उस पुरुष को बाध्य होना ही होगा जो उसके साथ चलने को उत्सुक है।

एक बार जब स्त्री बोलना शुरु कर ही चुकी है, तब चुप होने का प्रश्न ही नहीं। वह सेक्स और जेंडर पर बात करती है। 'बेजगह' कविता में वह लिखतीं हैं –

''अपनी जगह से गिरकर
कहीं के नहीं रहते
केश औरतें और नाखून'' वही, पृ0 39

अपनी जगह अर्थात् परम्परा से कटकर, पर यह जगह दी किसने स्त्री को–

''राम, पाठशाला जा!
राधा, खाना पका!
राम, आ बतासा खा!
राधा, झाड़ू लगा!
भैया अब सोएगा,
जाकर बिस्तर बिछा!'' वही, पृ0 39

अपनी 'मरने की फुर्सत' नामक कविता में वह ईसा मसीह के माध्यम से स्पष्ट करती हैं कि देह कैसे स्त्री को ईसा मसीह या गौतम बुद्ध नहीं होने देती। समाज के दोहरे मानदंड और स्त्री की सृजनधर्मा देह ही उसके लिए बड़ी बाधा बन जाती है–

''ईसा मसीह
औरत नहीं थे
वरना मासिक धर्म
ग्यारह वर्ष की उमर से
उनको ठिठकाए ही रखता
देवालय के बाहर!'' वही, पृ0 93

बेथेलेहम और यरूशलम की कठिन यात्रा में बलात्कार का भय ईसा के सामने नहीं था। चालीस दिन रात की इस यात्रा को यदि ईसा मसीह के बच्चें भी साथ में काटते, भूख से बिलबिला कर मरते तो–

''ईसा को फुर्सत नहीं मिलती
सूली पर चढ़ जाने की भी!'' वही, पृ0 93

सृजन का सुख देने वाला 'जच्चाघर' स्त्री के विरोध, विद्रोह और संघर्ष के स्वर का कब्रगाह बन जाता है। 'चुड़ैल' शीर्षक कविता में वह लिखतीं हैं –

''क्यों कर हुआ करते हैं उलटे पांव चुड़ैलों के?
क्यों कर चुड़ैले बन जाती हैं
जच्चा–घर में टन्न बोल गयी औरतें?'' वही, पृ0 15

बालिकाओं के ऐसे प्रश्नों पर पुरानी स्त्री की पीढ़ी हमेशा मौन साधती आयी है। हर स्त्री ऐसे यक्ष प्रश्नों के उत्तर जीवन के त्रासद अनुभवों से गुजर कर ही पाती हैं, और जीवन के इन अनुभवों की आंच से नयी पीढ़ी की स्त्री को बचाते हुए, जीवन के कटु सत्यों से रू–ब–रू कराने की बजाय बचाने के प्रयास में लगी रहती है। सत्ता और समाज के सारे षड़यंत्र जानकर भी स्त्री अपने सामाजिक सरोकारों के कारण निकल कर भाग नहीं जाती अपितु मैदान में डटी रहती है –

''हां, उलटे हैं मेरे पांव ,
पर दुनिया में मुझको कोई भी औरत दिखा दो
जो उलटे पांव नहीं चलती,
व्यतीत में जिसके
गड़ा नहीं कोई खूंटा!
भागती नहीं औरते–
लौट आती हैं उलटे पांव,'' वही, पृ0 16

अपनी संतति की रक्षा हेतु। घर–परिवार के दायरे में निकलकर अपना मुकाम हासिल करने वाली स्त्री की बात और है। वह अपना दायरा स्वयं निर्धारित करती है। 'मानिनी' शीर्शक कविता की मानिनी अपने स्वाभिमान को छीके पर रखने के स्थान पर मन में स्थित कामनाओं को ही छीके पर रखना चुनती है। भले ही कामनाओं का वेग उसे बेचैन करता है, मथता है,–

''चप्पल पहनी –खोली–पहनी,
पर गयी नहीं, नहीं गयी।''

परम्परागत ज्ञान भी उसे मान छोड़ समर्पण को ही प्रेरित करता है–

''कहते थे बाबा–
दुविधा हो खाऊं कि नहीं,
कभी मत खाओ,
जाऊं कि नहीं
तो जरूर जाओ,'' वही, पृ0 5

इस आधार का संबल भी वह नहीं ले सकती, क्योंकि किसी और का सच उसका सच नहीं हो सकता। पीढ़ियों के अनुभव से उसने जान लिया है कि प्रेम का मार्ग स्त्री के लिए कभी निश्कंटक नहीं रहा अतः फूंक–फूंक कर कदम बढ़ाती है वह।

आज के दौर में जब हर कोई हर किसी से दूर जा रहा है स्त्री के आसपास का स्पेस बढ़ रहा है। इस स्पेस को वह अपने हिसाब से परिभाषित करती है–

''इस 'स्पेस' का अनुवाद
'विस्तार' नहीं, 'अंतरिक्ष'करूंगी मैं''[2]

'टूटी छतरी' कविता में भग्न प्रेम की प्रतिछवियों को याद करती स्त्री कहती है–

''वैसे ही छुपे हुए बैठे हैं मुझमें
कुछ एहसास
बीती बारिशों के'' वही, पृ0 25

वक्त के साथ इन एहसासों से जन्म लेने वाले जख्म सूखते है, तब इस टूटी छतरी के रूप में अपनी प्रतिछवि स्त्री को अच्छी लगती है। भग्न प्रेम में निकल कर स्त्री निष्कर्ष निकालती है–

''जितना पच जाये–वही अपना है,
जितना रच पाये –वही सपना है!
इस स्वप्न संध्या में
एक झुटपुटा है,
यह झुटपुटा ही अब मेरा खुदा है!'' वही, पृ0 26

'नायिका भेद' कविता में स्त्री विषयक समस्त अध्ययन को ध्वस्त करतीं, वह आज की स्त्री के संदर्भ में नये नायिका भेद की मांग करती हैं –

''हमारा अलग से बनाना होगा कोई प्रभेदः
फूट गये हैं घड़े
सिकहर टंगे नौ रसों के,.....
हर क्षण हमारा है नौ रसों का कॉकटेल
और हम हैं शायद मिश्र प्रजाति वाले
बांस का टूसा!'' वही,पृ0 110/111

आज जिस बाजारवाद में खड़े होकर स्त्री अपने को साध रही है, किसी एक भेद से उसकी संगति बैठ ही नहीं सकती।

'तलाशी' कविता में एक स्त्री की अंग फोड़कर ली गयी तलाशी में मिलते हैं–

थोड़े सपने और थोड़ी उम्मीद,
एक अधूरी, अबूझ चिट्ठी।

वह चिट्ठी जो स्त्री ने अपने अंदर स्थित स्त्री को ही लिखी थी–

''हलो धरती, कहीं चलो धरती,
कोल्हू का बैल बने गोल–गोल घूमें हम कब तक?
आओ कहीं छूटते हैं तिरछा
एक अगिनबान बनकर
इस ग्रहपथ से दूर!'' वही, पृ0 13

बनी बनाई लकीर छोड़कर, विपरीत चलने की कामना करने वाली, अपने लिए थोड़े सपने और उम्मीद रखने वाली स्त्री को जकड़ दिया जाता है कालकोठरी में। फिर भी वह उम्मीद नहीं छोड़ती। लेखनी उसका हथियार है, जिससे वह कालकोठरी से बाहर आने का रास्ता तलाश रही है। यह तलाश निराशाजनक भी नहीं है, उसके सीने में स्नेह निर्झर शेष है और बाहर पतली रोशनी में ही सही खुला खिला घास का मैदान नवीन सृश्टि के लिए उपस्थित है। स्त्री के लिए भारी उम्मीद जगाती हैं अनामिका की कविताएं।

'हत्या' कविता में स्त्री स्वयं को एक हत्यारे के रूप में देखती है, जो परम्रागत समाज के मूल्यों की हत्या करने को तत्पर होती है, जब उसके अंदर का हत्यारा उसके सपनें की कुड़ी खटखटाता है, पर– ''हत्या कभी भी अचानक नहीं होती।

घृणा एक अवसाद है
जो भीतर जमती जाती है
धीरे–धीरे'' वही पृ0 22

सदियों से समाज के इस पितृसत्तात्मक ढ़ांचे की संकीर्णताओं में आबद्ध स्त्री कुंठित हो अपना वजूद खो चुकी है। उसके सपनों का गला घोंटा गया है, और इसीलिए उसकी–

''सब अधूरी कामनाएं
अंगरेजी राज के
ठगों की तरह
कुठौर घेर लेती है।'' वही पृ0 23

स्त्री धैर्य खोने लगती है। उसके मन में प्रश्न उठते हैं,–

''हत्यारा है राजा
और सभासद हत्यारे हैं,
हम क्या हम किस्मत के मारे हैं,''

चारदीवारी के छोटे से दायरे में कैद बास मारते, जहरीले हो चुके हैं। बहना चाहते हैं, पर कैसे बहें, क्योंकि बह जाना कई बार बस में नहीं होता है। बह जाना अर्थात मुक्त होना 'नदी के द्वीप' की रेखा की तरह, और इसके लिए जरूरत है, भुवन जैसे पुरुश की जो स्त्री को उसकी नियति या श्राप से मुक्त कर सके, अन्यथा बरतन में कैद पानी जिसे बह जाने के लिए किसी दूसरे के सहयोग की दरकार होती, की मदद के अपने खतरे भी है,–

''अब तो कोई और आये,
थोड़ा सा आपको झुकाए,
थोड़ा–सा पी जाए, थोड़ा बहाए

आपको आपकी सरहद के बाहर
तो बात बने'' वही, पृ0 23

पर इस 'बात बने' में मौजूद खतरे को भी वह नजरअंदाज नहीं करती और ऐसी मुक्ति स्थगित कर उसकी ओर से आंख मूंद लेना ही उचित समझती है।

आज स्त्री आत्मनिर्भर होना चाहती है, वह अपने लिए एक घर बनाना चाहती है, किन्तु इसके लिए उसे भाई की तरह परिवार से कोई मदद नहीं मिलती। पैतृक सम्पत्ति में हिस्सेदारी के मार्ग में कानून होने के बाद भी स्त्री के समक्ष तमाम अड़चने हैं। अनामिका की 'पगड़ी' कविता में पैतृक सम्पत्ति से वंचित की गयी स्त्री के संकल्प को वाणी मिली है, वह लड़कर सम्पत्ति लेने की अपेक्षा परिश्रम के द्वारा अर्जित करने के मार्ग को चुनती है जो ज्यादा सम्मानजनक है। 'पगड़ी' कविता में बाबा की पगड़ी के विशेशण से विभूषित लड़की इतराती है–

''सिरमौर मैं ही हूं बाबा का,
मैं ही तो हूं उनकी छाया कंलगीदार पगड़ी,
माथे पर चमके प्रचण्ड धूप तब भी मैं
उनको लू लगने नहीं देती!'' वही, पृ0 20

किन्तु बाबा की मृत्यु के बाद जब बाबा की समस्त सम्पदा के साथ पगड़ी भैया का मुकुट बन जाती है, तब जीवन की जरूरतों को पूरा करने के लिए लड़की को महसूस होता है कि उसे भी एक पगड़ी अर्थात सम्पत्ति की जरूरत है। वह सम्पत्ति अगर विरासत में उसे नहीं मिलती तो वह उसके लिए मातम नहीं मनाती, झगड़ा भी नहीं करती, अपितु अपनी सम्पत्ति वह स्वयं अर्जित करेगी ऐसा विचार बनाती है। अर्जन के लिए उसका आदर्श बनती है, एक श्रमजीवी स्त्री–

''कर लूंगी इसका भी इंतजाम
जैसे कि मजदूरनी रखती है गमछी के गोले पर
बालू की तगड़ी,
मैं सारी दुनिया उठा लूंगी माथे पर
अपने ही आंचल की बांधे हुए पगड़ी।''

दरअसल जीवन की सारी लय ही गड़बड़ है। 'चुटपुटिया बटन' कविता में काम के अर्थात उपयोगी साथी वह हैं–'जो ऊँच नीच के दर्शन में विश्वास न रखते हो, बराबरी के कायल हो, न स्वयं फंसते हो न फंसाते हो, अन्यथा–

''फंदे में फंसे आपस में कितना सटेंगे–
कितना भी कीजिए जतन–
चुट से पुट नहीं ही बजेंगे!'' वही, पृ0 122

'जन्म ले रहा है नया पुरुष' कविता में वह आज की स्त्री के अनुकूल पुरुष को जन्म लेते देखती हैं– ''नया पुरुष जो अति पुरुष नहीं होगा–

क्रोध और कामना की अतिरेकी पेचिस से पीढ़ित
स्वस्थ होगी धमनियां उसकी
और दृष्टि सम्यक–
अतिरेकी पुरुषों की भाषा नहीं बोलेगा–स्नेह–सम्मान–

विरत–चूमा–चाटी वाली भाषा,
बन्दूक –बम–थप्पड़–घुड़की–लाठी वाली भाषा''[3]

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि अनामिका अपनी कविता के माध्यम से स्त्री के अंतरमन के भेद खोलती, अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाती, बाहरी दुनिया से लगातार संवाद कर, स्त्री के लिए एक बेहतर दुनिया का सपना साकार करने के लिए ही अपनी कलम से कालकोठरी में सुरंग बना रहीं हैं–

''कान लगाकर सुनो–
धरती की छाती में क्या बज रहा है!
क्या कोई छुपा हुआ सोता है?
और दूर उधर–पार सुरंग के –वहां
दीख रही है कि नहीं दीखती
एक पतली रोशनी
और खुला खिला घास का मैदान!'' 'तलाशी' पृ0 14

पर्याप्त विषय वैविध्य भी अनामिका की कविताओं में दृष्टिगोचर होता हैं– पर्यावरण, राजनीति, राष्ट्र भाषा जैसे गम्भीर विषय के साथ वह सत्रह वर्ष के प्रतियोगी पर भी नजर रख लेती हैं। समय तथा समाज के प्रश्नों एवं चुनौतियों से टकराते हुए अनास्था, निषेध, निराशा ना उम्मीद के स्थान पर उनकी कविता में आस्था एवं जीवन के प्रति स्वीकारात्मक दृष्टिकोण मिलता है–

''जो भी बने जीवन ,जीवन तो जीवन है!
हरियाली ही बीज का सपना है!
....
कितनी तो सुदंर है हर रूप में दुनिया!''

सन्दर्भ सूची

1. मदन कश्यप, अनामिका पचास कविताएं, वाणी प्रकाशन के फ्लैप से
2. अनामिका, 'अनामिका पचास कविताएं, 'अनुवाद' शीर्शक कविता, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2012
3. कविता कोश kavita kosh.org.

❑❑

अंजना संधीर कृत कविता संग्रह 'अमरीका हड्डियों में जम जाता हैं' में चित्रित प्रवासी भारतीय जीवन

डॉ॰ सुनीता शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर, पंजाब

प्रवासी वह व्यक्ति है जो अपना देश छोड़कर रोज़ी–रोटी की तलाश में अनिश्चित काल के लिए दूसरे देश की धरती पर आवास करता हैं इस प्रवासकाल में वह अपने घर–परिवार समाज जहाँ तक कि राष्ट्र से दूर अपनी आजीविका की चिंता में कई समस्याओं का सामना भी करता है और जहाँ तक कि विदेशियों का व्यवहार भी उसे संतप्त करता है। वैसे भारतीयों में प्रवास का आरंभ तो सन् 1830 में आरंभ हो गया था जब भारतीय मज़दूरों ने मॉरीशस की धरती पर कदम रखा था। पर प्रवास की जड़ें तो सुदूर भारत में राम–बनवास और पाँडवों के बनवास तक जुड़ती हैं जब श्री राम और पाँडव अपना राष्ट्र अपना देश छोड़कर दूसरे राज्य में निश्चित अवधि के लिए चले जाते हैं। पर आधुनिक काल में प्रवास की अवधारणा उन्नीसवीं शताब्दी से ही आरंभ होती है। इन प्रवासी भारतीयों में कई संवेदित हृदयों के स्वामी भारतीय लेखक भी विदेशी धरा पर पहुँचे। जब उन्होंने में विदेश की धरती पर कदम रखे तो उन्होंने उस प्रवास काल में जो देखा, जो अनुभूत किया, जो भोगा उसकी अभिव्यक्ति कविता, उपन्यास, कहानी, संस्मरण आदि कई विधाओं के रूप में की। इन प्रवासी भारतीय लेखकों में अभिमन्यु अनंत उषा प्रियंवदा, सुषम बेदी, इलाप्रसाद, उषा राजेसक्सेना, कादम्बरी मेहरा, दिव्या माथुर, पूर्णिमा वर्मन, अर्चना पैन्यूली, अंजना संधीर का नाम लिया जा सकता है।

अंजना संधीर अमरीका में रहने वाली वह चर्चित कवयित्री है। अब तक इनके सात कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके है– 'बारिषों का मौसम', 'धूप–छाँव और आंगन', 'मौजे शहर', 'तुम मेरे पापा जैसे नहीं हों', 'अमरीका हड्डियों में जम जाता हैं', 'संगम', 'अमरीका एक अनोखा देश'। चार कविता संग्रहों का सम्पादन भी इन्होंने किया है– 'प्रवासी हस्ताक्षर', 'सात समन्दर पार से', 'ये कश्मीर है', 'प्रवासिनी के बोल और प्रवासी आवाज़'। एक अनुवादिका के रूप में भी इन्होंने उर्दू और गुजराती उपन्यासों का हिन्दी अनुवाद किया है। अपनी साहित्य सेवा के लिए इन्हें अनवरत सम्मानित और पुरस्कृत किया जाता रहा है जिसके अंतर्गत–गुजरात उर्दू साहित्य अकादमी पुरस्कार, गुजरात हिन्दी साहित्य अकादमी पुरस्कार, तुलसी सम्मान, अदिति साहित्य शिखर सम्मान, काव्यश्री सम्मान आदि। इन्होंने अपने काव्य लेखन के माध्यम से भारतीयों की कशमकश में पड़ी नैय्या को बचाने का सशक्त प्रयास किया है। 1960 में उत्तर प्रदेश की धरा पर जन्मी अंजना संधीर मुख्यता आरंभ में मनोविज्ञान की छात्रा एवं प्राध्यापिका रही है। आर्टस एंड कामर्स कॉलेज अहमदाबाद में प्राध्यापिका पद से त्यागपत्र देकर अपने पति के साथ 15 जनवरी, 1995 में अमरीका पहुँचती है और अमरीका में रहने वाले भारतीयों के जीवन के उस पक्ष से रूबरू होती है जो उनकी मुस्कान के पीछे रिसता घाव बन चुकी थी अपनी कविताओं की मरहम के रूप में उन्होंने कुछ सांत्वना देने का प्रयास किया है।

'अमरीका हड्डियों में जम जाता है' कविता संग्रह सन् 2011 में प्रिय साहित्य सदन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। लगभग पौने दो सौ पृष्ठों के इस कविता संग्रह का तेलगु, गुज़राती तथा अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है। 66 कविताओं के इस कविता संग्रह में लेखिका ने अमरीका में रह रहे भारतीयों की पीड़ा, अंतर्द्वद्व, छटपटाहट और संघर्ष का वर्णन किया है। वह अमरीका में रह रहे भारतीयों की स्थिति को देखकर लिखती है– "अमरीका तीसरी दुनिया

के लोगों के लिए स्वर्ग है। अपने देश में बैठे अमरीका के बारे में जो सुंदर छवियां हम देखते हैं धीरे–धीरे यहाँ आने पर धूमिल होने लगती हैं। सांस्कृतिक चक्र से लेकर हर बात में व्यक्ति अपने आप को उल्टा पाता है और सोचने लगता है मैं पाताल नगरी आ गया।" 'अमरीका हड्डियों में जम जाता है' कविता संग्रह में कवयित्री प्रवासी भारतीयों के जीवन का वर्णन करने के साथ–साथ अमरीका के वैभव, उसकी प्राकृतिक सुंदरता एवं उसके विलासी जीवन पर भी प्रकाश डाला है जहाँ पहुँचते ही एक भारतीय उसके इस अनुपम रूप में इस कदर खो जाता है और जब तक उसे होश आता है तो अमरीका उसकी हड्डियों में जम चुका होता है। सर्वप्रथम अमरीका का जो चित्र कवयित्री ने खींचा है उसमें अमरीकी वैभव एवं सम्पदा के वर्णन निम्नलिखित है–

जहाँ सभी जाति–धर्म के लोग रहते है फिर भी ईसाई धर्म का प्रभुत्व है। अमरीका विश्व का एक जाना–माना गणतंत्र है। इसके पचास राज्य है सभी मिलकर–यूनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका के नाम से जाने जाते है। जहाँ का हर राज्य में अपने नीति नियम है पर जीवन–शैली के लिए यह देश सर्वोपरि है। यहाँ के निवासियों के मन में बचपन से ही यह भावना कूट–कूट कर भर दी जाती है 'मैं अमेरिकी हूँ'। पूरे विश्व के लोग यहाँ आकर रहते हैं इसलिए इसे 'ग्लोबल स्टेट' भी कहा जाता है। यहाँ काम और अर्थ को महत्व दिया जाता है। यह एक माया नगरी है जहां पर पाँव धरते ही व्यक्ति इसके वैभव में खो जाता है।

इस देश की इमारतें, भूगर्भ ट्रेने, हाईवे, गाडियों की लम्बी–लम्बी कतारें सुख सुविधाएं किसी भी भारतीय को पहले तो दो–तीन महीने इसका चकित करने वाले परिवेश को समझने में लग जाते हैं। 'अमेरिका का सच', 'शीशों का घर मैनहटन', 'महानगर में एकाकीपन' इस कविता संग्रह की ऐसी कविताएं हैं जिनमें कवयित्री ने अमरीका के वैभव का वर्णन किया है–

"यूँ तो ऊँच–ऊँच है
शीशों में जड़ा मैनहटन
पर एक तरफ हडमन नदी झिलमिल–झिलमिल
करती है तो दूसरी तरफ चमकती हैं इमारतें
पुलों, भूगर्भ ट्रेनों, समुद्री कश्तियों और हवाई ट्राम के द्वारा
जुड़ा है चारों तरफ से कभी न सोने वाला शहर न्यूयार्क का।"

खान–पीन की सुविधा, विविधता और हर वस्तु के सस्ते दाम में भी इस देश के वैभव के दर्शन होते हैं जैसे–

"मूँगफली और पिस्ते का एक भाव
पैट्रोल और शराब पानी के भाव
इतना सस्ता लगता है सब्जियों से ज्यादा मांस
कि ईमान डोलने लगता है।
महंगी घास खाने से तो अच्छा है, सस्ता मांस खाना।"

इस देश में हर राष्ट्र के लोग रहते है पर हर व्यक्ति स्वतंत्र है। वैयक्तिक स्वातंत्र्य भारतीयों को बहुत प्रभावित करता है। अंकुशों में पला–बढ़ा भारतीय जहाँ पहुँचते ही एक स्वर्गीय अनुभूति लेने लगता है तब वह अपने आपको इस दुनिया का सबसे भाग्यशाली व्यक्ति मानने लगता है जैसे कि इन पंक्तियों में स्पष्ट होता है–

"टेलिविजन की चेनलें, सेक्स के मुक्त दृश्य
किशोरावस्था में वीकेंड में गायब रहने की स्वतंत्रता
डिस्कों की मस्ती अपनी मनमानी का जीवन
कहीं भी, कभी भी, किसी के भी साथ उठने, बैठने की आज़ादी..."

अमरीका के लोग दो तरह से व्यस्त है वे या तो अपनी मस्ती में व्यस्त है या अपने विलासी जीवन को बनाए

रखने के लिए अर्थिक सम्पन्नता हेतु कर्म में व्यस्त हैं। उत्तरआधुनिकता के इस दौर में यह काम और अर्थ ने व्यक्ति को इस प्रकार लपेट लिया है कि उसे कुछ सूझता ही नहीं है जैसे कि 'बत्तियों के शहर' कविता की पंक्तियों में स्पष्ट है–

"सामान ढोकर लौटते थके हारे स्त्री–पुरुष
सामान बने हुए हैं
जिन्हें ढोता है डालर
जो जाता है वीकेंड का मज़ा
डिस्को का शेर, शराब की हलचल
शवाब की चुस्कियाँ
मशीनों में भरता है तेल विकेंड को।''

इस प्रकार अमरीका की सुख–सुविधाएं, उसका वैभव उसकी चकाचौंध भारत से आने वाले भारतीय को इतना उन्मत कर देती है कि वह कुछ सोच ही नहीं पाता तब तक इस देश की सुविधाएं उसमें उसकी हड्डियों में जम जाती हैं और फिर वह उसके सामने जो यथार्थ आता है वह भी कम चौकाने वाला नहीं होता है। वह स्वतंत्र होते हुए भी अपने आपको जंजीरों में जकड़ा हुआ महसूस करता है। प्रवासी भारतीयों की इस स्थिति को निम्नलिखित शीर्षकों में स्पष्ट किया जा रहा है–

1.0 प्रवासी भारतीय पुरुषों की दशा का चित्रण

प्रस्तत कविता संग्रह में कवयित्री ने भारतीय पुरुष की संवेदना, पीड़ा उसकी करुण स्थिति का भी हृदयग्राही वर्णन किया है। लेखिका लिखती है कि भारतीय पुरुष इस विचित्र धरती पर पैर रखता है उसे एक सोशल सिक्युरिटी नम्बर मिल जाता है जो जन्म कुंडली की तरह काम करता है वह इस देश के किसी भी कोने में चला जाए यह नम्बर हर जगह उसका पीछा करता है और वह स्वाभाविक जीवन जीना भूल जाता है। जहां आकर सुविधाओं को जुटाने के लिए तथा भारत में पैसा भेजने के लिए अधिक से अधिक कमाने हेतु कोल्हु के बैल की तरह दिन–रात काम करना आरंभ कर देता है। पर अमरीका एक विशाल जुआघर है और इस जुए में लाोग खुद चलकर आते हैं और जहाँ आया हुआ भारतीय और पाने की इच्छा से जो अपने पास होता है उसे भी हारने लगता है और उसकी तमन्ना बढती जाती है। इसी संदर्भ में अमरीका एक विशाल जुआघर कविता के अंश देखिए–

"जुआघर किसी को आमंत्रण नहीं देता,
व्यक्ति खुद अपना माल सामान लेकर यहाँ पहुँचता है
पहले थोड़ा जीतता है
अप्सराएं उसे सुंदरता और सोमरस का जाम पिलाती हैं
सिक्कों की खन–खन उसके कानों में मिश्री घोलती हैं
सिगार का धुआं, सिगरेट की महक, सोमरस की रंगत
धीरे–धीरे व्यक्ति को सरूर होने लगता है
वह खुद को स्वर्ग में पाता है।
जीतने, जैकपोट की राह में वह और भी हारने लगता है।"

लेखिका ने अमरीका को जुआघर कहा है जहाँ जुआरी ओर पाने की चाह में सब कुछ लुटाता चला जाता है। पर अंत में वह खाली हाथ निराश लौटता है। इसी प्रकार की सच्चाई इन पंक्तियों से स्पष्ट होती है। जैसे–

''पहले कर्जा उठाकर कानूनी या गैरकानूनी
किसी भी ढंग से व्यक्ति जहाँ पहुँचता है

x x x x

फिर एक डालर का कई गुना होना
व्यक्ति को भरमा देता है
फिर व्यक्ति बच्चों के बेहतर भविष्य की चाह में
धीरे–धीरे बच्चों को भी हाथ से खो देता है।''

अपने घर–परिवार, देश एवं समाज के लिए कुछ भी करने की उसकी चाह अधूरी रह जाती है क्योंकि–

''गंगा में विसर्जन का सपना
हड़सन में बदल जाता है
भरा–भरा व्यक्ति
हर तरह से खाली हो जाता है।''

प्रवासी भारतीय जब इस धरती पर सपने लेकर आता है तो धीरे–धीरे उसके सपने बिखरने लगते हैं टूटने लगते हैं। वह आते ही इस देश का गुलाम बन जाता है गुलाम भारतीय की वेदना का निम्न पंक्तियों में देखिए–

''अमरीका! तुझे क्या कहूँ?
तूने मुझे धन दिया, आश्रय दिया... मज़दूर बनाकर
मुझे स्वीकारा... अपना नाम देकर
अपनी जमीन पर रखा
मेरा स्वाभिमान, सम्मान छीन, अपनी छाप लगाकर
तेरी जगमगाहट ने मेरे सपनों को बिखेर दिया है।''

अमरीका वासियों की यह सोच है कि उनके सारे काम आराम से हो सके और वे अपने व्यवसाय तथा अन्य कार्यों की तरफ दतचित्त होकर ध्यान दे सके इसलिए वे भारतीयों को गुलाम मानकर उन्हें सारी सुविधाए, उपलब्ध करवाते हैं क्योंकि वे जानते हैं भारतीयों के लिए परिवार महत्वपूर्ण हैं इसलिए सारी सुविधाएँ देने के पीछे उनकी यह विचारधारा काम करती है–

''गुलाम अगर स्वस्थ नहीं होंगे
तो कौन चलाएगा इनकी टैक्सियाँ,
बेचेगा अखबार, भरेगा पेट्रोल इनकी
कारों में, करेगा डेलियों में काम
बिछाएगा अस्पतालों में बिस्तर
उठाएगा गंदगी....।''

अपना स्वाभिमान जो हमारे लिए सबसे बड़ा महत्व रखता है और दूसरे शब्दों में जो हमारे व्यक्तित्व की पहचान है इस देश में पहुँचते ही खण्ड–खण्ड हो जाता है और भारतीय डॉक्टर, इंजीनियर तथा बड़े–बड़े घरों के लाल क्या–क्या काम करते हैं 'याही विधि राखे राम' ... कविता इसकी अभिव्यक्ति करती है–

''मैनहटन में केनाल स्ट्रीट की फुटपाथ पर
घड़ियाँ, पर्स बेचता वो श्यामवर्णी डाक्टर
आँखों पर चश्मा लगाए अधेड़ उम्र का
एक इंजीनियर, ढो रहा है 'कालडोर' सुपर मार्केट में सामान
और लगाए हैं आँखें ''टिप'' पर
इलैक्ट्रिक इंजीनियर बना है डिलिवरी मैन

खुशी से या दुःखी मन से
चला रहे हैं बड़े–बड़े रिटायर अफसर
डॉक्टर, बड़े–बड़े खानदानों के वारिस
इस शहर में टैक्सियाँ
गल्वस हाथों में डाल
धो रहे हैं रेस्टोरेन्टों में बर्तन।''

ग्रीन कार्ड धारी बनना इन भारतीयों की जहाँ प्राथमिकता रहती है अमरीका की सीटीजनशिप उन्हें इस देश की राजनीति में भाग लेने के लिए नहीं अपितु आराम से इस देश में आने जाने के लिए एवं अपने अन्य सम्बन्धियों को जहां लाने के लिए चाहिए। इसके लिए पहले आते ही कई हथकंडे अपनाते हैं। किसी अमरीकन स्त्री से चाहे वे उम्र में कितनी बड़ी हो, बच्चों वाली, तलाकशुदा या किसी भी स्त्री से शादी करवाते हैं, उनके घरों में गुलामों का सा जीवन व्यतीत करते हैं और फिर उस स्त्री के कारण जब ग्रीन कार्ड मिल जाता है तो उसे छोड़कर अपने लिए गुलाम स्त्री लाने भारत दौड़ते हैं क्योंकि वे जानते हैं–

''शादी तो अपने वतन में ही करनी है
क्योंकि अमरीका बुलाने की कीमत
उसी से वसूल हो सकती है।''

2.0 प्रवासी भारतीय नारी की दशा

नारी जो समाज की आधारशिला है जिसके विषय में मानक हिन्दी कोश में कहा गया है– ''विशेषतः वह स्त्री जिसमें लज्जा, सेवा, श्रद्धा, त्याग आदि गुणों की प्रधानता हो नारी है।'' भारतीय नारी इन सब गुणों में विभूषित है। पर भारत से अमरीका में बसने वाली भारतीय नारी की दशा भी कम चौंकने वाली नहीं है। वह इस धरती पर आकर दुहरी, तिहरी गुलामी झेलती हैं। बड़े दिवास्वप्न लेकर यहाँ पहुँचने वाली नारी के सपने एक–एक करते धराशायी हो जाते हैं उनकी इस स्थिति के लिए सर्वप्रथम भारतीय पुरुष ही जिम्मेदार हैं ग्रीन कार्ड पाने के बाद यह अधेड़ उम्र भारतीय गुलामी करने के लिए भारतीय युवतियों से विवाह करवाने भारत जाते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि भारतीय नारी ही ऐसी है जो सहर्ष गुलामी करेगी और फिर उफ तक भी न करेगी। इसलिए पैसों और सुविधाओं का आकर्षण पैदा करके भारतीय कंवारी कमसिन लड़कियों से विवाह करवा जहां अमरीका लाते हैं।''

सबसे पहले यह भारतीय पुरुष उम्र के अंतराल को मिटाना चाहते हैं। दो तीन वर्षों में दो–तीन बच्चे पैदा करके उस पर घर और बाहर का बोझ डालकर स्वयं स्वच्छंद घूमते हैं उन लड़कियों की दशा कैसी होती है ये ग्रीनकार्ड होल्डर' शीर्षक कविता बताती है–

''वे कमसिन लड़कियां सपने भी नहीं देख पातीं
कि कट जाते हैं पर
नादानी की उम्र लड़कियां
कम उम्र लड़कियां
घर के काम, उपरा–उपरी बच्चों का बोझ
कर डालता है उन्हें बूढ़ा, निस्तेज
इस देश में
घर और अस्पतालों में
सहती है पीड़ाएं अकेली, करती रहती हैं काम
चुपचाप, हो जाती है समय से पहले बूढ़ी
वे कम उम्र लड़कियां।''

इन प्रवासी भारतीय पुरुषों को तो स्थायी तौर पर नर्से चाहिए जो मनसा, वाचा, कर्मना इनकी सेवा कर सके। अत्याचार होगा तो वे विरोध भी नहीं करेगी क्योंकि उन्हें सामाजिक परम्पराओं और मान मर्यादा को निभाने वाले संस्कार इनमें कूट–कूट कर भरे हैं। इसके विषय में कवयित्री लिखती है–

''इन देसी अमरीकियों को
सेवा करने के लिए स्थायी तौर पर नर्सें चाहिए
जो इनकी शारीरिक और मानसिक सेवा के साथ–साथ
पैसों की बरसात, बच्चों की देखभाल और
मुफ्त में घर का रख–रखाव कर सकें
वक्त पर देसी खाना खिला सके और ... उफ तक न करे।।''

और इस कविता की ये पंक्तियां तो उनकी जीवन गाथा ही गा देती है–

''ये ब्याह कर भेजी गई नर्सें
यूँहि काम करते–करते
समय से पहले बूढ़ी हो जाती है
ये कभी बीमार नहीं पड़ती
टायनाटोल खाकर चलती रहती है।''

अमरीका पहुँचने पर उनकी सारी उमंगें तब समाप्त हो जाती हैं जब उस स्वच्छंद परिवेश में पली उनकी संतान भी उन्हें आऊटडेटड़ कहकर नकारती है। यह अस्पतालों में, एयरपोर्ट, बस स्टेंड, मेकडोनेल्ड, हाट बाजारों में काम करती है और जहां तक की बूढ़े–बुजुर्गों अमरीकियों की आया बनकर उनकी देखभाल भी करती हैं। यह उनकी संतान उन्हें केवल एक आया मानती है। तब वे भारत के दिनों को याद करती हुई व्यथित होती है। कवयित्री ने एक पंजाबन युवती की व्यथा को कविता में उतारते हुए लिखा है कि वह किसी मेक्डोनेल्ड में काम करती मिलती है उसे पहचानने के बाद लेखिका ने जब उसे पूछा कि अमरीका कैसा लग रहा है तो उत्तर में वो कहती है–

''वहाँ अपने घर, खेतों का काम
और मस्ती थी
यहाँ घर, नौकरी, थकावट और उदासी है
हरे–हरे डॉलर भी लाते नहीं मस्ती
करते जाओ काम इन्हें पाने के लिए
इसे ही अमरीका कहते हैं।''

बच्चों को पालने के बाद जब वो बड़े हो जाते हैं तो स्नेह शून्य इस देश में थोड़ी सी टोका–टाकी करने पर पुलिस की धमकी देते हैं। इसलिए वह भारतीय मां डरती ही रहती है न जाने कब उसके बच्चे उसे पुलिस के हवाले कर दे और उसे फोस्टर होम जाना पड़ेगा। इसी निराशा में वह निरन्तर टूटती रहती है और

''चक्की में दोनों तरफ से यहाँ पिसती हैं
जो न इधर की रहती है न उधर की।''

प्रवासी भारतीय स्त्री के मां–बाप भी अपनी बेटी के प्रति कोई यही कहते हैं कि बेटी तो स्वर्ग में है वे एक बार उनका विवाह करके उसकी खबर भी नहीं लेते पहले–पहले तो फोन करते हैं फिर वो भी छूट जाते हैं और अगर वहीं पर वह मर जाती है तो दूर का मामला कहकर चुप हो जाते हैं। इन माता–पिता को सजग करते लेखिका ने कहा है–

''तुम अपनी बेटियों को, इंसान भी नहीं समझते?
क्यों बेच देते हो अमरीका के नाम पर?
खरीददार अपने मुल्क में क्या कम हैं कि
बीच में सात समुंदर डाल देते हो।''

x x x

''बंद करो इन दागदार लोगों को अपनी
कमसिन लड़कियां देना
चौबीसों घंटे जो यहाँ पिसती रहती हैं।''

इस प्रकार कवयित्री ने भारतीय नारी की दशा को चित्रण करते हुए उसे चेतन करने का प्रयास भी किया है ताकि वह अपने भविष्य को सुधार सके और किसी के हाथ की कठपुतली न बने।

3.0 प्रवासी भारतीय संतान की दशा

अमरीका में रह रहे भारतीयों की संतान जो वहां पैदा होती है उनका जीवन–यापन अपने ढंग का हैं उनके जीवन में संबंधों (माता–पिता) का कोई महत्व नहीं है। संवेदना शून्य इन बच्चों को पांचवीं से ही 'काम' (सैक्स) शिक्षा दी जाती है। थोड़ा बड़ा होते ही ये लोग चार–चार, पाँच–पाँच दिन घर से गायब रहते हैं। इस संदर्भ में अमेरीका में पैदा हुई लड़कियां भी कम नहीं है। दो दिन गायब रहने के बाद जब वह वापिस आती हैं तो मां–बाप पूछे न कहां थे उन्हें समझाएं न इसलिए वह मां बाप को बेवस कर देती है और साथ ही पुलिस लेकर आती है या फिर आने से पहले ही पुलिस स्टेशन अपने माता–पिता के विरोध में रिपोर्ट लिखवाकर आती है। 'न इधर की, न उधर की' कविता की कुछ पंक्तियां उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है–

''यौन सुख को कम उम्र में मान लेती हैं जीवन आनंद
मान मर्यादा का कोई बंधन नहीं
छोटी उम्र में घूम लेती हैं लड़कों के साथ
अगर रात दो रात अकेले कहीं कर के लौटती हैं मौज
तो घर साथ लाती हैं पुलिस को
अपनी सुरक्षा के लिए लिखवा कर रिपोर्ट।''

भारतीयों की इस संतान ने अपनी मां का दर्द देखा है उनके माता–पिता का व्यवहार भी उनसे छुपा नहीं इसलिए न वह चुप रहना चाहती है न बंधना चाहती है न सहना चाहती है वे तो स्वतंत्र रहना चाहती है वे आधुनिक हो गई है वे समझती है कि भारत में स्त्री की स्थिति गाय से कम नहीं है उन्होंने अपनी माँ की विवशता को देखा है इसलिए अपने विषय में वह कहती है–

''मैं एक व्यक्ति हूँ, मेरी मर्जी जिसे चाहूँ मिलूँ
माँ बनूँ या गर्भपात करूँ
बच्चों को पिता का नाम दूँ या नहीं
मुझे अधिकार है अपना जीवन जीने का
अब मैं भारत लौट जाना नहीं चाहती
वहाँ पशु और औरत की कोई मर्जी नहीं होती
मैं औरत नहीं एक व्यक्ति हूँ
व्यक्ति की तरह जीना चाहती हूँ।''

4.0 प्रवासी भारतीयों की समस्याएं

अमरीका में रह रहे भारतीय अपने ढंग से कई समस्याओं से जूझते हैं। उन्हें एक गहरा अवसाद घेरे रहता है। प्रवासी की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए नथमल केड़िया लिखते हैं– ''मैं मानता हूँ प्रवासी मनुष्य के साथ प्रवास में चाहे और कोई जाता है या नहीं पर टीम या कसक जरूर जाती है। वह वहाँ यद्यपि परोक्ष रूप में उसके व्यक्तित्व में समाई रहती है पर यदा–कदा अपनी उपस्थिति जताती भी रहती है।'' आलोच्य कविता–संग्रह में भारतीयों की निम्नलिखित समस्याएं भी मिलती हैं–

4.1. अकेलेपन की समस्या

अमरीका हड्डियों में जम जाता है कविता संग्रह में कवयित्री में प्रवासी भारतीयों की विभिन्न समस्याओं का वर्णन किया है इनमें से अकेलेपन की समस्या प्रमुख है। अमरीका आ जाने पर भारतीय कुछ समय तक तो इस देश को समझता है पर जब तक उसे समझ आती है वह एक विचित्र अकेलेपन से घिर चुका होता है उसे लगता है कि इस अत्याधुनिक कहे जाने वाले देश में हर व्यक्ति भीड़ में चलता हुआ भी अकेला है किसी को किसी के दर्द की कोई परवाह ही नहीं है। जहाँ तक कि बच्चे भी उसे अकेले छोड़ गये हैं। ''कैसे चलेंगे अलाव?'' कविता में इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई है–

''मर जाता है यहाँ मान, सम्मान और स्वाभिमान
बन जाती है आदतें दुम हिलाने की
अपने ही बच्चों से डरने की
प्रार्थनाएं करने की
x x x
बड़ी मुश्किलों से बनाये अपने घर में भी
लगने लगता है डर अकेले रहते।''

4.2 द्वंद्वकी समस्या–

द्वंद्व एक ऐसी स्थिति है जो व्यक्ति को कोई निर्णय नहीं लेने देती। अमरीका आने वाले युवा भारतीय इस समस्या से जूझते भी दिखाई देते हैं क्योंकि अमरीका आने पर भी वो अपनी संस्कृति अपने मूल्यों को भूला नहीं पाते और जहां पैदा हुई उनकी संतान अमरीकी विचारों की बन जाती है ऐसी अवस्था में वो भारत लौट जाना चाहते है। पर सुविधाओं के वो मोह के कारण न तो इस देश को छोड़ पाते हैं फिर बच्चे इस देश में घुल मिल गये हैं। वे भी इस देश को नहीं छोड़ना चाहते इसलिए वह अपने आप को इस स्थिति में पाता है 'उडने को मुक्त, लेकिन पर काट लिए। इस त्रिशंकू में झूलते उसे अपना जीवन निरर्थक लगने लगता है। इस स्थिति में उसकी पीड़ा, दर्द, विवशता और लाचारी को इन शब्दों में व्यक्त करता है–

''मेरा मान सम्मान सब दाँव पर लग चुके हैं
मैं मर चुका हूँ
जो आग लेकर आया था... बुझ चुकी है
मुझे किसी से प्यार नहीं, विश्वास नहीं
शंकाशील निर्मोही हूँ।
कभी सोचता हूँ देश वापस चला जाऊँ
फिर सोचता हूँ एक पर्दा तो है
तूने मेरा सबकुछ छीन लिया,
उड़ने को मुक्त किया, लेकिन पर काट लिए।''

4.3 पहचान की समस्या–

अमरीका आने पर भारतीयों की अपनी पहचान खत्म हो जाती है वह भारत का वीर सपूत, इंजीनियर, डॉक्टर, वकील के रूप में जाना जाता था इस धरती पर पहुंचते ही वह एक प्रवासी मज़दूर बन जाता है जिसे एक सोशल सिक्युरिटी नम्बर से जाना जाता है। जहाँ आकर वह असुरक्षित अनुभव करता है। 'अमरीका तुझे क्या कहूँ' कविता की पंक्तियाँ द्रष्टव्य है–

''मेरा सम्मान, स्वाभिमान छीन, अपनी छाप लगाकर
तेरी जगमगाहट ने मेरे सपनों को बिखेर दिया है
आज मैं एक ग्रीनकार्ड हूँ, सोशल सिक्युरिटी नम्बर हूँ
तेरी धरती पर रहने के लिए मुक्त,
लेकिन मानसिक रूप से गुलाम हो चुका हूँ
क्योंकि इन्हें पाने के लिए मेरी काबलियत
मेरा केरियर, मेरा नाम, मान, सम्मान सब दाँव पर लग चुके हैं।''

इसी प्रकार संबंधों की समस्या, भाषा की समस्या का सामना भी भारतीयों को करना पड़ता है। इस कविता संग्रह में लेखिका ने भारतीयों का आशावादी दृष्टिकोण बनाएं रखने के लिए कहा है उनके द्वारा रचित इन कविताओं में जहाँ एक ओर अवसाद की स्थिति है तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के प्राथमिक गुणों की चर्चा भी यथास्थान की है लेखिका ने भौतिक एवं आध्यात्मिक गुणों में संतुलन पर बल दिया है और यह भी बताया है कि भारतीय संस्कृति महान है इसलिए उसमें मानव मात्र के लिए सुख, शांति, संतोष और आनन्द का संदेश है अपनी उत्तमता उत्कृष्ठता के लिए यह संस्कृति विश्व में जानी जाती है इसलिए इस संस्कृति की मशाल को जगाये रखने का संदेश देती कवयित्री लिखती है–

''हे मानव! सुविधाओं में असुविधा याद रखना
यहीं से जाग जाना...
संस्कृति की मशाल जगाये रखना
अमेरिका को हड्डियों में मत बसने देना
अमेरिका सुविधाएं देकर हड्डियों में जम जाता है।''

इस कविता संगह को पढ़कर डॉ. रमाशंकर द्विवेदी प्रतिक्रिया स्वरूप लिखते हैं–

''अमेरीका हड्डियों में जम जाता है'– उनका अमरीकी सभ्यता, संस्कृति और सब कुछ को निगल लेने वाली प्रवृत्ति के प्रति गहरा अवसाद पूर्ण अभिव्यंजना है। इस संग्रह की कविताएँ भौतिक सम्पदा अर्जन के लिए गये भारतीय किस कदर अपनी अस्मिता, अपना पृथक अस्तित्व, अपनी संस्कृति, अपनी परम्पराएँ भूलकर एक जड़ता, संवेदनहीनता, दासता की जंजीरों में जकड़ जाते हैं, उसका कलात्मक एहसास कराते हुए पाठकों को गहरे अवसाद में ढकेल देती हैं।''

निष्कर्षतः 'अमरीका हड्डियों में जम जाता है' अंजना संधीर का ऐसा कविता संग्रह है जिसमें अमरीका में बसे भारतीयों की प्रत्येक हरकत को कैनवस में उतारकर प्रस्तुत किया है। अमरीका को समझने के लिए ये कविताएं पारदर्शी तस्वीरें हैं। इसमें लेखिका ने भारत से आने वाले प्रवासियों के भय, कुंठा, संत्रास, विवशता, बेचारगी, एकाकीपन और उनके तनाव भरे जीवन को इस प्रकार चित्रित किया है कि इस संग्रह की कविताएँ पढ़ने के बाद भारतीयों की छटपटाहट अमरीका जाने वालों को अवश्य ही सचेत करेगी। दिवास्वप्न देखने वालों को सही रास्ता दिखाने का प्रयास है। यह कविता संग्रह एक ओर प्रवासी भारतीयों की आंतरिक पीड़ा और त्रासदी का दस्तावेज़ है तो दूसरी ओर उसे नवजीवन के लिए प्रेरित करती कविताएँ भी लेखिका के अदम्य साहस का परिचय देती है।

संदार्भ सूची

- अंजना संधीर, हड्डियों में जम जाता है, दिल्ली : प्रिय साहित्य सदन, 2011, अपनी बात, पृ. 34
- वही, पृ. 109.
- वही, पृ. 53.
- वही, पृ. 53.
- वही, पृ. 77.
- वही, पृ. 57.
- वही, पृ. 57.
- वही, पृ. 58.
- वही, पृ. 69.
- वही, पृ. 129.
- वही, पृ. 138–139.
- वही, पृ. 79.
- मानक हिन्दी कोश (खंड–1), रामचंद्र वर्मा (संपा.), इलाहाबाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 2006, पृ. 250.
- वही, पृ. 101.
- वही, पृ. 82.
- वही, पृ. 83.
- वही, पृ. 97.
- वही, पृ. 85.
- वही, पृ. 80.
- वही, पृ. 84.
- वही, पृ. 128.
- प्रवासी हस्तक्षर, अंजना संधीर (संपा.), अहमदाबार : पार्श्व पब्लिकेशन, 1997, पृ. 5.
- वही, पृ. 117.
- वही, पृ. 69.
- वही, पृ. 69.
- वही, पृ. 182.
- वही, पृ. 31.

❑❑❑

ध्वनिशास्त्र–एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. अनुभा बाजपेयी
प्रवक्ता – संस्कृत
भारतीय विद्याभवन कन्या महाविद्यालय, गोमती नगर, लखनऊ।

ध्वनिशास्त्र जैसा कि नाम से ही विदित होता है कि यह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। ध्वनि की व्युत्पत्ति है ध्वन्+इत्र ध्वनि और शास्त्र की व्युत्पत्ति है शिष्यतेऽनेन–शास्+ष्ट्रनत्र शास्त्र। ध्वनिशास्त्र कोई एक पुस्तक, ग्रन्थ या श्रुति नहीं है अपितु यह एक सम्प्रदाय है। जिसमें ध्वनि की विधिवत् विवेचना की गयी है। ध्वनि सम्प्रदाय के संस्थापक आचार्य आनन्दवर्धन हैं। ध्वनि के विषय में सर्वप्रथम लिखित साक्ष्य हमें आचार्य आनन्दवर्धन की ध्वन्यालोक में मिलते हैं। ध्वनि का उल्लेख ध्वनिकार से पूर्व ही विद्वद्जनों द्वारा किया जा चुका था। ऐसा ध्वनिकार का भी मानना है– ''ध्वनि काव्य की आत्मा है ऐसा मेरे पूर्ववर्ती आचार्यों का भी मानना है।''[1] यहां पूर्ववर्ती आचार्यों से तात्पर्य वैयाकरणों से है। अतः ध्वनि शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वैयाकरणों ने किया। ''ध्वनिकार के अनुसार प्रथम या सर्वप्रमुख विद्वान् वैयाकरण हैं क्योंकि व्याकरण ही समस्त विद्याओं का मूल है।''[2] ''विद्वान् वैयाकरण सुनाई देने वाले वर्णों के लिये ध्वनि शब्द का व्यवहार करते हैं।''[3] इन्हीं के मत का अनुसरण करने वाले आलंकारिकों तथा काव्यशास्त्रियों के सिद्धान्तों के साम्य का आधार 'स्फोटवाद' है। स्फोट शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है– ''जिससे अर्थ की प्रतीति हो वह स्फोट है।''[4] स्फोट द्वारा शब्द की पूर्णता का बोध होता है और साथ ही अर्थ का भी ज्ञान होता है।

ध्वनि विषयक मान्यताओं के विरोध में कुछ प्रतिक्रियायें भी थीं। ध्वनिकार ने ध्वन्यालोक में इन प्रतिक्रियाओं की तीन श्रेणियाँ विभक्त की हैं[5]–

1. अभाववादी जो ध्वनि का अभाव मानते थे– तस्याभावं जगदुरपरे।
2. भाक्तवादी जो ध्वनि का भक्ति अथवा लक्षणा में अन्तर्भाव मानते थे– भाक्तमाहुस्तमन्ये।
3. अनिर्वचनीयतावादी जो ध्वनि को एक अनिर्वचनीय तत्त्व मानते थे– केचिद् वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयम्।

ध्वनिकार ने इन प्रतिक्रियाओं का अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में यथा उचित युक्तियों से खण्डन किया, तत्पश्चात् ध्वनि का लक्षण अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में दिया कि ''जहां अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अभिधेय अर्थ को गौण बनाकर उस अर्थ (प्रतीयमान[6]) को प्रकाशित करते हैं उस काव्य विशेष को विद्वानों ने ध्वनि कहा है।''[7]

ध्वन्यालोक के निर्माण के पश्चात् ध्वनि सिद्धान्त का प्रबल विरोध उसमें पूर्व निर्दिष्ट विरोधों के बावजूद भी हुआ। ध्वनि मत के प्रथम विरोधी आचार्य थे प्रतिहारेन्दुराज। आचार्य प्रतिहारेन्दुराज ने ध्वनि को अलंकार के अन्तर्गत माना है। इनके गुरु मुकुलभट्ट 'अभिधावृत्तिमातृका' में ध्वनि को लक्षणा के अन्तर्गत स्वीकार करते थे, ध्वनि की नूतन उद्भावना उन्हें पसंद न आयी।''[8] ध्वनि का खण्डन इस प्रकार मुकुलभट्ट और प्रतिहारेन्दुराज द्वारा हुआ। किन्तु ऐसे भी आलंकारिक हुए जिन्होंने ध्वनि के खण्डन मात्र के उद्देश्य से अपने ग्रन्थ का निर्माण किया। वे प्रमुख थे–

1. आचार्य भट्टनायक
2. आचार्य कुन्तक
3. आचार्य महिमभट्ट

1. आचार्य भट्टनायक – इन्होंने 'हृदयदर्पण' नामक ग्रन्थ की रचना की थी जो अब तक प्राप्त नहीं हो सकी

है। इस ग्रन्थ के अस्तित्व का प्रमाण यत्र–तत्र ग्रन्थों में मिलता है। आचार्य महिमभट्ट अपने ग्रन्थ व्यक्तिविवेक में लिखते हैं कि 'दर्पणो हृदयदर्पणाख्यो ध्वनिध्वंसग्रन्थोऽपि'[9]। इस प्रकार हृदयदर्पण ध्वनिध्वंस के ही उद्देश्य से लिखा गया था, यह बात सिद्ध हो जाती है।

2. आचार्य कुन्तक– ध्वनिविरोधी आचार्यों में आचार्य कुन्तक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आचार्य कुन्तक ने ध्वनिमत के विरोध में वक्रोक्ति जीवित ग्रन्थ की रचना की थी। कुछ आचार्यों का मत है कि इन्होंने उपचार–वक्रता के अन्तर्गत समस्त ध्वनि प्रपंच को अन्तर्भूत कर लिया है[10]। अतः वक्रोक्ति जीवित के सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्वनि सम्प्रदाय के विरोध में एक प्रतिद्वन्द्वी सम्प्रदाय (वक्रोक्ति सम्प्रदाय) खड़ाकर देने पर भी आचार्य कुन्तक ने ध्वनि का तिरस्कार नहीं किया, अथवा नहीं कर सके।

3. आचार्य महिमभट्ट– आचार्य महिमभट्ट के अनुपम आलोचनात्मक ग्रन्थ 'व्यक्तिविवेक' का निर्माण ही ध्वनि सम्प्रदाय का विरोध है। इनके ग्रन्थ के निर्माण का मूल उद्देश्य 'व्यक्तिविवेक' की प्रथम कारिका[11] से ही विदित हो जाता है। इन्होंने ध्वनि के उदाहरणों को अनुमान द्वारा सिद्ध किया है। ध्वनि के लक्षण वाली कारिका की धज्जी–धज्जी उड़ाने का इन्होंने बहुत खूब ही प्रयत्न किया है। व्यक्तिविवेककार ने ध्वनि लक्षण वाली कारिका में दस दोष[12] निकाल दिए। साथ ही ध्वनिलक्षण का उनके अनुसार जो सही अर्थ निकलता है, उसे प्रस्तुत किया–

''जहाँ वाच्य अथवा उससे अनुमित अर्थ किसी दूसरे अर्थ को किसी भी सम्बन्ध से प्रकाशित करे– वह 'काव्यानुमिति' कही गई है।''[13]

उल्लिखित वर्णन से हमें ध्वनिविरोधी आचार्यों के विचारों के विषय में पता चलता है। ध्वनिविरोधी प्रमुख आचार्यों ने ध्वनिसिद्धान्त का विरोध किया तथा ध्वनिवादी आचार्यों ने भी इनके विरोधों का बड़े ही रोचक ढंग से तर्क दिया है।

ध्वनिवादी आचार्य–

1. आचार्य आनन्दवर्धन–ः भारतीय काव्यशास्त्र में ध्वनि सिद्धान्त बड़ा ही उपयोगी सिद्वहुआ है। ध्वनि सिद्धान्त की प्राण–प्रतिष्ठा आनन्दवर्धनाचार्य द्वारा सम्पन्न की गयी। ध्वनि के स्वरूप विश्लेषण के लिए ध्वनिकार ने ध्वनि की निम्नलिखित परिभाषा दी है–

''यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपार्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।''[14]

अर्थात् जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अभिधेय अर्थ को गौण करके उस अर्थ को प्रकाशित करते हैं, उस काव्यविशेष को विद्वानों ने ध्वनि कहा है। उपर्युक्त कारिका की ध्वनिकार आगे व्याख्या करते हुए लिखते हैं–

''यत्रार्थो वाच्यविशेषः, वाचकविशेषः शब्दो वा तमर्थ
व्यङ्क्तः स काव्यविशेषो ध्वनिरिति।।''[15]

अर्थात् जहाँ विशिष्ट वाच्यरूप अर्थ तथा विशिष्ट वाचकरूप शब्द उस अर्थ को प्रकाशित करते हैं, वह काव्यविशेष ध्वनि कहलाता है। काव्य के दो अर्थ होते हैं– 1. वाच्यार्थ और 2. प्रतीयमान अर्थ।

वाच्यार्थ आलंकारिक भाषा में प्रकट किया जाता है तथा सर्वबोधगम्य होता है। प्रतीयमान अर्थ किसी सुन्दरी के लावण्य के समान होता है जो शरीर तथा आभूषणों से सर्वथा भिन्न है। ध्वनिकार के शब्दों में–

''प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।।''[16]

अर्थात् प्रतीयमान कुछ और ही है जो रमणियों के प्रसिद्ध अवयवों से भिन्न लावण्य के समान महाकवियों की सूक्तियों में अलग ही भासित होता है। अतः यह विशेष अर्थ प्रतिभाजन्य स्वादु है, वाच्य से अतिरिक्त कुछ दूसरी

वस्तु प्रतीयमान है।

यह प्रतीयमान अर्थ ही ध्वनि है एवं यही काव्य की आत्मा है जिस काव्य में यही प्रतिमान अर्थ नहीं होता, वह काव्य श्रेष्ठ काव्य नहीं कहा जा सकता अपितु वह अधम काव्य की कोटि में परिगणित होता है। इसी हेतु अनेक प्रबल प्रमाणों के द्वारा यह प्रमाणित किया गया है कि ध्वनि ही काव्य की आत्मा है।

2. आचार्य अभिनवगुप्त–ः ''सर्वत्र शब्दार्थयोरुभयाऽपि ध्वननव्यापारः ....। स (काव्यविशेषः) इति। अर्थो वा शब्दो वा, व्यापारो वा। अर्थोऽपि वाच्यो वा ध्वनतीति शब्दोऽप्येवं व्यङ्ग्यो वा ध्वन्यते इति। व्यापारो वा शब्दार्थयोर्ध्वननमिति। कारिकया तु प्राधान्येन समुदाय एव वाच्य मुख्यतयः ध्वनिरिति प्रतिपादितम्।''[17]

अर्थात् सर्वत्र शब्द अर्थ दोनों का ही ध्वननव्यापार होता है। .... यह 'काव्यविशेषः' का अर्थ है– अर्थ या शब्द या व्यापार। वाच्य अर्थ भी ध्वनन करता है और शब्द भी इसी प्रकार व्यङ्ग्य (अर्थ) भी ध्वनित होता है अथवा शब्द अर्थ का व्यापार भी ध्वनन है। इस प्रकार कारिका के द्वारा प्रधानतया समुदाय शब्द अर्थवाच्य (व्यंजक) अर्थ और व्यङ्ग्य अर्थ तथा शब्द और अर्थ का व्यापार ही ध्वनि है।

आचार्य अभिनवगुप्त के कथन का तात्पर्य यह है कि ध्वनि की संज्ञा केवल काव्य को ही नहीं प्रदान की गई है वरन् शब्द, अर्थ तथा शब्द–अर्थ के व्यापार इन सबको 'ध्वनि' कहते हैं।

3. आचार्य मम्मट–ः ध्वनि मार्ग के प्रमुख आचार्यों में से आचार्य मम्मट का नाम प्रमुख है। ये ही वे महनीयाचार्य है, जिन्होंने ध्वनि–विरोधियों का पूर्णतः खण्डन किया है। इसी कारण लोग इन्हें 'ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्य' की उपाधि ा से समलंकृत करते हैं यद्यपि ध्वनिकार आनन्दवर्धन ध्वनि तत्त्व की स्थापना, स्वरूपविवेचन एवं उसकी स्वतंत्र सत्ता सिद्ध कर काव्यमर्मज्ञों को उससे पूर्णतः अभिज्ञ करा चुके थे, किन्तु उनके बाद व्यक्तिविवेककार आचार्य महिमभट्ट तथा वक्रोक्तिजीवितकार आचार्य कुन्तक प्रभृति आचार्यों ने ध्वनि की सत्ता में पुनः संशय प्रकट किया। ऐसे समय में प्रादुर्भूत होकर आचार्य मम्मट ने इन ध्वनि विरोधियों का पुनः खण्डन किया और ध्वनि की ऐकान्तिक सत्ता सिद्ध की। आचार्य मम्मट द्वारा निर्मित काव्यप्रकाश ध्वनि सम्प्रदाय का प्रमाणिक ग्रन्थ है। इसका आदर प्रस्थान ग्रन्थ की तरह किया जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि का विस्तृत विवेचन किया है। वे ध्वनिमार्ग के पक्के समर्थक थे। इसके लिए इनका काव्य सम्बन्धी वर्गीकरण देखा जा सकता है। इन्होंने काव्य को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है– उत्तम काव्य, मध्यम काव्य, और अधम काव्य। उत्तम काव्य की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि जब वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ या प्रतीयमान अर्थ अधिक चमत्कारपूर्ण होता है तब वह उत्तम काव्य कहलाता है–

''इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।''[18]

'इदं' यह पद यहाँ पर काव्य का बोधक है। 'बुध' अर्थात् वैयाकरणों ने प्रधानभूत 'स्फोट' रूप व्यङ्ग्य की अभिव्यक्ति कराने में समर्थ शब्द के लिए 'ध्वनि' इस पद का प्रयोग किया था। उसके बाद उनके मत का अनुसरण करने वाले अन्य आचार्यों ने भी वाच्य को गौण बना देने वाले व्यङ्ग्य की अभिव्यक्ति कराने में समर्थ शब्दशक्ति तथा अर्थशक्ति दोनों के लिए ध्वनि पद का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया।[19] आचार्य मम्मट ने सर्वत्र ही ध्वनिकार आनन्दवर्धन के मतों का समादर किया है और उन्हीं को अपनाकर काव्य के सभी महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का विवेचन किया है। इस प्रकार ध्वनिमार्गीय आचार्यों की परम्परा में आचार्य मम्मट का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है।

निष्कर्षतः इन ध्वनि विरोधी प्रमुख आचार्यों के अतिरिक्त भी कई आचार्यों ने ध्वनिमत का विरोध किया। इतने विरोधों के पश्चात् आचार्य अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक पर 'लोचन' नाम की टीका लिखकर ध्वनिमत को पुनर्स्थापित किया तथा आचार्य मम्मट ने भी अपने ग्रन्थ काव्यप्रकाश में ध्वनि को उत्तम काव्य की संज्ञा देते हुए इसे प्रमाणित कर दिया। ध्वनि सम्बन्ध में उल्लिखित जो बातें कही गयी हैं वे केवल ध्वनिकार की कपोलकल्पना मात्र नहीं है, अपितु विद्वानों का भी यही विचार है।[20] व्याकरण को जानने वाले जो विशिष्ट एवं प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् हैं, वे

सुनाई पड़ने वाले वर्णों को ध्वनि की संज्ञा प्रदान करते हैं। उन्हीं के मत का अनुसरण कर काव्य तत्त्व के सहृदय साहित्यिकों ने भी व्यंग्य अर्थ से युक्त काव्य को ध्वनि की संज्ञा प्रदान की है।

ध्वनिकार का कथन है कि–कलुषित बुद्धि के प्रभाव से प्रभावित होकर ध्वनिवादियों की आलोचना नहीं करनी चाहिए। इस प्रकार उन्होंने ध्वनि की सत्ता सिद्ध की है एवं उसके स्वरूप का विवेचन किया है।[21]

सन्दर्भ सूची

1. काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वः। (ध्वन्यालोक–1/1)
2. प्रथमे कि विद्वांसो वैयाकरणाः व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम्। (ध्वन्यालोक–1/13 की वृत्ति)
3. ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति। (ध्वन्यालोक–1/13 की वृत्ति)
4. स्फुटति अर्थः यस्मात् स स्फोटः।
5. 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः' समाम्नातपूर्व–
स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।
केचिद् वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयम्
तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम्।। (ध्वन्यालोक–1/1)
6. प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।। (ध्वन्यालोक–1/4)
7. यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।। (ध्वन्यालोक–1/13)
8. 'लक्षणामार्गावगाहित्वं तु ध्वनेः सहृदयैर्नूतनतयोपवर्णितस्य विद्यत इति दिशमुन्मीलयितुमिदमत्रोक्तम्।' (अभिधावृत्तिमातृका)
9. व्यक्तिविवेक 1/4 की वृत्ति
10. उपचारवक्रतादिभिः समस्तो ध्वनिप्रपंचः स्वीकृतः। (अलंकार सर्वस्व–रुय्यक)
11. अनुमानेऽन्तर्भावं सर्वस्यैव ध्वनेः प्रकाशयितुम्।
व्यक्तिविवेकं कुरुते प्रणम्य महिमा परां वाचम्।।
(अर्थात् सभी प्रकार की ध्वनियों का अनुमान में अन्तर्भाव दिखलाने के लिए महिमा (नामक आचार्य) परा वाणी को प्रणाम करके व्यक्तिविवेक रचता है।)
12. अर्थस्य विशिष्टत्वं शब्दः सविशेषणस्तदः पुंस्त्वम्।
द्विवचनवाशब्दौ च व्यक्तिर्ध्वनिनाम काव्यवैशिष्ट्यम्।।
वचन०च कथनकर्तुः कथिता ध्वनिलक्ष्मणीति दश दोषाः।
ये त्वन्ये तद्भेदप्रभेदलक्षणगता न ते गणिताः।। (व्यक्तिविवेक–1/23–24)
13. वाच्यस्तदनुमितो वा यत्रोर्थोऽर्थान्तरं प्रकाशयति।
सम्बन्धतः कुतश्चित् सा काव्यानुमितिरित्युक्ता।। (व्यक्तिविवेक–1/25)
14. ध्वन्यालोक–1/13 श्लोक
15. ध्वन्यालोक–1/13 श्लोक की वृत्ति
16. ध्वन्यालोक–1/4 श्लोक
17. ध्वन्यालोक लोचन 1/13 श्लोक की लोचन टीका
18. काव्यप्रकाश–1/4 श्लोक
19. इदमिति काव्यम्। बुधैर्वैयाकरणैः प्रधानभूतस्फोटरूपव्यङ्ग्यव्य०जकस्य शब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहारः कृतः। ततस्तन्मतानुसारिभिरन्यैरपि न्यग्भावितवाच्यव्यङ्ग्यव्य०जनक्षमस्य शब्दार्थयुगलस्य। (काव्यप्रकाश–1/सूत्र–2 की वृत्ति)
20. 'सूरिभिः कथितः' इति विद्वदुपज्ञेयमुक्तिः, न तु यथाकथाश्चित् प्रवृत्तेति प्रतिपाद्यते। (ध्वन्यालोक–1/13 की वृत्ति)
21. न च तेषु कथ०चिदीर्ष्याकलुषितशेमुषीकत्वमाविष्करणीयम्। (ध्वन्यालोक–1/13 की वृत्ति)

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

अवधी के अमरग्रन्थ श्री रामचरितमानस में जीवनमूल्य

डॉ0 (श्रीमती) रानी अग्रवाल
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर

डॉ0 (श्रीमती) अलका द्विवेदी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर

रामकाव्य अवधी भाषा की विशेष विभूति है । रामकाव्य परम्परा के कवियों ने अधिकांशतः अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम अवधी को ही रखा हे । इसका मुख्य कारण है कि अवधी भगवान राम के जन्म स्थान – अयोध्या की भाषा होने के कारण राम भक्तों को विशेष रूप से पुलकित और आकर्षित करना, मध्यकाल का आविर्भाव होने तक अवधी भाषा का साहित्यिक रूप धारण करना तथा अवधी में चरित काव्य के प्रणयन की अद्‌भुत क्षमता का होना । अतः तत्कालीन परिस्थितियों में राम–चरित्र के उद्‌घाटन की महती आवश्यकता के कारण रामभक्त कवियों ने अवधी भाषा का अवलम्बन लिया । कतिपय इन्हीं कारणों से हिन्दी के अमरकवि गोस्वामी तुलसीराम जी ने अवधी में "श्रीरामचरितमानस" महाकाव्य की रचना की ।

"तुलसीदास भारतीय जनमानस के कवि थे और यही कारण है कि रामचरितमानस के प्रति श्रद्धा एवं आदर का भाव शताब्दियों से भाषा एवं क्षेत्रीयता से निरपेक्ष केवल भारत में नहीं देश देशान्तर तक अक्षुण्ण है । मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम की कथा के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदास ने भारतीय जन–जीवन के विविध पक्षों का अत्यन्त सहज, उदान्त एवं भावपूर्ण शैली में निरूपण किया है, जिससे हमारा समाज युग–युगान्तर तक अनुप्राणित होता रहेगा ।"

श्री विष्णुकान्त शास्त्री
पूर्व राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

पश्चिम की भोगवादी संस्कृति और भौतिकवादी जीवन दर्शन की मार से आहत भारतीय समाज पर रामकथा का लेप समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है । लोगों में नैतिक आदर्शों तथा उच्च जीवन मूल्यों के प्रति आस्था स्थापित करने में यह ग्रन्थ अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ है । इस लोक व्याप्ति पर तुलसीराम जी को अत्यन्त भरोसा था । उन्हें विश्वास था कि रामकथा के धागे में अपनी उक्तियों को पिरोकर लोकजीवन का संदेश जन–जन तक पहुॅचा सकेंगे –

"जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग ।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर, शोभा अति अनुराग ।।" – बालकाण्ड दोहा।।

रामचरितमानस के माध्यम से यह संदेश मिलता है कि समाज व परिवार सुखपूर्वूक एवं शान्ति के साथ संचालित किये जाने से ही जीवन में आलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है । इसीलिये अनुशासन, स्नेह तथा सम्मान करने की भावना को सुसंस्कारित मान्यता के रूप में इनके अनुपालन की आवश्यकता पर बल दिया गया । मानस की यह चौपाई प्रत्येक परिवार के लिये अनुकरणीय है –

"प्रातः काल उठि कै रघुनाथा ।
मातु पिता गुर नावहिं माथा ।।" – बालकाण्ड दोहा – 205

माता, पिता तथा गुरू व अन्य सम्मानित उम्र में बड़े लोगों के नित्य प्रति चरण–स्पर्श करके उनका आर्शीवाद लेकर दिन का प्रारम्भ करने की शिक्षा प्राप्त होती है यह प्रत्येक बच्चे के लिये अनुकरणीय है ।

गुरू का सम्मान हमें सदैव हदय से करना चाहियें जो गुरू हमारे अज्ञान रूपी अंधकार को दूर कर ज्ञान के

प्रकाश से हमारे दिव्य चक्षुओं को खोलता है उसका सम्मान न करने पर ईश्वर द्वारा दण्डित किया जा सकता है क्योंकि –

"जे सठ गुर सन इरिषा करहीं ।
कौरव नरक कोटि जुग परहीं ।।
त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा ।
अयुत जनम भरि पावहिं पीर ।।" – उत्तरकाण्ड – 107 क

रामचरितमानस में संयुक्त परिवार की महत्ता भी विशेष रूप से प्रतिपादित की गयी है । आपसी प्रेम, सद्भाव, शील, सहिष्णुता, भाईचारा, त्याग और समर्पण का भाव पूर्ण रूप से इस ग्रन्थ में दृष्टिगत होता है । सीता का अपनी बहनों के प्रति प्रेम, राजा जनक का प्रजा के प्रति, अपने भाई भावज के प्रति, राजा दशरथ का अपने गुरू, प्रजा व परिवार के प्रति, राजा की रानियों में आपसी प्रेम व सद्भाव, राम का अपनी माताओं, प्रजा व भाइयों के प्रति हो, यहॉ तक कि पक्षियों के प्रति भी अगाध स्नेह का भाव है । यही श्रद्धा, प्रेम व त्याग को भाव से यदि हमारा समाज आज पुष्पित व पोषित हो तो ये बढ़ते जघन्य अपराध नारी के प्रति अत्याचार, लूट खसोट, डकैती, चोरी आदि की घटनायें स्वतः समाप्त हो जायेंगी । एक नारी की मर्यादा की रक्षा के लिये अपने प्राणों का त्याग कर देने वाले जटायु नाम के पक्षी ने जो शिक्षा दी है । वह अवर्णनीय है । परन्तु आवश्यकता है उस शिक्षा को ग्रहण करने, चिन्तन करने व पालन करने की है ।

मानस में यह संदेश है – व्यक्ति का जीवन एक उद्देश्यपूर्ण यात्रा है । जन्म से मरण तक की यात्रा या जन्म मरण के चक्र को क्षणभंगुर तन, क्षुद्र मन और विराट आत्मा ही प्रवर्तित करती है । तन और मन के वामन रूप का परित्याग कर विराट रूप से तादात्म्य करना जीवन का उत्कर्ष है । मानस की आस्था है कि आत्म तत्व चौरासी लक्ष विविध शरीरों में भ्रमण करता रहता है । बड़े भाग्य से मानव तन प्राप्त होता है । ईश्वर अत्यन्त करूणा कर नर देह प्रदान करते है –

"कबहुॅक करि करूना नर देही ।
देत ईस बिनु हेतु सनेही ।।" – उत्तरकाण्ड – 44

यह देह देवताओं के लिये भी दुर्लभ है, यह शरीर साधन है, मोक्ष का द्वार है ऐसा माना गया है । यह नर तन प्राप्त कर जो लोग विषय भोग में लिप्त हो जाते है वे अमृत को त्यागकर विष ग्रहण करते है मनुष्य देह धारण करने का फल यही कि समस्त कामनाओं से मुक्ति पाकर भगवान की भक्ति की जाये । नर तन प्राप्त कर जो लोग भगवान की भक्ति नहीं करते वे भाग्यहीन है ।

तुलसीदास जी का यह ग्रन्थ जाति–पॉति एवं छुआछूत की भावना का कदापि समर्थन नहीं करता । स्वयं कवि ने कहा है –

"जाति पॉति कुल धर्म्र बड़ाई ।
धन बल परिजन गुन चतुराई ।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा ।
बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।।" अरण्यकाण्ड – 35

निषादराज, केवट, भीलवंशी शबरी आदि सभी के साथ भगवान का प्रेमपूर्ण व्यवहार इस बात का प्रमाण है कि ऊॅच–नीच, जाति–पॉति, कुल आदि के भेदभाव से परे होकर प्रेमपूर्ण भक्ति का संदेश इस ग्रन्थ से मिलता है।

अंगद जी और रावण के संवाद में चौहद दोष दुर्गणों का वर्णन है –

"कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा । अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ।।

सदा रोगबस संतत क्रोधी । विष्णु बिमुख श्रुति संत विरोधी ।।
तनु पोषक निंदक अघ खानी । जीवत सब सम चौदह प्रानी ।।"

लंकाकाण्ड – 31(2–4)

अर्थात (1) वाममार्गी, (2) कामी, (3) कंजूस, (4) अत्यन्त मूढ़, (5) अति दरिद्री, (6) अत्यन्त बदनाम, (7) अत्यधिक बूढ़ा, (8) नित्य का रोगी, (9) निरन्तर क्रोध युक्त रहने वाला, (10) भगवान विष्णु से विमुख रहने वाला, (11) वेद और संतो का विरोधी, (12) केवल अपने ही शरीर का पोषण करने वाला, (13) दूसरों की निन्दा करने वाला, (14) पाप की खान (महापापी) – इन चौदह दोष दुर्गुणों से युक्त मनुष्य जीते हुए भी मरे हुए के ही समान होते है । अतः स्वस्थ्य जीवनचर्या के संदर्भ में ये सर्वथा त्याज्य है ।

अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहियें, क्योंकि इससे पुण्य घटते है – इस जीवनोपयोगी सूत्र को इस भॉति मानस में निरूपित किया गया है –

"छीजहिं निसिचर दिन अरू राती ।
निज मुख कहें सुकृत जेहि भॉती ।।" लंकाकाण्ड – 72(3)

किसी कार्य में लाभ होने से उसके प्रति लोभ की स्थिति बनी रहती है । रावण के सिरों की बार–बार वृद्धि को तुलसीराम जी ने इसी रूप में व्यक्त किया है –

"काटत बढहिं सीस समुदाई ।
जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ।।" लंकाकाण्ड – 102(1)

अतः इस दोष से बचने का प्रयास करना चाहियें ।

मानस में एक नहीं अनेक ऐसे स्थल है जहाँ पर वचनों की प्रतिबद्धता का सम्मान होते हुए देखा जा सकता है । राजा दशरथ द्वारा वचनों को पूर्ण करने की प्रतिज्ञा आज ऐसा कल्पना के रूप में ही मानी जायेगी । हमारे शासन, प्रशासन, प्रबन्धतंत्र, कर्मचारियों एवं नागरिकों से भी यही अपेक्षा की जाती है कि वचनबद्धता में किसी प्रकार का विश्वासघात न करें ।

प्रजातंत्र में स्वस्थ विरोध का होना आवश्यक माना जाता है । परामर्श देते समय विरोध अथवा समर्थन की भावना न रखते हुए लोकहित के लिये उपयुक्त परामर्श देना चाहियें । ऐसे परामर्शदाताओं से ही राष्ट्र का कल्याण सम्भव हो सकता है । रावण के विनाश का एक कारण यह भी था कि उचित परामर्श को अस्वीकार कर देना । जबकि राम जी परामर्श स्वीकार करते समय उचित एवं अनुचित का निर्णय अपने विवेक से जनहित को ध्यान में रखकर करते थे । आज के शासकों, प्रशासकों, प्रबन्धकों व परिवारजनों को जितनी प्रेरणादायक जीवनोपयोगी सामग्री, तुलसीदास जी ने इस ग्रन्थ में उपलब्ध करा दी है वह अन्य किसी ग्रन्थ में सुलभ नहीं है ।

प्रतिस्थापित सामाजिक मान्यताओं का अपना महत्व होता है किन्तु दहेज, जिसे मानस में 'दाइज' कहा गया था यह प्रथा जो अभिशाप के रूप में परिणित हो चुकी है उसमें परिवर्तन की आवश्यकता है। इसे दण्डनीय अपराध माना तो गया है पर इस कुप्रथा को आज हम रोक नहीं पा रहे है । पहले दाइज आर्शीवाद की भावना से दिया जाता था अब लिया जाता है, देने के लिये बाध्य किया जाता है जो सर्वथा अनुचित है । आज आवश्यकता है रामचरितमानस के अध्ययन से प्राचीन युग के समान सामाजिक जागृति लाने की, युवक युवतियों में चेतना उत्पन्न करने की तथा माता पिता एवं अन्य वृद्ध लोगों को शिक्षित करने की ।

आज से चार सौ साल पहले स्त्री शिक्षा सम्बन्धी जो जानकारी रामचरितमानस में उपलब्ध होती है वह अतिशय प्रेरणादायक है । नारी जागृति तथा नारी विकास पर ही भावी संतानों का भविष्य निर्भर होता है । शबरी और अनुसुइया जी के नारी धर्म से सम्बन्धित उपदेश देशकाल एवं स्थिति को ध्यान में रखकर पुनः विचार करने योग्य है ।

प्रबन्धन के क्षेत्र में सम्पूर्ण मानस ही प्रेरणादायक है – विशेष रूप से "सुन्दरकाण्ड" जो एक प्रकाश स्तम्भ के समान पथ प्रदर्शन करता है। सुन्दरकाण्ड से हमें यह शिक्षा प्राप्त होती है कि किसी भी समस्या का सामाधान करने के लिये दृढ़ इच्छाशक्ति, पूर्ण उत्साह, सच्ची निष्ठा एवं समर्पण की भावना से प्रयास किया जाये तो सफलता स्वतः मिल जाती है। श्री हनुमान जी द्वारा विशाल सागर को पार कर जाना, शत्रु की नगरी में प्रवेश करके अपना लक्ष्य प्राप्त करना तथा समुद्र में सेतु की रचना इत्यादि ऐसे उदाहरण है जो प्रेरणा देते है कि हमें लक्ष्य प्राप्ति के सम्भावित व्यवधानों तथा विपत्तियों का पूर्वानुमान कर समाधान के लिये आपदा प्रबन्धन कर लेना चाहियें । हमारे जीवन में मित्र का बहुत महत्व है । अच्छे मित्र की संगति हमारे जीवन का निर्माण कर सकती है और बुरी संगति जीवन विनष्ट कर सकती है । इसी पहचान के लिये राम जी ने सुग्रीव का मार्गदर्शन किया है जो आज के युग में अत्यन्त प्रासंगिक है –

"आगें कह मृदु बचन बनाई ।
पाछें अनहित मन कुटिलाई ।।
जा कर चित अहि गति सम भाई ।
अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई ।।" किष्किन्धा काण्ड – 7

इसी संदर्भ में कवि ने यह भी परामर्श दिया है कि –

"सेवक सठ नृप कृपन कुनारी ।
कपटी मित्र सूल सम चारी ।।" किष्किन्धा काण्ड – 7

रामचरितमानस में लंका की सुरक्षा व्यवस्था हमारें देश की वर्तमान सुरक्षा व्यवस्था को चुनौती देती है । उससे हमे प्रेरणा मिलती है कि हमें भी संतोषप्रद सुरक्षा का खाका तैयार करना चाहियें । लंका में चारों ओर गहरी खाइयॉ, बड़ी–बड़ी तोपों के लिये भी अभेघ चाहरदीवारी की तुलना में हमारे देश की सीमा पर बनाई गई सुरक्षा दीवारें नगण्य है । लंका नगरी के प्रवेश द्वार पर लंकिनी जैसा सुरक्षा कर्मचारी की सावधानीपूर्वक तीव्र दृष्टि ने मच्छर के समान रूप धारण किये हनुमान जी तक को रोक लिया था । सुरक्षा की दृष्टि से लंकिनी की सजगता क्या आज प्रेरणादायी नहीं है । निश्चित रूप से है ।

गाँधी जी के सपनों का भारत भी वही था जिसका चित्र तुलसीदास ने रामराज्य वर्णन के प्रसंग में अंकित किया है । रामराज्य का अर्थ है – समाज में व्याप्त वैषम्य की समाप्ति, सवधर्मनिष्ठता, भय, शोक व रोग से विमुक्ति, सद्भाव व प्रेम का प्रसार तथा उदारता और परोपकार जैसे सुखद मानवीय गुणों की अभिवृद्धि –

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहिं व्यापा ।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति ।।
,,

अल्प मृत्यु नहिं कबनऊ पीरा । सब सुन्दर सब विरूज सरीरा ।।
नहिं दरिद्र कोऊ दुखी न दीना । नहिं कोऊ अबुध न लच्छन हीना ।।
,,

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ।। उत्तरकाण्ड–21

इस आदर्श रामराज्य की प्राप्ति के लिये आज शासक को श्रीराम के दिखाये मार्ग का अनुसरण करना होगा – त्याग प्रधान राजनीति का मार्ग अपनाना होगा ।

तुलसी का रामचरितमानस – अर्थ एवं परमार्थ साधन को सिद्धिदाता है । उन्होंने ऐसे व्यवहार दर्शन का प्रतिपादन किया है जो जग मंगल एवं जन मंगल में समर्थ है । मानव जीवन तुलसी द्वारा प्रतिपादित व्यवहार से

ही सार्थक होता है । उन्होंने सुख दुख तथा धर्म अधर्म की जीवनोपयोगी कितनी सरल उद्घोषणा की है –

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं

''''''''''''''''''''''

पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं

''''''''''''''''''''

परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ी सम नहिं अधमाई ।।

''

पर्यावरण के प्रति प्रेम त्रेता युग का स्वाभाविक प्रेम था जो अयोध्या, मिथिला, पम्पासर, लंका तथा किष्किन्धा सभी स्थानों पर स्वाभाविक रूप से देखने को मिलता है । शुद्ध जल, शुद्ध वायु, विभिन्न प्रकार की औषधियॉ वनस्पतियाँ तथा फूल–फलों का उत्पादन, यज्ञ तथा हवन आदि से वातावरण को सुगन्धित तथा पवित्र रखना, वर्षा को नियमित रखने के लिये दण्डक वन तथा मिथिला की अमराई इत्यादि पर्यावरण के प्रति प्रेम के ऐसे उत्कृष्ट उदाहरण है जो आज के युग के लिये प्रेरणास्त्रोत है ।

तुलसीकृत श्री रामचरितमानस ऐसा अमरग्रन्थ है जिसकी भाषा अत्यन्त सरल, सहज व प्रवाहमय है । शायद ही कोई हिन्दू ऐसा होगा जिसको इसकी कतिपय चौपाईयाँ या दोहे कण्ठस्थ न हों । इसकी एक–एक चौपाई सिद्ध मंत्र के सामान है जिसके निश्चित जाप से कार्य सम्पर्ण होते है और लक्ष्य की प्राप्ति होती है । "नानापुराण निगमागमसम्मत" के अनुसार सन्त तुलसीदास ने उसमें भक्ति रहस्य तथा जीवमात्र के समस्त कष्ट मिटाने हेतु ऐसे तत्व भर दिये है जो अचूक रामबाण औषधि के समान है । भारत में ही नहीं, बाहर के देशों – मारिशस, फिजी, टिनिडाड, सूरीनाम, गयाना आदि में भी यह कृति समादृत है । लोकनायक श्रीरामचन्द्र तथा अन्य पात्रों के पावन चरित्र व्यक्ति, समष्टि, परिवार और राष्ट्र के जीवन–दर्शक है, पथ–पदर्शक है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्री रामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीराम, गीताप्रेस गोरखपुर
2. राम कथा विश्राम, पं0 रमापति पाण्डेय
3. रामचरितमानस की सांस्कृतिक मीमांसा, डॉ. सोमनाथ शुक्ल
4. मानस एक दृष्टि अनेक, श्री रमेश चन्द्र त्रिवेदी
5. रामचरितमानस और रामचन्द्रिका तुलनात्मक अध्ययन, डॉ0 जगदीश नारायण अग्रवाल
6. रामचरितमानस में लोक वार्ता, चन्द्रभान
7. गोस्वामी तुलसीदास समाज के पथ प्रदर्शक, बद्रीनारायण तिवारी
8. मानस–शंका–समाधान, जयरामदास श्दीनश्
9. मानस भक्तिमणि (परमपूज्य मुरारीबापू की वाशिंगटन में हुई रामकथा)
10. मानस प्रेम सूत्र (संत श्री मुरारीबापू की रमणरेती, वृन्दावनधाम में हुई राम कथा)
11. कल्याण, गीता प्रेस, गोरखपुर दिसम्बर, 2001 ई.
12. कल्याण, गीता प्रेस, गोरखपुर नवम्बर, 2005 ई.
13. कल्याण, गीता प्रेस, गोरखपुर जुलाई, 2010 ई.
14. कल्याण, श्रीरामभक्ति अंक गीता प्रेस, गोरखपुर
15. कल्याण, श्रीरामभक्ति अंक गीता प्रेस, गोरखपुर

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा 'लगता नहीं दिल मेरा' में संघर्ष और सशक्तीकरण

डॉ0 निशा भदौरिया
असि. प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग
चौ. चरण सिंह पी.जी. कालेज, हेंवरा, इटावा

कृष्णा अग्निहोत्री का सम्पूर्ण जीवन संघर्ष और फिर उससे उत्पन्न साहस और सशक्तीकरण की कथा रहा है, आत्मकथा के माध्यम से कृष्णा ने समाज और साहित्य के क्षेत्र में चल रहा अत्याचार, शोषण और स्वार्थ राजनीति का पर्दाफाश किया है। नारी जीवन का हर पहलू आपकी आत्मकथा 'लगता नहीं दिल मेरा' का विषय बना है ।

कृष्णा ने अपनी आत्मकथा में स्त्री–जीवन के हर पक्ष को झकझोर कर उसकी व्यथा एवं सघर्ष को वाणी देने का प्रयत्न किया, अपने इस प्रयत्न में कृष्णा सफल रही हैं उनकी सम्पूर्ण आत्मकथा अनेक संघर्षों और शोषण के रास्तों से गुजरती हुई सशक्तीकरण और सफलता की सीढ़ियों तक पहुँचती है ।

कृष्णा अग्निहोत्री ने प्रारम्भ से ही अपनी पराधीन और बेवश स्थिति को समझा और उसके विरूद्ध आवाज उठाई। पति के अत्याचारों के विरुद्ध खड़ी हुई और पति को छोड़ने का निर्णय लिया। भारतीय समाज में आज भी परित्यक्ता नारी की स्थिति शोचनीय मानी जाती है । ऐसे समाज में कृष्णा का यह विद्रोह उन्हें सामान्य से विशिष्टि में लाता है, वह लिखती हैं, ''वह लड़की जो मायके आना नहीं चाहती थी, जिसे पति के घर में ही घुट जाना था, अचानक कैसे लौटने पर आमादा हुई......मुझे छाँह से भागने के लिए कितने तीरों–गाली की चुभन सहनी पड़ी, उन घावों की रिसन किसी अन्य को तो अनुभव नहीं थी, मैं मायके आ गई बिना पूर्व सूचना के ससुराल से ही लड़की की अरथी निकलने वाली परम्परा को तोड़कर मैं खण्डवा आई ।''[1]

कृष्णा अग्निहोत्री जीवन पर्यन्त सामाजिक, पारिवारिक कठिनाइयों से संघर्ष करती रहीं । समय ने उन्हें विद्रोही बना दिया था, जीवन उनके लिए किसी युद्धभूमि से कम नहीं था। वह अनुभव करती हैं, ''गरम रेत पर चलकर प्रतिष्ठा की हरियाली तक मैं कष्टों से पहुँची हूँ और पुनः मुझ पर ऊपर से मेरा कोई रिश्तेदार बेवजह खौलता पानी डाले तो कैसी मुझे तड़पन होगी ?''

जीवन की इस लड़ाई में युद्धरत होने का नसीब यदि मैंने पाया तो माँ दुर्गा ने मुझे कलम पकड़ा कर इन अनुभवों–अहसासों....भावनाओं संघर्षों को साकार करने की प्रेरणा भी तो दी...है...तभी तो आज में लिख रही हूँ ।''[2]

स्त्री जन्म से वर्जनाओं चक्रव्यूह में फाँस दी जाती है, ये सामाजिक वर्जनाऐं जीवन पर्यन्त उसे चैन नहीं लेने देती। सामान्य स्त्रियां तो इन्हें वर्जनाऐं मानती ही नहीं, उनके लिए तो यह जीवन जीने का तरीका ही है, पर संवेदनशील और सजग महिलाओं के लिए निरन्तर इनसे टकराव ही जीवन होता है ।

कृष्णा ने पहले पति की प्रताड़नाओं के कारण अपने पहले पति को छोड़ दिया, दूसरी शादी की श्रीकान्त जोग से । दूसरा पति भी अय्याश और परस्त्री गामी था। वह सोचता, ''कि अब तो इस औरत के दूसरी शादी द्वारा पर कट गये, यदि यह मुझे छोड़ेगी तो दुनिया इस पर थूकेगी, समाज जीने नहीं देगा । इसलिए यह प्रत्येक बात सहकर भी उन्हें नहीं छोड़ेगी । मैं बार–बार उन्हें सचेत कर रही थी कि यदि बेवफा शराबी, चरित्रहीन, झूठा पति सहना होता तो पहले ही को क्यों छोड़ती ।कुऐं से निकल खाई में रहूँगी।''[3]

अन्ततः कृष्णा ने अपने दूसरे पति को छोड़ दिया । सम्पूर्ण जीवन इन्हीं सामाजिक वर्जनाओं से संघर्ष

करते–करते व्यतीत हो जाना है, कहीं चैन नहीं मिलता। कृष्णा रोती है, थकती है, रूकती है फिर से आगे बढ़ने के लिए और इसी संघर्ष से नया रास्ता ढूँढ़ लेती है।

विष बुझी नजरें, आग के दरिया में ढकेल देने के लिए हर क्षण तत्पर अपनेपन के लेबल लगाए बेगाने की डंस लेने वाली तीखी नजरें कड़वाहट ही तो भरती हैं, और उसी के साथ जीने की मजबूरी कितनी असहाय स्थिति. ....मैं आज जीवन के इस मोड़ तक आते–आते भी अपने आपका विश्लेषण करके आत्मिक शांति का अनुभव करती हूँ कि जहाँ तक बना मैंने अपने आपको धोकाधड़ी, नोंच खसोट, कपट स्वार्थ से बचाने का प्रयास किया है ।''[4] पारिवारिक अवहेलना भी कृष्णा की जिन्दगी का सत्य था, बचपन से माँ के द्वारा, विवाह के बाद पति के द्वारा अवहेलना ने उन्हें तोड़ दिया ।

कृष्णा के पिता ने कृष्णा को ससुराल में रहने को कहा तो कृष्णा ने आक्रोश व्यक्त करते हुये कहा, ''मैं वहाँ नहीं जाऊँगी ।'' धीर गम्भीर व तेज आवाज में उत्तर देने वाली मुझे उन्होंने घूरा । यह स्त्री उनकी सीधी, सर झुका डांट व उपदेश सहने वाली लड़की नहीं थी, यह घूँघट काढ़े ससुराल में डांट–मार गाली खाने वाली सीधी लड़की नहीं थी न जाने कब एक साहसी स्त्री उस सबके बीच से जन्म ले रही थी । मुझे तो लगता है कि मैं स्वयं ही ध्वस्त मिट्टी से प्रारब्ध द्वारा एक नई स्त्री को निर्मित करते देख रही थी ।''[5]

पति के द्वारा अपमानित और लांक्षित होकर कृष्णा आलोक की ओर आकर्षित होती है। उनके जीवन में अग्निहोत्री के बाद जोग साहब का पदार्पण भी कृष्णा के आक्रोश का प्रतिफल है कृष्णा भी हार नहीं मानती और लगातार कुछ अच्छे की आकांक्षा में आगे बढ़ती है ।

कृष्णा के दामाद राहुल ने भी कभी कृष्णा का माँ की तरह सम्मान नहीं किया । कृष्णा अपनी इस मनोदशा को अभिव्यक्त करती हुई लिखती हैं, मैं उनके बीच में नहीं इस पर भी राहुल ने मेरे ही इस शहर में मुझे अपमानित किया और यह कहा कि मैं डायवोर्सी हूँ इसीलिए बेटी को भी पति से दूर करना चाहती हूँ, बड़ी कठिनाई से अपमान व तिरस्कार को भुलाने का प्रयास करती हूँ ।''[6]

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज है इसीलिए यहाँ स्त्रियों को दोयम दर्जे का प्राणी माना जाता है । पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बेटा होता है, सामान्यतः बेटियों को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं माना जाता। कृष्णा के पिता ने भी इस परम्परा का निर्वाहन किया । कृष्णा के पति ने कृष्णा को छोड़ दिया वह अपनी बेटी के साथ पिता के घर रहने आई जहाँ पर उन्हें अपमानित होना पड़ा, पर उन्होंने इसके विरूद्ध आवाज उठाई।

कृष्णा के भाई हरी ने कृष्णा से कहा, ''तुम इस घर में नहीं रह सकती'' इस पर कृष्णा ने कहा, ''क्यों नहीं रह सकती ?मैं तो यहीं रहूँगी । इसलिए नहीं रह सकती कि तुमने घर को मेरे नाम नहीं किया ।'' वह क्रोध से कांप रहा था।'' अच्छा ही किया न, अब तो मेरा अधिकार है– मैं यहीं रहूँगी.......देखती हूँ तुम मुझे घर से कैसे निकालते हो ।''[7] कृष्णा घर से निकल जाती है, पर दूसरे घर को (वह भी पैतृक घर था) नहीं छोड़ती । इस घटना से उनके समाज में भी खलबली हो जाती है वह लिखती हैं, ''मेरे निर्वासन ने इस कस्बे के बहुत से व्यक्तियों को इतना जागरूक तो बना दिया कि उन्होंने बेटों के अतिरिक्त बेटियों को भी जायदाद में भागीदार बना दी, चाचा जी ने बेटों के अतिरिक्त अपनी तीनों बेटियों को जायदाद का हिस्सा बसीयत में दिया।[8]

कृष्णा की जब दोनों पतियों से नहीं बनी, तो उन्हें लगा कि जीवन में आर्थिक स्वालम्बन बहुत आवश्यक है, इसके बिना स्त्री की स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं । कृष्णा के ऊपर उनकी बेटी की भी जिम्मेदारी थी । उन्हें अपनी गृहस्थी का बोझ स्वयं उठाना था । ससुराल वापस भी नहीं जाना था, ''मैं कानपुर के वातावरण में वापस न जाने के लिए युद्धरत थी। संकल्प था कि आत्मनिर्भर रहकर ही जीना है ।''[9]

कृष्णा आत्मनिर्भर बनती है महाविद्यालय में व्याख्याता बन जाती है और उनका साहित्य उन्हें प्रसिद्धि देता है वह एक साहित्यकार के रूप में भी समाज में जानी जाती है। उनके कई उपन्यास और कहानियां प्रकाशित होती

हैं । ''मेरे साहित्य का मूल्यांकन होगा, हो रहा है, होता रहेगा और वह बढ़िया होगा, क्योंकि वह न मानसिक ऐयाशी है न कामर्शियल है और न महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु अवसरों को भुनाकर लिखा गया है। वह संघर्ष–साधना परिश्रम व प्रतिभा का समन्वय है जिसे नकारना असंभव है । हाँ गलत समय की धूल तो उस पर डाली ही जा सकती है ।''[10]

कृष्णा अग्निहोत्री समय के साथ एक सशक्त महिला बनीं। उन्होंने अपनी सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक स्थिति को मजबूत किया, समाज में प्रसिद्ध भी पाई ।

परिवार से भी व्यक्ति सशक्त होता है, माता–पिता भाई–बहिन पति आदि भी मनुष्य को भावनात्मक रूप से शक्तिशाली बनाते हैं । कृष्णा को यह सौभाग्य अपनी बहिन चन्दो के द्वारा मिला । ''उसने जैसे ही अग्निहोत्री का स्वच्छंद अराजक रूप देखा... मुझे पढ़ाई की ओर प्रेरित कर दिया । यदि चन्दो वहां न होती तो मैं आत्मनिर्भर नहीं बन सकती थी मेरे पढ़ने में चन्दो ही प्रेरणा थी....उसे इतनी रात पढ़ता देख मैं भी पढ़ाई में जुट जाती ।''[11]

इस तरह कभी बेटी कभी बहिन और कभी देवर ने कृष्णा को सबलता प्रदान की। देवर धर्मदेव भी कृष्णा के एक अच्छे मित्र और शुभ–चिन्तक रहे, बेटी की ममता ने उन्हें निरन्तर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया पिता ने बचपन से ही कृष्णा को बेहद प्यार और दुलार दिया उसकी छोटी–छोटी इच्छाओं को पूरा किया । पिता ने उनकी अभिरूचियों को विकसित करने के लिए कई मास्टर घर में बुला लिये,''अपनी–सी स्वरूपवान बेटी के लिए महत्वाकांक्षी ताई जी ने एक सुखद भविष्य देखा था, वे चाहते थे कि यह बेटी किसी विशिष्ट क्षेत्र में बहुत नाम कमाये । हाँ बचपन में पिता ने मास्टरों की टीम ही घर में भेज दी, आ गई छः मास्टरों की टीम–

गाना सिखाने
सितार दिलरूबा सिखाने
पढ़ाने
टेलरिंग सिखाने

हारमोनियम सिखाने...सुबह जल्दी उठ मुझे गाने का अभ्यास करना ही पड़ता । मैं बाध्य थी गला तक न खुलता परन्तु माँ–पिता अपने–अपने तरीकों से मुझे सफल इन्सान बनाने के लिए प्रयत्नशील थे।''[12] बचपन से ही सशक्तीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी, जिसमें आगे आने वाले कृष्णा के जीवन पर अमिट प्रभाव डाला। कृष्णा अग्निहोत्री ने अपने जीवन में जितना संघर्ष किया उतनी ही वह और सशक्त होकर उभरी। उनके संघर्ष ने उन्हें सामाजिक समझ प्रदान की। परिणामस्वरूप उनका सामाजिक सशक्तीकरण हुआ। वह अपने लेखन द्वारा समाज में पहचानी गई, ''मेरे जीवन में जितना अधिक भाग, दौड, हार शिकस्त थी। उतना ही मेरा साहित्यक लेखन सशक्त बुलंद हो ऊँचाई तक बढ़ रहा था। मेरे पाँच कहानी संग्रह एवं चार उपन्यास पूरे हो गये थे और मैं प्रत्येक पत्रिका में छप रही थी, यह कहना अतिश्योक्ति पूर्ण नही कि अब मैं भारतीय स्तर की लेखिका घोषित थी।''[13]

कृष्णा अग्निहोत्री ने अपने जीवन में यह अनुभव किया कि यद्यपि समाज उनके प्रति क्रूर रहा, उन्हें कई–कई बार कुचलने का प्रयास किया गया, लेकिन इन्हीं क्रियाओं ने लिखने के लिए प्रेरित किया, उनकी सभी कहानियों और उपन्यास सामाजिक छल प्रपंच से जन्म लेते हैं, ''मनुष्यता के प्रति सजग रहने वाली मुझे अन्दर तक इस समाज व शहर ने कुचला है । मैं तबभी इस शहर की माटी के प्रति, समाज के प्रति विनम्र कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने ही तो मेरे साहित्यक पौधे को पनपाया है ।''[14] कृष्णा महसूस करती है कि मेरी जड़ें इतनी कमजोर नहीं हैं कि सरलता से उखड़ जायें ।''[15]

कृष्णा समय के साथ और मजबूत हो चुकी थी उनकी बेटी उनके जीवन की नई आस थी, बेटी की ममता उन्हें जीवन के पास ले आती यद्यपि कई बार मरने की इच्छा होती है ।'' मरना तो कोई उद्‌देश्य ही नहीं मेरी प्यारी

दुलारी बिटिया की बाहें मेरे गले का हार थी, प्रेरणा थी, जीने का बहाना थी। मैं रोती रही वह आंसू पोंछती रही। और मैं किसी अदृश्य शक्ति के बल पर जीने लगी, चलने लगी दौड़ने लगी।[16] इस प्रकार निरन्तर संघर्षरत रहीं कृष्णा एक सफल साहित्यकार के रूप में हिन्दी साहित्य में पहचानी गई।

सन्दर्भ संकेत

1. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 150
2. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 150
3. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 253
4. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 324
5. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 155
6. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 271
7. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 194
8. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 66
9. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 169
10. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 294
11. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 110
12. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 28
13. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 255
14. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 325
15. कृष्णा अग्निहोत्री, लगता नही दिल मेरा, पृष्ठ – 323

❑❑

किसी भी रचनाकार की रचनाधर्मिता की परीक्षा कलात्मकता, सामाजिक उपादेयता और प्रासंगिकता की दृष्टि से होती है इसके साथ ही कृतिकार के रूपगत, शैलीगत, भावगत और शिल्पगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से भी; क्योंकि एक श्रेष्ठ रचनाकार अपने जीवन जगत के प्रत्यावलोकन में रत होकर उन विविध जागतिक और सामाजिक दृश्यों–परिदृश्यों, घटनाओं, भाव–वैविध्यों और यथार्थ–सत्यों को अभिव्यक्त करता है जिसके जुड़ाव–घटाव, टूटन–घुटन में युग सत्यों का निर्माण होता है। साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, दीपशिखा भी है क्योंकि रचनाकार बाह्य परिवेश से जो अनुभव संचित करता है उसे वह अपने संचित ज्ञान की निकष पर चढ़ाकर जो निष्कर्ष निर्णीत करता है वे निष्कर्ष ही उनका चिन्तन बन जाते हैं। एक सफल कृतिकार देश, काल, वातावरण की गति और कला को ठुकराता हुआ ऐसा मौलिक सृजन करता है। जिसकी सामाजिक उपादेयता, सामाजिक सौद्देश्यता तथा मानव जीवन के कल्याण एवं विकास के लिये उसका अनुप्रयोग कितना है को दृष्टि में रखकर अपना निष्कर्ष निकालता है ऐसी ही रचनाओं की प्रासंगिकता बनी रहती है। इनकी विशिष्टता में ही इसे कालजयिता अर्थ–प्राप्ति की स्वीकृति भी दी जाती है क्योंकि इनका अनुभव रूपी ज्ञान किसी भी दशा में सत्यों एवं तथ्यों के आधार पर शत–प्रतिशत मौलिक होता है। डॉ0 रामकमल राय का सृजन इन्हीं सरोकारों के बीच से होकर गुजरता है।

✍ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

रूप सिंह चन्देल के उपन्यासों में राष्ट्रीय चेतना

डॉ0 ममता पाण्डेय
प्रवक्ता हिन्दी
स्व0 दिलीप कुमार स्मारक महाविद्यालय, कोड़ा जहानाबाद, फतेहपुर (उ.प्र.)

कथाकार रूप सिंह चन्देल का सम्पूर्ण कथा–साहित्य ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित है लेकिन इन्होंने राष्ट्रीय विचारधारा को भी महत्व देते हुए ऐसे साहित्य का भी सृजन किया है जिसमें राष्ट्रीय चेतना की भावना परिलक्षित होती है। रूप सिंह चेन्दल का उपन्यास खुदीराम बोस ऐतिहासिक तथ्यो पर आधारित जीवनी परक उपन्यास है जिसमें मात्रभूमि पर मर मिटने वाले अमर क्रान्तिकारी खुदीराम बोस के जीवन के मार्मिक प्रसंगो की चर्चा कर देश भक्ति के लिए जागृत किया गया है। इनके एक अन्य उपन्यास 'शहर गवाह है' की प्रारम्भिक कथा में देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत क्रान्तिकारी गतिविधियों को प्रस्तुत किया गया है। स्वतंत्रता संघर्ष की जड़े तो उपन्यास में दूर तक फैली हुई है परन्तु उपन्यास अन्त में पारिवारिक संघर्ष का रूप ले लेता है।

स्वाधीनता संग्राम पर आधारित रूप सिंह चन्देल का खुदीराम बोस उपन्यास एक ऐसे क्रान्तिकारी की जीवन गाथा व्यक्त करता है जो अट्ठारह वर्ष की अल्पायु में ही फांसी के फंदे पर झूल गये थे। इन्होने देश के प्रति अपने कर्तब्यों का पूरी तरह से निर्वाह किया और कठोर प्रण लेने मे पीछे नहीं रहें। ऐसे देशभक्त की शहादत को भला कौन देशप्रेमी विस्मृत कर सकता है। देश की स्वतंत्रता के लिए ली गयी किसी भी प्रतिज्ञा से उन्होने मुंह नही मोड़ा–

''दादा यदि महाराणा प्रताप ने प्रतिज्ञा भंग कर दी होती तो अकबर से उन्हें क्या खतरा होता लेकिन तब देश राजा मानसिंह की भांति राणाप्रताप पर भी थूकता। मै भी आजाद देश में ही जूते पहनूंगा और तब तक किसी भी कटीले पथरीले मार्ग को नंगे पैर पर करूंगा।''[1]

देश की स्वतंत्रता की लड़ाई में खुदीराम बोस पहले ऐसे क्रान्तिकारी थे जिन्हें फांसी की सजा सुनाने से पहले मुकदमा चलाया गया था खुदीराम बोस हसंते–हसते यह गीत गाते हुए फांसी के फंदे पर झूल गए थे।

''हांसी हांसी चोड़बे फांसी, देखबे जगतवासी।
एक बार बिदाय दे मां, आमि घूरे आसी।।''

अर्थात दुनिया देखेगी कि मै हंसते–हंसते फांसी के फंदे पर चढ़ जाउंगा। हे भारत माता मुझे विदा दो। मै बार बार तुम्हारी गोद में जन्म लूंगा।

अंग्रेजी दस्ता से मुक्ति पाने के लिए खुदीराम बोस लूट–पट जैसे अनुचित कार्य करने में भी पीछे नहीं रहें। उनका मानना था कि अपने संगठन के कोश को मजबूत करने के लिए ब्रिटिश सरकार का जो खजाना हम लूट रहे है।उसे उन्होने हमारे देश से ही लूटा है। अल्पायु में ही खुदीराम बोस ने अपने कन्धो पर देश की स्वतंत्रता का भार लाद लिया और स्वाधीनता संग्राम की गतिविधियों पर बढ चढ़कर हिस्सा भी लिया। स्वतंत्रता के मार्ग मे आने वाली बडी से बडी बाधाओं को इन्होने हंसते हुए पार किया और अंग्रेजो के साथ किए गए गलत कार्यो को भी उचित ही ठहराया है।

''मै मानता हूँ कि लूटपाट करना गलत काम है किन्तु हम किसी व्यक्ति विशेष को नहीं लूटेंगे। मै तो उस अत्याचारी सरकार का 'राजकोश' लूटने की बात कर रहा हूं। जो हमारे देशवासियों के अधिकारो को छीनकर और देश की सम्पत्ति लूटकर अपनी तिजोरी भर रही है। अगर ब्रिटेन के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि एक जमाने मे वहाँ कीचड़ और मच्छरों का साम्रज्य था और प्रत्येक दृष्टि से वह देश पिछड़ा हुआ था। आज दुनियां

के तमाम देशों को लूटकर वह दुनिया का सिरमौर बना हुआ है। ऐसी सरकार का 'राजकोश' लूटना मेरी दृष्टि में अनुचित कार्य न होगा और तब यह और भी नहीं जब कि हम उस धन का उपयोग मात्रभूमि की मुक्ति के लिए करेंगें।"[2]

वास्तव में ऐसी महान विचार धारा वाला इतनी अल्पायु का बालक साधारण व्यक्ति तो नही हो सकता है। चन्देल जी ने महान क्रान्तिकारियों की सूची में से खुदीराम बोस को अपनी विषय वस्तु चुनकर, हमारा ध्यान एक ऐसे देशभक्त की ओर आकृष्ट कराया है जिसे पराधीन रहकर गृहस्थ जीवन स्वीकारना और अध्ययनरत रहना निरर्थक लगा और उन्होने गृह त्याग दिया। खुदीराम बोस ने गृह त्यागने के बाद देखा कि जब देश के गरीब और साधारण जनों को मेहनत करने के बावजूद रोटी, कपडा, और मकान नहीं मिल रहा है और अंग्रेजी सरकार द्वारा अपमानित हो रहे है तो उनका मन ब्रिटिस शासन को उखाड़ फेकने के लिए तड़प उठा। खुदीराम के जीवन का प्रत्येक प्रसंग देशभक्ति की भावना से भरा हुआ है।

अंग्रेज सरकार मे भला भारतीय लोगों को गुलाम बनाए रखने का साहस कहाँ था यदि उन्हें गद्दारों का साथ न मिलता। खुदीराम बोस की गिरफ्तारी के बाद भी सरकार इतनी डरी हुई थी कि जीवन के अन्तिम क्षणों में उन्हें उनकी बहन तक से न मिलने दिया था। खुदीराम बोस की गिरफ्तारी में शामिल गद्दार को धिक्कारते हुए, खुदीराम ने कहा था–

"अंग्रेजो के प्रति वफादार तुम जैसे देशद्रोही को इतिहास कभी माफ नहीं करेगा बनर्जी मुझे गिरफ्तारी करवाकर तुझे कुछ नहीं मिलेगा। हम तो कफन बांधकर ही घर से निकले थे लेकिन अपने भाई के साथ गद्दारी करने वाले तुम जैसे लोग अपनी नजरों मे ही गिर जाते हो और जीवित दुनियां को मुंह दिखाने लायक नहीं रहते।"[3]

खुदीराम बोस जीवन के अन्तिम क्षणों तक देश की स्वतंत्रता के लिए चिन्तित रहें। उन्होने देश के लिए बलिदान होना उत्साहपूर्वक स्वीकार कर लिया था। वे अपनी फांसी से बिल्कुल भी चिन्तित न थे बल्कि उन्हें यह चिन्ता थी कि देश की गतिविधियां, उनके जाने के बाद जारी रहेंगी या नहीं–

"खुदीराम देश की आजादी के विषय में अपनी चिन्ता बसु से व्यक्त करते रहे थे और उनसे केवल इतना ही कहा था कि वे सत्येन्द्रनाथ तक यह संदेश अवश्य पहँचा दे कि वे क्रान्तिकारी गतिविधियों को तीव्र गति से चलाते रहे वह सब तक तक जारी रहना चाहिए जब तक देश आजाद न हो जाए भले ही सैकड़ों खुदीरामों को कुर्बानी देनी पडें।"[4]

रूप सिंह चेन्देल के 'शहर गवाह है' उपन्यास के आधे से अधिक भाग में राष्ट्रीय चेतना दिखायी देती है हालांकि स्वतंत्रता संघर्ष को लेकर प्रारम्भ हुआ उपन्यास अन्तिम पड़ाव मे पारिवारिक संघर्ष का रूप ले लेता है। चन्देल जी ने अपने उपन्यास के पात्र राधिकारमण को तत्कालीन क्रान्तिकारियों के साथ गतिविधियों मे जोड़कर वास्तविकता का परिचय दिया है जो कि पढ़ाई के दौरान भगत सिंह, चन्द्रशेखर, व हलधर जैसे क्रान्तिकारियों के सम्पर्क मे आ जाता है। राधिकारमण ने क्रान्तिकारी गतिविधियों मे भाग लेते हुये अपनी पढ़ाई पूरी की लेकिन राधिका को साथियों सहित जेल हो जाने से संगठन बिखर गया। राधिका पर पारिवारिक दायित्व भी आ गया और फिर वे पहले की तरह न मिल सकें।

उपन्यास में देश की स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन कर रहे गरम और नरम दोनो दलों की गतिविधियों को प्रस्तुत किया गया है क्रान्तिकारी हिंसात्मक रूख अपनाते हुए संघर्ष कर रहे थे तो अहिंसा वादी गांधी जी का संगठन जूलूस, नारे व धरना प्रदर्शन से अपना विरोध प्रकट कर रहे थे। क्रान्तिकारी अप्रत्यक्ष रूप से घटनाओं को अंजाम देते थे। जबकि अंहिंसावादी सामने आकर प्रदर्शन करते थे और अंगेजो की क्रूरता का शिकार होते थे–

"कानपुर मे आये दिन हड़ताले हो रही थी। मजदूरो के जूलूस पर पुलिस बल प्रयोग करती थी उनके नेताओं को गिफ्तार कर रही थी। अंग्रेजो की समस्या चौतरफा थी। वह मजदूरों के आन्दोलन से उतना परेशान नही थी

क्योंकि वह जानती थी कि बल प्रयोग द्वारा वह हड़ताले समाप्त करवा लेगी। वह गाँधी से भी उतना परेशान न थी। उसकी परेशानी क्रान्तिकारियो को लेकर थी। 9 अगस्त 1925 को काकोरी काण्ड हो चुका था। चन्द्रशेखर को छोड़कर लगभग सभी क्रान्तिकारी गिरफ्तार हो चुके थे। मुकदमों का नाटक हुआ था बिस्मिल, रोशन सिंह राजेन्द्र लाहिड़ी और अशफाक उल्ला खां को फांसी और शेष को कठोर सजाएं दी गयी थी। लेकिन उससे क्रान्तिकारियों का मनोबल नहीं टूटा था।''[5]

अंग्रेजी क्रान्तिकारियों की हिंसात्मक प्रतिक्रिया से बौखला जाते थे और उसका बदला अहिंसावादी आंदोलन कारियों से लेते थे क्योंकि क्रान्तिकारी तो जल्द पकड़ में आते नही थे। अंग्रेजो के कठोर व्यवहार का मूल्य साइमन कमीशन का विरोध कर रहे लाला लाजपत राय को अपनी जान देकर चुकाना पड़ा–

''साइमन कमीशन का देश के सभी क्षेत्रों में प्रबल विरोध किया गया था। 30 अक्टूबर 1928 को साइमन कमीशन लाहौर पहुंचा था। जन समुदाय ने काले झण्डे से उसका स्वागत किया था प्रबल विरोध से अंग्रेज अधिकारी बौखला उठे थे। जुलूस पर लाठियां बरसाई गयी। लाला लाजपत राय जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। पुलिस की लाठी से वह बुरी तरह घायल हुए और 19 नवम्बर 1928 को उनकी मृत्यु हो गयी।'' [6]

अंग्रेज सहजता से देश त्यागना नही चाहते थे इसलिए देशवासियों को संगठित होते देखकर साम्प्रदायिक दंगे करवाने लगे थे इस प्रकार अंग्रेजो की चाल सफल हो जाती थी सभी लोग वास्तविकता जानते हुए भी आपस मे संघर्ष करते रहते थे और अंग्रेज उसका लाभ उठाते थे।

उपन्यास के अन्त में भले ही कथा पारिवारिक संघर्ष की ओर मुड़ गयी लेकिन उसके पहले तक उपन्यास में अंग्रेजी दास्ता से मुक्ति पाने के लिए देशभक्तों द्वारा अपनायी गयी हिंसात्मक व अहिंसावादी गतिविधियों को ही दर्शाया गया है।

रूपसिंह चन्देल ने 'खुदीराम बोस' और 'शहर गवाह है' उपन्यास के द्वारा अपनी राष्ट्रीय भावना को पूर्णतयः व्यक्त करने का प्रयास किया है और उन्हें सफलता भी मिली है। इस प्रकार की भावना स्वयं मे उत्पन्न करने के पश्चात ही लेख के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना को आधार बनाकर साहित्य सृजन करने वाले लेखको की श्रृंखला में एक नाम रूप सिंह चन्देल का भी लिया जा सकता है हालांकि इन्होंने ग्रामीण पृष्ठ भूमि को ही आधार बनाया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. खुदीराम बोस (उपन्यास)–रूपसिंह चन्देल–पृष्ठ–89
2. खुदीराम बोस (उपन्यास)–रूपसिंह चन्देल–पृष्ठ–109
3. खुदीराम बोस (उपन्यास)–रूपसिंह चन्देल–पृष्ठ–136
4. खुदीराम बोस (उपन्यास)–रूपसिंह चन्देल–पृष्ठ–149
5. शहर गवाह है (उपन्यास)–रूपसिंह चन्देल–पृष्ठ–79
6. शहर गवाह है (उपन्यास)–रूपसिंह चन्देल–पृष्ठ–104

❑❑

'सुख क्या है ?' निबन्ध में व्यक्त बालकृष्ण भट्ट के विचारों का अवलोकन

डॉ0 नीतू सिंह
प्रवक्ता हिन्दी
कुँ महेश सिंह, जगताप सिंह स्मारक महाविद्यालय, बक्तूखेड़ा, अजगैन, उन्नाव (उ0प्र0)

डॉ0 लक्ष्मी सागर बार्ष्णेय ने अपने शोध प्रबन्ध आधुनिक हिन्दी साहित्य में पं. बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी का सर्वप्रथम निबन्ध लेखक माना गया है क्योंकि वे इनकी निबन्ध शैली से प्रभावित थे। डॉ0 लक्ष्मी सागर बार्ष्णेय जी का मानना था निबन्ध निबन्ध है न कि कोई लेख भट्ट जी ने तीन सौ से अधिक निबन्ध लिखे हैं जो हिन्दी प्रदीप की फाइलों में सुरक्षित है और केवल कुछ निबन्धों के दो संग्रह ''भट्ट निबन्धावली'' नाम से प्रकाशित हुए हैं पर अभी भी अनेक ऐसे उत्कृष्ट निबन्ध हैं जिन्हें पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित नहीं किया गया। जब हम भट्ट जी के निबन्धों का मूल्यांकन करना चाहते हैं तो हमारा ध्यान इस ओर जाता है। कि माधुर्य, आशा, सहानुभूति, कल्पना, शक्ति, तर्क और विश्वास, ज्ञान और भक्तिबोध और मनोयोग मुक्ति आदि निबन्ध विचारात्मक है तथा मुग्त माधुरी आँसू व चन्द्रोदय आदि निबन्ध भावात्मक निबंधों के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

वस्तुतः भट्ट जी के निबंधों की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनके प्रायः सभी प्रकार के निबन्धों का यह कलेवर अत्यधिक संक्षिप्त है और अधिकांश निबन्ध केवल तीन पृष्ठों में ही समाप्त हो जाते हैं। जिस समय भट्ट जी ने हिन्दी गद्य साहित्य में पदार्पण किया उस समय तीन प्रकार की भाषाओं का उपयोग किया जाता था – प्रथम, तो वह जिसके प्रवर्तक राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द ये और जिसमें न केवल तत्सम उर्दू शब्दों की अधिकता थी अपितु वाक्य विन्यास भी उई ढंग का ही था, द्वितीय वह जिसके प्रवर्तक राजा लक्ष्मण सिंह थे और जिसमें अन्य भाषाओं का पूर्ण बहिष्कार आवश्यक माना था, तृतीय रूप के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे और उन्होंने मध्यम मार्ग का अवलम्बन ही समाचीन समझा था।

भाषा के उक्त तीनों रूपों को ध्यान में रखते हुए यदि भट्ट जी की भाषा शैली पर विचार किया जाये तो हम देखते हैं कि एक तरफ राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की भाँति तत्सम उर्दू शब्दों को अपनाते हुए आलीशान, रोजे, मकबरे, कब्रे, संगमरमर, कीमती पत्थर, माणिक जमूर्रद आदि इसके ठीक विपरीत दूसरी ओर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भाँति उनकी भाषा में मध्य मार्ग की सहजता विद्यमान है जैसे वही हमारी साधारण बातचीत का ऐसा घरेलू ढंग कि उसमें न करतल ध्वनि का कोई मौका न लोगों के कहकहे उड़ाने के कोई–कोई बात उसमें रहती है। हम तुम दो आदमी कोई संतलाप कर रहे हैं कोई चुटकीली बात आ गई तो हँस पड़े तो मुस्कुराहट से होंठो का केवल फरक उठना ही इस हँसी की अन्तिम सीमा है।

सामान्यतः भट्ट जी ने भाषा को व्यापक बनाने की दिशा में विशेष रूप से जागरूकता दिखाई है भट्ट जी की भाषा शैली में तरलता, प्रवाह, सुसम्बद्धता और भावाभिव्यक्ति की अनूठी क्षमता आदि विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

पं0 बालकृष्ण भट्ट का निबन्ध ''सुख क्या है?'' विचारात्मक निबन्ध है और केवल ढाई पृष्ठों के इस निबन्ध में लेखक ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक सुख की परिभाषा देते हुए स्पष्ट किया है कि इस संसार में सुख का कोई निश्चित स्वरूप नहीं है। लेखक की दृष्टि में लोग सुख को ढूँढ़ते फिरते हैं परन्तु उसे प्राप्त करने में लाखों में एक

दो ही सफल हो पाते हैं। भट्ट जी ने अपने इस निबन्ध में यह भी स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्य को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए दूसरे के सुख का भी ध्यान देना पड़ता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार ''शुद्ध विचारात्मक'' निबन्धों का चरम उत्कर्ष वही कहा जा सकता है जहाँ एकाएक पैराग्राफ में विचार दबदबा कर ठूसे गये हों और एकाएक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार खण्ड को लिये है। परन्तु इसका अभिप्राय नहीं है कि विचारात्मक निबन्धों में क्लिष्टता या शुष्कता ही होनी चाहिए। इसीलिए प्रस्तुत निबन्ध में जहाँ कि लेखक ने अल्पतम शब्दों द्वारा अधिकतम विचारों की अभिव्यक्ति कराते हुए भाव व कल्पना को गौण स्थान प्रदान किया है वहाँ उसने सरलता पर भी पूर्ण ध्यान दिया है उदाहरणार्थ – घने अन्धकार में चले जाते हुए को एकाएक दीपक का उजाला मिल जाय उसी तरह दुःख भोग रहे व्यक्ति को सुख मिल जाना शोभा देता है जो मनुष्य सुख में रहकर दरिद्र हो जाता है।

वह मानो शरीर धारण किये हुए श्वास तो ले रहा है पर वास्तव में वह मरा हुआ है। दुख एक मात्र सार इस संसार में सुख से जीवन काटने को बहुतों का सुख चाहना पड़ता है। नौकर को अपने मालिक का सुख, रियाया को अपने–अपने हाकिम की खुशी, शागिर्द को उस्ताद की खुशी, माँ–बाप को अपने लड़के बच्चों का सुख। आशिक को अपने दिलदार यार का सुख। शहर के रईसों को मजिस्ट्रेट साहब की खुशनूदी। मातहत क्लर्कों को सर दफ्तर की खुशी, हमको अपने पढ़ने वालों की खुशी आपेक्षित है। किसी रसीले चुटकीले मजमून पर पढ़ने वालों के दाँत निकल पड़े हमारा परिश्रम सफल हो गया। साध्वी सच्चरित्र स्त्रियों का सुख पति के सुख में है। पादरी साहब की प्रसन्नता जगत भर को क्रिस्तान कर डालने में है। यही कारण है कि इस निबन्ध में विचारों की गहनता होते हुए भी अनूठी भावात्मकता व हृदयग्रहिता है।

भट्ट जी मूल्यतः संस्कृत प्रधान शैली के प्रवर्तक कहे जाते हैं पर उनके निबन्धों में उर्दू, फारसी व अँग्रेजी के शब्दों और कहीं–कहीं वाक्य भी प्रयुक्त हुए हैं। अतः सुख क्या है? ये भी मिली जुली भाषा व्यक्त हुई है। एक ओर तो लेखक ने शुद्ध संस्कृत शब्दों को प्रधानता प्रदान कर रखी है और दूसरी ओर प्रसंगानुसार उर्दू, फारसी व अंग्रेजी शब्दों को निःसंकोच अपनाया है साथ ही लोकोक्तियों, मुहावरों का प्रयोग कर भाषा में अधिकाधिक ओज उत्पन्न करना चाहता। इस प्रकार भट्ट जी के निबन्ध ''सुख क्या है?'' में हमें सफल निबन्ध कला और उत्कृष्ट भाषा शैली के दर्शन होते हैं।

भट्ट जी भारतेन्दु युग के प्रतिनिधि निबन्धकार हैं और निर्विवाद रूप से उनकी गणना हिन्दी साहित्य के प्रथम श्रेणी के निबन्धकारों में भी की जा सकती है। उन्होंने साहित्य, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, दार्शनिक, नैतिक सभी प्रकार के विषयों को अपनाया है, पर मूल्यतः उनके दो प्रकार के ही निबन्ध हैं – गम्भीर, चिन्तापरक निबन्ध और सामान्य भावात्मक व्यंग्य विनोदपूर्ण निबन्ध। भाषा शैली पर विचार किया जाय तो स्पष्ट है कि उन्होंने सांस्कृतनिष्ठ भाषा को अपनाते हुए भी परिस्थिति व प्रसंगानुसार अरबी, फारसी, अंग्रेजी व पूर्वी शब्दों को भी अपनाया है। उनकी भाषा में विभक्तियों व क्रियाओं के कुछ अशुद्ध रूप भी मिलते हैं पर सामान्य रूप से उनकी भाषा शैली में सरलता, प्रवाह, सुसम्बद्धता व रसात्मकता आदि विशेषताएँ विद्यमान है।

सुख को परिभाषित करना सहज नहीं है क्योंकि कोई यह नही जानता कि वास्तव में सुख क्या है। सुख के संदर्भ में लोगों के विचार उनके व्यक्तिगत दृष्टिकोण पर आधारित है जिससे लोगों को संतुष्टि प्रसन्नता प्राप्त होती है वही उनके लिए सुख है। वास्तव में सुख के अनेक रूप हो सकते हैं–कुछ प्रसंगों में तो हमें अपने सुख का भाव प्रगट करने से रोकना पड़ता है। विचारपूर्वक देखा जाय तो प्राप्त होने वाली वस्तु के अभाव का मिल जाना ही सुख है और यह भी सत्य है कि दुःख के पश्चात् सुख की प्राप्ति श्रेयस्कर है कि क्योंकि सुख में रहने के बाद दुःखी जीवन बिताना जीवित ही मृत के समाज रहना है। इस संसार में सुखी रहने के लिए दूसरों के सुख का भी

ध्यान रखना पड़ता है। और सच तो यह है कि सुख ढूँढ़ते तो सभी हैं पर उसे प्राप्त करने में एक या दो ही सफल हो पाते हैं।

''सुख क्या है?'' निबन्ध विचारात्मक निबन्ध है और उसमें गहन चिन्तन के साथ–साथ सरलता भी है तथा क्लिष्टता व शुष्कता के दर्शन नहीं होते। संस्कृत शैली के प्रवर्तक होते हुए भी भट्ट जी ने उर्दू, फारसी व अंग्रेजी के शब्दों को निःसंकोच ग्रहण किया है और लोकोक्तियों व मुहावरों का प्रयोग कर भाषा को अपूर्व समृद्धि प्रदान की है। इस प्रकार यह निबन्ध उनकी सफल निबन्ध कला और उत्कृष्ट भाषा शैली का परिचायक है।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो चित्त में सुख का भाव उत्पन्न होने की बुनियाद कुछ भी नहीं है और केवल प्राप्त होने वाली वस्तु के अभाव का मिट जाना ही सुख है। भगवान न करे कि कभी किसी को यह देखना पड़े कि वह सुख में रहकर बाद में दुःखी हो क्योंकि इस प्रकार के दुःखी जीवन से तो मृत्यु ही श्रेयस्कर है। जिस प्रकार सघन अन्धकार में चलते हुए एकाएक दीपक का प्रकाश मिल जाता है उसी प्रकार लगातार दुःख झेलने पर सुख प्राप्त करना शोभा देता है जो मनुष्य सुख में रहने के बाद दरिद्र हो जाता है वह जीवित ही मृत के समान है। इस प्रकार ''सुख क्या है?'' में हमें भट्ट जी की सफल निबन्ध कला और उत्कृष्ट भाषा शैली के दर्शन होते है। बड़ी कलात्मकता के साथ भट्ट जी ने स्पष्ट किया है कि व्यक्ति निजी स्वार्थ की पूर्ति में ही सुखी रहते हैं।

संदर्भ सूची

1. निबन्ध पूर्णिमा (आलोचना और व्याख्या), पृ0 18, 19
2. हिन्दी का गद्य साहित्य – डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0 110
3. चिन्तामणि भाग–1, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 112
4. हिन्दी साहित्य कोश (भाग एक), पृ0 370

❑❑

एक दर्जन कृतियों के सृजनकर्ता एवं अनेक प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन कर चुके डॉ0 रामकमल राय कृति की राह से कृतिकार की निर्मिति और आचरण की राह से व्यक्ति का मूल्यांकन उनका सिद्धांत जैसा था। डॉ0 राय ने अज्ञेय की काव्यनुभुति की तलाश करते हुए उनकी सौदर्य चेतना, सांस्कृतिक चेतना,स्वाधीनता बोध, प्रणयानुभूति के साथ ही साथ काव्य भाषा को परखने की कोशिश है। आपकी दृष्टि में अज्ञेय की काव्याव्यक अनुभूति की अभिव्यक्ति से तनिक भी कम महत्व उनके गद्य लेखन का नही है। चाहे उनके उपन्यास, कहानियाँ, संस्मरण, आत्मवृत्त हों ये सभी कृतियाँ काव्य कृतियों से कमतर नहीं हैं।

✍ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

कालिदास के साहित्य में लोककल्याण की भावना

डा0 आशारानी पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर–संस्कृत
दयानन्द गर्ल्स पी0जी0 कालेज, कानपुर

संस्कृत भाषा में आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक साहित्य का सुन्दर प्रणयन हुआ है परन्तु सहृदयों के द्वारा श्लाघ्य एवं सर्वजन अभिनन्दनीय काव्यमार्ग ही है। काव्य रूपी वाटिका को संवारने एवं सज्जित करने का श्रेय व्यास, भास, वाल्मीकि, कालिदास प्रभृति कालजयी और विश्व की मंगलकामना से सम्पोषित उनकी अमर कृतियों को जाता है। इन कवियों की श्रेणी में महाकवि कालिदास का काव्य ऐसा मनोहारी दर्पण है जिसमें भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति अपने स्वाभाविक रूप में प्रतिबिम्बित होकर युग–युगान्तर के लिए प्राणवती हो गई है।

संस्कृत साहित्याकाश में महाकवि कालिदास अप्रतिम सूर्य है। कालिदास की कालजयी कृतियों में राष्ट्रमंगल के साथ लोकमंगल की पावन भावना समाहित है, तथा उनमें दिव्य जीवन के संदेश मुखरित है। इस महान राष्ट्र की उच्चसंस्कृति उनके काव्य में मूर्तवती होकर जन–जीवन को निरन्तर प्रेरित करती आ रही है। वाल्मीकि, व्यास आदि भारतीय ऋषियों द्वारा सुचिन्तित तथ्यों को कवि ने मनोभिराम शब्दों में जन–जीवन के हृदय में उतारने का समीचीन प्रयास किया है। उनकी कविता का प्रणयन मानव हृदय की शाश्वत प्रवृत्तियों तथा भावों का आलम्बन लेकर किया गया है। यही कारण है कि इसके भीतर ऐसी उद्दीप्त एवं उदात्त भावना विद्यमान है, जो भारतीयों को ही नहीं अपितु मानव मात्र को प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्रदान करती रहेगी। इस भारतीय कवि की वाणी में इतना रस है, इतना ओज भरा हुआ है कि दो सहस्त्र वर्षों के दीर्घकाल ने भी उसमें किसी प्रकार का फीकापन नहीं आने दिया। उसकी मधुरिमा आज भी उसी प्रकार भावुकों के हृदय को रसमय करती है, जिस प्रकार उसने अपने उत्पत्ति के क्षण में किया था।

कालिदास की कृतियों में जन–जीवन में नैराश्यवाद का कोई स्थान नहीं है। जो जीवन अभ्युदयपूर्ण एवं रमणीय लोकमंगल की पावन कामनायुक्त हो उसमें निराशा का क्या स्थान? यह जीवन निरर्थक एवं सारहीन कभी नहीं है। इन्दुमती के प्रयाण पर निराश एवं विषण्ण अज को समझाते हुए वशिष्ठ कहते हैं कि यदि जीवन श्वास लेता हुआ एक क्षण के लिए भी जीवित रहता है तो यह उसके लिए परम लाभ है– सौभाग्य का विषय है। क्योंकि मृत्यु तो शाश्वत सत्य, और अनिवार्य है–

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृति जीवित मुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुनन्नु लाभवान सौ।।[1]

अतः कालिदास का यह जीवन सन्देश है कि इस जीवन को ईश्वर का महान वरदान मानकर इसे सफल बनाने हेतु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का सामंजस्य स्थापित करना चाहिए।

वास्तव में मनुष्य का जन्म विषयवासना का दास बनने हेतु नहीं अपितु तपस्या और भोग को साधन मानकर परमात्मा से आत्मा के एकीकरण हेतु हुआ है तथा काम और धर्म के परस्पर संघर्ष में काम को दबाकर उसे धर्मानुकूल बनाने का प्रयास अवश्य करना चाहिए। तभी मानव का कल्याण हो सकेगा। इसीलिए कवि, धर्म को त्रिवर्ग का सार मानते हैं– त्रिवर्ग सारः प्रतिभाति भामिनी।

जीवन सुखों तथा दुःखों की क्रमबद्ध श्रृंखला है। इस विषय में उनका स्पष्ट अभिमत है कि ये जीवन में क्रमशः चक्रनेमि की भांति आते–जाते रहते हैं अतः मनुष्य को दुःखों से द्रवित एवं सुखों से गर्वित नहीं होना चाहिए। यक्ष

के माध्यम से कवि इसी शाश्वत सत्य का उद्घाटन करता है –

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि क्रमेण।।

साहित्य समाज का दर्पण है। अतः मानव जीवन का समाज से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। समाज की उन्नति के लिए व्यक्ति को सतत सचेष्ट रहना चाहिए। कालिदास का मन्तव्य श्रुति एवं स्मृतियों की पद्धति पर आधारित आदर्श समाज की संरचना का है। कालिदास के इप्सित समाज के व्यक्ति त्याग के लिए धन संचय, यश के लिए विजय की कामना सत्य भाषण के लिए मितभाषी तथा सन्तानोत्पति के लिए ही विवाह करते थे–

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यश से विजिगीषूर्णां प्रजायै गृहमेधिनाम।।[2]

कालिदास के अनुसार जीवन में त्याग, तप, यज्ञ, अध्ययन एवं दान का समावेश अपरिहार्यतः होना ही चाहिए। उनके द्वारा ऋषियों के पावन आश्रम में ये दिव्य जीवन आदर्श सदैव अनुप्राणित होते चिन्हित किये गये हैं।

उनका विश्वास था कि तपोवन में पोषित अकृत्रिम सभ्यता ही मानव का सच्चा कल्याण कर सकती है, क्षुद्र कोटि के स्वार्थ का निवारण त्याग से ही सम्भव है, तथा मानव की वास्तविक उन्नति तपस्या से ही हो सकती है। तपोवन कालिदास के काव्य की प्रेरणा के स्त्रोत रहे हैं। रघुवंश में वशिष्ठ का आश्रम भी बहुत शान्त और मनोहर है। शाकुन्तल में धर्मारण्य तथा तपोवनों की हमारी आत्माओं को शुद्ध करने की क्षमता का अनेकशः उल्लेख उपलब्ध होता है। प्रथम अंक में दुष्यन्त कहता है आओ हम लोग पुनीत आश्रम के दर्शन से स्वयं को पावन करें। पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे। शाकुन्तल में तपस्वियों की महिमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है–

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शानुकूला इव सूर्यकान्तास्तदन्य तेजोऽभिभवाद्वमन्ति।।[3]

महाकवि द्वारा वर्णित इन आश्रमों में प्रेम एवं विश्वबन्धुत्व भाव के कारण जीव हिंसा सर्वथा वर्जित थी। कवि द्वारा वर्णित सभी आश्रम सामान्यत यज्ञ स्थान तपः स्थान, शिक्षा संस्थान के रूप में, आर्यावर्त में ही नहीं अपितु समस्त भारतवर्ष में अवस्थित होकर साधारण गृहस्थ धर्मों में पराड.मुख नहीं थे। ये सामयिक परिस्थिति के अनुसार बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय की उदात्त भावनावश युगधर्म का निर्वाह करते हुए सम्पूर्ण राष्ट्र के भौतिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष में महत्वपूर्ण योग देते थे। रघुवंश, कुमार संभव, अभिज्ञान शाकुन्तलम जैसी उत्कृष्ट कृतियाँ इन पावन आश्रमों की गौरव गरिमा से अभिमण्डित है।

कालिदास का यह संदेश है कि प्रत्येक मानव को तपोवन के शान्त वातावरण और प्रकृति की गोद में बैठकर तपश्चरण कर अपने अभीष्ट की प्राप्ति करना चाहिए। आधुनिक आश्रमों में जीवित दिनचर्या एवं संस्कृति को कालिदास के आश्रमों से अवश्य शिक्षा लेनी चाहिए जहाँ आज शान्ति की अपेक्षा अशान्ति का प्रेम की अपेक्षा घृणा का वातावरण पनप रहा है।

व्यक्तिगत जीवन में कवि आत्मसंयम तथा आत्मशुद्धि पर बल देता है। एतदर्थ वह बिल्कुल भोर या ब्रह्म बेला में सोकर उठने को आवश्यक बतलाता है। रघुवंश में वह कहता है कि रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठने से मन शान्ति तथा स्फूर्ति का अनुभव करता है– 'पश्चाद्यामिनीयामात्प्रसादमिव चेतना'

महाकवि ने संध्या, ध्यान, अर्चना पूजा इत्यादि सुखी जीवन के लिए अपेक्षणीय बतलाए हैं किन्तु आज दूरदर्शन की अपसंस्कृति से प्रभावित वैश्विक समाज अव्यवस्थित दिनचर्या के अधीन होकर विभिन्न रोगों से ग्रसित हो रहे हैं जबकि महाकवि की लोक कल्याणकारी दृष्टि उक्त समस्याओं का निराकरण करती हुई दिखलाई पड़ती है। इसी प्रकार कवि श्रेष्ठजनों के प्रति आदर भाव से युक्त होने को प्रेरित करता है क्योंकि जो पूज्य एवं आराध्य है उनके प्रति तनिक भी अनादर भाव से मनुष्य का सुख–सौख्य खण्डित हो जाता है।

प्रति बध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यक्तिक्रमः।[4]

कालिदास द्वारा चित्रित नरपति भारतीय समाज का अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करते हैं। वे शैशव में विद्या का अभ्यास करते हैं, यौवन में विषय के अभिलाषी है, वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति धारण करके सारे प्रपंच से मुँह मोड़कर निवृत्ति मार्ग के अनुयायी बनते हैं तथा अन्त में योग द्वारा अपना शरीर छोड़कर परम पद में लीन हो जाते हैं यह आदर्श लोक में स्थापित करना महाकवि की अपनी विशेषता है–

शैशवेभ्यस्तपविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।[5]

शैशवेऽभ्यस्तपविधानां यदि इस प्रथम पंक्ति पर सम्यक चिन्तन किया जाय तो प्रतीत होता है कि उस समय शिक्षा एक तपस्चर्या के समान थी और विद्यालय एवं विश्वविद्यालय शैक्षिक एवं अनुशासन की दृष्टि से अत्यन्त उच्चादर्श युक्त थे। किन्तु वर्तमान समय में विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय एवं दयनीय हो गयी है। आज छात्र अध्ययन से पूर्णरूपेण विरत होकर प्रतिदिन हड़ताल, छात्र–आन्दोलन एवं भ्रष्ट नेताओं के निर्देशन में उत्पात करके अकारण ही धन, जन एवं शक्ति का क्षय कर रहे हैं। इस समस्या से ग्रस्त शिक्षार्थी हेतु उपर्युक्त वाक्य के अनुपालन से ही इस विश्वव्यापी विषम समस्याओं का समाधान स्वतः हो सकता है।

किसी भी राष्ट्र के समुन्नत विकास में शिक्षा की एक अहम् भूमिका होती है। और कविकुल शिरोमणि भी शिक्षा का परम लक्ष्य जीवन की परिष्कृति तथा अंलकृति दोनों को मानते हैं। इनका मन्तव्य है कि जैसे प्रकाश की शिखा से दीपक, गंगा से तीनों लोक, और विद्वान सुसंस्कृत वाणी से पूत एवं अलंकृत होता है–

प्रभामहत्या शिखयेवदीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च।।[6]

शिक्षक शिक्षा की धुरी है और वही शिक्षक सर्वश्रेष्ठ है जिसमें ज्ञान तथा शिक्षण दोनों ही योग्यताएं विद्यमान हैं–

शिलष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरूपस्य,
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव।।[7]

सार्थक शिक्षा की कसौटी यह है कि जिस प्रकार अग्नि मे तपाये जाने पर स्वर्ण श्यामवर्णीय नहीं बनता, उसी प्रकार ऐसी शिक्षा परीक्षा काल में मंद नहीं पड़ती। माल विकाग्निमित्र में कवि की दृष्टि दर्शनीय है–

उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः।
श्यामाय ते न युहंमासु या कांचनमिवाग्निषु।।[8]

विद्या की सार्थकता अभ्यास द्वारा उसे व्यवहार सुलभ बनाना है इसी भाव को कवि ने रघुवंश में कुछ इस प्रकार दर्शाया है – "विद्यामभ्यासनेनेव प्रसादयितुमर्हसि"[9]

महाकवि ने आचार्य अथवा गुरु को परमब्रह्म सदृश चित्रित किया है। और शिक्षा तभी फलीभूत होगी तब शिष्य गुरु की आज्ञा को अक्षरशः शिरोधार्य करेंगे। महाकवि ने गुरु महिमा का वर्णन करते हुए रघुवंश में एक स्थल पर इस प्रकार कहा है– "आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया।"[10]

महाकवि की लोक कल्याणकारी दृष्टि समाज के प्रत्येक पहलू पर अपनी गहन छाप छोड़ती है। परिवार व्यक्ति और समाज को जोड़ने वाली एक प्रमुख कड़ी है, और समाज की केन्द्रीय इकाई भी। परिवार का वातावरण शिशु के अपरिपक्व एवं निर्मल बुद्धि पटल पर बहुत से बिम्ब अंकित करता है, जो शनैः शनैः विभिन्न संस्कारों के माध्यम से उसके व्यवहार को निर्धारित करते हैं। परिवार की सुख समृद्धि प्रत्येक सदस्य के पारस्परिक व्यवहारों के सामंजस्य पर निर्भर करती है। दूसरे परिवार से आई हुई नववधू जब परिवार के संस्कारों और आदर्शों के अनुकूल आचरण नहीं करती तब पारस्परिक गृह– कलह के कारण पारिवारिक वातावरण अशान्तिपूर्ण एवं विखण्डित हो

जाता है। सम्प्रति यह समस्या अधिकांशतः आज प्रत्येक परिवार में व्याप्त होती जा रही है। महाकवि के द्वारा प्रतिपादित एवं महर्षि कण्व के मुखार बिन्दु से निःसृत वाणी पतिग्रहगमनोत्सुक नवविवाहित स्त्रियों की सभी आपदाओं को दूर करने वाली है –

शुश्रूस्व गुरुन कुरु प्रियसखी वृतिं सपत्नीजने,
भर्तुविप्रकृतानि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येव गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।[11]

महाकवि ने नारीत्व के आदर्शों को उभारने का जो उद्योग किया है वह उनके काव्य का प्रमुख वैशिष्टय है। भारतवर्ष में कन्याओं के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिभंगी पाई जाती है। जब तक वे पितृ ग्रह में रहती हैं, तब तक दीपशिखा की भाँति उसे उद्भासित करती है, और परिवार की सीमित परिधि में प्रेम, प्रसन्नता, औत्सुम्य, तथा आनन्द की कूल्याएँ प्रवाहित करती रहती हैं। और उन्हें परिवार के प्रत्येक सदस्य का असीम प्यार उपलब्ध होता है। लेकिन फिर भी भारतीय पिता कन्याओं को अन्य की धरोहर समझता है और उसके लिए उचित एवं योग्य वर की खोज पर अपरमित संतोष का अनुभव करता है। कालिदास ने इस लोकादर्श की प्रतिष्ठा अभिज्ञान शाकुन्तल में की है। शकुन्तला को महर्षि कण्व के आश्रम में जो प्यार मिला है, वह प्रत्येक भारतीय कुटुम्ब के लिए स्पर्धा एवं अनुकरण की वस्तु है। कण्व को शकुन्तला के आसन्न वियोग पर गहरी वेदना हुई है और उनकी यह टिप्पणी अत्यन्त सार्थवती है कि पीडयन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैं। पुनः उसे पतिग्रह भेज कर उनकी अन्तरात्मा अत्यन्त निर्मल हो गयी–

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतु,
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।।[12]

कालिदास लज्जा, प्रेम, सेवा, चरित्र, शील, तप और संयम को ही नारी का प्रमुख आभूषण मानते हैं। सुवर्ण, रत्न, एवं मणि आदि को नहीं। तपोवन के जीवन के पक्षपाती होने के कारण कविकुलचूड़ामणि मानव के सहज एवं स्वाभाविक गुणों का ही आदर करते हैं। वे कृत्रिम साधनों से क्षणिक रूप सौन्दर्य के पक्षपाती नहीं है। शकुन्तला अपने वल्कल वस्त्रों में ही सुन्दर दिखाई दे रही है।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी।
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतिमाम।[13]

तपस्या एवं प्रेम के समन्वित धरातल पर ही प्रेम के अंकुर स्फुटित होते हैं, कालिदास की यह दृढ़ मान्यता थी। उनके शाकुन्तल एवं कुमार सम्भव दोनों का लक्ष्य था तपस्या एवं प्रेम का समन्वय। वासना जन्य अथवा केवल शारीरिक आकर्षण पर आधारित प्रेम स्थायी नहीं होता। तपस्या की अग्नि में ही तपकर प्रेमरूपी सुवर्ण निखर उठता है। पार्वती का दिव्य सौन्दर्य, कामदेव का अनुपम पराक्रम तथा बसन्त का सम्पूर्ण मादक प्रभाव भी तपस्वी शिव को प्रभावित नहीं कर सका। किन्तु पार्वती का घोर तप, और समाधि उन्हें शिव का बना देती है। कालिदास ने पार्वती के तप का रहस्य विशेष रूप से प्रकट किया है–

इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभि, रात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः।।[14]

पार्वती की तपस्या का फल था 'तथा विधं पति' अर्थात मृत्युंजय रूप महादेव/ तथाविद्यं प्रेम का तात्पर्य है, दिव्य, अलौकिक और उत्कृष्ट कोटि का प्रेम। कालिदास ने तथाविद्यं से गम्भीर अर्थ की अभिव्यंजना की है। महादेव ने पार्वती को सम्मान की उच्च स्थान की पराकाष्ठा को प्राप्त कराया है। भारतीय कन्याओं हेतु यह गौरव

की अनुकरणीय साधना है। इसी सन्दर्भ में गौरी पूजा का रहस्य महान स्वार्थ त्याग के पीछे अर्न्तनिहित तप के प्रभाव की अभिव्यक्ति है।

इदानीम पाश्चात्य संस्कृति के चकाचौंध एवं दूरदर्शन के द्वारा प्रसारित विभिन्न नाटकों से प्रभावित हुआ युवा वर्ग दैहिक आकर्षण को ही प्यार की पराकाष्ठा मानता है। ऐसे भ्रमित युवा वर्ग के लिए शिव पार्वती, दुष्यन्त–शकुन्तला, यक्ष–यक्षिणी का प्रेम, आदर्श एवं प्रेरणादायी हो सकता है। यह कवि की अपनी विशेष प्रकार की लोक कल्याणकारी दृष्टि की परिमित है जो वह विश्व समाज, को समर्पित करता है महाकवि कालिदास भारतीय संस्कृति के चरम आदर्श के प्रति विश्व को उन्मुख करने में समर्थ हुए हैं।

कालिदास भारतीय जीवन के सच्चे प्रवक्ता एवं वैतालिक हैं। भारत वर्ष की आत्मा उनके भीतर प्राणवान है आदि काल से लेकर आधुनिक काल तक की आत्मा में कविवर पूर्णरूपेण अपने स्वाभावित माधुर्य के साथ सुरक्षित संरक्षित पल्लवित एवं पुष्पित है। भारत की माटी से, उसके गिरिकानन से, उन्हें प्रगाढ़ अनुराग है, इसलिए अपने साहित्य को अपनी ललित कल्पना के रंगों से रंजित कर उन्होंने उसके अत्यन्त प्राणवान, भव्य एवं मनोरम चित्र अंकित किए हैं। इसके साथ ही साथ उनकी रचनाओं में जीवन, समाज, शिक्षा, राजतंत्र, नारीत्व, पुरुषत्व, प्रभृति सभी विषयों से सम्बन्धित विषयों के उच्चादर्शों की अभिव्यक्ति हुई है।

इस प्रकार से कालिदास के साहित्य के सम्यक विवेचनोपरान्त हम निःसन्देह रूप से कह सकते हैं कि आज की स्वार्थपूर्ण उपभोक्तावादी संस्कृति, संस्कारविहीन सभ्यता, पतनोन्मुखी मानव मूल्य जिस प्रकार से मानव अस्तित्व के समक्ष एक चुनौती उपस्थित कर रहे हैं ऐसे में हम कालिदास के साहित्य में निहित लोक कल्याणकारी तत्वों का ग्रहण कर समाज को श्रेष्ठतम बना सकते हैं।

अतः वर्तमान समय में कालिदास के साहित्य का सिंहावलोकन करने की अतीव आवश्यकता है। लोक कल्याण की भावना से भावित उनका विचार द्रष्टव्य है –

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।
सर्व कामनावाप्नातु सर्व सर्वत्र नन्दतु।।[15]

संदर्भ सूची

1. रघु0 8/87
2. रघु0 1/7
3. तपोवनों की संस्कृति... – 2/7
4. रघुवंश 1/79
5. रघुवंश 1/8
6. कुमार सम्भव 1/28
7. विशेषयुक्ता माल–1/16
8. मालवि0–2/9
9. रघु 1/88
10. रघुवंश – 14/46
11. अभिज्ञान शा0 4/18
12. अभिज्ञान शा0 4/22
13. अभिज्ञान शा0 1/19
14. कुमार सं0 5/2

❑❑

मोहन राकेश की नाट्य कला : आधे–अधूरे के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. सदन कुमार पाल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
गंगाधर मेहेर विश्वविद्यालय, सम्भलपुर, ओडिशा

मोहन राकेश नाट्य कला के धनी कलाकार थे । उनके लिखे तीन नाटक "आषाढ़ का दिन", "लहरों के राजहंस" और "आधे–अधूरे" अपनी साहित्यिक और रंगमंचीय उत्कर्षता के कारण आज भी इतने लोकप्रिय हैं। उनका चौथा अन्तिम नाटक पैर तले की जमीन उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुआ। मोहन राकेश का कुल नाट्य कर्म यही है लेकिन तीनों नाटक हिन्दी में ही नहीं भारतीय नाटकों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

मोहन राकेश का नाट्य चिंतन – मोहन राकेश को मंच की सीमाओं का गहरा ज्ञान था, वे मंच और दर्शकों को दृष्टि में रखकर नाटक लिखते थे साहित्यिक स्तर और रंगमंच दोनों के सार्थक समन्वय के वे पक्षधर थे। नाटक के लिए रंगमंच का महत्व स्वीकार करते हुए राकेश जी लिखते हैं – "लिखा गया नाटक एक हड्डियों के ढांचे की तरह हैं जिसे रंगमंच का वातावरण ही मांसलता प्रदान करता है उनके अनुसार सही रंगमंच की खोज के लिए आवश्यक है अपने जीवन और परिवेश की गहरी पहचान, आज के अपने घात–प्रतिघातों की रंगमंचीय संभावनाओं की दिशा में ले जा सकती और उस रंगशिल्प को आकार दे सकती हैं जिससे हम स्वयं अब तक परिचित नहीं हैं । रंगमंच के लिए विशिष्ट तकनीकी सुविधाओं से सम्पन्न प्रदर्शन गृहों की अपेक्षा और निर्भरता से हमें, जहाँ तक हो सके अपने को मुक्त रखना होगा"। रंगमंच सिनेमा रेडियो के लिए अच्छे चरित्रों के चयन का केन्द्र हो सकता है, वे नाट्यकार, रंगनिर्देशक तथा अभिनेता के सहयोगी प्रयास को रंगमंच के विकास के लिए आवश्यक मानते हैं। नाट्यकार और निर्देशक के बीच सही सामंजस्य होना चाहिए, नाटक का रंगमंच पर खरा उतरना आवश्यक है। यही कारण है उनके नाटक चाहे "आषाढ़ का एक दिन" अथवा "आधे–अधूरे" हो रंगमंच पर अभिनीत होने के लिए सबसे अधिक सफल हो सके हैं। उनके मतानुसार नाटक की सही परीक्षा रंगमंच पर होती है। रंगमंच का तात्पर्य केवल रंगस्थली नहीं है इसकी परिधि मे रंगशाला नाटक, पात्र, वेशभूषा, अभिनय मंचीय उपकरण आदि सभी आ जाते हैं। भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में लिखा है "ऐसा कोई भी ज्ञान, शिल्प कला योग या कर्म नहीं है जो नाट्य में न हो, नाटक और रंगमंच का संबंध अन्यान्योश्रित है।"

मोहन राकेश के तीनो नाटक एक मंच बंध से संयोजित हैं "आषाढ़ का एक दिन" का कथ्य तीन अंकों में विभक्त है और तीनों ही अंक एक–एक दृश्य के हैं। अंकों का सेट घर का कमरा है मंचसज्जा यथार्थवादी है, एक बार सेट लगा देने पर हटाना नहीं पड़ता, इसी तरह "लहरों के राजहंस नाटक भी तीन अंकों का है – सभी अंक यथार्थवादी हैं। आधे–अधूरे नाटक का कथ्य दो भागों में विभक्त है, दोनो भाग एक दृष्यीय हैं दोनों भागों के मध्य छोटा–सा अंतराल–विकल्प है।

मंच बंध एक है सावित्री के घर का एक कमरा। इस नाटक की मंच सज्जा भी यथार्थवादी है। अपने तीनो नाटकों में मंच सज्जा वेशभूषा और अभिनय के पर्याप्त निर्देश दिये हैं।

मोहन राकेश ने अपने नाटकों में संकलनत्रय पर पूरा ध्यान रखा है, वे स्थान काल और समय का पूरा ध्यान रखते हैं "आषाढ़ का एक दिन नाटक के अंकों के बीच कुछ वर्षों का अंतराल है, लहरों के राजहंस नाटक की पूरी

कथा चौबीस घंटों की अवधि में संयोजित है इसी प्रकार "आधे–अधूरे" नाटक के बीच का अंतराल भी एक दिन का है। प्रत्येक नाटक एक ही स्थान मे ंघटित होता है।

मोहन राकेश वस्तु संयोजन में भी बड़े कुशल हैं, वे कथावस्तु को सहज एवं स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक ढंग से संयोजित करते हैं, कथावस्तु अपने पूरे कार्य व्यापार के साथ आगे बढ़ती है । रंगमंचीय भाषा शब्द की संगति और लय ध्वनि का भी राकेश जी पूरा ध्यान रखते हैं। रंगमंचीय भाषा की दृष्टि से "आधे–अधूरे" नाटक की भाषा मानक है।

नाट्यकार कहीं न कहीं पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते समय मनोवैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग करते हैं। जैसे लहरों के राजहंस में शयामागं की उन्मादावस्था का कारण बताते हुए अलका कहती है कि "मन में कुछ ग्रन्थियाँ उलझ गई हैं और वह .. उसे सहानुभूति और उपचार की आवश्यकता है देवी । "लहरों के राजहंस" में अनुभूति की तीव्रता के साथ वैचारिक तत्त्व की प्रधानता है अतः इसमें भाषा दो स्तरों को छूती हुई प्रवाहित होती है, संवाद योजना पात्रों की बदलती मनःस्थितियों के विविध परतों को खोलने और उनके गहराते आन्तरिक द्वंद को निरूपित करने के साथ–साथ उनकी संगति बिठाने में सफल हुई है।

प्रस्तुत नाटक के संवाद सरल और सीधे नहीं उनमें सपाटपन नहीं दुहरी अर्थव्यंजना है प्रस्तुत नाटक में राकेशजी ने नेपथ्य को भाषा दी है नेपथ्य से सुनाई देने वाली श्यामांग की कराह नंद के आन्तरिक मन की छटपटाहट को करुण बिम्ब की सर्जना करती है । संवाद की यह प्रक्रिया सर्वथा नई कही जा सकती है इसमे फैंटेसी का चमत्कार नहीं संवेदना की विलक्षणता है।

प्रस्तुत नाटक में राकेशजी ने प्रतीक और बिम्बों का अत्यधिक प्रयोग किया है पार्थिव–अपार्थिव बिम्बों को उपस्थित कर नाटक की संवेदना को कई स्तरों पर भिन्न–भिन्न अर्थवत्ता के साथ उभारा गया है। एक ओर काँपती लहरें – उलझी पत्तियाँ, छाया, धुधं नंद सुन्दरी के आंतरिक संघर्ष को रुपायित करते हैं राजहंस, कबूतर आदि जीवन के भोग पक्ष को रुपायित करते हैं, तो मृग चोंच ,खाई ठठरी, जंगली पशु, चील व्याघ्र भोग की निरर्थकता एवं जीवन की भीतरी पहलू को दर्शाते हैं।

संक्षेप में "लहरों के राजहंस की भाषा साहित्यिकता के अतिरिक्त मोह, नाटकीय दृष्टि से निरर्थक शब्दजाल के आग्रह और नाट्यन्विति से स्वतंत्र काव्य बिम्बों से मुक्ति के लिए भीषण संघर्ष करती दिखाई देती है।

"आषाढ़ के एक दिन" में कथानक के विकास में अन्विति बनाए रखने का सफल प्रयास किया गया है। पूरे नाटक में मल्लिका और कालिदास के प्रेम का संघर्ष व्याप्त है आषाढ़ की फुहार में मल्लिका की कालिदास से मिलने की उतकट अभिलाषा मात्र कल्पना बन कर बिखर जाती है जिसे नाट्यकार ने समय का फेर साबित किया है इसके संवाद संस्कृत निष्ठ शैली में है उनका पैनापन नाटकोचित है।

विषयवस्तु की और प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से यह एक प्रौढ़ रचना है जिसका हिन्दी रंगमंच को बहुमूल्य योगदान है।

मोहन राकेश की नाट्यकला – "आधे–अधूरे के विशेष" संदर्भ में यह "आधे–अधूरे" राकेशजी की तीसरी नाट्यकृति है इसने रंगमंच की नई संभावनाओंकी ओर हिन्दी जगत् का ध्यान आकृष्ट किया।[1] राकेश जीके पहले दो नाटक "आषाढ़ का एक दिन" और लहरों के राजहंस" एक दृष्टि से रोमांटिक भावबोध से प्रेरित हैं किन्तु "आधे–अधूरे "आधुनिक मानव की दारुण नियति को परिवार जैसी संस्था के संदर्भ में ठोस मनोवैज्ञानिक आधार पर अंकित करता है।[2] समकालीन जीवन बोध को सारे संदर्भों के साथ नाटकीय स्तर पर उजागर करने का यह प्रयास हिन्दी में पहली बार देखा गया और यह नाटक यथार्थवादी तथा प्रयोगशील रंगचेतना से रूपायित हुआ है जो रंगमंच का नया आयाम प्रस्तुत करता है। एक ओर कुछ समीक्षकों ने इसे आधुनिक भारतीय रंगमंच की अन्यतम उपलब्धि और

हिन्दी का पहला गंभीर नाटक माना तो दूसरी ओर कइयों ने कलात्मकता की दृष्टि से इसे निरर्थक करार देकर इस पर कड़े प्रहार किए और इसमें अंकित मध्यवर्गीय जीवन चित्रण को एकपक्षीय कहकर इसकी सामाजिक प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह लगाया। यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि नाट्य समीक्षकों और साहित्यालोचकों की इन धारणाओं के विपरीत दर्शक समुदाय ने भारी संख्या में उपस्थित होकर आधे–अधूरे के प्रदर्शन को अत्यन्त सफल बनाया।

नाट्य संस्था दिशान्तर द्वारा ओमशिवपुरी के निर्देशन में 2 मार्च 1969 को प्रदर्शित किया गया और इसने पूरे भारत में तहलका मचा दिया, यह भारतीय रंगमंच के इतिहास में अपूर्व कहा जाएगा।

आधे–अधूरे की समस्याएँ और उसके संदर्भ – आधे अधूरे नाटक आज के जीवन को आज के मुहावरें में ही प्रस्तुत करता है, समकालीन जिन्दगी की धड़कने स्पंदित करने के लिए इसमें नाट्यकार ने एक सही नाट्य भाषा की खोज की है। इसमें मध्य–वर्गीय जीवन की विसंगतियों, टूटते परिवार के संबंधों और दांपत्य जीवन के द्वन्द्व को उसके सही संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। समस्याओं का सुनिश्चित समाधान नाटककार ने प्रस्तुत नहीं किया बल्कि समस्याओं से जूझने का प्रयास किया है। यह मौजूदा महानगरीय भारतीय पारिवारिक जीवन के संत्रास तथा विडम्बना, स्त्री–पुरुष संबधों की विसंगतियों को जीवन्त रेखांकन करता है।

आधे–अधूरे का कथ्य–मध्यवर्ग की विसंगतियाँ – आज की बदली हुई परिस्थितियों में आर्थिक विपन्नता के कारण मध्य वर्गीय परिवार जिन तनावपूर्ण स्थितियों और अभावों एवं घुटन भरे वातावरण मे साँस ले रहा है उस यंत्रणा की सच्ची तस्वीर नाटककार ने खींची है। मध्यवर्ग की सामान्य और रोजमर्रा की जिन्दगी की नब्ज की सही पहचान और उसकी पकड़ ने नाटक को विश्वसनीय बनाया है. यह वह वर्ग है जो अपनी महत्वाकांक्षा के चलते अपने मौजूदा वर्ग से कुछ करके अपने से ऊपर वाले वर्ग में जाने के लिए प्रयत्नरत ये लोग परिस्थितियों की मार से पिटकर लगातार निचले वर्ग की ओर धकेले जाते रहते हैं, अपनी सुरक्षा और सुविधा के लिए यह वर्ग प्रायः किसी भी समझौते और अवसरवादिता के लिए तैयार रहता है। अतः कथनी और करनी के बीच की खाई तथा खोखले प्रदर्शन की भावना इस वर्ग की सबसे बड़ी विशेषता है। इस तनावपूर्ण परिस्थितियों के कारण आपसी स्वार्थ और होड़ ने संयुक्त परिवार की नींव तोड़ दी और एकक परिवार की नींव सुदृढ़ हुई इस एकल परिवार में शिक्षा और संस्कार में स्त्री की भूमिका और सत्ता सुदृढ़ हुई। स्त्री ने अपने स्वत्व के लिए नौकरी और आर्थिक स्वावलम्बन और समानाधिकारों की माँग की तब स्त्री–पुरुष के संबंधों में संघर्ष, पुरुष के अहं के साथ टकराव हुआ. स्त्री विमर्श की नई आधारशिला ने पुरुष के वर्चस्व और पितृसत्तात्मक केन्द्र की भूमिका को धराशायी कर दिया इसके साथ ही विवाह संबंधों में नए कानून और नारी के स्वतन्त्र इकाई के रुप में उसकी अस्मिता पर बहस छिड़ी, स्वछन्द प्रेम, विवाहेत्तर प्रेम, और सेक्स संबंधी नैतिकता के मानदण्ड बदले। इससे भारतीय समाज में परम्परागत मूल्यों मे परिवर्तन, विवाह संस्था में दरारें और परिवारों के विघटन की यह प्रक्रिया महानगरों से शुरु हुई और क्रमशः कस्बों में फैलती गई। मनोवैज्ञानिक स्तर पर यह वर्ग असंतुष्ट, आत्मप्रदर्शनकारी, चिड़चिड़ा, निराश मूल्यहीन और कुण्ठित होता गया।

आधे–अधूरे नाटक के पात्र – आज के समाज के इसी मध्य वर्ग के प्रतिनिधि पात्र हैं ऐसे तमाम लोगों की अभिशप्त जिन्दगी का प्रामाणिक दस्तावेज है। आधे–अधूरे का कथ्य एवं शीर्षक इसी तथ्य को इंगित करता है इस नाटक में अधूरे का मतलब इनकम्पलीट और आधे का मतलब हाफ। यह इसी आधे–अधूरे पुरुष महेन्द्रनाथ के परिवार की कहानी है जिसे परिस्थितियाँ निचले वर्ग की ओर धकेलती जा रहीं हैं उस हीनता की स्थिति में वह परिवार में रबड़ स्टाम्प की तरह हो जाता है जिसे जो चाहे ठप्पा लगाकर अपना उल्लू सीधा कर लेता है और सावित्री जो उसकी पत्नी है पति के निकम्मेपन की वजह से उस पर खीझती है और उसे अधूरा साबित करती

हुई पूर्ण पुरुषत्व की तलाश में अन्य पुरुषों से संबंध बनाने की कोशिश में भटकती रहती है और इस कोशिश में वह न तो पुराने संबंधों को झटक कर तोड़ पाती है और न ही इतर संबंधों को बना पाती है और अन्त में परिवार के सभी सदस्यों पर चिढ़ती हुई, नियति नटी के इशारे से फिर से घर की अभिशप्त जिन्दगी की ओर लौट आती है। इसी अन्तद्वन्द्व को नाट्यकार ने अन्तिम दृश्य के मातमी संगीत और खण्डित प्रकाश के द्वारा साकार किया है। जहाँ सावित्री के घर की चाह स्वयं राकेश जी को घर की तलाश है जिसे वे तीन विवाह करने के बाद ही पा सके थे। उनके पहले दो विवाह असफल रहे और दाम्पत्य सुख के अभाव को इस आधे अधूरे संबंधों के माध्यम से प्रत्यारोपित किया है। सावित्री का यह कथन – एक आदमी घर बसाता है। क्यों बसाता है? एक जरुरत पूरी करने के लिए। कौन सी जरुरत ? अपने अन्दर के किसी को ...एक अधूरा पन कह लीजिए उसे ...उसको भर सकने की। इस तरह उसे अपने लिए ..... अपने मे पूरा होना है ? ऐसी बातों से यही व्यक्त होता है कि आधे–अधूरे में घर की तलाश है, जो अपनी अर्थवत्ता को सार्थक बनाए हुए है।

इस नाटक का कथ्य इस बात को रेखांकित करता है कि पति–पत्नी के बीच किसी ऐसे सामंजस्य अथवा समीकरण की कोई संभावना नहीं हो सकती जिसमें ये परस्पर खार खाए साथ–साथ रह सकते हों और इस विडम्बनापूर्ण स्थिति की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि ये अलग भी नहीं हो सकते।

परिवेश– यह नाटक विघटित परिवार में व्याप्त दमघोंटू वातावरण और उससे उबरने के लिए तड़पते हुए व्यक्तियों की विवशता पेश करता है पति–पत्नी, भाई–बहन माँ–बाप और बेटे बेटियों का परस्पर संबंध घृणा, कुढ़न और गाली गलौज तक सीमित है। पति–पत्नी की टूटन घर के सारे वातावरण को जहरीला बना देती है। बिन्नी जिसे हमेशा हवा कहती है घर की इस हवा में घुटन असंतोष, बिखराव के सिवा कुछ नहीं है। अशोक फिकरे कसते हुए अपनी मम्मी से पूछता है, इसे घर कहती हो तुम ? सचमुच अशोक के इस व्यंग्य में कड़वा यथार्थ व्यंजित हुआ है। इस प्रकार के वातावरण में बच्चों का व्यक्तित्व कुंठित हुआ है। अशोक आवारा बन गया है। वह कैसैनोवा की किताबें पढ़ने लगा है। सारा दिन अश्लील तस्वीरें कैंची से काटता रहता है। छोटी लड़की किन्नी तुनुकमिजाज और बदजुबान होने के साथ इस उम्र में यौन संबंधी बातों में दिलचस्पी लेने लगी है। बड़ों के बुरे व्यवहार का छोटों पर कितना कुप्रभाव पड़ता है इसका जीवंत उदाहरण अशोक और किन्नी हैं। सभी मानसिक रुप से अस्वस्थ हैं अपने में आधे–अधूरे।

संवाद, भाषा–शैली – आधे–अधूरे के चरित्रों की तनावपूर्ण विस्फोटक मनःस्थितियों का पूरी सच्चाई उष्मा और विश्वसनीयता के साथ समकालीन मुहावरे और बोलचाल की सृजनात्मक भाषा में प्रस्तुत आधुनिक नाटक की बहुत बड़ी चुनौती थी जिसे राकेश जी ने स्वीकार किया है। भाषा जीवन के कितने निकट है इसका आभास इन उदाहरणो ंसे मिल जाता है घर घुसरा, नाशुक्रे आदमी रबर स्टैम्प आदि शब्द पात्रों के आक्रोश और खीझ को व्यक्त करने के साथ ही पात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को खोलकर रखते हैं।

नाटक में हो–हो और हूँ हूँ हूँ आदि शब्द ध्वनि सूचक मात्र न होकर पात्र के बिखराव और झल्लाहट को प्रकट करते हैं। नाटकीय संवादों में एक कशिश है जो बराबर मन को मोह लेती है। संवाद इतने चुस्त एवं व्यजंनापूर्ण हैं कि कथा स्थितियाँ अपने आप मे खुलती हैं। कई स्थलों पर मौन या चुप्पी मध्वर्गीय जीवन की टूटन और तनाव को गहराई से व्यक्त करती है।

दृश्य सज्जा, प्रकाश व्यवस्था, ध्वनि संयोजन और रंग निर्देश– आधे–अधूरे की दृश्य सज्जा नाटक की मूल संवेदना से गूँथी है। नाटक के पहले सेट में परदा उठते ही एक कमरा जिसमें घर के व्यतीत स्तर के कई टूटते अवशेष–सोफा सेट, डाइनिगं टेबल, टूटा टी सेट, इस घर की तंग हालत के साथ उनकी टूटन और घुटन को व्यंजित करते हैं। एक खंडहर की आत्मा "को व्यक्त करता हालात संगीत पहले अंक के आखिरी संवाद के बाद सुनाई देता

है मंच पर पूरा अँधेरा होने के साथ रुक जाता है उसके बाद कैचीं की चक–चक–चक आवाज का सुनाई देना घर की जर्जरता, परिवार का बिखराव मूल्यों के विघटन को अर्थवत्ता के साथ उभारता है। नाटक के अन्त में "हल्का मातमी संगीत "उभरता है जो महेन्द्रनाथ और सावित्री के संबंध की दारुण नियति के संत्रास को सांकेतिक रुप में अभिव्यक्त करता है।

अभिनेयता – अभिनेयता की दृष्टि से आधे–अधूरे आधुनिक हिन्दी रंगमंच का सबसे अधिक सफल नाटक कहा जा सकता है मराठी, कोंकणी, अंग्रेजी आदि मे अनूदित होकर इसका सफल मंचन हुआ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रंग मंचीय सफलता का सबसे बड़ा कारण नाटककार की सूक्ष्म रंगचेतना है। इसमें मोहन राकेश जी ने यथार्थ जीवन के सघन अनुभव खंड को निरावरण रुप में प्रस्तुत करने का उपक्रम किया है। अतः यह एक सार्थक नाटक के रूप में अपनी परम्परा कायम कर सका।

संदर्भ ग्रन्थ

- मोहन राकेश का साहित्य : समग्र मूल्याकंन – सुरेश चन्द्र शुक्ल, आर्य प्रकाशन मंडल, दिल्ली
- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : मोहन राकेश के विशेष सन्दर्भ में – रीता कुमार, राजकमल प्रकाशन
- आधे अधूरे – मोहन राकेश, राजपाल एंड सन्स
- बारह सो छब्बीस बटा सात नाट्य रुपान्तर – जितेन्द्र मित्तल, वाणी प्रकाशन – 1994, संस्करण
- आषाढ़ का एक दिन, राजपाल एंड सन्स – 1994

❑❑

अज्ञेय का मूल्यांकन समग्रता में करने वालों में प्रो0 रामकमल राय का नाम प्रमुख है। जिजीविशा और जीवटता अज्ञेय के कृति साहित्य की पहचान है। सामाजिकता में निजत्व का विलय नहीं बल्कि साथ,साहचर्य–सान्निध्य यही दृष्टि है जो अज्ञेय के अद्वितीय अवदान को एक सम्यक निर्मिति देती है। कहने को तो डॉ0 रामकमल राय लोहियावादी थे लेकिन अपने साहित्य में आपने ज्यादा घालमेल नहीं किया। वस्तुतः डॉ0 रामकमल साहित्य के निश्चल प्राणी थे, विनीत, विनम्र और साहित्यकारों के प्रति अनुरागी। कुल मिलाकर वर्तमान में आप साहित्य के अजातशत्रु हैं।

✍ कृपया उपरोक्त विषय पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोध ापूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख/लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

महादेवी का काव्य : विरह का जलजात

डॉ0 कमल प्रभा कपानी
प्राचार्य, एसो. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
पंचायत कालेज बरगढ़, ओडिशा

छायावादी युग की कोकिला महादेवी का जीवन ही विरह का जलजात था। इसलिये उन्होंने अपने गीतों में जीवन को विरह का जलजात रुपक माना है। जिस कवियत्री का जीवन मानवता वादी करुणा से ओतप्रोत है, जगत की पीड़ा, विषाद और संघर्षों को अपने जीवन में आत्मसात किया हो उनके लिये जीवन का यह रूपक सटीक लगता है।

विरह का जलजात जीवन
विरह का जलजात
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस, इसका अश्रु गिनती रात।

महादेवी जीवन को विरह के जलजात की संज्ञा देती हैं इसके पीछे उनकी रहस्यवादी अध्यात्म का दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। जीवात्मा परमात्मा से विमुक्त हुई दुःख और वेदना से परिपूर्ण हो उसी परमात्मा के वियोग में विफल हो उसे मंदिर मस्जिद में ढूँढती है। इस विरह के जलजात जीवन का जन्म दुःख ही से हुआ है और उसे करुणा में ही आवास मिला है। जिस क्षणिक विरह के जलजात जीवन को दिवस का प्रतिफल अश्रु चुनता है और रात भी अश्रु ही गिनती है। इस विरह रूपी जलजात जीवन के उर में आँसुओं का कोष है और होठों में आँसुओं की टकसाल भरी है। उसी आँसुओं के तरल जलकण से इस जलजात का मृदुगति धन सा क्षण भंगुर है। कवियत्री संसार के जीवों की उत्पत्ति उनके सांसारिक मायावी आकर्षण से बंधे मोह से व्याप्त दुःख और वेदना की ओर इंगित करती है। यह जीवन की नश्वरता क्षणभंगुरता ही है। महादेवी का जीवन बौद्ध दर्शन को अनुप्रेरित रहा। जिसमें जीवन को नश्वर और वेदनापूर्ण बतलाया गया है। अतः महादेवी ने भी उस दर्शन को अपने जीवन में आत्मसात करते हुये इस गीत में विरह के जलजात का साँगरुपक दे डाला। महादेवी का व्यक्तिगत जीवन भी नैराश्यपूर्ण रहा। इसकी अभिव्यक्ति उनके इस गीत में हुई।

''शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सबेरा
प्राण आकुल के लिये
संगी मिला केवल अँधेरा
मिलन का मत नाम ले
मैं विरह में चिर हूँ''

नारी का एक रुप पत्नी का होता है जिसे कवयित्री ने अपने जीवन में भोगा ही नहीं। अपने बचपन से ही पति का वियोग उनके प्राणों के लिये कसक बन रह गया। उसी की टीस बराबर सालती रही, मधुमास की उमंग न उन्होंने कभी देखी, न ही मिलन का आनन्द। अतः विरह का संसार ही उनका पर्याय रहा। उनका तन दीपक की तरह प्रिय के पथ को आलोकित करने के लिये जलता रहा। प्रिय का नाम उनका प्राणपिक पुकारता रहा उसी प्रिय के विरह में वह मिटती गई।

''मैं मिटी निस्सीम प्रिय में
वह गया बंध लघु हृदय में

अब विरह की रात को तू
चिर मिलन का प्रात रे कह।''

उस असीम प्रिय के विरह में वह आँसुओं की माला अर्घ्य के रूप में चढ़ाती रही, स्नेह भरा दीपक मन उनके वियोग में जलता रहा। उसी प्रिय की आराधना में उसके पुलकित रोम अक्षत रूप में, तथा पीड़ा चन्दन रूप में चढ़ाती रही।

''अक्षत पुलकित रोम मधुर,
मेरी पीड़ा का चन्दन रे
स्नेह भरा जलता है झिलमिल
मेरा यह दीपक मन रे।''

विरह की ज्वाला में तम महादेवी साधिका बन गई है, उसका रोम प्रिय का चिंतन करते हुये पुलकित और प्रेम से भरा दीपक मन जलता रहता है। अब मिलन और विरह का कोई भेद नहीं रहा।

'विरह की घडियाँ हुई आलि मधुर मधुकीयामिनी सी'। सांसारिक विरह मिलन के भेद भाव से ऊपर उठकर कवियत्री का साधना पूत मन असीम प्रियतम में एकाकार हो गया है। अतः विरह के सभी प्राणियों में उसी प्रिय की झलक देखती हुई वह करुणा की बदली उनकी वेदना में अभिभूत होती है।

''मैं नीर भरी दुख की बदली
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झारणी मचली।''

कवियत्री अपने विरह जनित वेदना को जग में प्रक्षेपित करते हुये उनके जगत के सभी प्राणियों के दुःख से तादात्म करती है। अतः यहाँ मनोविज्ञान का प्रक्षेपण (Projection) तथा तादात्मय (Identification) सिद्धान्त परिलक्षित होता है। मनोविज्ञान कहता है कि दुःखी नारी (विरहणी) अपने दुःख में सभी प्राणियों के दुख को एकाकार करती है। अतः यह नारी कवियत्री अपने दुःख में सभी के दुःख को आरोपित करती है करुणा की बदली बन कर उनके दुःख को मिटाना चाहती है। यहीं पर छायावादी कवियत्री महादेवी बौद्ध करुणा के दर्शन से प्रेरित विश्व कल्याण की भावना से भर जाती है और कह उठती है–

''आना हो उर में तभी हम में सजेगा आज पानी
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका
राख क्षणिक पतंग की है अमर दीपक की निशानी
है तुझे अंगारश्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना।''

विरह ज्वाला को उर में छिपाये दृगों में आँसुओं की टकसाल बरसाती, क्षण–क्षण अंगार में सुलगती दुख के आँगन में कलियाँ बिछाने का संकल्प लेती है।

''सूने से नयन नहीं
जिनमें बनते आँसू जाती
वह प्राणों की सेज नहीं
जिनमें पीड़ा सोती''
''ऐसा तेरा लोक वेदना
नही, नहीं जिसमें अवसाद

जलना जाना नहीं, नहीं
जिसने जाना मिटने का स्वाद''

महादेवी उस नयनों को व्यर्थ बताती है जिसमें आँसू के मोती नहीं उन प्राणों की सेज को निरर्थक बताती हैं जिसमें विरह जनित पीड़ा नहीं। उसने अपनी पीड़ा का साम्राज्य ही दबा डाला है जिसमें उसमें तिलतिल जलना और मिटने का स्वाद अनोखा लगता है। इसके आगे की अमरता और बुद्ध के निर्वाण को भी ठुकरा देती है ।

''क्या अमरो का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार
रहने दो हे देव
और यह मेरा मिटने का अधिकार।''

इस पीड़ा के साम्राज्य में वह अकेली मतवाली रानी है। उसमें वह प्राणों का दीप जलाकर दीवाली मनाती है।

''इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था पीड़ा का
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का।''
''अपने इस सूनेपन बाती
मैं हूँ रानी मतवाली
प्राणों का दीप जलाकर
करती रहती दीवाली।''

महादेवी अपने जीवन को ध्येय मानती हैं। वह तृप्ति का कण भी अपने छोटे से जीवन से मरना नहीं चाहती। अपनी आँखों को प्यासी ही रहना देना चाहती है जिससे वह आँसू के सागर भर सके।

''मेरे छोटे जीवन में
देना न तृप्ति का कण भर
रहने दो प्यासी आँखे
भरती आँसू के सागर।''

इसी अतृप्ति और प्यासी आँखों में वह जगत् के खारे आँसुओं का सागर उलीच लेना चाहती है। जगत के वेदना को अपने अन्दर आत्मसात कर विश्व के कण–कण से परिचित हो जाना चाहती है।

''तुम मानस से बस जाओ
में छिप दुःख
मैं तुम्हें ढूढने के भिस
परिचित हो लूँ कण कण से।''

महादेवी के जीवन का यह दर्शन सर्वात्मवाद के सिद्धान्त का निदर्शन है। जिसमें कबीर की वाणी का भी उद्घोष है –

''मोको कहो ढूँढों रे बन्दे
मैं तरो तेरे पास में
न मैं मस्जिद न मैं मन्दिर न काबे कैलाश में
ढूँढ़ सके तो ढूँढ़ ही लाया
सब स्वासों की स्वास में।''

कबीर के घट घटवासी अन्तर्यामी वाली उक्ति महादेवी के गीतों में सर्वत्र परिलक्षित होती है। अपने को सर्वस्व न्यौछावर करने और मिटा देने में ही साधिका का ध्येय है। वह प्रिय के विरह में मर मिटने में अपना जीवन सार्थक मानती हुई प्रकृति के कण–कण में इसी नियम को देखती है।

''स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार
दीप करता आलोक प्रसार
गला कर मृतपिण्डों में प्राण
वीज करता असंख्य निर्माण
सृष्टि का है यह अमिट विधान
एक मिटने में सौ वरदान।''

इसी मिटने के अधिकार को वह खोना नहीं चाहती। करुणा की बदली बन पृथ्वी के कण–कण में नव जीवन बन अंकुरित होना चाहती है। इस करुण अभाव में, अतृप्ति के संसार में वह तृप्त होना चाहती है।

''एक करुणा अभाव में चिर
तृप्ति का संसार संचित
एक लघु देर
निर्वाण के वरदान रात रात
पा लिया मैने किसे इस
वेदना के मधुर में?
कौन तुम मेरे हृदय में।''

कवियत्री ने वेदना के मधुर क्रय में अपने प्रियतम को हृदय में पा लिया है। इस वेदना के बदले वह निर्वाण के शतशत वरदान को भी लुटा देना चाहती है। उसे करुणा में ही सुख और आनन्द की तृप्ति मिलती है। अतः वह चुनौती देती हुई कहती है।

''क्या अमरो को लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार।''

विरह में दीप्त साधिका, इतने स्थित प्रज्ञ हो चुकी है कि वह विरह, मिलन, सुख दुख के भेद से परे हो चुकी है।

''पाने में तुमको खोऊँ
खोने में समझूँ पाना
यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना।''

वह विरह को शिशु सा हृदय से चिपकाये हुये उसी में तृप्ति अनुभव करती है। अतः इस चिर अतृप्त लघु जीवन को वह अमरों से भी श्रेष्ठ मानती हुई चुनौती देती हुई लिखती है।

''मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को पीड़ा
उनके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?''

प्रिय की निर्मम पीड़ा को देव लोक भी नहीं समझ सकते जिस वेदना को विरह नारी ने अपने हृदय में पाला है। अतः वह इस विरह के जलजात जीवन में भी उस दिव्य लोक से श्रेष्ठ है। अतः वह चुनौती देती हुई कहती है।

''उनसे कैसा छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन
उनमें
उनमें असीम सूनापन''

अपने लघुतम जीवन को उस अनन्त करुणामय जीवन को एक तुला पर तोलते हुये कहती है। कि उस असीम करुणामय से उसका भिक्षुक जीवन किस तरह छोटा है ? उसमें जहाँ अनन्त करुणा है वही उसके अपने जीवन में असीम सूनापन है और यह सूनापन उसी लीलामय का दिया हुआ है। अतः विरहणी आत्मा की एक ही अभिलाषा है कि उस लीलामय के हाथों का कमल बन सके। उसका जीवन का जलजात उसी करुणामय के हाथों का लीला कमल बन सके–

''जो तुम्हारा हो सके लीला कमल यह आज
खिल उठे नियम तुम्हारी देखस्मित का प्रातः
जीवन विरह का जलजात।''

विरह की वेदना को अभिभूत इस विरह के जलजात जीवन में कवियत्री की एक ही आह है कि उस करुणामय की एक ही करुणा दृष्टी उसे भी प्रभात रश्मि उसके जलजात जीवन को विकसित कर सके। यदि उस प्रियतम को उसकी यह विनती भी मंजूर नहीं, तो फिर वह चुनौती देती है।

''चिन्ता क्या है निर्भय
बुझ जाये दीपक मेरा
हो जायेगा तेरा ही
पीड़ा का राज्य अंधेरा।''

विरहनी उस असीम प्रियतम को चुनौती देती है यदि वह उसे करुणामयी दृष्टि से वंचित करेंगे तो उसका ही दिया हुआ पीड़ा का साम्राज्य अंधेरा हो जाएगा, अर्थात साधिका के प्राण जो दीपक के भाँति उसकी प्रतीक्षा में जल रहे हैं। उसके मिलन से पूर्व ही यदि वह प्राण दीपक बुझ गया तो उसी का दिया पीड़ा के साम्राज्य में अंधेरा छा जायेगा। इसी लौ में जलते हुये महादेवी अपने प्रियतम के हाथों लीला कमल बनाने की नन्ही अभिलाषा व्यक्त करती हैं और आँसुओं की अर्ध्यमाल किये हुये प्रियतम का पथ निहारती रहती है। कवियत्री प्रिय की अमर प्रतीक्षा में विरह पथिक बन कर रह जाती है।

''तुम अमर प्रतीक्षा हो मैं
पग विरह पथिक धीमा
आते जाते मिट जाऊँ
पाऊँ न पद भी जी।''

महादेवी के काव्य में संस्कारों के अनुशासन में दासी रुपी आत्मा

मैं फूलों से रोती वे
कलारुप में मुस्काते
मै पथ में बिछ जाती हूँ
वे सौरभ में उड़ जाते
विरह के जलजात जीवन के।

वे कहती हैं उनको मैं इतिहास के दौरान पलती पीड़ा में अपनी पुतली में देख नहीं पहचानती यह कौन बताएगा। आँचल जर्जर भले रहा किसमें पुतली को देखूँ पर स्वप्न की माया से ऑचल भर रही पर उसके प्राण थक गये और वह भूलती गयी। अपने को भूलती गई :

''जन्म से ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छवास
चुरा लाया जो विश्व समीर
वही पीड़ा की पहली साँस।''

वस्तुगत और आत्मगत होते एकांकी अकेले को स्वयं से दी गई उस विश्व के समस्त पथ को आलोकित करने वाली मोम की तरह अपने को गलाती हुई पर के प्रति स्नेह का आईना ही टूट जाता है जिसमें स्थिति व्यष्टि और समष्टि भी पुरुष और स्त्री की अहं और निरह की स्थिति बरकरार दीखती है। यह स्थिति भावुकता के रूप में गाँधी ने भारत में पनपने दी थी। जिसके पीछे बह्मसूत्र उपनिषद् गीता और मनुस्मृति की लम्बी परम्परा थी। जिसे भाव स्तर पर महादेवी ने संश्लिष्ट किया।

''टूट गया वह दर्पण निर्मम
जिसमें हँस दी मेरी छाया
मुझसे
अश्रुहास ने विश्व सजा
रहते थे
प्रिय जिसके परदेश में।''

इस अद्वैत स्थिति में विरहणी आत्मा परमात्मा के साथ एक हो गई। नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय हो गये। उसमें मिलन विरह की उलझन निश दिन सुख दुःख का भेद तिरोहित हो गया।

तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या?
नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज
हो रहे कैसी उलझन
रोम रोम में होता री सखि
एक नया डर का सा स्पन्दन।

यहाँ तक आते आते महादेवी पूर्ण वैष्णवी हो गई। प्रिय के नाम की रचना और पर पीड़ा के ज्ञान में विश्व बन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत कर दिया। लोचन से हृदय रिसने लगा–

''झरते नित लोचन मेरे हो
जलती जो युग युग से उज्जवल
आत्मा से रच रच मुक्ताहल
वह तारक माला उनकी
चल विद्युत के पंकज मेरे हो।''

विद्युत के कण अंधेरे में एक कौध देकर आशा के दीप्ति बन गये। महादेवी की साधना ने तब की ऊँचाई को प्राप्त कर लिया जहाँ प्रिय की आराधना में किसी भी कर्म वायु की भी आवश्यकता नहीं है भावयुक्त, प्रेमयुक्त, कर्म का ही मूल्य है। भाव के बिना सारे कर्म नीचा ऊँचा भर रह जाता है।

''क्या पूजा क्या अर्चन रे ?''

यह कर्मकांडियों के प्रति व्यंग्य है। महादेवी की विरह साधना ने आराधना को कर्मकाण्ड में बतलाकर बुद्ध और शंकर में।

''शून्य मंदिर में बनूँगी।
मैं प्रतिमा तुम्हारी
अर्चन हो फूल माले
क्षार हो जल अर्घ्य होले
आज करुणा उजला
दुःख हो मेरा पुजारी''

निराकार और साकार की भावना ही खाई की साधिका ने पार कर दिया है और, शूल और आँखों के अर्चना के अर्ध्य बना कर दुःख को पुजारी का रुपक बना डाला। यह अर्चना अनोखी है। जिसमें करुणा का दुःख ही पुजारी बन गया है और मंदिर में स्वयं ही निराकार प्रियतम की प्रतिमा बन गई है। ऐसी अर्चना आदर्शमय है जिसमें साधिका अपने दुःख को सबमें देखकर नवजीवन लाने वाली चातक प्रिय घटा के रूप को अपना आदर्श माना है–

''जिसको पथ–शूलों का भय हो
वह खोजे निज निर्जन गहूर
प्रिय के संदेशों का वाहक
मैं सूख दुःख भरुँगी भूज भर।''

यहाँ साधिका कर्मयोगिनी बनकर पलायन कृति को अपनाने वाले सन्यासी जीवन को निरस्कृत करते हुये जीवन में सुख दुःख भुजाओं में भरने का साहस रखती है। अतः महादेवी को पलायनवादी कवियत्री कहने वाले आलोचकों के लिये यह गीत ही एक चुनौती है, जहाँ वह कहती है।

''तू न अपनी छाह को अपने लिये बनाना
अलि मैं कण–कण को जान जली
सबका क्रन्दन पहचान चली।''

कवियत्री ने अपने जीवन–दर्शन में दुःखवाद से प्रेरणा पाई है। योगिनी साधिका बन वह समाज सेविका बनना चाहती है। विरह की ज्वाला में तपकर वह मसीहा बन गई है। उसका जीवन दर्शन है।

''क्या हार बनेगा वह जिसमें सीखा न हृदय को
मेरे हँसते अधर नहीं जंग की आँसू लड़िया देखो
मेरे गीले पलक छुओ मत मुरझाई कलियाँ देखो।''

प्रियतम से मिली वियोग की पीड़ा को उदान्त बनाकर साधिका ने करुणा की घटा बन जगत का मंगल करना ही चाहती है। स्वयं को प्रिय की सुहागिनी बनाते हुये अभिमानिनी का भी अभिनय करती है।

''मैं मिटूँ प्रिय में मिटा ज्यों सिकता में सलिल कण
सजनी मधुर निजत्व
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।''

नारी का यह अभिमानिनी रुप महादेवी में भी मिलता है जहाँ वह बुद्ध को अपने द्वार पर बुला ही लेती हैं वह मीरा की भक्ति के उत्कर्ष को प्राप्त कर जाती हैं। महादेवी के भीतर नारी की बेबसी और पीड़ा का एक इतिहास है, जहाँ मोम से उसका तन अब आँसू का मन विद्युत का। वह प्रभाती तक चलने वाली साधना दूत नीरव जलती दीप शिखा है। सबकी अर्चित क्या उसी लौ में पलने दे रही है।

''हिम से सीझा है यह दीपक
आँसू से बाती है गीली

दिन के धनु की आज पड़ी है
क्षितिज रागिनी उतरी ढ़ीली''

महादेवी ने युग और जीवन के हलाहल को पीकर नीलकंठता प्राप्त कर ली है। मीरा के विषपान और निराला की नीलकंठ को आत्मसात करने वाली उस महासाधिका ने जीवन एकाकिनी बरसात का रूप बना डाला। जो प्रियतम के विरह की साधिका बन स्वयं आराध्यमय बन गई।

''हो गई आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले।

X X X

विरह का युग आज दिखा
मिलन के लघु चल सरीखा
दुःख सुख में कौन, तीखा
मैं न जानी और न सीखा।''

मधुर मुझको हो गये सब मधुर प्रिय की हो इस स्थूल जगत की सूक्ष्म की इस कल्पना को कहाँ तक संगत ठहराया जाये। किन्तु जहाँ यथार्थ और कल्पना, स्थूल और सूक्ष्म का, व्यष्ठि और समष्टि का तादात्मय को जीवन का सत्य मानने वाली आराधिका के लिये वेदना ही। एक सूत्र है जो विश्व को ममत्व और करुणामय रहना सिखाती है।

अतः ''विरह का जलजात'' मनुष्य के जीवन की सही व्याख्या करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. आधुनिक कवि महादेवी
   नीरजा
   सान्ध्यगीत
   यामा
   दीपशीखा
2. कबीर ग्रन्थावली

❑❑

प्रयोगवाद और गिरिजाकुमार माथुर

डॉ. शुभा बाजपेयी
हिंदी विभाग
एस.एन.सेन कॉलेज, कानपुर

जीवन के हर क्षेत्र में प्रयोग का बड़ा महत्व है। प्रारम्भ से ही मनुष्य अपने जीवन को उन्नत बनाने के लिए प्रयत्न करता रहा है। आदिम युग से आज तक सभ्यता के विकास की यात्राा के मूल प्रयोग और परीक्षण ही है। हर दिशा में ज्ञान प्राप्त करने की लालसा मनुष्य में विद्यमान रहती है। फिर वह चाहे आत्मगत हो चाहे बाध्यगत। शरीर से लेकर आत्मा तक और प्रकृति से पुरुष तक को जानने की जिज्ञासा मनुष्य में बड़ी सहज है। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयोग आवश्यक है। जीवन की आवश्यकताएँ प्रयोग के लिए प्रेरणा देती हैं। मनुष्यता की इस उन्नत यात्रा का बीज प्रयोग है और फल अद्युनातन ज्ञान–विज्ञान आदि। इतना ही नहीं जब–जब जीवन के किसी क्षेत्रा में रूढ़ियाँ पैर तोड़कर डेरा जगा लेती है। तब–तब प्रयोग उसे ध्वस्त करने में सहायक सिद्ध होता है।''[1]

साहित्य में जो भी नयी धारा प्रवाहित होती है ''अथवा जो भी नये मोड़ परिलक्षित होते हैं। उनका मूलाधार प्रयोग ही हेता है। शंकर देव अवतरे के अनुसार प्रयोग और कुछ भी नहीं है, वह साहित्य की ऐतिहासिक विवशता है। यही उसका प्रयोजन है। विभिन्न देशकाल की सीमाओं में इन प्रवृत्तियों की प्रेरणा से साहित्य में जाने–अनजाने आलोचनात्मक मोड़ आते हैं वे प्रयोग हैं व उन प्रयोगों का उसी दृष्टि से यथार्थ–मूल्यांकन भी प्रयोग है। इस प्रकार के स्वरूप में ही उसका प्रयोजन निहित है।''[2]

अज्ञेय के अनुसार– ''प्रयोग सभी काल के कवियों ने किये हैं'' यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है।[3] प्रयोगवादी काव्य अपने परिवेश की उपज है। नवीन मूल्यों के प्रति एक नयी आस्था व मूल्यों के नवीन प्रतिमानों का बोध देने का आग्रह प्रयोगवादी कविता में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। श्री अज्ञेय जी लिखते हैं कि– ''कुछ वर्ष पूर्व के लेखकों ने अपने को नैतिक खण्डहर के बीच खड़ा हुआ पाया उसके पुनर्निर्माण की तत्कालिता का बोध नये कवियों को है। मूल्यों के मूल स्रोत के बारे में आज जितना आग्रह है उतना पहले कभी नहीं था। इतना अवश्य है कि मानव के बाहर मूल्यों के किसी अधिदैविक स्रोतों का आग्रह आज नहीं है तथा मानव मूल्यों का उद्‌गम भी साधारण मानव से है, किसी काल्पनिक आदर्श अथवा प्रतीक पुरुष से नहीं।''[4]

विराट विघटन और नये मूल्य बीच का उदय इन दोनों के तनाव के मध्य लेखन/प्रयोगवाद इस विघटन तथा नवीन मूल्यों की स्थापना को वाणी देने के लिए अनिवार्य था।

आधुनिक जीवन की तीव्र गति से संचालित कविता ने कुछ ही वर्षों में कितनी ही करवटें ली हैं। प्रत्येक दशक में उसके दृष्टिकोण, संवेदन तथा शिल्प सभी में बहुत भेद परिलक्षित होता है। युग विशेष के काव्य में स्वाभाविक अनुभूतियों, नवीन दृष्टिकोण और नवीन चेतना का स्फुरण हुआ करता है तथा इस नवीन स्फुरण में कविता परम्परागत लीक को छोड़कर नया पथ ग्रहण करती है और काव्य जगत में नवीन परिवर्तन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। यही कारण है कि हिंदी कविता में भी समय–समय पर नवीन प्रवृत्तियाँ विकसित होती रहीं एवं उक्त प्रवृत्तियों को 'वाद' भी कहा गया। हिंदी कविता इन वादों के बीच ही जन्मी, पनपी और एक विराट अक्षय वट की तरह अपनी जड़ों को देशान्तर तक फैला चुकी है। इस संदर्भ में छायावाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद आदि कुछ नाम उल्लेखनीय हैं। डॉ. विनयमोहन शर्मा के शब्दों में ''आधुनिक हिंदी कविता में एक नये वाद का स्वर सुनाई देने लगा है'' और वह है प्रयोगवाद। इस प्रकार की रचनाओं में आत्मपरक भावनाओं व परस्पर विचारों के साथ सामंजस्य स्थापित करने का दावा किया जाता है। शैली की अभिनवता, नूतन, प्रतीक, कल्पनाएँ, प्रचलित पद तथा

नवीन छन्दों का सृजन इनकी विशेषता बतायी जाती है।''[5]

प्रयोगवाद हिन्दी साहित्य की आधुनिकतम प्रवृत्ति है। जिस प्रकार प्रगतिवाद को छायावाद की प्रतिक्रिया कहा जाता है उसी प्रकार 'प्रयोगवाद' प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया है।

तार सप्तक के सात कवियों (अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा) में गिरजा कुमार माथुर भी सम्मिलित हैं, अतः उन्हें निस्संकोच रूप से प्रयोगवादी कवि कहा जा सकता है। साथ ही 'तार सप्तक' के प्रथम संस्करण में अपने वक्तव्य में स्वयं माथुर जी ने लिखा है कि ''ध्वनि विधान में मेरे प्रयोग मुख्यतः स्वर ध्वनियों के हैं।.... जहाँ जिस वस्तु को इंगित करना होता है, वहाँ उस ध्वनि का उतना ही प्रयोग है।'' इसी प्रकार 'तारसप्तक' के दूसरे संस्करण में 'पुनश्च' शीर्षक से माथुर जी ने जो अपना विस्तृत वक्तव्य दूसरी बार दिया है उसमें उन्होंने पुनः यही लिखा है कि आधुनिक बोध की काव्य धारा को प्रारम्भ हुए अब चौथाई शती बीत चुकी है। तार सप्तक जिसकी प्रथम समवेत अभिव्यक्ति थी, जो चेतना निम्न सन् 1939–40 में उदित हुआ था, वह अब तक हिंदी कविता का सम्पूर्ण क्षितिज आच्छादित कर चुका है और अनेक तीखे संघर्ष तथा विरोधी आघातों के पार आकर अपनी विलग सत्ता स्थापित कर चुका है। कविता की जिस चेतना का प्रादुर्भाव सन् 1939–40 में हुआ था, उसने पिछली समस्त मान्यताओं को बदल डाला व अभूतपूर्व बौद्धिक नवीन्मेष को जन्म दिया। पूरी की पूरी मर्यादा प्रतिस्थापित कर दी गयी। इतनी बड़ी तात्विक क्रांति हिंदी की कविता में कभी नहीं आयी थी।' माथुर जी का कथन है कि ''मुझे गर्व है कि मैं उस क्रांति बिन्दु पर लेखनी लिए उपस्थित था और मुझ पर तथा मेरे कुछ थोड़े से सहधर्मियों पर आधुनिकता का वह नया उठता हुआ आलोक प्रथम बार पड़ा था।... वास्तव में प्रयोगशीलता के साथ हिंदी साहित्य में 'आधुनिकता' का समारम्भ हुआ था, व पिछले पच्चीस वर्ष के काव्य विकास को इसी रूप में समझा जाना उचित है।''

श्री माथुर के उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें प्रयोगों पर पूर्ण आस्था रही है व उन्होंने स्वयं ही प्रयोगवादी काव्यधारा के साथ अपना घनिष्ठ सम्बन्ध होना स्वीकार किया है। इस प्रकार उन्हें प्रयोगवादी कवि समझना अनुपयुक्त नहीं जब पड़ता व डॉ. नगेन्द्र का तो यही स्पष्ट मत है कि ''नये युग की तीसरी प्रवृत्ति है, प्रयोगवाद, जिसका नाम बाद में चलकर नई कविता पड़ गया। इस नई प्रवृत्ति का विकास करने में 'गिरिजा जी' का बहुत बड़ा योगदान है ''साथ ही डॉ. इन्द्रनाथ मदान भी यही कहते हैं कि 'प्रयोगवादी कवियों में अज्ञेय के अतिरिक्त गिरिजा कुमार माथुर आदि के नाम लिये जाते हैं। इसी प्रकार अज्ञेय जी ने 'आज का भारतीय साहित्य में लिखा है' अब जिसे नई कविता कहा जाने लगा है, उसके रूप व मुहावरे के विकास में गिरिजा कुमार माथुर का निश्चित योग रहा है। किन्तु अपने अमेरिका प्रयास से लौटकर उन्होंने जो कविताएँ लिखी हैं, उससे यही ज्ञात होता है कि वे प्रयोग की एक बंधी लीक में पड़ गए हैं' और उस लीक को अति की सीमा तक ले जा रहे हैं।

अधिकांश समीक्षकों के सोद्देश्य श्री माथुर ने भी प्रयोगवाद व नयी कविता को पृथक–पृथक न मानकर दोनों को एक ही माना है' तथा काव्य की प्रगति को लेखा–जोखा प्रस्तुत करने के पश्चात यही कहा है कि उसे प्रयोगवाद या नयी कविता के विलग निकायों में देखना असंगत है। इस प्रकार यदि श्री माथुर को 'नयी कविता' के कवियों में स्थान प्रदान किया जाता है, तो उनका प्रयोगवादी काव्य धारा से भी सहज ही सम्बन्ध स्थापत हो जाता है और स्वयं कवि के उद्‌गारों तथा अन्य कई विचारकों के मतों को ध्यान में रखकर हम श्री गिरिजा कुमार माथुर को प्रयोगवाद या नयी कविता के कवियों में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करने के पक्ष में है। कुछ समीक्षक श्री माथुर को किसी भी काव्य प्रवृत्ति से सम्बन्धित न मानकर श्री विशम्भर मानव के शब्दों में यही कहते हैं कि ''वास्तविक स्थिति यह है कि मंजीर के रचनाकाल में ये छायावाद से प्रभावित रहे। नाश और निर्माण पर प्रगतिवाद का स्पष्ट प्रभाव पाया जाता है। 'धूप के धान' व शिला पंख चमकीले' प्रयोगवाद से प्रभावित काव्य कृतियाँ हैं।''

श्री गिरिजा कुमार माथुर जी विचारधारा अन्य प्रयोगवादी समीक्षकों से कुछ पृथकता रखती है। वे न केनवादियों की तरह जटिलता को काव्य का प्राणतत्व नहीं मानते और न अज्ञेय की तरह उसे कलाकार की विशालता व आपधर्म के रूप में स्वीकार करते हैं। वे दुरूहता का श्रेष्ठता का निकष नहीं मानते व ये भी स्वीकार

करने में आपत्ति है कि श्रेष्ठ साहित्य दुरूहता से संपृक्त होता है। उनका विचार है कि अत्यंत जटिल अनुभवों को अत्यन्त सहज और सर्वग्राहय रूप में व्यक्त करना तथा जटिलताओं के मूल में निहित सार्वजनिक सत्य के सूत्रा को प्रकट करना श्रेष्ठ साहित्य का लक्षण है। वे मानते हैं कि यदि कवि मानस में जटिलता विद्यमान है, तो उसका प्रभाव अभिव्यंजना के उपकरणों की अस्वाभाविकता, अपूर्णता, भग्नता तथा रूप व्यक्तित्व–विहीनता में लक्षित किया जा सकता है। फलतः भाषा रूपित व कृत्रिाम हो जाती है। प्रतीक, श्रम साध्य चेष्टित व निरर्थक हो जाते हैं, उपमान तारतम्य विहीन हो जाते हैं तथा छन्द के नाम पर भ्रष्ट गद्य भी नहीं मिलता[7] माथुर के विचार पार्थक्य के कारण ही सम्भवतः अज्ञेय ने उन्हें कवि न मानकर गीतकार कहा है।[8]

अतः श्री माथुर की प्रयोगवादी कविताओं में यथार्थ बोध व सामाजिक दृष्टिकोण की प्रधानता है। व्यक्ति को समाज के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा गया है। वर्तमान समाज की आर्थिक विषमताओं को कवि ने प्रस्तुत किया है। उन्हें कृत्रिाम आवरणों में छिपाने का प्रयास नहीं किया है। समाज के शोषित व तिरस्कृत लोगों के प्रति कवि की पूर्ण सहानुभूति है। क्योंकि वे बहुसंख्यक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। गांवों की शस्यश्यामला भूमि, किसानों, मजदूरों व इन सबसे बढ़कर मध्यवर्गीय क्लर्क के जीवन के अभावों व विषमताओं का चित्रा तथा कवि के यथार्थबोध का ही परिचायक है। 'नाश और निर्माण' की मंशीन का पुर्जा, नामक कविता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस कविता में एक ओर उच्च वैभव का चित्राण है, तो दूसरी ओर अल्प आमदनी वाले 'क्लर्क' की दिनचर्या का चित्राण है, जो सर्दी, गर्मी की परवाह किए बिना सुबह यत्रातत्रा उठता है, फटे कपड़ों से कड़कड़ाती सर्दी का सामना करता हुआ, बगल में मोटी फाइलें समाप्त हो गयी हैं। जीवन भावहीन मशीन बन गया है–

शीत हवा में ठंडे सात बजे हैं
ठिठुरन से सूरज की गरमी हुई है
सारा नगर लिफाफों में सिकुड़ा सोता है,
पर वह मजबूरी से कांपता उठ आया है।
x x x x
रफू किया उसका वह स्वेटर
तीन सर्दियाँ देख चुका है,
उसका जीवन, जीवन हीन मशीन बन गया
जोड़ों के दिन की मिठास
अब जहर हुई।''[9]

माथुर जी ने जहाँ अभावग्रस्त जीवन का चित्रण किया है, वहीं वह आशा भी व्यक्त की है कि जीवन की विषम परिस्थिति को मानव–संघर्ष द्वारा अपने अनुकूल बना सकता है। अपने कठोर परिश्रम द्वारा जीवन को फिर सुखी व समृद्ध बना सकता है। वस्तुतः मानव जीवन संघर्ष का जीवन है अपने प्रयत्नों के द्वारा मनुष्य कमजोर तथा विषम अर्थव्यवस्था को भी अपने अनुकूल बना सकता है क्योंकि इस भौतिक संसार में प्रतियोगिता की प्रधानता है। प्रतियोगिता में कमजोर नष्ट हो जाते हैं और साहसी तथा संघर्षरत विजयी होते हैं। संघर्ष को कवि ने अणुबम के रूप में माना है–

''ज्वालामुखी के दीप–सा
संघर्ष का यह लोक है
हिलती हुई धरती यहाँ
हिलती हुई आधार है।
x x x x
संघर्ष का अणुबम यहाँ जांचा गया''

व्यक्ति मानव की प्रतिष्ठा माथुर जी के काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है। उन्होंने अपने काव्य में लघुमानव

की प्रतिष्ठा की है और न अति मानव की। एक साधारण मध्यवर्गीय मनुष्य को उसकी दुर्बलताओं, सबलताओं सहित काव्य में प्रस्तुत किया गया है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही व्यक्ति के महत्व को स्वीकारा है, क्योंकि सामाजिक चेतना व व्यक्ति चेतना को अलग–अलग रखकर नहीं देखा जा सकता है। इस विषय में माथुर जी के विचार प्रस्तुत हैं ''नयी कविता का क्रमशः विकसित स्वर व्यक्ति पावनता और सामाजिक गरिमा की आकांक्षा का ही स्वर है। उसने निराकार समूह समष्टि का पक्ष ग्रहण नहीं किया, यद्यपि इकाई को सामाजिक संदर्भ से अलग नहीं देखा और न दूसरी और आत्मलीन एकान्तिक व्यक्तिवादिता को ही स्वीकार किया। वह केवल एक जीत का पक्ष लेती है। इकाई रूप आदमी का।

''विकृत हो गये हैं सभी मूल्यमान
सिर्फ घूमता है
रेजगारी–सा इंसान।''

माथुर जी की रचनाओं में व्यक्तित्व की सहज अभिव्यक्ति तो मिलती है किन्तु उसका अहंवादी रूप प्रायः नहीं पाया जाता है। अज्ञेय व मुक्तिबोध की रचनाओं की भांति माथुर जी की रचनाओं में भी यथार्थवाद आदि छटा देखने को मिलती है। कवि ने सामाजिक कल्याण, व्यक्ति की अवमानता किस प्रकार विसर्जित हो गयी है, इसका चित्राण माथुर जी के 'कोणार्क' पर तीसरा पहर कविता में किया है।

''मैं अंकित हो गया हूँ सम्पूर्ण
हर मूर्तित स्थिति में
घटित हुआ हूँ मैं
अब अपना कुछ नहीं है शेष
और अब मैं नहीं हूँ।''[11]

इस प्रकार कवि का मैं समष्टि का घोतक है। यह केवल अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा में ही संलग्न न रहकर उस बहुसंख्यक वर्ग के प्रति भी अपनी कल्याणकारी भावना तथा सहानुभूति प्रकट करता है, जिसने सारे जीवन दुःखों व अभावों को सहा है। इस रूप में माथुर जी का योगदान सर्वथा मौलिक है। उन्होंने अपने दुःख–दर्द से अधिक समाज की पीड़ा को मुखरित किया है।

निष्कर्षतः व्यक्ति के जागरूक व्यक्तित्व और निर्माणोन्मुखी क्षमताओं का चित्राण माथुर जी के काव्य में सर्वत्रा देखा जा सकता है। जो प्रयोगवादी कविता में विशेष रूप से अलग उठ खड़ी होती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रयोगवादी काव्य डॉ. पवन कुमार मिश्र, पृ. 6
2. हिंदी साहित्य में काव्य रूपों का प्रयोग, पृ. 11
3. तार सप्तक, पृ. 75
4. आज का भारतीय साहित्य, पृ. 403
5. गिरिजा कुमार माथुर और उनका काव्य, डॉ. दुर्गाशंकर मिश्रा, पृ. 73
6. गिरिजा कुमार माथुर, धूप के धान, पृ. 11–12
7. अज्ञेय– आज का भारतीय साहित्य, पृ. 393
8. गिरिजा कुमार माथुर नयी कविता की वर्तमान स्थिति नयी कविता, पृ. 5–6
9. वही, पृ. 40
10. जो बंध नहीं सका, माथुर, पृ. 87
11. गिरिजा कुमार माथुर नयी कविता, 5–6, पृ. 41

❑❑

गाँधी दर्शन में रामराज्य की अवधारणा : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ0 जय सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर – संसकृत विभाग
राजकीय महिला महाविद्यालय, अम्बारी, जिला आजमगढ़ (उ.प्र.)

महापुरुषों के वचन सदियों से चर्चा और चिंतन का विषय रहे है। मान्यता है कि जीवन का निचोड़ और अस्तित्व का सार व्यक्ति के शब्दों में निहित होता है। जीवन भर आत्मबल और आत्मशुद्धि के आधार पर किये कार्यो द्वारा गाँधी जी अपने राम के उपदेशों का अनुसरण करने में लगे रहे है। गाँधी दर्शन में राम एक सर्वव्यापी ईश्वरीय शक्ति का स्वरूप है। गाँधी जी के अनुसार – राम को केवल एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व मानकर उनके अस्तित्व के प्रमाणों को खोजना अपनी राह से भटकने के समान था। अपने इसी राम के साथ एकरूपता गाँधी के नैतिक जीवन का लक्ष्य था क्योंकि उनके लिए राम नैतिक मर्यादा का स्त्रोत भी थे और राम नाम को वह अमोद्य अस्त्र मानते थे। उनके राम पर हिन्दू धर्म का एकाधिकार नहीं था। उनके राम हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी के थे। गाँधी दर्शन में गाँधी जी ने ईश्वर अल्लाह दोनों नामों को 'रघुपति राघव राजा–राम' के साथ जोड़ा और रामधुन को स्वंतत्रता संग्राम की टेक बताकर हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रतीक बनाया। गाँधी जी ने राम–नाम को भारत की उदार और सहिष्णु परम्परा को सहेजने और देश में फैली नफरत एवं साम्प्रदायिकता को मिटाने के लिए किया। उन्होंने राम–नाम को शारीरिक, मानसिक और नैतिक व्याधियों से बचने के लिए अचूक औषधि बताया। गाँधी दर्शन में राम राज्य स्थापित करने की बात कई बार कही गई। गाँधी जी के राम–राज्य की परिकल्पना बिल्कुल अलग थी। राम–राज्य अर्थात आदर्श राज्य। किसी एक धर्म विशेष का राज्य नहीं बल्कि नीति और मर्यादा पर आधारित एक ऐसा राज्य जिसमें धर्म, जाति, लिंग, भाषा और क्षेत्र आदि के आधार पर भेद–भाव न हो। प्रत्येक व्यक्ति के पास राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता और अभिव्यक्ति का अधिकार हो। प्रेम और सदभाव जिस राज्य की नींव हो वह रामराज्य है। गाँधी जी के जीवन पर रामकथा में उल्लेखित राम के राज्य अर्थात शासन व्यवस्था का विशेष प्रभाव पड़ा है।

रामकथा मानव जीवन को समुन्नत बनाने वाले नैतिक मूल्यों का अक्षय भंडार है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में रामकथा का विशिष्ट स्थान है। श्रीराम के बिना भारतीयता का अस्तित्व एवं उसकी पहचान संभव नहीं है, राम कथा हिन्दू संस्कृति का पर्याय बन गई है। आधुनिक भारत में आज राम के अमूल्य विचार अत्यंत अनुकरणीय है क्योंकि विश्व इतिहास और विश्व साहित्य में राम के समान अन्य न तो कोई पात्र कभी हुआ है और न कभी होगा। राम को भारत का आदि निर्माता भी कहा जा सकता है। राम का जीवन कितना महान, कितना आदर्श पूर्ण रहा है इस संबंध में कवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा ''राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है। श्रेष्ठ व्यक्ति जो आचरण करते है समाज में अन्य लोग उसी का अनुसरण करते है तथा मर्यादा पूर्ण व्यक्तित्व ही विश्वास का पात्र बन सकता है क्योंकि वहीं लोकधर्म का परिपालन पूर्ण रूपेण कर सकता है। प्राचीन काल से रामकथा मानव जीवन में अमृत की रसधारण बरसा रहा है।

यह कथन सत्य है कि रामकथा की लोकप्रियता का श्रेय स्वयं राम को है। इनका सम्पूर्ण जीवन आदर्श मानव का रहा है उनके आदर्श चरित का वर्णन ही वाल्मीकि रामायण का उद्देश्य है क्योंकि रामायण एक संस्कृत महाकाव्य है जिसकी रचना महर्षि वाल्मीकि ने की थी। हिन्दू धर्म में रामकथा अर्थात रामायण का महत्वपूर्ण स्थान है जिसमें

रिश्तों को कर्तव्यों को समझाया गया है। इसमें एक आदर्श पिता, आदर्श पुत्र, आदर्श पत्नि, आदर्श भाई, आदर्श मित्र और आदर्श राजा को दिखाया गया है। रामायण महाकाव्य में 24000 छन्द और 500 सर्ग है जो सात भागों में विभाजित है। वस्तुतः राम के जीवन का प्रत्येक पक्ष मानव के लिए अनुकरणीय है। राम विषम परिस्थितियों में सहनशीलता और धैर्य का परिचय देते है, उनकी प्रबंधन कथा एवं कुशलता अनोखी रही है।

गाँधी दर्शन और रामकथा (रामराज्य के संदर्भ में) – भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी आधुनिक भारत के महान जननायक, समाज सुधारक और नैतिक दार्शनिक होते हुए भी रामकथा से बहुत अधिक प्रभावित थे। उन्होंने राम के समान धर्म अैर नैतिकता को अपने विचारों में सबसे प्रमुख स्थान दिया है, दूसरे शब्दों में वे नैतिकता, राजनीतिक और अर्थशास्त्र से ऊँचा स्थान देते हैं। यही नहीं गांधी जी के विचार स्वतंत्रता, समानता भयमुक्त समाज, अस्पृश्यता एक गरीबी के अभिशाप से मुक्ति हेतु आर्थिक स्वावलम्बन की, शिक्षा, कर्म और व्यवहार में समानता, साध्य और साधक की पवित्रता, सत्य और अहिंसा द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति सबका भला करना और पारदर्शिता आदि रामकथा से परे नहीं है।

गाँधी जी ने राम के विचारों से प्रभावित होकर एक खुशहाल समाज यानि राम–राज्य को स्थापित करने के लिए उनके द्वारा जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है तथा जिन कार्यों को सम्पादित किया है वे अत्यंत महत्वपूर्ण थे। गाँधी दर्शन भी राम के समान विचारों का पुलिन्दा न होकर व्यवहारिक कार्यों का भी नाम है। जो सादगी सदाचार पर आधारित लोकहितवाद है मानवीय खुशहाली के लिये एक दर्शन है प्रेम और विश्वास समाज की रीढ़ एवं परिवर्तन का माध्यम है। इसकी प्रेम और विश्वास पर गाँधी जी का रामराज्य टिका रहता है जो मार्क्सवादी तलवार से ज्यादा शक्तिशाली व तीव्र है। उनका प्रेम व्यापक एवं प्रभावकारी है जिसे व्यक्तिगत स्तर से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक परिवर्तन बहुत ही आसानी एवं शान्तिपूर्ण तरीके से किया जा सकता है। रामराज्य मानवीय व्यक्तित्व उसकी गरिमा एवं उसकी पवित्रता की पुर्नस्थापना करने पर बल देता है। केन्द्रीयकरण के स्थान पर विकेन्द्रीयकरण संस्थाओं का प्रतिपादन करता है, वे राज्य को शक्ति का पुंज मानकर व्यक्ति स्वतंत्रता की रक्षा के लिए उसकी सत्ता को सीमित करता है। उनका आदर्श लोकतंत्र एक राज्य विहीन और वर्गहीन समाज है, राज्य एक साधन है जिसके द्वारा समाज के लोगों का सर्वांगीण विकास हो सकता है। उन्होंने एक पूर्ण अहिसंक और राज्यविहीन समाज की कल्पना को रामराज्य की संज्ञा दी है, 'सबकी समान उन्नति' सिद्धांत का अनुसरण किया था वह सिद्धांत ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' पर आधारित है। राम के समान गाँधी जी ने एक ऐसे आदर्श समाज की परिकल्पना की थी जो नैतिकता, आध्यात्मिकता एवं आर्थिक पुनरूत्थान पर आधारित होगा, जिसमें व्यक्ति–व्यक्ति के भीतर जाति धर्म या आर्थिक आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा।

सन् 1929 में यंग इण्डिया में गाँधी जी ने लिखा था कि रामराज्य में मेरा मतलब है ईश्वरीय राज, अर्थात भगवान का राज्य। रामराज्य का प्राचीन आदर्श निःसंदेह एक ऐसे सच्चे लोकतंत्र का है जहाँ सबसे कमजोर नागरिक भी बिना किसी लम्बी और महंगी प्रक्रिया के जल्दी से जल्दी न्याय मिलने के प्रति आश्वस्त हो। मेरे सपनो का रामराज्य राजा और रंक को बराबर का अधिकार देगा गाँधी जी ने जीवन भर स्वराज्य की साधना की। वे कैसा स्वराज्य चाहते थे इसका उत्तर एक शब्द में रामराज्य है।

वाल्मीकि रामायण में रामराज्य काल की स्थिति का सविस्तार वर्णन मिलता है उसका कुछ अंश इस प्रकार है–

रामराज्य के निवासी अत्यंत प्रसन्न और संतुष्ट थे वे धर्मात्मा बहुश्रुत निर्लोभ और सत्यवादी थे, कोई कंगाल नहीं था। कोई गृहस्थ ऐसा न था जो धन–धान्य, गौ और अश्व से रहित हो। सभी स्त्री–पुरुष पूर्ण सदाचारी थे। सब लोग अच्छा भोजन करते थे और दान देते थे। सभी लोग आस्तिक, सुशिक्षित, प्रसन्न, स्वस्थ, रूपवान और देशभक्त थे। राजाराम की विलक्षणताओं का वर्णन करते हुए नारद जी कहते हैं– राजाराम विद्वान, संयमी, बुद्धिमान

और वक्ता है। वे धर्म को जानते है वचन को पूरा करते है। रात–दिन प्रजा के हित में लगे रहते है वे साधु स्वभाव, मधुरभाषी, प्रियदर्शन और प्रजा की रक्षा करने वाले है समुद्र के समान गंभीर और हिमालय के समान धैर्यवान, पृथ्वी के समान क्षमाशील और कालाग्नि के समान प्रतापी है। ऐसी अनेक अच्छाई राजाराम में थी।

रामराज्य का यही चित्र है। ऐसी ही शासन व्यवस्था की स्थापना करने के लिये गाँधी जी के रामराज्य के दर्शन कहीं नहीं हो रहे है। अतः राष्ट्र के कर्णधारों का, देश के शासकों का, नेताओं का लोकसेवकों का चिंतकों, नीति निर्माताओं और सर्वसाधारण का कर्तव्य है कि वे रामराज्य के समान शासन स्थापित करने के लिये हर संभव उपाय करें, तभी गाँधी दर्शन एवं रामराज्य सार्थक होगा। सुखी प्रजा ही रामराज्य का प्रमाण हो सकता है।

संदर्भ सूची

1. गावा, ओमप्रकाश – राजनीतिक विचारक विश्वकोश, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2001, पृ. 67
2. कृतिका – अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका लखनऊ, जनवरी–दिसम्बर 2015, पृ. 270–271
3. चौधरी डॉ. इन्द्रनाथ – राम कहानी, पंडित तोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर 1992, पृ. 146
4. प्रतियोगिता दर्पण का वार्षिकी अंक, आगरा 2012, पृ. 1231
5. डॉ. रंजन एवं मुकेश राय – गाँधी नेहरू और टैगोर, राधा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1998, पृ. 8
6. इंटरनेट पर लेखिका रागिनी नायक का लेख, पृ. 3
7. डॉ. प्रेमशंकर – रामकथा और तुलसी, कॉलेज बुक डिपो जयपुर, 1998, पृ. 51

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

of'od ifji{; e ofnd l;foKku dh iklfxdrk

Mk0 jke'oj ilkn prqoinh
एसो0 प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
रामस्वरूप ग्राम, उद्योग पी0जी0 कालेज पुखरायाँ कानपुर देहात

सूर्य, वैश्विक जीवन–चर्या का प्रमुख आधार–स्तम्भ है। इनसे ही सम्पूर्ण विश्व आलोकित हो रहा है। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा एवं श्रुतिपरम्परा में सूर्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। वेदों ने ही सूर्य को सर्वाधिक महिमा मण्डित किया है। न केवल वैदिक वरन् वैदिकेत्तर ग्रन्थों ने भी सूर्य की महत्ता एवं उपयोगिता का वर्णन किया है। विश्व में जीवन और गति के महान प्रेरक सूर्यदेव ने ही इस पृथिवी को अपने गर्भ से उत्पन्न किया है तथा सम्पूर्ण संसार के सभी गतिमानों में प्रमुख सूर्य देव है :–

''सरति गच्छति वा सुवति प्रेरयति वा तत्तद् व्यापारेशु कुत्स्नं जगदिति सूर्यः।
यद्वा सुष्ठु ईर्यते प्रकाशप्रवर्षणादिव्यापारेशु प्रेर्यते इति सूर्यः।''[1]
''सूते श्रियमिति सूर्य ''[2]
''स्वरति–आचरति कर्म स्वीर्यते अर्च्यते भक्तैरिति सूर्यः''[3]

चराचर विश्व के संचालक, घटी, पल, अहोरात्र, मास एवं ऋतु आदि समय के प्रवर्त्तक सूर्य है। उनका नाम सौर–मण्डल–वाचक शब्द के अनुरूप है। यही कारण है कि सूर्य की कल्पना में सौर शरीर का मान बराबर बना रहता है– ''अपामीवां बाधते वेति सूर्यम्।।'' (ऋ0 1/35/9)

सूर्य ही ज्योतिष शास्त्र का मूल आधार है। दिन तथा रात्रि का विभाजन सूर्य आधारित है। पुराणों में वर्णित मानुषकाल, पितृकाल, देवकाल और ब्रह्मकाल की गणना भी सूर्य की गति द्वारा संचालित होती है। सर्यू के द्वारा उदबुद्ध होने पर मनुष्य अपने–अपने लक्ष्यों की ओर निकल पड़ते है और स्वकर्त्तव्यों को पूरा करने में व्यस्त हो जाते है – ''उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्योमानुषाणाम्।।'' (ऋ0 7/63/1)

''दिवो रूक्म उरूचक्षा उदेति।।'' (ऋ0 7/63/4)

''नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि।।'' (ऋ0 7/63/4)

सूर्य ही मनुष्यों में प्राणशक्ति चिन्ता शक्ति अनुभवशक्ति तथा मेधा शक्ति आदि को पुष्ट करते है एवं उनमें विभिन्न प्रकार के रोगनाषक शक्तियाँ भी है। सूर्य की किरणों में मनुष्य के लिये उपयोगी सब तत्व विद्यमान है। सब रोगों और दुरितों को दूर करने की शक्ति है – ''विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव''[4] सूर्य का सुचारू रूप से सेवन करने वाले को किसी विटामिन को खाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। सूर्य का सही प्रयोग सब वरणीय तत्व प्रदान करता है।

''तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्। श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि।।'' (ऋ0 05/82/9)

''देवस्य सवितुः सर्वे। विश्वा वामानि धीमहि।'' (ऋ0 5/82/6)

''स देवान् विश्वान् बिभर्ति।।'' (ऋ0 3/59/8)

सूर्य रोगों, रोगकृमियों को नष्ट करता है। उदित होते हुये सूर्य का नियमित सेवन तो हृदय और मस्तिष्क के सब विकारों को भी नष्ट करने की सामर्थ्य रखता है –

''आ देवो याति सविता परावतो, पऽविश्वा दुरिता बाधमानः।'' (ऋ0 1/35/3)

''अपसेधन् रक्षसो यातुधाना, नस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः।'' (ऋ0 1/35/10)

पाश्चात्य विद्वानों ने भी विश्व के समस्त प्राणि जगत पर पड़ने वाले सूर्य के असीम प्रभाव एवं सब प्रकार के विकार एवं रोगनाशक शक्तियों को अपनी अनुभूति के द्वारा स्वीकार किया है।

सर हेनरी गोवेन का मत है कि सूर्य–रश्मि में यह शक्ति है कि वह शरीर के भीतर प्रवेश कर रक्त के साथ मिल जाती है। इस प्रकार हाथ में सूर्य किरण लगायी जाय तो उत्ताप अत्यन्त अधिक बढ़ जाता है, किन्तु उससे रोगी को हानि न होकर स्वास्थ्य लाभ ही होता है और उसके शरीर के अन्तर्गत निहित विष नष्ट हो जाता है।.

............भिन्न–भिन्न आलोक–प्रवाह में भिन्न–भिन्न प्रकार की रोगनाषक शक्तियॉ है।

जब यह बात सिद्ध है कि पृथिवी में प्राण विकास का प्रथम कारण सूर्य ही है, मनुष्यों में प्राण शक्ति, चिन्ताशक्ति तथा अनुभव शक्ति का आदि निदान सूर्य ही है और जो कुछ व्यवस्थित सत्ता संसार में है, उसकी भी व्यवस्था के मूल में सूर्य ही है तो ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित करना अनुचित न होगा कि सूर्यकिरण सामान्य किरण नहीं है, प्रत्युत सवितृ मण्डल मध्यवर्तीय महान् आत्मा का स्थूल विकास है, जो रश्मि के रूप में हमें तथा अन्यान्य ग्रह–गण को प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त सूर्य मानसिक शान्ति प्रदान करके वे सब प्रकार के सुख प्राप्त कराते हैं और व्रतों को पूर्ण करने की सामर्थ्य देते है – ''व्रतानि देवः सविताभिरक्षते।'' (ऋ0 4/53/4)

सूर्य में उत्पादन और प्रेरणा–शक्ति का उत्स है। सूर्योदय होते ही प्राणियों को अपने दैनिक कार्यो में प्रवृत्त होने की स्वतः प्रेरणा होती है। इसलिये सूर्य को चल और अचल अथवा चेतन और जड़ – दोनों प्रकार की सृष्टि की आत्मा कहा गया है – ''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुशष्च। चक्षुर्मित्रस्य वरूणस्याग्नेः।'' (ऋ0 1/115/1)

दोनों में इसी के द्वारा रोचना दिखायी देती है। दिन में द्युलोक को ये ही प्रकाशित करते है –

''अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिशो दिवम्।'' (ऋ0 10/189/2)

वे ही सबके सामने मार्गदर्शक बनकर खड़े हुए है और उनके अच्छे–बुरे कर्मों तथा पुण्य–पाप को देखते है :–

''नकीमिन्द्रो निकर्तवे न शक्रः परिशक्तवे। विश्वं श्रृणोति पश्यति।'' (ऋ0 8/78/5)

इस प्रकार विश्व मानव समुदाय की शारीरिक एवं मानसिक चिकित्सा करने में सूर्यदेव सर्वविध समर्थ हैं। सूर्यदेव से सम्बन्धित विविध मंत्रो के प्रयोग से समस्त विघ्न–बाधाओं को दूर किया जा सकता है। संध्योपासना में सूर्य देव की उपासना का एक विशिष्ट स्थान है। उन्हें समर्पित सूर्योपस्थान नामक क्रिया के द्वारा मनुष्य में ब्रह्मतेज का प्रादुर्भाव और ज्ञान का विकास होता है। एतदर्थ स्वयं को उनका आभारी मानते हुये संध्योपासना की अन्तिम दशम क्रिया 'सूर्याध्य' में दिये गये अर्घ्य के द्वारा उनका अभिनन्दन किया जाता है।

इस क्रिया में परमात्मा की साक्षात् विभूतरूप सूर्यदेव के उपस्थान द्वारा ब्रह्मतेज की प्राप्ति तथा ज्ञान का उन्मेश होता है। सूर्यदेव अन्तरिक्ष और पृथ्वीं के नेत्रस्वरूप तथा चराचर जगत् के आत्मास्वरूप है।'[5] सूर्योपासना से तेजोलाभ, ज्ञानलाभ तथा पवित्रता का लाभ होता है।

सविता सूक्त के मन्त्रों में आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी दिखायी पड़ता हैं। आकर्षक विज्ञान के सिद्धान्त के अन्तर्गत सूर्य अपनी धुरी पर घुमता है अथवा स्थिर रहता है, पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है अथवा स्थिर रहती है, इसका स्पष्ट उल्लेख मंत्रों में है :–

''स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा। अतिष्ठन्तमपष्यं न सर्ग कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान।।''[6]

यहाँ श्रीमाधवाचार्य 'वरांसि' का अर्थ तेज बतलाते है। उनके मतानुसार मन्त्र का अर्थ है कि 'वह सूर्यरूप इन्द्र बहुत– से तेजों को इस प्रकार घुमाता है, जिस प्रकार सारथि रथ के चक्रों को घुमाता है और यह अपने प्रकाश से कृष्ण वर्ग के अन्धकार पर इस प्रकार आघात करता है, जैसे तेज चलने वाले घोड़े पर चाबुक का आघात किया जाता है।' किंतु सत्यव्रत सामश्रयी महाशय यहॉ 'वरांसि' का अर्थ नक्षत्र आदि का मण्डल करते है, जो कि यहाँ सुसंगत है और तब मन्त्र का अर्थ स्पष्ट रूप से यह हो जाता है कि 'सूर्य रूप इन्द्र समस्त महान् मण्डलों को रथचक्र की भांति घुमाता है।' इसमें आकर्षण का विज्ञान अधिक स्पष्ट हो जाता है। तेजो मण्डल का घुमाना और इन्द्र शब्द का अर्थ सूर्य होना अभिव्यक्त ही है। फिर भी संदेह हो तो सूर्य सबके मध्य में और सबका आकर्षक है, इस विज्ञान को दूसरे मन्त्रों में भी स्पष्ट देखिये :–

''वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनाम्। विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य।'' (ऋ0 10/5/3)

इत्यादि बहुत से मन्त्रों में भगवान् सूर्य का नाभिस्थानपन अर्थात् मध्य में रहना और सब लोकों को धारण करना स्पष्ट रूप से कहा गया है।

''तिस्रो मातृस्त्रीन् पितृन् बिभ्रदेक, ऊर्ध्वस्तस्थौ नेममवग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे, विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम्।।''[7]

मातृ शब्द पृथ्वी और पितृ शब्द द्यु का वाचक है, जो वेद में बहुधा प्रयुक्त होता है। इस मन्त्र का अर्थ यह

है कि एक ही सूर्य तीन पृथ्वी और तीन द्युलोकों को धारण करते हुये ऊपर स्थित है। इनको कोई भी ग्लानि को प्राप्त नहीं करा सकते, अर्थात् दबा नहीं सकते। उस द्युलोक के पृष्ठ पर सभी देवता संसार के जानने योग्य सर्वत्र व्याप्त न होने वाली वाक् को परस्पर बोलते हैं।

''तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीरुत द्यन् त्रीणी व्रता विदथे अन्तरेशाम्।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरूण मित्र चारु।।''[8]

अर्थात् आदित्य तीन भूमि और तीन द्युलोकों को धारण करते है। इन आदित्यों के अन्तर्ज्ञान में वा यज्ञ में तीन प्रकार के व्रत, अर्थात् कर्म है। हे अर्यमा, वरूण, मित्र नामक आदित्य–देवताओं! ऋतु से तुम्हारा अतिविशिष्ट महत्व है।

इस प्रकार कई मन्त्रो में तीन भूमि एवं तीन द्युलोकों का धारण सूर्य के द्वारा बताया गया है। सत्यव्रत सामश्रयी महाशय का विचार है कि 'ये छहों ग्रह यहाँ सूर्य के आकर्षण में स्थित बताये गये है। पृथ्वी और सूर्य के मध्य में रहने वाले चन्द्रमा, बुध और शुक्र – ये तीन भूमियों के नाम से कहे गये है और सूर्य के ऊपर के मंगल, बृहस्पति और शनि – ये द्यु के नाम से कहे गये है। यों इन सब ग्रहों का धारणाकर्षण सूर्य के द्वारा सिद्ध हो जाता है। कुछ विद्वान तीन भूमि और तीन द्युलोक की यह व्याख्या उपयुक्त नही मानतें, क्योंकि ये विचार करने पर ग्रह और तीन द्युलोक का अभिप्राय दूसरा है। छान्दोग्योपनिषद्[9] में बताये हुये तेज, अप्, अन्न के त्रिवृत्करण के अनुसार प्रत्येक मण्डल में तेज, अप, अन्न तीनों की स्थिति है और प्रत्येक मण्डल में पृथ्वीं, चन्द्रमा और सूर्य – यह त्रिलोकी नियत रहती है। इस त्रिलोकी में भी प्रत्येक में तेज, अप्, अन्न तीनों का भाग है। इनमें से अन्न का भाग पृथ्वी, अप्, का भाग अन्तरिक्ष और तेज का भाग द्यु कहलाता है। तब तीनों मण्डलों को मिलाकर तीन भूमि और तीन द्यु हो जाते है। ये तीनों भूत और रवि है और इनका धारण करने वाला प्राणरूप आदित्य–देवता है, जो 'तथा द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी' में बताया गया है।

इस प्रकार वैदिक ऋचाओं में वर्णित सूर्य विज्ञान न केवल भारतवर्ष वरन् सम्पूर्ण विश्व के लिये उपयोगी है। वास्तव में सम्पूर्ण विश्व का प्रसव करने वाले सर्व–प्रेरक सविता देवता ही अपने नियमन–साधनों से वृष्टि प्रदानादि उपायों से पृथिवी को सुख से अवस्थित रखते हैं तथा वे ही आलम्बन रहित प्रदेश में द्युलोक को दृढ़ करते है, जिससे नीचे न गिरे। वे ही अन्तरिक्षगत होकर वायवीय पाशों से बंधे हुये मेघमय समुद्र को दुहते हैं।[10] वे सूर्य केवल सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक प्रवर्तक, धारक प्रेरकमात्र नहीं अपितु आरोग्यकारक भी है। सूर्य की उपासना से दुःस्वप्न से जनित अनिष्ट एवं नवग्रह जन्म पीड़ा का भी परिहार होता है एवं व्रत के विघातक राक्षसों से भी रक्षा करने वाले सूर्य हैं :–

''येन सूर्य ज्योतिशा बाधसे तमो, जगच्च विश्वमुदियर्शि भानुना।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुति, मपामीवामप दुस्स्वप्न्यं सुव।।
विश्वस्य हि प्रेशिता रक्षसि व्रतम्।।''[11] (ऋ0 10/37/4–5)

I nHk I ph

1. ऋग्वेद 9/114/3 पर सायण भाष्य।
2. विशुसहस्रनाम 107 पर शांकर भाष्य।
3. निघण्टु 3/1
4. यजुर्वेद 30/3
5. ''त्वं भानो जगतश्चक्षुः'' महाभारत 3/166
   शं नः सूर्य उरूचक्षा उदेतु।। ऋ0 7/35/8
6. ''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुशश्च।।'' ऋ0 1/15/1, यजु0 7/42
7. ऋ0 10/89/2
8. तदेव 1/164/10
9. तदेव 2/27/8
10. छान्दोग्योपनिषद् 6/4/1–4
11. सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत।
    अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्ष मतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्।। ऋ0 10/149/1

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

लोक गीत का स्वरूप

सीमा खान
शोधार्थी, एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
(नेट, जे. आर. एफ.)
डॉ0 हेमा देवरानी
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर – राजस्थान

लोकगीत का मूल आशय लोक में प्रचलित गीतों से लिया जाता है। इन लोकगीतों में लोक संस्कृति और लोकमानस का रूप–व्यक्तित्व अधिक उभरता है। ये लोक मानस के दर्पण होते हैं; किसी व्यक्ति विशेष की स्वतंत्र मेघा के परिचायक नहीं।

आँग्ल भाषा में लोकगीतों के लिए समानार्थी 'फॉक सौंग' प्रचलित है। जहाँ तक 'फॉक' शब्द का सम्बंध इसकी व्युत्पत्ति 'FOIC' शब्द से हुई है, जो ऐंग्लो सेक्सन' शब्द है। इस 'फॉक' से बने शब्द 'फॉक सौंग' के आधार पर ही लोकगीत शब्द को गढ़ा गया है। यह शब्द आँग्ल भाषा के शब्द 'फॉक सौंग' की अपेक्षा अधिक सारगर्भित लोकगीत स्वनिर्मित होते हैं। ये आदिम अविरल संगीत होता है। लोकगीत न पुरातन होता है, न अर्वाचीन, वह तो कानन के उस वृक्ष की भाँति होता है जिसकी जड़ें दूर तक जमीन में धँसी हुई हैं, परन्तु जिसमें नयी–नयी डालियाँ, फल और पल्लव लगते रहते हैं। ये उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति हैं जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं। लोकगीत व्यक्तित्वहीन, सामूहिक संरचना होती है जो कि लोक–मानस का प्रतिनिधित्व करती है। इनकी रचना में मानव की मूल–प्रवृतियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। लोक मानस जब–जब हर्षित, उल्लसित, उमंगित, हिलोरित हुआ तब–तब उसके हृदय से निःसृत लयबद्ध शब्द मुखरित हुए। उन्हीं लयबद्ध शब्दों का पुञ्जीभूत साकार रूप लोकगीतों में परिणित हो गया। लोकगीतों की सृजन प्रक्रिया में प्रकृति से ग्राह्य अनुप्रेरणा भी महत्वपूर्ण कड़ी रही है। पुरातन बोध का कवि चाहे वह शिष्य काव्य से प्रतिबद्ध रहा हो अथवा लोक–काव्य से, प्रकृति से अवश्य अभिभूत हुआ है। ऋतु–चक्र के अनुसार उसके भाव भी तदानुरूप स्पंदित होते रहे हैं। यही कारण है कि लोकगीतों का अधिकांश भाग ऋतुगीतों का ही है। तीसरे, श्रम जन्य कष्टों का परिहार करने के लिए भी लोकगीतों की सर्जना हुई। चौथे लोकगीतों के आविर्भाव में लोक–मानस की सामूहिक प्रवृत्ति ने भी सक्रिय योग दिया है। मनोरंजन जहाँ वैयक्तिक आनंदानुभूति का माध्यम हो सकता है; वहाँ सामूहिक वृत्ति में उसका रूप और भी निखर उठता है। व्यक्ति उस सुख का स्वतः आस्वादन न करके, उसके वितरण से भी आनंदरस को पाना चाहता है। इन्हीं कारणों ने समवेत रूप से लोकगीतों को जन्म दिया है।

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ अनेक संस्कृतियों का संगम हुआ परन्तु उसने अपने मूल रूप को सदैव बनाये रखा। भारतीय संस्कृति का एक पक्ष जहाँ वेद पर आधारित है वहाँ उसका दूसरा पक्ष 'लोक' पर टिका हुआ है। अति प्राचीन अनुश्रुतियाँ भारत के लोक जीवन में प्रवेश करके यहाँ की प्रजा के लिए पथ प्रदर्शन का कार्य भी करती चली आ रही हैं। यही भारतीय जन–जीवन एवं लोक संस्कृति की महिमा है। लोक जीवन का अध्ययन करने के लिए लोकगीतों से उत्तम कोई साधन नहीं है। इसमें जनता के हृदयोद्गार हैं। इस प्रकार लोकगीतों का अधिकार क्षेत्र भी जनता का हृदय ही बनता है।

भारत गाँवों का देश है। इन गाँवों के गीत भी निराले हैं। इन गीतों में देश की संस्कृति रमी हुई है। ग्राम्य क्षेत्र में लोकगीतों की अत्यधिक महिमा है। भारत जो कई जनपदों में विभक्त है और प्रत्येक जनपद अपनी कुछ अलौकिक विशेषताएँ लिए हुए है, वहीं राजस्थान प्रान्त अपनी विपुल विशेषताओं के साथ लोकगीतों को भी अपने

अंदर समेटे हुए है। जहाँ हर प्रकार के एवं हरेक अवसर के अगणित लोकगीत प्रचलित हैं। यहाँ धार्मिक, ऐतिहासिक सभी प्रकार के महिलाओं और पुरुषों के प्रचुर लोकगीत प्रचलित हैं।

हमें कोई भी मांगलिक कार्य करना हो तो सर्वप्रथम हम मधुर गीतों के साथ उस माँगलिक कार्य को आरम्भ करते हैं। इन गीतों की मधुरता से मन की प्रफुल्लता, शब्दों की सरिता क्रमबद्ध रूप में उमड़कर सामने आने लगती है। ये लोकगीत सुख–दुख की अन्तर भावनाओं को श्रृंगारिक रूप में प्रकट करते हैं। लोकगीतों में जनजीवन का स्वाभाविक एवं सरल रूप में प्रकट होता है। वहाँ किसी भी प्रकार की कृत्रिमता का चिह्न भी नहीं रहता। किसी भी प्रांत की जनता के हृदय को पहचानने के लिए लोकगीत उत्तम साधन हो सकते हैं। राजस्थान तो लोकगीतों का रत्नाकार है। मेवात और ब्रज दोनों ही क्षेत्रों में लोकगीतों का विशाल भण्डार है। दोनों क्षेत्रों में अगणित लोकगीत हैं। साथ ही उनमें रूप तथा विषय की दृष्टि से भिन्नता भी है। असंख्य प्रचलित लोकगीत मेवात और ब्रज क्षेत्रों की सम्पूर्णता को इंगित करते हैं तथा धार्मिक, सामाजिक, वैवाहिक आदि लोकगीत मनोरंजन के रूप में उपलब्ध हैं। जिनमें इन क्षेत्रों के लोकजीवन की स्पष्ट झाँकी देखी जाती है।

लोकगीत लोक साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है। लोक में लोक साहित्य के दूसरे रूपों की अपेक्षा लोकगीत सबसे अधिक प्रचलित है। इसमें लोक मानस की सच्ची अभिव्यक्ति होती है। घर के संकुचित आँगन में जीवन की जिन अनुभूतियों का साक्षात्कार मनुष्य करता है उन्हीं की झाँकी हमें लोकगीतों में देखने को मिलती है। दूसरे शब्दों में लोकगीत मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ते रहते हैं, तथा समयानुसार इनके मूल में परिवर्तन होता रहता है; इसीलिए लोकगीत को नितांत निर्वैयक्तिक अभिव्यक्ति कहा जाता है।

लोकगीत के विषय में डॉ. विद्या चौहान ने लिखा–''मानव हृदय का भाव–विलास अपनी उत्कृष्ट स्थिति में लयात्मक आरोहावरोहों में जब भाषाबद्ध होकर प्रवाहित होने लगा तो शब्द शास्त्रियों ने उसे गीत कहा और इस गीत परम्परा की एक धारा जब अपनी देशज बोलियों में लोकवाणी को प्रवाहित करने लगी तो उसे लोकगीत के नाम से ज्ञापित किया गया।''[1] तात्पर्य यह है कि लोकगीत हमारे लोक जीवन की सरल, सहज अभिव्यक्ति हैं। इनमें मनुष्य जीवन के समस्त क्रिया–कलाप, रीति–रिवाज, आचार–विचार, रहन–सहन, धार्मिक आस्था, परम्परा, संस्कार तथा गूढ़ ज्ञान का बड़ा ही मार्मिक चित्रण होता है। लोकगीत जनता जनार्दन के सीधे संगीत होते हैं। इनके लिए किसी साधना तथा शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। साधारण जनता त्योहारों तथा विशेष अवसरों पर लोकगीत को गाकर मनोरंजन करती है। ये गीत लोक में सदा से गाये जाते हैं और उनको रचने वाले भी अधिकतर गाँव के लोग ही होते हैं। लोकगीतों को गाने में स्त्रियाँ विशेष तौर पर भाग लेती हैं। ये गीत बाजे, ढोलक के बिना भी साधारण झाँझ, करताल, तवे, परात आदि की मदद से गाये जाते हैं। एक समय था जब शास्त्रीय संगीत के सामने इनको हेय समझा जाता था लेकिन बहुत से विद्वानों ने बहुत–सी बोलियों के लोक साहित्य और लोक गीतों को संगृहित करके इनके महत्व को प्रतिपादित किया। वास्तव में लोकगीतों के रचयिता का पता नहीं होता है। इनका सम्बन्ध देहात की जनता से है। ये गीत किसी विशेष व्यक्ति द्वारा रचे होने पर भी साधारण जनसमूह इनको अपना मानता है। इन गीतों के रचयिता कोरी कल्पना को इनका आधार नहीं बनाते इनके विषय रोजमर्रा की जिंदगी के पहलुओं को समेटे हुए होते हैं। जिससे वे सीधे मर्म को छू लेते हैं। लोकगीतों पर एक विशेष अंचल का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है और इस अर्थ में वे उस क्षेत्र की संस्कृति, जातीय पहचान तथा सामाजिक व्यवस्था को उजागर करते हैं। लोकगीतों में ग्रामीण जनता का सुख–दुःख बड़े साधारण रूप में दिखाई देता है। लोकगीत लोकभावना से जुड़े होते हैं इसीलिए वे सदैव प्रासंगिक होते हैं। लोकगीतों का जन्म निराई–गुड़ाई, कटाई और चक्की के साथ जूझती हुई संघर्षशील ताकतों से हुआ है। जब से मानव समाज है तभी से लोकगीतों का इतिहास है। हमारे लोकगीत लोक–जीवन के समस्त तत्त्वों को उभारने वाले सीधे–सादे, यथार्थ भावनाओं की अभिव्यक्ति करने वाले हैं। ये लोकगीत हमारे लोक की आधारशिला हैं। इन गीतों में हमारी लोक संस्कृति प्रतिबिम्बित होती

है। समाज की वास्तविक दशा का चित्रण इनमें होता है तथा इनके माध्यम से हमारी लोक परम्परा और संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते हैं। लोकगीत उस स्थान के लोगों के हृदय के उद्‌गार है। लोकगीत में निहित संवेदनाएँ एवं उनका सौंदर्य इनके स्वतंत्र अस्तित्व को स्वयं परिलक्षित करती हैं।

डॉ. देवराज उपाध्याय 'लोकायतन' की भूमिका में लिखते हैं–लोक साहित्य विशेषतः लोकगीत साहित्य और दर्शन की गगनचुम्बी हिमश्रेणियों के बीच में एक ऐसा सजल आलोकोज्ज्वल मेघखण्ड है जो न तो इनके टूट–टूट कर गिरने वाले शिलालेखों से दबता है और न इस श्रेणियों की सीमाओं में आबद्ध होकर असीम बनता है, प्रत्युत्त इन उन्नत चोटियों की शृंगार करता है और संगीत लहरी के प्रत्येक स्पन्दन कम्पन के साथ उड़कर विशालता के कौने–कौने को मादकता का सागर प्रस्तुत करता है। पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने लोकगीत को इस प्रकार से परिभाषित किया है–''लोक सामान्य लोक जीवन की पार्श्व भूमि में अचिन्त्य रूप में अनायास ही फूट पड़ने वाली लयात्मक अभिव्यक्ति है।''[2]

''लोकगीत तो स्वतः जन्मा है।''[3]

''लोकगीत मानव हृदय की प्रवृत्त भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है जो स्वर या ताल को प्रधान तान देकर धुन प्रदान होते हैं।''[4]

लोकगीत विद्यादेवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास–प्रश्वास हैं। वे भारी विद्वता के भार से सूक्ष्म बुद्धि की नली के हजारे से छूटने वाला तर्क–वितर्क का फौव्वारा नहीं बल्कि अज्ञात मलयांचल से आने वाली सुगन्धित लहरियों से उद्‌भूत हृदय की सूक्ष्म तरंगें हैं। वे सहजानंद में ही विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएँ हैं, जिसमें भाव, भाषा और छंद की नियमितता से मुक्त रहकर स्वच्छंद रूप से निःसृत होने लगते हैं। जीवन और जगत् में व्याप्त स्थितियों एवं घटनाओं के घात–प्रतिघात से उत्पन्न अन्तर्भावनाओं की लयात्मक 'उद्‌गीर्णता लोकगीतों में प्राप्त होती है। हमारे देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी। लोकगीत, लोकजन द्वारा विशेष परिस्थिति स्थल, कर्म तथा संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की लयपूर्ण सामूहिक अभिव्यक्ति है। सामाजिक चेतना के साथ–साथ लोकगीतों का जन्म हुआ। इसका सम्बन्ध जीवन के साथ है। 'लोकगीत किसी एक व्यक्ति द्वारा रचित नहीं होते और न ही सामूहिक रूप से रचे होते हैं बल्कि इनकी रचना स्वतः होती है। लोकगीत द्वारा हमें जन–जीवन के समस्त पक्षों के दर्शन होते हैं। प्रायः विभिन्न ऋतुओं में सामाजिक स्तर भेद को लोकगीत ही मिटाते हैं।

''नीले आकाश के नीचे प्रकृति के बहुरंगी परिवर्तन, युद्ध और शांतिमय जीवन के चित्र एवं विधाता कली स्त्री–संज्ञक रहस्यमय सृष्टि की मानवीय जीवन पर प्रसाद और विषादमयी छाया–ये इन गीतों के प्रधान विषय हैं जो शत् कोटि कण्ठों से सहस्त्रों बार गाये जाने पर भी पुराने नहीं पड़ते और जिनकी सतत् किलकारी वायु में भरे हुए चिरन्तन स्वर की तरह सर्वत्र सुनाई पड़ती है। गीत मानो कभी न छीजने वाले रस के स्त्रोत हैं। वे कण्ठ से गाने के लिए और हृदय से आनंद लेने के लिए हैं'' ।[5] लोकगीतों में न कला है न भाषा सौष्ठव और न गीतकारों ने इनकी रचना बंद कमरों में ही की है। ये गीत तपते सूर्य के नीचे खेतों में काम करते हुए लोक मानव ने गाया है। चूल्हे पर कसार भूनती तथा दीपक जलाती नारी ने गुनगुनाये हैं; जिस समय अन्तर मन में जो भी स्पर्श कर गया तुरंत वही भाव बोलचाल की भाषा में गीत बनकर फूट पड़ा। किसी भी राष्ट्र का यथार्थ व जीवांत इतिहास का गेय व लयात्मक स्वरूप देखना हो, नैतिक आदर्श सामाजिक मर्यादा व शासक–शासित, मजदूर–मालिक, पारिवारिक व्यवस्था का रागात्मक रूप देखना हो तो वह लोकगीतों के माध्यम से जाना जा सकता है। लोकगीत संस्कृति के प्रकाश स्तम्भ हैं। इनमें साधारणीकरण और सम्प्रेषणीकरण के साथ रस निष्पत्ति की सर्वोच्च साधना है। लोकगीतों में न किसी 'वाद' का स्थान है और न ही 'विवाद' का। हमें स्वरों के आरोह–अवरोह, सरगम या ताल

के तराने भले न आते हों, लोकगीत गाने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। वह लोगों के उस जीवन की निरन्तर प्रवाहात्मक अभिव्यंजना है जो सुसभ्य प्रभावों से दूर अधिक या न्यूनतम आदि अवस्था में है। ग्रामगीत सम्भवतःवह जातीय आशुकवित्व है, जो कर्म या क्रीडा के ताल पर रचा गया है। गीत का उपयोग जीवन के महत्वपूर्ण समाधान के अतिरिक्त मनोरंजन भी है। आदिम मनुष्य हृदय के गानों का नाम लोकगीत है। मानव जीवन के उल्लास की उसके उमंग की कहानी इसमें चित्रित है। काल का विनाशकारी प्रभाव इन पर नहीं पड़ता। किसी भी कलम ने इन्हें लयबद्ध नहीं किया पर ये अमर हैं। लोकगीत हमारे जीवन विकास के इतिहास हैं।

लोकगीत उस नदी की धारा के समान हैं जो ग्रामीण संस्कृति के गर्भ से निकलकर न केवल ग्रामीण समाज को आप्लवित करती रहती है, वरन् वह अपने शीतल वाणी रूपी जल से समग्र मानव समाज को शीतलता प्रदान करती है और राह पर आने वाले कंकड़, पत्थर और गंदगी को जिस प्रकार से नदी की धारा बहा ले जाती है उसी प्रकार से ग्रामीण जन भी इन गीतों के द्वारा अपने जीवन की विषमताओं और दुःखों को भुला देते हैं। इन लोकगीतों की धारा आज भी निरन्तर जाने कब से एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ में होती हुई निर्विहन, निर्विकार रूप से अपने सहज रूप में बह रही है। वास्तव में ये लोकगीत ग्रामीण संस्कृति के चलचित्र हैं। यह बात और है कि अब ये गीत शहरी सभ्यता से भी प्रभावित होने लगे हैं परन्तु इनमें ग्रामीणता ज्यों की त्यों विद्यमान है। ये ग्राम गीत हमारे ग्रामीण भाइयों की अक्षयनिधि है जिसे उन्होंने बिना किसी डिग्री प्राप्ति की आकाँक्षा के जाने कब से अपने कण्ठों में सुरक्षित रखा है और आज भी वह उसे सुरक्षित रखे हुए है।

प्रायः यह कहा जाता है कि लोकगीत किसी एक कवि की रचना न होकर सामूहिक रूप से रचे गये होते हैं जिनको कभी किसी ने एक साथ बैठकर नहीं लिखा, इनकी रचना तो स्वतः होती है। यह बात पूर्णरूपेण सही प्रतीत नहीं क्योंकि यह बात और है कि लोकगीत न जाने कब से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के कंठ में हस्तान्तरित होते जा रहे हैं और उनके रचयिता का किसी को पता नहीं है फिर भी प्रश्न उठता है कभी न कभी किसी न किसी व्यक्ति ने इन गीतों की रचना की होगी क्योंकि गीत तो किसी न किसी एक मस्तिष्क की ही रचना हो सकती है। किसी समूह का मस्तिष्क एक हो नहीं सकता जो गीत की रचना करे। यह बात और है कि समूह द्वारा परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे हैं, और गीतों के क्षेत्र विस्तार के साथ उसके रचयिता का नाम विलीन हो गया हो। इसका एक कारण यह भी तो हो सकता है कि आज का व्यक्ति हर चीज में अपना नाम व ख्याति चाहता है परन्तु हमारा ग्रामीण समाज आज भी इतना भोला है कि वह अपनी ख्याति का इतना भूखा नहीं है जितना शहरी समाज। फिर उस समय आज से न जाने कितने वर्षों पहले जब यह गीत रचे गये होंगे तब यदि किसी ग्रामीण भाई ने अपने गीत के साथ अपना नाम अंकित नहीं किया तो इसे उसकी उदारता और सरलता ही कहा जायेगा। मेवाती और ब्रज दोनों क्षेत्रों में ऐसे अगठित लोकगीत है। इस प्रकार ये गीत समूह की रचना बन गये। समूह गीतों को लम्बा कर सकता है; गीतों की आयु बढ़ा सकता है; परन्तु समूह कोई एक मस्तिष्क नहीं होता जो गीतों की रचना करे। जिस प्रकार सरकार के स्वयं कोई मस्तिष्क नहीं होता बल्कि पूरे समूह का होता है।

''लोकगीतों में उसके रचयिता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है उसकी वाणी में तो उसकी रचना अवश्य मिलती है; परन्तु उसका व्यक्ति बिल्कुल नहीं मिलता है। लोकगीतों का रचयिता इन गीतों की सृष्टि कर जनता के हाथों इन्हें समर्पित कर स्वयं अन्तर्ध्यान हो जाता है।''[6]

लोकगीतों के लिए यह कहा जाता है कि इनकी परम्परा मौखिक होती है। यदि लोकगीत को लिपिबद्ध कर दिया जाए तो क्या ये लोकगीत नहीं रह जायेंगे, वस्तुतः देखा जाये तो यह कहा जा सकता है कि लोकगीत लिपिबद्ध होने से अधिक सुरक्षित रह सकते हैं। ''कंठस्थ साहित्य को लिपिबद्ध करके उसे हम सुरक्षित कर लेंगे।''[7]

यह तो कोई बात नहीं हुई कि काव्य लिपिबद्ध होते ही लोगों के कण्ठ से लुप्त हो जायेगा। लोकगीत तो लिपिबद्ध होने पर भी लोगों के कण्ठों में बिना किसी बाधा के प्रवाहित हो सकते हैं। लिपिबद्ध करने पर हम अपने

गीत साहित्य को सुरक्षित रख सकते हैं। लोकगीत रचना तो किसी व्यक्ति विशेष की ही होते हैं परन्तु लोकगीतकार का व्यक्तित्व उन गीतों में क्षीर में नीर के समान विलीन हो चुका होता है और वह गीत समूह की रचना कहलाने लगता है। लोकगीतों में मुख्य भावना को घनत्व प्रदान करने के लिए पुनरावृत्तियाँ होती हैं। लोकगीतकार के पास 'शब्द' कम भाव अधिक होते हैं। जिनका प्रयोग वह मनमाने ढंग से किया करता है। लोकगीतों में जो प्रश्नोत्तर प्रणाली प्रचलित होती है उनमें सीधे प्रश्नों के सीधे उत्तर होते हैं। गीतों में यह प्रश्नोत्तर प्रणाली, सादगी और विकार रहित सामाजिक भावना से संबंधित है। इन गीतों में 'टेक' प्रवृत्ति अधिक दिखायी देती है, जिससे गीतों को विस्तार और भाव व्यंजना को गति मिलती हैं। इन गीतों में मानव सभ्यता और संस्कृति का रूप अंकित रहता है। इन्हें संस्कृति का मुँह बोलते चित्र कहा जाता है।

वस्तुतः इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि लोक संस्कृति और लोक साहित्य का किसी देश और जाति के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता है। हमारे देश में ऋग्वेद लोक साहित्य की परम्परा का सबसे प्राचीन और सबसे सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करता है जो पुराण और महाभारत काल तक आते–आते लिखित साहित्य में लुप्त सी हो गई है किन्तु फिर भी जो मौखिक रूप से लोक जीवन में निरन्तर प्रवाहित रही। यूरोप, अमेरिका, रूस आदि देशों में लोक संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य हुआ है; किन्तु हमारे देश का दुर्भाग्य है कि यहाँ जिस गति के साथ इस कार्य का प्रारम्भ हुआ था उस गति से इसका निर्वाह नहीं हो सका। लोक साहित्य लोक संस्कृति का वाहक रहा है–यही उसका सबसे बड़ा महत्व है और इस प्रकार एक दूसरे से सम्बंधित है।

इसी आधार पर वे एक–दूसरे के उपासक और उपजीव्य भी हैं। इसीलिए लोक साहित्य उपेक्षणीय नहीं है। रचनात्मक साहित्य और राष्ट्रीय जीवन लोक साहित्य और लोक संस्कृति के जीवंत तत्वों का समावेश किया जाये तो साहित्य बीमार होने और संस्कृति नपुंसक होने से बच सकती है। इसी दृष्टि से बरसों पहले पं. रामचंद्र शुक्ल ने लिखा था–भारतीय जनता का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिए पुराने परिचित ग्राम गीतों की ओर ध्यान देना आवश्यक है। केवल पंडितों द्वारा प्रदर्शित काव्य–परम्परा का अनुशीलन ही अन्त नहीं है जब–जब शिष्टों को काव्य पंडितों द्वारा बंधकर और संकुचित होगा तब–तब उसे सजीवता और चेतना प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वछंद बहती हुई प्राकृतिक भावधारा से जीवन तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा।

लोकगीत जनमत द्वारा विशेष परिस्थितिवश स्थल–कर्म संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की सामूहिक अभिव्यक्ति है। लोकगीत ही लोगों के दिनचर्या की वास्तविक भावनाओं का आलेख प्रस्तुत करता है। लोकगीत में लोक संस्कृति का चित्रण अवश्य दिखाई देता है। इसमें लोक संस्कृति समाहित है। हमारे जीवन के सभी पहलुओं एवं भिन्न–भिन्न परिवेश में मनुष्य के भावनिक तथा शारीरिक व्यापार जैसे भी होते हैं। उनका यथार्थ चित्रण लोकगीतों में ही प्राप्त होता है। लोकगीत में विज्ञान की तलाश है, उसके रचयिता का कहीं उल्लेख नहीं होता है फिर भी वह सामूहिक रूप में दृष्टिगोचर होता है। लोकगीतों में सामूहिक चेतना की पुकार मिलती है तथा सामयिक क्रांतियों का दर्शन भी मिलता है। इन लोकगीतों में ही भारतीय संस्कृति का नाम देकर धरोहर के रूप में संजोकर रखा है।

लोकगीत जीवन की प्रत्येक अवस्था यानि गर्भावस्था से लेकर मृत्यु तक हर प्रकार से प्रेरणा ग्रहण कर कलानुरूप भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। लोकगीतों से अनेक लाभ हैं जैसे बोझ को हल्का करना, समय चयन, जन–जागरण, अत्याचार का विरोध करना, ज्ञान वृद्धि, आवश्यकताओं की पूर्ति, सामान्य जनों का मनोरंजन आदि। प्रत्येक जाति या समाज के अपने गीत होते हैं, जो हमें जन जीवन के समस्त पक्षों का दर्शन कराता है। लोकगीत गेय होते हैं। इन्हीं के द्वारा अनेक नामों और घटनाओं पर स्थानीय रंग चढ़ाने से अपनापन समा जाता है।

इस प्रकार लोकगीतों की निर्मिति हरदम चलती रहती है। एक नारी एक पंक्ति गाती है, उसके साथ दूसरी नारी दूसरी पंक्ति, इस तरह प्रत्येक नारी इसमें वृद्धि करती है, इससे ही लोकगीतों का विकास होता है। अतः कुछ

लोक साहित्य के विद्वान इसे लोकगीत निर्माण का विकास तत्व संज्ञा देते हैं। इसमें लोकगीतों की निर्मित की प्रक्रिया अटूट चलती है; इसकी निर्मिति को श्रेय किसी एक को नहीं होता है। यह विकास तत्व की प्रक्रिया अन्तहीन है।

लोकगीतों के निर्मिति के संदर्भ में यह उल्लिखित है कि उनका उद्गम लोक नृत्य से सम्पन्न हुआ होगा क्योंकि अनेक बोली भाषाओं में गीत और नृत्य एक साथ ही प्रदर्शित किए गए हैं। इस प्रकार लोकगीतों की निर्मिति संदर्भ में अनेक तत्व होते हुए भी डॉ. उपाध्याय, डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. श्याम परमार आदि के लोकगीतों की निर्मिति समन्वय तत्व से मानी है।

लोकगीत जन–जीवन में सर्वत्र व्याप्त हर्ष–उल्लास, व्यथाओं कामनाओं और ऐषणाओं आदि का अविरल स्त्रोत के रूप में अर्थवान माने गए है; इसीलिए इनका माध्यम पुरुषों से अधिक नारियों का होता है, क्योंकि सरल हृदय नारी इन भावों को अधिक गहराई से अनुभूत कर मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति अपने सुरीले कंठ से प्रस्तुत करने में सक्षम होती है। लोकगीतों की गायकी विषय के इतनी अनुरूप होती है कि वह अंतःमन को छू लेती है।

लोकगीत आमोद–प्रमोद का वातावरण सृजित करते हैं। त्योहारों, उत्सवों व विवाहों आदि मांगलिक अवसरों के गीत लोक जीवन में नई स्फूर्ति व ऊर्जा का संचरण करते हैं। किसी विद्वान ने सही कहा है कि लोकगीतों के बोल बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक वेद ऋचाओं के सदृश्य बन जाते हैं। लोकगी पीढ़ी–दर–पीढ़ी मनोरंजन कर रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. विद्या चौहान–लोक साहित्य, पृ. 43
2. छत्तीसगढ़ लोकगीतों का परिचय–श्याम चरण दुबे, पृ. 114
3. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका भाग–प्रथम, पृ. 448
4. हिन्दी साहित्य सम्मेलन पत्रिकाःशांति अवस्थी, लोक–सांस्कृतिक अंक–2010,पृ. 37
5. देवेन्द्र सत्यार्थी–धीरे बहे गंगा भूमिका, पृ. 09
6. दि थ्योरी ऑफ नॉलेज बाई मौरिक उमफोरर, पृ. 57
7. रामनरेश त्रिपाठी, ग्राम साहित्य, भाग–प्रथम, पृ. 26

❑❑

बुन्देलखण्ड के लोक देवी–देवता

सुरेन्द्र खरे
शोधार्थी
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

भारत वर्ष के मध्यभाग में नर्मदा के उत्तर और यमुना के दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत की शाखाओं में समाकीर्ण और यमुना की सहायक नदियों के जल से सिंचित सृश्टि सौदर्यलंकृत जो प्रदेश है उसे बुन्देलखण्ड कहते है। बुन्देलखण्ड का इतिहास अत्यंत प्राचीन है बुन्देलखण्ड सदा अपनी वीरता, पराक्रम, शौर्य, धार्मिकता और कला के लिए विख्यात रहा है। बुन्देलखण्ड के प्राचीन नाम चेदि, दशार्ण, जुझौति और जैजाकभुक्ति रहे है। बुन्देलखण्ड में बर्तमान उ0 प्र0 के झाँसी, जालौन, ललितपुर, महोबा, बाँदा, हमीरपुर, चित्रकूट जिले और म0 प्र0 के छतरपुर, दतिया, टीकमगढ़, सागर, पन्ना, दमोह आदि जिले आते है। बुन्देलखण्ड के प्रमुख लोक देवी देवता निम्नवत् है –

हरदौल – बुन्देलखण्ड में वैसे अनेक लोक देवी–देवता है लेकिन उनमें से एक है लाला हरदौल। हरदौल की शौर्यगाथा को बयाँ करते कई नाट्य मण्डल गाँवों में अपनी प्रस्तुतियाँ देते हैं। लोक देवताओं में बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक समावृत और पूज्य हरदौल का स्मरण यहाँ के प्रत्येक परिवार में विवाह के अवसर पर अवश्य किया जाता है, उन्हें आमन्त्रित किया जाता है। गाँव–गाँव में उनके चबूतरे बने हुये है। आषाढ़ शुक्ल एकादशी को देवशयनी एकादशी कहा जाता है। यहाँ उस दिन सभी देवी देवताओं को पूजने का प्रचलन बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है। उस दिन हरदौल की भी पूजा की जाती है। हरदौल ओरछा नरेश वीरसिंह देव बुन्देला के पुत्र थे। इनके बड़े भाई जुझार सिंह जब ओरछा की गद्दी पर आसीन हुए तो राज्य का सारा काम उनके छोटे भाई हरदौल ही देखा करते थे। वे उस समय के अप्रतिम वीर सचरित्र तथा न्याय परायण व्यक्ति थे। बुन्देलखण्ड के राजा के छोटे भाई को दीवान कहा जाता है। दीवान हरदौल की इस कीर्ति से जलकर किसी चुगलखोर ने राजा जुझार सिंह से शिकायत की कि दीवान हरदौल के रानी से अनुचित सम्बन्ध है।राजा को चुगलखोर की यह बात सच प्रतीत हुई। वास्तव में विनाश काले विपरीत बुद्धि, हो जाती है। इन्होने अपनी रानी को आदेश दिया कि अपने को निर्दोष प्रमाणित करने के लिये हरदौल को अपने हाथ से विषाक्त भोजन का थाल प्रस्तुत करें। नारी के सतीत्व और गरिमा के कोमल तन्तु कितने क्षीण होते है कि सन्देह के श्वास से ही छिन्न–भिन्न होने लगते है पर हरदौल तो लक्ष्मण के समान अपनी मातृ स्वरूपा भावज के लिए सदा से ही नित्य पादाभिवन्दन के समय नूपुरों से ऊपर कभी उनकी दृष्टि गई ही नहीं, उठी ही नहीं। अतः उन्होने अपनी भावज को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए हलाहल का पान कर प्राणोत्सर्ग किया। वे मानव की कोटि से ऊपर उठकर देवकोटि में प्रतिष्ठित हुए । उनके साथ उनके अनुचर मेहतर ने भी प्रतिदिन के भाँति उस दिन भी उनके जूठे प्रसाद को पाकर अमरत्व और देवत्व प्राप्त किया जहाँ जहाँ हरदौल के चड़ूतरे बने है उसके समीप ही मेहतर बाबा का छोटा चबूतरा भी पूज्य बन गया है। इस प्रकार बुन्देलखण्ड में समता का वह चरम उत्कर्ष देखने को मिलता है कि जहाँ श्वपच ही बंदनीय है देवत्व को प्राप्त है यहाँ कहा जाता है कि हरदौल ने अपनी बहिन कुंजाबाई की पुत्री के विवाह के समय अदृष्य रहकर भात दिया था। विवाह के समय मामा की ओर से जो सामग्री अन्न वस्त्र आदि जाते है उन्हे यहाँ लोक भाषा में भात देना कहते है।

कुँवर साहब एवं रतनगढ़ की माता – बुन्देलखण्ड के प्रायः प्रत्येक गाँव में गाँव के बाहर अथवा भीतर एक चबूतरे पर दो ईंटें रखी रहती है जिन्हें कुँवर साहब का चबूतरा कहा जाता है। इन्हे जन मानस में लोक देवता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है सामान्य व्यक्तियों को इनके सम्बन्ध में केवल इतना ही ज्ञात है कि ये कोई एक राजपुत्र

थे अनेक स्थानों पर बहुत प्राचीन सर्प के रूप में भी ये दिखाई देते है उस समय पर एक दूध का कटोरा रख देने से ये अदृश्य हो जाते है ऐसा लोगों का विश्वास है।

दतिया जिले के सेवढ़ा से आठ मील दक्षिण पश्चिम की ओर रतनगढ़ नामक एक स्थान है यहाँ कोई गाँव नहीं है एक ऊँची पहाड़ी पर दुर्ग के अवशेष मिलते हैं दुर्ग सम्पूर्ण पत्थर का रहा होगा जिसकी दीवारों की मोटाई बारह फीट के लगभग है। यह पहाड़ी तीन ओर से सिन्धु नदी की धारा से सुरक्षित है। इसी विचार से यह दुर्ग बनाया गया होगा। स्थान अत्यन्त ही रमणीक रहा होगा। घने जंगल के बीच में है। यहाँ उस पहाड़ी पर एक देवी का मन्दिर बना हुआ है। जिसे रतनगढ़ की माता के नाम से जाना जाता है। गत दो दशकों तक दस्युओं के आतंक के कारण यहाँ लोगो का आना जाना कम ही हो गया थ। कार्तिक शुक्ल द्वितीया को यहां एक मेला भरता है जिसमें अनेक व्यक्ति देवी की मनौती मानने के लिये आते है जिसकी कामना पूर्ण हो जाती है वे देवी को प्रसाद चढ़ाने, ब्राह्मण भोजन कराने और देवी के आराधना में बोये हुए यवांकुर चढ़ाने के लिए आते है। इस स्थान की ख्याति दूर दूर तक एक सिद्ध पीठ के रूप में है। यहां से सात आठ मील दूरी पर ही देवगढ़ का किला है जो बहुत कुछ ठीक स्थिति में है। किले के अनेक कमरों में ताले पड़े हुए है जिन्हें कदाचित शताब्दियों से नही खोला गया। कहते है कि इस स्थान पर रात को कोई ठहर नहीं सकता जिन्होने ठहरने का दुःसाहस किया, उनके शव ही दूसरे दिन पाये गए रतनगढ़ के राजा रतन सिंह के सात राजकुमार और एक पुत्री थी पुत्री अत्यन्त सुन्दरी थी। उसकी सुन्दरता की ख्याति से आकर्षित होकर अलाउद्दीन खिलजी ने उसे पाने के जिए रतनगढ़ की ओर सेना सहित प्रस्थान किया घमासान युद्ध हुआ जिसमें रतन सिंह और उनके छः पुत्र मारे गये सातवे पुत्र को बहिन ने तिलक करके तलवार देकर रणभूमि में युद्ध के लिये विदा किया राजकुमारों ने भाई की पराजय और मृत्यु का समाचार पाते ही बसुन्धरा से अपनी गोद में स्थान देने की प्रार्थना की जिस प्रकार सीता जी के जिये माँ धरित्री नें शरण दी थी उसी प्रकार इस राजकुमारी के लिए वे उस पहाड़ के पत्थरों में एक विवर दिखाई दिया जिसमें वह राजकुमारी समा गई। उसी राजकुमारी की यहां माता के रूप में पूजा होती है यहां यह विवर आज भी देखा जा सकता है। मुसलमानों से युद्ध का स्मारक हजीरा पास में ही बना हुआ है हजीरा उस स्थान को कहते है जहां हजार से अधिक मुसलमान एक साथ दफनाये गयें हों बिन्सेन्ट स्मिथ ने इस देवगढ़ का उल्लेख किया है जो ग्वालियर से दस मील की दूरी पर है युद्ध में मारे जाने वाले राजकुमार का चबूतरा भी यहां बना हुआ है जिसे कुँवर साहब का चबूतरा कहा जाता है किसी भी पुरुश अथवा पशु को सांप काटने पर प्रायः कुँवर साहब के नाम का बंध लगा दिया जाता है जिससे विष का प्रभाव सारे शरीर में व्याप्त नही होता यहां बंध कोई धागा आदि नही होता कस के बांधा जाता हो केवल कुँवर साहब की आन देकर एस स्थान के चारो ओर उंगली फेर देते हैं। इसी को बंध कहा जाता है दीपावली के पश्चात पड़ने वाली द्वितीया के मेले में इस चबूतरे के पास सर्पदंश वाले ऐसे लोगो और गाय, भैस, वैल आदि के बंध काटे जाते है विचित्र बात तो यह है कि पुजारी के बंध काटते ही उस व्यक्ति को मूर्छा आती है उसे चबूतरे का परिक्रमा कराकर घर जाने दिया जाता है मुझे भी कई बार उपने कुछ साथियों सहित इस चमत्कार को देखने का अवसर प्राप्त हुआ है एक के बाद एक इस प्रकार के अनेक स्त्री पुरुष जाते गये और बंध कटने के समय उन्हें उनके साथी सहारा देकर चबूतरे की परिक्रमा कराते रहे पर जब एक बैल का बंध काटने के पश्चात वह चक्कर खाकर गिर पड़ा तो इस चमत्कार को देखकर हम लोगो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा हम लोग भी कुँवर साहब के इस प्रभाव के सामने सिर झुकाकर चले आये ।

कारस देव – इस क्षेत्र में प्रायः अनेक गांवों में कारसदेव के चबूतरे बने हुए है यहां प्रति मास की चतुर्थी को रात के समय गौपालक तथा अन्य व्यक्ति इकट्ठे होकर ढांक ढक्का बजाते है यह डमरू के आकार का एक बाद्य होता है जिसे बजाते समय पैरो का उसी प्रकार उपयोग करना पड़ता है जिस प्रकार हाथ से कपड़ा बुनते समय साथ ही पैर चलाने पड़ते है वैसे तो ढांक जब पूरे जोर पर और अधिक गति से बनजे लगता है तो किसी व्यक्ति विशेश पर इनका आवेश होता है जो लोगो के दुख दर्द सुनकर उनके समाधान का उपाय बताता है जब कोई दुध

ारु पशु दूध कम देने लगता है दूध दुहने ही नहीं देता अपने बछड़े को नहीं पिलाता अथवा दूध में रक्त आने लगता है तो इनके चबूतरे पर दूध चढ़ाने से ही ठीक होता है। एसलिए इन्हें पशुओं का देवता कहा जाता तो कुछ असंगत नहीं होगा।

अजयपाल – बुन्देलखण्ड में झाड़ फूक के अनेक शावर मंत्र प्रचलित है जिसमें अजय पाल की आन धराई जाती है। ये सभी मंत्र सद्यः प्रभावकारी है अजयपाल का सम्बन्ध देवी भागवत की एक कथा से जोड़ा जाता है। सेवढ़ा में सिन्ध नदी के तट पर अजयपाल का एक पुराना स्थान जंगल में है जहां कोई मूर्ति नहीं है। उसे अजयपाल का किला समझा जाता है। यहाँ वर्ष में एक वार दूर दूर से लोग आकर अजयपाल की पूजा करते हैं।

कुलदेवता – बुन्देलखण्ड में कुलदेवता की पूजा को बाबू की पूजा कहा जाता है। यहाँ प्रत्येक जाति और वर्ग में भिन्न–भिन्न तिथियों में बाबू की पूजा की जाती है। किसी के यहाँ माघ मास की शुक्ल पक्ष की द्वितीया को यह पूजा संपन्न होती हैतो किसी के यहाँ मार्गशीर्ष द्वितीया अथवा फाल्गुन शुक्ल की द्वितीया को। परिवार में किसी पुरुष का विवाह होने पर जब नव बधू घर में जाती है तो उस अवसर पर बिना किसी तिथि का विचार किए बाबू की पूजा की जाती है। यह एक प्रकार से अन्य कुल से आने वाली बधू का स्वकुल में लेना कहा जा सकता है। इस पूजा में केवल वही लोग सम्मिलित किये जाते है जो स्वगोत्र होते है, यहाँ तक कि अपनी लड़की तक को इसमें सम्मिलित नहीं करते, न बाबू की पूजा का प्रसाद ही किसी अन्य को दिया जाता है।

मातृपूजन – शात्रों में गौर्यादि शोडशमात्रिका, सप्तधृत मातृ का उल्लेख आता है, मांगलिक अवसर पर इनके आवाहन पूजन के मंत्र भी जिनसे इनकी पूजा की जाती है। बुन्देलखण्ड में स्त्रियाँ किसी भी स्थान पर पुतलियों के चित्र बना कर इनकी पूजा करती है। इसे माय पूजा कहा जाता है। मांगलिक अवसर पर कल्याण प्राप्ति और कार्य की निर्विघ्न सम्पन्नता के लिए कहाँ गोबर तो कहां मिट्टी अथवा शक्कर की पुतलियाँ बनाकर उनकी प्रतिष्ठा और पूजा की जाती है। विवाह आदि कार्य सम्पन्न हो जाने पर इन्हें बिदा किया जाता है। कुल देवता और मातृका को मिलाकर मांय–बाबू की पूजा कहा जाता है अथवा निषेधपरक अर्थ में देवी–बाबू भी कहा जाता है। सहयोग के लिये कहा जाता है – हमारे उनके देवी–बाबू अलग अलग है।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड में आस्था और विश्वास के प्रतीक पशुपति कारसदेव के रूप में पूजित है तो कुल देवता और मातृका मांयबाबू के रूप में पूज्य हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीवास्तव डॉ0 रमेशचन्द्र – बुन्देलखण्ड साहित्यिक, ऐतिहासिक सांस्कृतिक वैभव–बुन्देलखण्ड प्रकाशन (बांदा)
2. पाण्डेय डॉ0 ए0 के0 – बुन्देलखण्ड की लोक परम्परा – राजकीय संग्रहालय (झाँसी) 2008
3. मदनी अब्दुल कयूम – बुन्देलखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास (झाँसी) 1998
4. ढेंगुला रामस्वरूप – बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक एवं राजनैतिक अनुशीलन संचयन (कानपुर) 1987
5. गुप्त डॉ0 नर्मदा प्रसाद – बुन्देलखण्ड लोक साहित्य, परम्परा और इतिहास–म0प्र0 आदिवासी लेककला परिसद (भोपाल)
6. कुमुद अयोध्या प्रसाद – बुन्देलखण्ड का लोक जीवन
7. मिश्र लक्ष्मीनारायण – बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास – विश्वभारती प्रकाशन (नागपुर)
8. पाण्डे डॉ0 अयोध्या प्रसाद – चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास प्रयाग 1968

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

सरबंगी : मानव और समाज

डॉ0 ब्रजभूषण राजेश
प्रवक्ता हिन्दी विभाग
श्री मलखान सिंह महाविद्यालय, ठूलई–जहाँगीरपुर, (हाथरस)

मध्ययुगीन संत–साहित्य में संत रज्जबदास द्वारा संकलित सरबंगी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे संत रज्जबदास जी की महत्त्वपूर्ण रचना माना जाता है। यह रचना संत रज्जबदास और उनके पूर्व संतों के काव्य का महाकोश कहा जा सकता है। संत रज्जबदास भारत की मिट्टी के संत थे। यहाँ की सम्पूर्ण सांस्कृतिक विचारधाराओं को उन्होंने आत्मसात् किया। लोक धर्म और दर्शन की उन्हें गहरी सूझबूझ थी।

मानव का समाज से बहुत गहरा सम्बन्ध होता है। मनुष्य जब कोई ऐसा कार्य कर देता है जिसे समाज में बुरी नजरों से देखा जाता है तब व्यक्ति समाज की नजरों में गिर जाता है और यह भी हो सकता है कि व्यक्ति का सामाजिक बहिष्कार भी कर दिया जाय। व्यक्ति को समाज में उचित स्थान तभी मिलता है जब वह समाज में सभी के साथ सहयोग की भावना रखे। व्यक्ति ने अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समाज बनाया है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। लेकिन मनुष्य किस प्रकार सामाजिक प्राणी है? यह विचारणीय विषय है। वास्तविक स्थिति यह है कि बच्चा जन्म के समय एक जैविकीय प्राणी होता है। उसमें अन्य कोई सामाजिक विशेषता नहीं होती है। माता–पिता यदि प्रारम्भ से ही अपनी संस्कृति तथा सामाजिक नियमों के अनुकूल बच्चे का पालन–पोषण न करें तो निश्चय ही बच्चे का कोई भी व्यवहार सामाजिक नहीं बन सकता। वह मानवीय व्यवहारों और मानवीय विशेषताओं से वंचित रह जायेगा। उसका मानसिक विकास रुक जायेगा। ऐसा बच्चा यह कभी नहीं सीख पायेगा कि समाज में दूसरे व्यक्तियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाय तथा सामाजिक दृष्टि से कौन से कार्य उचित हैं और कौन से अनुचित हैं। बच्चे में इन सभी गुणों का विकास सामाजिक सीख की प्रक्रिया द्वारा होता है। संक्षेप में इसी प्रक्रिया को समाजीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है।

प्राचीन विद्वानों ने अनेक सम्पूर्ण सिद्धान्तों के द्वारा व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध स्पष्ट किया। उनमें एक सिद्धान्त 'सामाजिक समझौते' का सिद्धान्त था। इसकी उपयोगिता कम होने के बाद 'समाज का सावयवी सिद्धान्त' बहुत समय तक प्रभावपूर्ण एवं प्रचलित रहा। आज सभी समाजशास्त्री और सभी मनोवैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति और समाज के बीच की कड़ी 'समाजीकरण की प्रक्रिया' है। मनुष्य इसलिए एक सामाजिक प्राणी है कि समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा समाज उसे जैविकीय प्राणी से एक सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करता है और समाज का अस्तित्व इसलिए है कि व्यक्ति स्वस्थ सम्बन्धों का निर्माण करके समाज को व्यवस्थित बनाते हैं।

व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने दो सिद्धान्त बतलाये हैं जिसमें पहला सामाजिक समझौते का सिद्धान्त है जिसमें प्रारम्भ से ही सम्पूर्ण मानव समाज को स्वतन्त्रता प्राप्त थी और प्रारम्भ में सम्पूर्ण मानव समाज जीवन की आवश्यक वस्तुओं के लिए प्रकृति पर निर्भर रहता था। उस समय मनुष्य पक्षियों के समान स्वतन्त्र और बन्धनमुक्त था। इस समय प्राकृतिक नियमों का अर्थ मनमाने रूप से लगाया जाने लगा है। सभी मानव समुदायों ने भूमि पर अधिक से अधिक अधिकार करना शुरू कर दिया जिससे व्यक्तिवादिता में वृद्धि हुई है। परिणामतः धनवान और निर्धन, शक्तिशाली और निर्बल जैसे अनेक समूहों का उदय हुआ। शक्ति का महत्त्व बढ़ने से जीवन क्रूरता से भर गया। आपसी संघर्ष अपनी चरम सीमा को पार कर गया। इन विषम परिस्थितियों

से निजात पाने के लिए व्यक्तियों ने एकत्र होकर एक उपाय खोज निकाला और एक समझौता किया जिससे सभी व्यक्तियों की स्वतन्त्रता की रक्षा हो सके और इसकी अवहेलना करने पर व्यक्ति को दण्ड दिया जा सके। इसी समझौते पर आधारित व्यवस्था का नाम 'समाज' रखा गया। इससे स्पष्ट होता है कि समाज का निर्माण जान–बूझकर मनुष्य द्वारा किया गया है।

इस सिद्धान्त की उपयोगिता समाज में कम ही रही है क्योंकि इस सिद्धान्त ने व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों को भ्रमित कर दिया है। एक बिल्कुल आदिम मनुष्य यकायक इतना चेतन नहीं बन सकता कि वह समाज जैसी जटिल व्यवस्था का निर्माण कर लेता। यह सिद्धान्त राज्य की उत्पत्ति को समझाने के लिए दिया गया होगा। बाद में इसे समाज और व्यक्ति के सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिए भी प्रयोग में लाया गया।

दूसरा सिद्धान्त सावयवी सिद्धान्त है इसके अन्तर्गत प्राचीन दार्शनिकों ने आरम्भ से ही समाज को जैविकीय आधार पर समझने का प्रयास किया है। ऋग्वेद में यह उल्लेख मिलता है कि "चार वर्णों की उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख, भुजाओं, जंघाओं और पैरों से हुई है।" इसलिए समाज को एक सावयवी रचना के रूप में देखा जाता है। ब्रह्म वास्तव में एक वृहद् समाज का ही प्रतीक है। प्लेटो ने भी समाज को शरीर रचनाओं की विशेषताओं के अनुरूप ही माना है। अरस्तू ने भी आत्मा व शरीर की तुलना समाज के निम्न वर्ग एवं उच्च वर्णों से की है।

समाज के सम्बन्ध में स्पेन्सर का कथन है कि "समाज एक जीव रचना है।" समाज और शरीर रचना दोनों में ही विकास के कुछ तत्त्व समान होते हैं। दोनों के सभी अंगों में परस्पर निर्भरता होती है। समाज और शरीर दानों का ही निर्माण कुछ इकाइयों से होता है। जैसे– शरीर का निर्माण कोशिकाओं से और समाज का निर्माण व्यक्तियों से होता है। जिस प्रकार शरीर का अन्त होने पर कोशिकाओं का अन्त हो जाना सदैव आवश्यक नहीं, उसी प्रकार समाज का अन्त हो जाने पर व्यक्तियों का अस्तित्व समाप्त हो जाना भी आवश्यक नहीं होता। जिस प्रकार शरीर को जीवित रखना रक्त संचालन पर निर्भर होता, उसी प्रकार समाज व्यापार व वाणिज्य पर आधारित है। समाज व शरीर में व्यवस्था का केन्द्र भी लगभग समान होता है, जैसे– शरीर को नाड़ी व्यवस्था नियन्त्रित करती है और समाज को सरकार नियन्त्रित करती है। यह सिद्धान्त व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों में व्यक्ति की अपेक्षा समाज को कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है।

जैविकीय विचारधारा के अनुसार व्यक्ति की समाज पर पूर्ण निर्भरता दिखायी जाती रही है किन्तु आज इस सिद्धान्त की कोई प्रामाणिकता नहीं रह गयी है। जीव रचना और समाज में कुछ ऐसी मौलिक भिन्नतायें हैं जिनके कारण दोनों (जीव और समाज) को किसी भी प्रकार समान नहीं कहा जा सकता है। जैसे– जीव मूर्त है और समाज अमूर्त है, जीव रचना समाज में कहीं अधिक सन्तुलित और निश्चित नियमों पर आधारित है, जीव की चेतना मस्तिष्क में केन्द्रित है समाज में यह अनेक स्थानों पर फैली हुई है। शरीर के अंग एक स्थान पर ही कार्य करते हैं जबकि समाज के अंग गतिशील होते हैं। समाज को जीव रचना के समान मानकर व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध को किसी भी प्रकार से स्पष्ट नहीं किया जा सकता है।

समाज और व्यक्ति दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। बिना समाज के व्यक्ति का विकास नहीं हो सकता और बिना व्यक्ति के समाज का निर्माण नहीं हो सकता। इसका कारण है कि "जन्म के समय बच्चा केवल एक जैविकीय प्राणी होता है। वह न तो सामाजिक होता है और न ही समाज विरोधी। यह समाज ही है जो बच्चे को एक जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करता है।"

मैकाइवर का मत है कि "समाज और व्यक्ति के सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाला कोई भी सिद्धान्त न तो पूर्ण रूप से व्यक्ति वादी हो सकता है और न ही समाजवादी; क्योंकि समाज और व्यक्ति एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और एक दूसरे पर आश्रित हैं।"

व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए चार्ल्स कूले का विचार है कि "जब हम व्यक्ति

और समाज की ओर संकेत करते हैं तब हम एक दूसरे से भिन्न दो तथ्यों पर विचार नहीं करते हैं बल्कि एक ही तथ्य पर दो दृष्टिकोणों से विचार करते हैं।" इसका अभिप्राय यह है कि जब हम कुछ इकाइयों के दृष्टिकोण से सामाजिक जीवन को देखते हैं तब हमारा अभिप्रायः व्यक्ति से होता है और जब हम सम्पूर्ण सामाजिक जीवन पर विचार करते हैं तब हमारा अभिप्रायः उन्हीं छोटी–छोटी इकाइयों से बनने वाले समाज से होता है। इस प्रकार देखा जाय तो व्यक्ति और समाज में कोई भेद नहीं है। व्यक्ति और समाज को ठीक उसी तरह एक दूसरे से अलग करके स्पष्ट नहीं किया जा सकता, जिस तरह सेना और सैनिक को तथा परिवार और कर्त्ता को एक दूसरे से पृथक् करके स्पष्ट नहीं किया जा सकता है।

मैकाइबर ने व्यक्ति पर समाज के प्रभाव को तीन बिन्दुओं के द्वारा स्पष्ट किया है–

पहला– व्यक्ति अपने 'आत्म' के विकास के लिए समाज पर निर्भर है। 'आत्म' का उचित विकास ही मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी बनाता है। 'आत्म' का अर्थ है कि "अपने बारे में स्वयं के और दूसरे व्यक्तियों के विचार।" दूसरे व्यक्ति हमारे बारे में जो विचार रखते हैं, उसी से हम अपने व्यक्तित्व के बारे में कोई धारणा बनाते हैं। पशुओं में किसी प्रकार का आत्म नहीं होता है इसलिए वे कभी भी सामाजिक नहीं बन सकते।

दूसरा– व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन उसकी सामाजिक विरासत और संस्कृति से प्रभावित होता है। सामाजिक विरासत व्यक्ति को यह बताती है कि अतीत में उसके पूर्वजों ने किस प्रकार के व्यवहार किये थे। व्यक्ति सामाजिक विरासत के द्वारा अपनी प्रथाओं, परम्पराओं और नियमों के अनुसार व्यवहार करना सीखता है।सामाजिक विरासत व्यक्ति के बहुत से व्यवहारों पर नियन्त्रण ही नहीं करती अपितु उसके बहुत से कार्यों को सरल भी बनाती है।

तीसरा– जो बच्चे प्रारम्भिक जीवन में किसी कारणवश समाज से अलग हो गये, उनमें किसी भी सामाजिक विशेषता का विकास नहीं हो पाता। ऐसे व्यक्ति के जीवन में समाज की अनिवार्यता को स्पष्ट करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मानव और समाज– अनु0 गोपाल कृष्ण अग्रवाल, किताब महल, इलाहाबाद, वर्ष 1973ई0
2. समाज दर्शन के मूल तत्त्व– रामजी सिंह, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, वर्ष 1983ई0
3. सरबंगी– सम्पा. डॉ. शिवकुमार शाण्डिल्य, मंगला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989ई.
4. रज्जबदास की सरबंगी– डॉ. शहाबुद्दीन इराकी, ग्रन्थायन प्रकाशन, सर्वोदय नगर, सासनी गेट, अलीगढ़, वर्ष 1985ई.
5. द सरबंगी आफ दादू पंथी रज्जब– डब्ल्यू. एम. कालवर्ट, डी.के. पब्लिशर्स, दरियागंज, दिल्ली, वर्ष 1978ई.

❑❑

कबीर नवजागरण के अग्रदूत : एक अवलोकन

डॉ0 शम्स आलम
एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष – हिन्दी विभाग
बी.वी.एम. (पी0जी0) कॉलेज बाह, आगरा

सन्त कवि सच्चे अर्थो में समाज के सच्चे हितैषी और पथ–प्रदर्शक थे। उन्होंने अपने समय को पहचाना, समाज की भंयकर पतन की दशा का अवलोकन किया तथा उसके अनुकूल उपचार खोजे। उन्होंने सच्चे युगदृष्टा की भाँति समाज के यथार्थ रुप का दर्शन किया और युगसृष्टा के रुप में नये समाज के निर्माण का प्रयास किया। उन्होंने किसी जाति धर्म, वर्ग आदि का पल्ला नहीं पकड़ा। वे तो समाज का कल्याण चाहते थे। इसलिए जातिवाद धर्मान्धता, पाखंड आदि का खुलकर विरोध किया। इसमें अग्रणी थे कबीरदास। हिन्दी–साहित्य में कबीर नवजागरण के अग्रदूत माने जाते है। वे आज जनता के ह्रदय में व्यक्ति के रूप में नही अपितु प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित है। बुद्ध के बाद उत्तर भारत के धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में नवीन चेतना का स्वर फूँकने वालों में शंकराचार्य के बाद कबीर सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम महापुरुष है। उन्होने संत काव्य–धारा का प्रणयन करके उसे पूर्णता तक पहुँचाया। कबीर ने एक ऐसी विचारधारा की स्थापना की जिससे अनेक शताब्दियों के उपरान्त गाँधी जैसे युगपुरुष भी प्रभावित हुए। कबीर का वक्तित्व विद्रोही रहा है। जिसके लिए उनके पूर्व की सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ उत्तरदायी रही है।

कबीर के व्यक्तित्व को निर्मित करने में सिद्ध नाथ, वैष्णव, एवं इस्लाम परम्परा की अनेक विशेषताएँ प्रभावी रही है। ईसा की सातवीं–आठवीं शताब्दी तक आते–आते बौद्धधर्म 'वज्रयान' का तन्त्रवादी रूप धारणकर विकृत हो चुका था। सिद्ध–साधक और योगी तान्त्रिक उपासना द्वारा जनता पर अपना प्रभाव डाल रहे थे। समाज में अन्धविश्वासों का साम्राज्य था। इन तांत्रिकों का विरोध कर सरहपा, कण्हपा, शबरपा, आदि सिद्धो ने अपनी व्यक्तिगत साधना के बल पर धार्मिक और सामाजिक क्रान्ति का बीजारोपण किया। इन सिद्धों ने संस्कृत, प्राकृत और पालि भाषाओं को त्याग कर अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी में अपनी वाणी मुखरित की। इन सिद्धों पर भी 'वज्रयान' का प्रभाव था। ये सभी सिद्ध प्रायः अशिक्षित थे, इसलिए इनके ग्रन्थों का साहित्यिक मूल्य गौण और ऐतिहासिक मूल्य महत्वपूर्ण है। आगे चलकर इन्हीं सिद्धों की परम्परा में सन्त साहित्य की रचना हुई। इसी परम्परा का विकसित रुप गोरखनाथ के नाथ पंथ में और व्यापक तथा पुष्ट रुप निर्गुणमार्गी ज्ञानाश्रयी शाखा में पाया जाता है। कालान्तर में इन प्राचीन सन्तों की अटपटी वाणी का उल्टा अर्थ लगाया जाने लगा, जिससे आडम्बर प्रधान विभिन्न नवीन सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई। इनमे वासना और भोंगलिप्सा का विशेष आग्रह बढ़ा जिससे सिद्धो की महिमा समाप्त हो गयी। इसी समय गोरखनाथ ने मूर्तिपूजा, तंत्रवाद आदि का खण्डन करके एकेश्वरवाद की स्थापना की। इन रहस्यवादी नाथों में चौरंगीनाथ, चर्पटीनाथ, जालन्धरनाथ आदि अनेक प्रसिद्ध महात्मा हुए। इन्ही नाथों की पृष्ठभूमि पर कबीर ने अपना पंथ प्रतिष्ठित किया। अव्यावहारिकता के कारण नाथ पंथ का भी ह्रास हो गया। कबीर ने उसमें प्रेम और राग का मिश्रण करके उसे एक नवीन रूप प्रदान किया। प्रेम और राग का यह तत्व कबीर के पहले महाराष्ट्र के अनेक संतो की वाणी में उभर चुका था और कबीर उससे प्रभावित हुए थे। कबीर का समय प्रौढ़ संतमत का काल है। कबीर और उनके सभी अनुयायी सुधारवादी थे। उन्होंने बाह्याडम्बरों का विरोध करके एकेश्वरवाद का प्रचार किया।

संत कवियों पर एक ओर भक्ति, योग तथा एकेश्वरवाद के रूप में सिद्धों और नाथों का प्रभाव है तो दूसरी ओर प्रेम की तीव्रता, भक्ति और माधुर्य उपासना के रूप में सूफियों तथा वैष्णवों की अहिंसा और प्रेम का प्रभाव

है। उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम एकता का नारा बुलन्द करके मूर्तिपूजा और बहुदेववाद का खण्डन किया। काव्यरचना करते समय उनका उदेश्य केवल अपने मत का प्रचार करना था, किन्तु उनकी भावुकता ने उनके काव्य में न्यूनाधिक सरसता ला दी है। सभी संत अक्खड़ प्रकृति के थे। शुद्ध मानवतावादी होने के कारण उन्होने निर्भय होकर धार्मिक और सामाजिक वैषम्य पर निर्मम प्रहार किये, बुराइयों की कटु आलोचना करके सद्‌गुणों का उपदेश दिया। इसी कटु प्रवृत्ति के कारण इसमें नीरसता और रूखापन आ गया है। उनके साहित्य में संदेश का सौन्दर्य तो विद्यमान है किन्तु साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव है। इसका एकमात्र कारण यह था कि ये लोग अधिक पढ़े–लिखे नही थे और उन्होने काव्य रचना केवल अपने मत के प्रचार के लिए किया था। उन्होने केवल अपनी अनुभूति के बल पर ईश्वरत्व की अनुमति प्राप्त की थी। उनमें वाणी का चमत्कार न होकर एक नैसर्गिक स्वच्छन्दता और सरलता है। उसमें भावों की तीव्रता है जिसे किसी शास्त्रीय वाह्म सम्बल की आवश्यकता नहीं है। संतों का ईश्वर निर्गुण और एक है जिससे ये संत जातिगत और साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से परे है। ईश्वर के प्रति उनका प्रेम खरा, निर्मल और अडिग है। उनकी भक्ति में वैष्णवी भक्ति का भी प्राधान्य होने से उनका निराकार कुछ कुछ साकार प्रतीत होता है, जिससे उनकी ईश्वर सम्बन्धी भावना में अस्पष्टता और असंगति दृष्टिगोचर होती है।

कबीरदास का साहित्य भारतीय अद्वैत–भावना से प्रभावित है उनका ज्ञान और उपदेश अद्वैत पर आधारित है। संतमत के कवि माया की सत्ता और जीव–ब्रह्म की एकता को स्वीकार करते है। संतो ने ब्रंह्म की प्राप्ति के लिए ज्ञान और भक्ति दोनों को आवश्यक माना है। ज्ञान भक्ति के अभाव में अपूर्ण है। इसलिए पूर्णता लाने के लिए उन्होंने 'रामानन्दी सम्प्रदाय' की वैष्णवभक्ति की विशेषताओं को स्वीकार किया है। वैष्णव भावना व्यक्तिगत ब्रह्म के प्रति रागात्मक निवेदन है। इसीलिए संतो ने ब्रह्म को जननी, जनक, पति आदि विविध रुपों में स्वीकार किया है। भक्ति ही संतो के लिए सब कुछ है। सन्तों में लोकभावना की प्रधानता वैष्णवों की ही देन है। सन्तों पर सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद का गहरा प्रभाव है। उनकी प्रेमभावना महत्वपूर्ण है अन्यथा उसके अभाव में यह नाथ पंथ के समान ही शुष्क रह जाता। सन्तों का प्रियतम निर्गुण है इसीलिए उनके प्रति प्रेम प्रदर्शन में रहस्य की भावना आ गई है। साधना के क्षेत्र में सन्तों ने साधनात्मक रहस्यवाद को अपनाया है, जिसमें हठयोग की विभिन्न क्रियाओं का विशेश महत्व है। इन सन्तों पर सिद्धों और हठयोगियों का व्यापक प्रभाव पड़ा है। इसी प्रभाव के कारण इन्होंने धार्मिक वाह्माचारों का खण्डन किया था सिद्धों और हठयोगियों ने रहस्यवादी बनकर शस्त्रज्ञ विद्वानों का तिरस्कार करने मनमाने रुपकों द्वारा अटपटी वाणी में पहेलियाँ बुझाने में सन्तो का मार्गदर्शन किया था। हठयोग को सन्तों ने ब्रंह्म प्राप्ति का साधन बताया है। यद्यपि सन्तों ने सभी मतों के प्रमुख तत्वों को अपने मत में सम्मिलित किया, किन्तु अशिक्षित होने के कारण वे इन तत्वों के वास्तविक रुप को समझने समझाने में पूर्णरुपेण सफल नहीं हो सके।

कबीरदास सन्तमत के एक क्षत्र सम्राट थे। कबीर की जितनी प्रशंसा अन्य भाषा–भाषियों ने की उतनी हिन्दी वालों ने हीं की। कवीन्द्र रवीन्द्र द्वारा कबीर के प्रति व्यक्त श्रद्धांजलि तथा विदेशी विद्वानों द्वारा उनकी प्रशंसा क्षितिमोहन सेन द्वारा प्रस्तुत 'सन्त काव्य का विश्लेषण और उसकी प्रशंसा' कबीर को विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में बिठाता है। कबीर की उपेक्षा के मूल में रसवादी आलोचकों का सीमित और संकीर्ण दृष्टिकोण रहा है। हिन्दी साहित्य में अपनी प्रखर प्रतिभा की धाक मनवाने वाले एकमात्र कबीर ही ऐसे है जिनकी विरोधियों ने विरोध करते हुए भी प्रशंसा की है। हिन्दी सहित्य में कबीर की यह सबसे बड़ी उपलब्धि है। हिन्दी साहित्य में कबीर का सम्यक मूल्यांकन न होने का मूल कारण यह है कि अधिकतर विद्वानों ने उनके तत्वज्ञान की शुष्कता परिष्कृत भाषा तथा खण्डन–मण्डन पर ही विशेष दृष्टि डाली है। जीवन की समस्याओं पर मौलिक रुप से विचार करने की प्रेरणा उत्पन्न करना साहित्य की सबसे बड़ी देन है। कबीर का सहित्य हमें यही प्रेरणा देता है। कबीर की इस प्रेरणा का महत्व सत्य की साधना के कारण है न कि काव्य सौन्दर्य प्रदर्शन की दृष्टि से। लोगों को एकता के सूत्र में आबद्ध करने की चेश्टा से उन्हे ब्रंह्म संसार की अनेकता मे मानव एकता का सूत्र मिल गया था। एकता का सत्य स्वरुप दिखाते हुए कबीर ने अपने से औरों को भिन्न मानने वाले लोगों के सिद्धान्तों का खण्डन किया

था। इस सांसारिक विषमता, आडम्बर और भेद भाव के विरुद्ध कबीर ने सरस प्रेममय जीवन अपनाने का सन्देश दिया था। हिन्दी साहित्य में शुद्ध और सरस साहित्य के सृजन की दृष्टि से सूर और तुलसी तथा विषय प्रति पादन के महत्व की दृष्टि से तुलसी और कबीर महत्वपूर्ण है कबीर के साहित्य में जीवन की प्रमुख समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है तथा चिन्तन की प्रेरणा मिलती है। अपनी सार्वजनिक भावना के कारण ही कबीर जनसमुदाय में विशेष लोकप्रियता प्राप्त कर सके। कबीर की दृष्टि में मनुष्य मात्र समान है, सब ईश्वर की सन्तान है जाति और धर्म का कोई भेद नहीं है। इस प्रकार की घोषणा कबीर ने सर्वप्रथम की थी। दृढ़ता के साथ उदार मानवता का स्वर ऊँचा करने वाले कबीर हिन्दी के प्रथम कवि है। कबीर की काव्य रचना का उददेश्य तत्वदर्शन था। वे अपने पदों में श्रोताओं को सम्बोधित करते हुए कहते है – 'तुम जिन जानौ गीत है यह निज ब्रहा विचार'। उन्होंने अपने काव्य में केवल ब्रंह्म विचार को प्रकट किया है। अपनी आत्म साधना के सारतत्व को अपने शब्दों में प्रत्यक्ष कर देने की चेष्टा उन्होंने की है। वे इस विचार से प्रेरित जान पड़ते है कि

हरिजी यहै बिचारिया साखी कहौ कबीर ।
भौसागर में जीव है जे कोई पकड़े तीर ।।

कबीरदास जी इस उद्देश्य के अतिरिक्त किसी अन्य उद्देश्य से की गई काव्य रचना को 'कोरा कवि कर्म' मानते है। इन उदाहरणों से कबीर के काव्यसृजन सम्बन्धी उस आदर्श का पता चल जाता है जिसका अनुसरण अन्य सन्तों ने भी किया है। प्रमुख रुप से कबीरदास जी के व्यक्तित्व के दो पक्ष है। (अ) धर्म–सुधारक उपदेशक का और (ब) शुद्ध भक्त का। धर्म–सुधारक उपदेशक के रुप में उन्होंने जो कुछ कहा है वह खण्डन–मण्डन की उग्रभावना के कारण नीरस शुष्क और कर्कशभशा में है। उसमें साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव है, क्योकि सरस कावय का सृजन करना कबीर का लक्ष्य भी नहीं था। कविता को उन्होंने अपने विचारों तथा भावों को जनसमुदाय तक पहुँचाने का माध्यम बनाया था। उन्होंने न तो 'मसि कागद' को छुंआ था और न हाथ से कलम ही गही थी। वे तो मात्र प्रेम का ढाई आखर पढ़कर ही पण्डित हो गये थे। कविकर्म के लिए अपेक्षित प्रतिभा, शिक्षा और अभ्यास में से कबीर में केवल प्रतिभा थी। उनके ज्ञान का साधन और स्रोत–सत्संग और पर्यटन था। वे बहुश्रुत थे–इसी से उनके काव्य में विभिन्न प्रदेशों में प्रयुक्त कविसाक्ष्यों, प्रतीकों तथा अलंकारो का सौन्दर्य स्वतः आ गया है। उनके रुपको तथा उलटवांसियों में प्राप्त विरोधाभास साहित्य की अमूल्य निधि है ये विभिन्न विशेषतांएँ उनकें काव्य में अभिव्यक्ति की निश्छलता तथा गहनता के कारण फोकट में आ गई हैं। ह्रदय से निःसृत कविता सीधे ह्रदय पर चोट करती है। उसमें अनुभूति की सघनता होती है। अनुभूति की यह तीव्रता कबीर के काव्य में पूर्ण आवेग के साथ मिलती है। उनके ह्रदय में सच्चाई तथा आत्मा में बल था जिससे उनकी वाणी में इतनी शक्ति आ गई थी। उनकी वाणी की यही शक्ति काव्यगत सरसता बनकर पाठकों के ह्रदय पर प्रभाव डालती है। हैं। यह सरसता उनके द्वारा वर्णित सांसारिक असारता, भक्तिभावना की तल्लीनता प्रिय मिलन तथा विरहवर्णन में अधिक मिलती है। कविता करते समय कबीर इस बात का ध्यान नहीं रखते कि वे जो कुछ कह रहे है वह सरस और सुन्दर है अथवा नीरस। आत्मा के सच्चे उद्गार के कारण, सरसता उनके काव्य में स्वतः आ जाती है। कबीर का हृदय क्रान्तिकारी था। उनका यह व्यक्तित्व ही प्रेमी, भक्त तथा शुद्ध मानव की विभिन्न धाराओं में प्रवाहित हुआ है। उनके व्यक्तित्व में तेजस्विता, निश्छलता तथा स्पष्टता है। उन्होनें अपने अशिक्षित होने की बात को बड़े गर्व के साथ स्पष्ट और निश्छल शब्दों में कही थी, किन्तु उन्हें अपने सांसारिक अनुभव और ज्ञान पर पूर्ण विश्वास था। इसीलिए उन्होंने शास्त्रवादी पण्डितों को ललकार कर कहा था –

तू कहता कागद की लेखी,
मैं कहता आँखिन की देखी।

उनकी 'आँखिन की देखी' प्रेम के तन्मयीभाव, गहन भक्ति– भावना तथा उसकी अनुभूति के प्रदर्शन तक ठीक

बैठती है, किन्तु जहाँ वे खण्डन–मण्डन प्रणाली का आश्रय ग्रहण करके दार्शनिक तत्वों की विवेचना करने का प्रत्यन करते है वहाँ उनकी 'आँखिन देखी' बात लड़खड़ा उठती है तथा काव्यशक्ति उनका साथ छोड़ देती है। तर्क के लिए शास्त्रीय ज्ञान और बुद्धि की अपेक्षा होती है। दार्शनिक विवेचना में मस्तिष्क और ज्ञान की प्रधानता होती है। कबीर में मस्तिष्क तो था किन्तु उनका शास्त्रीय ज्ञान उत्यल्प था। इससे वे दार्शनिक विवेचन के क्षेत्र में स्वतः लड़खड़ा गये है काव्य की दृष्टि से उनका स्वाभाविक क्षेत्र हृद्य था। इसलिए हृदयगत विचारों के क्षेत्र में ही कबीर को थोड़ी–बहुत सफलता मिलती है।

कबीरदास जी सच्चे साधक थे। सच्चे साधक होने के कारण 'हठयोग' और 'कर्मयोग' कबीर की साधना के दो रुप थे। सच्चे कर्मयोगी की भाँति वे संसार के माया–मोह में निर्लिप्त रहते थे। उनकी कथनी और करनी में अदभुत साम्य था। उन्होंने सांसारिक संघर्ष से पलायन करने का उपदेश कभी नहीं दिया। वे उससे टक्कर लेने के पक्षपाती थे। साधना के क्षेत्र में कबीर युगपुरुष थे और साहित्य के क्षेत्र में भविष्यस्रष्टा। सच्चा कर्मयोगी होने के कारण वे युग–गुरु थे। उन्होंने सन्तकाव्य का पथ प्रदर्शन करके साहित्य क्षेत्र में नव–निर्माण का कार्य किया था। उनके समकालीन तथा परवर्ती सभी सन्तों ने उनकी वाणी का अनुकरण किया। कबीर युगद्रष्टा थे। अपने युग की समस्त सांसारिक गतिविधियों पर उनकी दृष्टि थी। युगद्रष्टा की भाँति उन्होंने शाश्वत सामाजिक विषमताओं का खण्डन करके शुद्ध मानवतावाद का प्रचार किया। परमात्मा के प्रति सच्ची आस्था और प्राणिमात्र के साथ शुद्ध व्यवहार कबीर का धर्म था। धर्म का यही सारतत्व है। कबीर धर्म के मूल तत्वों को ग्रहण करने में सदैव तत्पर रहते थे। वे उसी मानव–धर्म को श्रेष्ठ मानते थे। जिसमें सभी धर्मों की श्रेष्ठ बातों का सम्मिश्रण था। कबीर 'कथनी' और 'करनी' में पूर्ण साम्य के समर्थक थे। वे मन वाणी और कर्म में सामंजस्य के पाक्षपती थे। इसी कारण उन्हें समाज के प्रत्येक वर्ग का विश्वास प्राप्त था। परमात्मा की सर्वव्यापकता को स्वीकार कर कबीर ने पददलित लोगों को अपना बन्धु बनाया था। कबीर वर्ण–व्यवस्था के विरोधी थे। उनकी दृष्टि में वर्णव्यवस्था का महत्व आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वथा नगण्य था। लोक कल्याण तथा आत्मकल्याण–दोनों की दृष्टि से कबीर ने गरीबी को अपनाया था। दैन्य और दरिद्रता – दोनों आध्यात्मिक जीवन की बहुत बड़ी आवश्यकताएँ है। इसी कारण वे सदैव परिश्रम करते थे और कपड़ा बुनते थे। भारत अग्रजन्माओं का देश है जो अपने चरित्र से संसार को शिक्षा देते रहे है। भारत का यह अग्रजन्मत्व छह शताब्दीं पूर्व कबीर के रुप में प्रकट हुआ था। कबीर परमात्मा की विभूति युगद्रष्टा और समाज के कर्णधार थे। वे अपनी कविता के समान सीधी–साधी भाषा में उल्लिखित आदर्श थे।

कबीरदास सन्त काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि थे। कबीर का व्यक्तित्व ऐसे महान सन्त का व्यक्तित्व था जिसने पूर्ण निर्भीकता के साथ अनीति, अत्याचार और आडम्बरों का विरोध करके मानव – मात्र से प्रेम करने का सन्देश दिया था। कबीर का काव्य सत्य की, परमार्थ की चेतना की खोज है। कबीर उन साहित्यकारों में हैं जिनके एक–एक सबद में निर्माण का राग है। वे सच्चे अर्थों में धर्म संस्थापक थे। जीवनमूल्यों का जब जब ह्रास हुआ है समय ने जनता को जागरुक बनाने के लिए किसी महान पुरुष को जन्म दिया है। कबीर तत्कालीन समय की देन है। वे रचनात्मक धर्म के प्रतिष्ठाता है। कबीर भावों के कवि है उन भावों के जो जीवन जीने के लिए अनिवार्य है उनका साहित्य मानवता के अधिक निकट है। अभेदभाव कबीर के काव्य का केन्द्र बिन्दु है। संसार में जहाँ–जहाँ जिस स्तर पर भेद है, उसे कबीर–वाणी से मिटाया जा सकता है। कबीर मानवता की मूलभूत एकता के पक्षधर है, वे विश्वबन्धुत्व के कवि है। कबीर के काव्य का सबसे बड़ा गुण है। उसका श्रेयस् होना। कबीर रहस्य और गुह्य भावना के कवि नहीं है, वे सहज है और सहजता उनकी भक्ति की कसौटी है। आत्मानुभूति, प्रेमानुभूति एवं नैतिकता के लिए सहजता–उदारता अनिवार्य है। कबीर की साखियाँ एकदम सीधी, सुस्पष्ट दो टूक तथा आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि से भरपूर है। वे कबीर की सहज अनुभूति की साक्षी है। कबीर को आध्यात्मिक पुनर्जागरण का श्रेय है। उन्होंने ईश्वर को धर्म को ज्ञान को और भक्ति को जीवन से जोड़कर व्यापक बनाया। इसीलिए उत्तर भारतीय साधना तथा साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी के अन्य कवियों की तुलना में कबीर का विशिष्ट

योगदान है। कबीर ने भारत की आत्मवादी तथा अनात्मवादी दोनों प्रमुख दार्शनिक पद्धतियों से सार –संकलन करके अपने मत का प्रचार किया। उन्होंने ईश्वरवादी तथा निरीश्वरवादी तत्वदर्शन को समन्वय की ऐसी रमणीय पृष्ठभूमि पर अवतरित किया, जहाँ प्रेम और भक्ति का समुद्र उमड़ रहा है। उनकी रचनाओं में माधुर्य की वे समस्त भावनाएँ बीज रुप में विद्यमान है जिनका पल्लवन बंगाल के सहजिया वैष्णवों की उपासना में हुआ। महान् वही है जो किसी सीमित चौखटे में न बँधे। कबीर ऐसे ही बेहद्दी मैदान में विचरण करने वाले सन्त थे। उन्होंने स्वीकार भी किया है कि

हद्द चलै सो मानवा, बेहद चलै सो साध ।
हद बेहद दोऊ तजै, ताकर मता अगाध।।

कबीर का महत्व सबसे अधिक इस बात में है कि तत्कालीन समाज में जो विषमता व्याप्त थी, उसका उन्होंने प्राणपण से मूलोच्छेद करने का प्रयास किया। वे जिस प्रकार के परिवार में घोषित हुए थे उसको तत्कालीन विषमता और क्रूरता का गरल पीना पड़ा था। इसीलिए भुक्तभोगी होने के कारण उनमें जो निर्भीकता और ताजगी मिलती है वह परवर्ती सन्तसाहित्य में बहु कम देखने को मिलती है। कबीर अनुभूतिमार्गी थे। शास्त्रीय आतंक जाल का भंडाफोड़ कर लोकाचार के निविड़ जंजाल को छिन्न–भिन्न कर निरावरण सत्य तक सहज ही पहुँचने की उनमें प्रतिभा थी। कबीर ने धर्म के सहज रुप पर बल दिया। समदृष्टि इसका मूलमंत्र है। उन्होंने व्यक्तिगत साधना पर विशेष बल दिया है। इसके लिए सत्य, अंहिसा, परोपकार, इन्द्रिय निग्रह एवं ब्रह्मचर्य आवश्यक है। अन्य सन्त कवियों की अपेक्षा कबीर में सामाजिक संवेदनशीलता अधिक है। उनका साहित्य जनभावनाओं की सहज प्रवृत्तियों, परीस्थितियों, विकृतियों और विडम्बनाओं का विशाल शब्दचित्र है। वे वर्गहीन समाज की स्थपना के लिए आतुर थे। रुढ़ियां एवं आडम्बर चाहे जिस धर्म के हो, उनके लिये अस्वीकार्य थे। युगद्रष्टा कबीर ने सीधी–साधी भाषा में रुढ़िपंथियों को फटकारते हुए प्रत्येक व्यक्ति को समाज में समान अधिकार दिलाने का प्रयत्न किया है। उनका व्यक्तित्व एक युग प्रर्वतक का प्रतिरुप था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर के महान व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए लिखा है – ''वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय थे। युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और युग प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें विद्यमान थी, इसलिए वे युग –प्रर्वतन कर सके।'' वस्तुतः कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में कबीरदास जी नवजागरण के अग्रदूत थे। कबीरदास जी धर्म के सामान्य तत्वों सत्य, अहिंसा, संयम, सदाचार का पूर्ण समर्थन किया और सच्चे अर्थो में मानव धर्म की प्रतिष्ठा की।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. कबीर – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. हिन्दी साहित्य की भूमिका – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
5. कबीर साखी और सबद – पुरुषोत्तम अग्रवाल
6. दूसरी परम्परा की खोज – नामवर सिंह
7. कबीर ग्रन्थावली – श्याम सुन्दर दास
8. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली – भाग 4 – राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

❑❑

लोकतंत्र की आधुनिक अवधारणा का सच : विनोबा भावे की दृष्टि में

डॉ0 इन्द्रमणि
एसो0 प्रो0– राजनीति विज्ञान
वी0एस0एस0डी0, कॉलेज कानपुर

आज दुनियाँ के सर्वाधिक लोकप्रिय शासन प्रणाली के रूप में लोकतंत्र की स्वीकारिता सर्वविदित है परन्तु यह प्रणाली क्या वाकई लोकशाही का सही प्रतिनिधित्व करती है? इस विषय पर आचार्य विनोबा भावे की अपनी सोच है जिसे जानना, समझना आवश्यक एवं प्रासंगिक है तथा शोध का मुख्य उद्देश्य भी है। वस्तुतः आचार्य विनोबा भावे लोकतंत्र को उपयुक्त शासन पद्धति नही मानते थे। यद्यपि वर्तमान विश्व में लोकतंत्रीय प्रणाली ही लोकप्रिय है परन्तु सर्वोदय की दृष्टि से यह प्रणाली अनुपयुक्त है। विनोबा जी ने स्वयं कहा कि – ''मैं संसदीय लोकतंत्र का समूल विनाश नहीं चाहता। मैं तो चाहता हूँ कि उसमें सुधार हो और वह भारत की परिस्थितियों के अनुकूल बने। भारतीय विचार को ध्यान में रखकर लोकतांत्रिक पद्धति का भारतीयकरण करना चाहिए।''[1]

वस्तुतः लोकतंत्र की आधुनिक अवधारणा, आधुनिक युग की परिस्थितियों की देन है। लगभग 16वीं शताब्दी से विश्व के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन में ऐसे परिवर्तनों का शिलान्यास शुरू हुआ जिससे मध्य युग के सामन्ती प्रणाली का पतन हुआ और मनुष्य को नयी प्रतिष्ठा मिली। जेम्स ब्राइस के अनुसार[2] – लोकतंत्र बहुमत का शासन है। ब्राइस के अनुसार यदि हम अन्य शासन प्रणालियों के गुण दोषों के साथ लोकतंत्र के गुण दोषों की तुलना करें तो लोकतंत्र का औचित्य सिद्ध हो जायेगा। ब्राइस के अनुसार किसी भी शासन की कसौटी जनकल्याण है। अतः किसी भी शासन प्रणाली को परखते समय यह देखना चाहिए कि वह जनसाधारण को भीतरी और बाहरी शत्रुओं से संरक्षण प्रदान करने, न्याय दिलाने, सार्वजनिक मामलों को संभालने और नागरिकों को अपने–अपने व्यवसाय में सहायता प्रदान करने में कितनी कुशल और समर्थ है? इतिहास साक्षी है कि ये सब कार्य लोकतंत्र भी करता है एवं अन्य शासन प्रणालियाँ भी करती हैं परन्तु लोकतंत्र का एक अतिरिक्त गुण यह है कि वह मनुष्यों को आत्म–शिक्षा के लिए प्रेरित करता है क्योंकि जब लोग सरकारी गतिविधियों में भाग लेते हैं तो उनकी दृष्टि और अभिरूचियों का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। यह सीधे–साधे 'जनता का शासन' नहीं है। लोकतंत्र में जनसाधारण दो तरह से अपनी सत्ता का प्रयोग करते हैं (क) वे ऐसे लक्ष्य निर्धारित करते हैं जिनकी पूर्ति करना उनकी सरकार का ध्येय होना चाहिए और (ख) वे उन लोगों की निगरानी करते हैं जिनके हाथों में वे प्रशासन की बागडोर सौंप देते हैं।

लोकतंत्र के पक्ष में सामान्यतः कई तर्क दिए जाते हैं, जिनमें प्रमुखतः सत्ता के दुरूपयोग की रोकथाम, शासन के कार्य में जनसाधारण के सहयोग की आशा, सार्वजनिक विषयों की स्वतंत्र चर्चा से जनशिक्षा को प्रोत्साहन एवं देश भक्ति की भावना का संचार होता है।[3]

लोकतंत्र में जहाँ एक ओर इतने गुण दिखते हैं वहीं दूसरी ओर अनेकों व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण वे मूर्तरूप धारण नहीं कर पाते। परिणामतः लोकतंत्र दोषों से घिर जाता है। लोकतंत्र शीघ्र ही भीड़तंत्र, भ्रष्ट नेतृत्व, अकुशलता एवं अतिव्यय आदि से घिर जाता है। बहुसंख्यक अल्पसंख्यकों पर अपने विचार लादते है, स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता के रूप में प्रयुक्त करते हैं और मूल्यों को अपने हितों के अनुकूल व्याख्यायित करते हैं। निष्कर्षतः लोकतंत्र कभी तो सकारात्मक कभी नकारात्मक अवधारणा के रूप में दिखाई देता है।

भारतीय परिस्थितियों में लोकतंत्र के अन्तर्गत अनेकों विराधाभास उत्पन्न हो गए है, इसमें मुख्यतः नैतिक चूकें और अनैतिक कार्य है। जानबूझकर सार्वजनिक जीवन से जुड़े हुए व्यक्तियों के द्वारा नैतिक मान्यताओं का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उल्लंघन किया जाता है। इस प्रकार क्रिया–कलापों का अमलीजामा देखने पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है कि लोकतंत्र का जनक–विधि का शासन और नैतिक मूल्यों का उपहास उड़ाया जाता है। इस प्रकार लोकतंत्र जो अवैयक्तिक, सार्वभौम और मानवीय मूल्यों के संरक्षण की अवधारणा का एक संकलित फल है, वास्तविक रूप में इसके ठीक विपरीत काम करता दिखता है।[4]

अतः इन विषम परिस्थितियों में श्री विनोबा के विचारों की पुर्नव्याख्या परम प्रासंगिक है।

आधुनिक लोकतंत्र की सर्वाधिक प्रमुख एवं लोकप्रिय परिभाषा अब्राहम लिकंन ने की है जिसके अनुसार– ''लोकतंत्र जनता का, जनता के द्वारा एवं जनता के लिए शासन है।'' आचार्य विनोबा भावे को इस परिभाषा के उक्त तीनों बंदों पर कड़ी आपत्ति है।

विनोबा जी जनता के शासन को एक उपहास मानते हैं। उनके अनुसार लोकतंत्र सभी का शासन नहीं हो सकता है क्योंकि उसमें प्रायः बहुमत का शासन हुआ करता है। वास्तव में सर्वसम्मति से संचालित होने वाली व्यवस्था ही सच्ची व्यवस्था है जो कि लोकनीति में दिखाई पड़ती है। गाँधी जी की भाँति विनोबा जी का भी मन्तव्य था कि 'सर्वोदय, अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक हित वाले सिद्धान्त को नहीं मानता है। उसे नग्न रूप में देखें, तो उसका अर्थ यह होता है कि 51 प्रतिशत लोगों के माने गये हित के मुकाबले 49 प्रतिशत लोगों के हितों का बलिदान कर दिया जाता है। यह सिद्धान्त निर्दयतापूर्ण है जिससे मानव समाज को बड़ी हानि हुई है।[5]

इसी क्रम में श्री विनोबा के विचारों का विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि लोकतंत्रात्मक शासन प्रायः बहुमत का भी शासन नहीं हुआ करता है क्योंकि[6]–

1. किसी भी लोकतंत्र में सारे मतदाता भाग नहीं लेते चाहे वह पाश्चात्य लोकतंत्र हो या भारतीय।
2. बहुत कम मौकों पर जो दल चुनाव में विजयी होता है और जिसकी सरकार बनती है, उसमें कुलमतों का स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो पाता है।
3. यह बहुमत भी उस दशा में समाप्त हो जाता है जब सत्तारूढ़ दल में भीतरी फूट हो जाय।

अन्ततः प्रधानमंत्री भी प्रायः दल के द्वारा सर्वसम्मति से न चुनकर बहुमत द्वारा ही चुना जाता है। इससे स्पष्ट है कि देश के भाग्य का फैसला करने वाला मुखिया मतदाताओं के 3 प्रतिशत भाग का ही प्रतिनिधित्व करता है।7 अतः इन विसंगतियों को देखकर विनोबा ने कहा कि तथाकथित प्रतिनिधित्व लोकतंत्र का बहुत बड़ा मजाक है। उनका कहना था कि सबका शासन केवल प्रत्यक्ष लोकतंत्र में है जो छोटे क्षेत्रों में ही सम्भव हो सकता है।

जहाँ तक परिभाषा के दूसरे बंद अर्थात लोकतंत्र जनता के लिए है तो ऐसा भी दिखाई नहीं देता हैं। लोकतंत्र, कभी अगड़ों के लिए तो कभी पिछड़ों के लिए होता है। कभी बहुसंख्यक लिए तो कभी अल्पसंख्यक के लिए होता है। लोकतंत्र के नाम पर जहाँ वोट की राजनीति होती है, वहाँ का लोकतंत्र सर्वजन सुलभ हो ही नहीं सकता।

परिभाषा के अन्तिम बंद के संदर्भ में श्री विनोबा का मानना है कि लोगों द्वारा शासन 'प्रधानमंत्री का ही शासन' बनकर रह गया है। अगर प्रधानमंत्री ईमानदार एवं सच्चरित्र है, तो ठीक है परन्तु यदि चरित्रहीन एवं भ्रष्टाचारी है, तो भूतकाल के अत्याचारी राजाओं से कम नहीं होगा। साधारणतः तथाकथित 'लोगों द्वारा शासन' तो कहीं देखने को ही नहीं मिलता।

इसके अतिरिक्त दादा धर्माधिकारी ने वर्तमान लोकशाही में त्रिदोष की संकल्पना प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि– ''आज के लोकशाही में तीन दोष हैं– अधिकार का दुरूपयोग, अराजकता, या गुण्डाशाही का भय और घूसखोरी। ये त्रिदोष आज की लोकशाही में आ गये हैं। सभी देशों की लोकशाही में ये बुराइयाँ हैं इन्हें लोकशाही

के कफ–बात–पित्त समझ लीजिए। कभी कफ ज्यादा होता है, कभी बात और कभी पित्त। अभी तो ऐसा लक्षण दिखाई दे रहा है कि तीनों सप्रमाण में होकर सन्निपात होने जा रहा है। इसलिए लोकशाही की बुनियादें बदलने की आवश्यकता है।[8]

निष्कर्षतः उपर्युक्त शोधपरक विमर्श के उपरान्त हम देख सकते हैं कि अभी तक की पद्धतियों में लोकतंत्र को श्रेष्ठ पद्धति बताने के साथ ही विनोबा लोकतंत्र में सम्यक् दोष देखते हैं। यहाँ पर यह स्पष्ट करना बहुत जरूरी है कि वे एक पद्धति के रूप में लोकतंत्र को श्रेष्ठ मानते थे परन्तु इनमें इतने दोष उत्पन्न हो गए कि यह प्रणाली एकायतन अर्थात् राजतंत्र से भी खतरनाक हो गयी है। अतः लोकशाही के प्रमुख दोषों को निम्नांकित[9] प्रकार से देखा जा सकता है।

1. दूसरी पद्धतियों की तरह यह पद्धति भी हिंसा पर आधारित है क्योंकि वोट में बहुमत का आधार लाठी और हिंसा है।
2. इसमें संख्या बल का महत्व है जो केवल यांत्रिक है।
3. इसमें अनेक पक्षों (दलों) का होना जरूरी माना गया है जो बेहद हानिकारक है।
4. आज के हालात में वह संकुचित प्रान्त भावनाओं का निवारण नहीं कर सकी, जिसमें राष्ट्रवाद भी एक हैं।
5. इसके अतिरिक्त लोकशाही में राजनीतिक एवं आर्थिक स्वतंन्त्रता का अभाव पाया जाता है।
6. राज्यशाही की ही भाँति लोकशाही को भी अपने रक्षण में हिसंक दण्ड–शक्ति का उपयोग करना पड़ता है।

अतः आज के वैज्ञानिक एवं आणुविक युग में राज्य की आन्तरिक व्यवस्था एवं बाह्य रक्षण के लिए किसी नैतिक साधन की खोज करना अनिवार्य हो गया था तद्नुसार इस विषय पर शोध कार्य अपेक्षित था। अब राजनीति के बजाय लोकनीति के माध्यम से दुनिया को एक मार्ग मिल सकता है जो भविष्य में ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की संकल्पना को साकार कर लेगा, और यदि ऐसा हुआ तो इस अध्ययन की उपयोगिता स्वतः सिद्ध होगी । भारत में लोकतन्त्र एक राजनीतिक व्यवस्था के रूप में स्थापित तो हो गया परन्तु सामाजिक दर्शन के रूप में यह अभी हम से कोसों दूर है । इसे सम्यक् रूप से प्राप्त करने हेतु गाँधीवादी नैतिक साधना की महती आवश्यकता है जो आम जनमानस की सोच में परिवर्तन करा सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. विनोबाः 'लोकनीति', सर्वसेवा संघ प्रकाशन राजघाट वाराणसी, संस्करण–आठवाँ, मार्च 1999–पृष्ठ 28
2. ब्राइस जेम्स–माडर्न डेमोक्रेसीज 1921
3. गावा, डा0 ओम प्रकाश–राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा– पृष्ठ 236
4. द इण्डियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस, जुलाई–सितम्बर 2004, पृ0 422
5. विनोबा– 'लोकनीति', सर्व–सेवा–संघ, राजघाट, वाराणसी, पृ0 2
6. गहलौत, डॉ0 वी सिंह– 'समकालीन राजनीति विचारक' अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली, पृ0 273
7. विनोबा– 'लोकनीति', सर्व–सेवा–संघ, राजघाट, वाराणसी, पृ0 5
8. धर्माधिकारी, दादा– 'सर्वोदय दर्शन', सर्व–सेवा–संघ प्रकाशन, राजघाट वाराणसी संस्करण आठवाँ, मार्च 1998, पृ0 146
9. विनोबा–'लोकनीति', सर्व–सेवा–संघ, राजघाट, वाराणसी, पृ0 28–29

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

डॉ0 राम कमल की नजर में 'लोहिया का व्यक्तित्व'

डॉ0 सियाराम
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
तिलक महाविद्यालय, औरैया

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति और समाज के नवनिर्माण में जिन आधुनिक चिंतकों व युगदृष्टा सुधारकों का अप्रतिम योगदान है, उनमें डॉ0 राम मनोहर 'लोहिया' अग्रगण्य हैं। अपनी प्रखर बौद्धिकता और राजनैतिक–सामाजिक सूझबूझ के कारण लोहिया भारतीय मनीषा को गहरे तक प्रभावित करते रहे हैं क्योंकि उनके व्यक्तित्व के बहुआयामी और बहुस्तरीय रूप हैं। वे एक सक्रिय क्रान्तिकारी राजनेता, संवेदनशील लेखक, युगदृष्टा चिन्तक होने के साथ–साथ भारतीय संस्कृति, नीति, कला, साहित्य और मानवीय सम्बन्धों के कुशल पारखी थे। ऐसे महान व्यक्तित्व के साथ डॉ0 राम कमल राय के निकटतम सम्बन्ध थे। यह सम्बन्ध न केवल परिचयात्मक वरन् बहुत करीबी और वैचारिक अनुभूति तक आप्लावित थे। डॉ0 राय का लोहिया जी से एक साक्षात्कार 1957 ई0 में लखनऊ में हुआ, जहाँ स्वयं राय साहब के आमंत्रण पर लोहिया जी लखनऊ विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों और शिक्षकों के मध्य अराजनैतिक विषय पर व्याख्यान देने आये थे। यह मिलन निरन्तर प्रगाढ़ता और परिपक्वता को प्राप्त होता गया। डॉ0 राय के शब्दों में–''वास्तव में मैंने क्रम–क्रम से लोहिया को जिस रूप में देखा और जाना मुझे बार–बार यही लगता था कि यह व्यक्ति जितना बड़ा आचरण पुरुष है, उतना ही बड़ा विचार पुरुष और उतना ही बड़ा संस्कृति पुरुष, उतना ही बड़ा विधि पुरुष, उतना ही बड़ा सत्याग्रह पुरुष।'' डॉ0 राय की यह टिप्पणी यथार्थ है। डॉ0 लोहिया एक सत्याग्रही स्वतंत्रता सेनानी थे। उनका सत्याग्रह गोवा, उर्वषीयम् और सुदूर अमेरिका तक प्रतिफलित हुआ, जिसके परिणामस्वरूप वे कई बार जेल गये अनेक यातनाएँ सही किन्तु अपने कर्त्तव्य पथ पर निरन्तर गतिशील रहे। जहाँ अनेक भारतीय स्वतंत्रता सेनानी आजादी के पश्चात् या तो राजनैतिक पद प्राप्त कर भोग करने लगे या राजनैतिक आजादी को परम ध्येय मानकर शान्त मग्न हो गये वहीं डॉ0 लोहिया आजादी के बाद भी अन्याय का प्रतिकार करते हुए अनेक बार जेल गये। उनका स्पश्ट मानना था कि जैसे–जैसे अत्याचार और अन्याय होता हो वैसे–वैसे उसके प्रतिकार की प्रक्रिया भी चलती रहे। तब अन्याय इकट्ठा नहीं होगा और इतना सघन भी नहीं हो सकेगा।

डॉ0 रामकमल राय जी लोहिया को एक सच्चा सत्याग्रही और अहिंसावादी मानते हैं। उनका मानना हैं–''वे अधिक उद्घोष तो नहीं करते थे किन्तु वे अपने चरित्र में सच्चाई और अहिंसा को कूट–कूटकर पिरोये थे किन्तु गाँधी से थोड़ा हटकर, वे अहिंसा के साथ सात्विक क्रोध का प्रदर्शन भी करते थे। इसीलिए प्रतिकार स्वरूप कभी भी निर्जीव वस्तुओं की तोड़–फोड़ तक भी सहमत हो जाते थे किन्तु किसी भी कीमत पर हिंसा के पक्षधर नहीं थे।'' डॉ0 लोहिया का व्यक्तित्व सादगी से भरपूर था। वे अपनी संस्कृति और वेशभूषा को ही श्रेष्ठ और श्रेयस्कर मानते थे। वे भारतीय वेशभूषा में भारत ही नहीं वरन् अमेरिका आदि देशों में भी रहना पसन्द करते थे, उन्हें दिखावे और विदेशी परिधान शैली से सख्त ऐतराज था। डॉ0 राय के शब्दों में–''लोहिया आचरण में सादगी के पक्षधर थे। इस हद तक कि कभी मैंने उन्हें अंग्रेजी लिबास में नहीं देखा, न कभी उन्होंने गले में टाई बाँधी और न पैंट–शर्ट पहनी। जाड़े में धोती–कुर्ता के ऊपर एक बन्द गले का कोट वे पहन लेते थे। इसी भारतीय वेशभूषा में वे अपनी विदेश यात्राएँ भी करते थे।'' कहना न होगा कि डॉ0 लोहिया के व्यक्तित्व का यह पक्ष गाँधी और नेहरू आदि राजनेताओं से अधिक श्रेष्ठ था क्योंकि यह सर्वविदित है कि नेहरू जी अंग्रेजीयत को बहुत पसंद करते थे और गाँधी जी भी अंग्रजों द्वारा अपमानित होने से पूर्व तक विदशी सज–धज के अभ्यस्त थे।

स्वतंत्रता पूर्व देश की जनता में, विशेषतः युवा वर्ग में डॉ0 लोहिया अत्यधिक लोकप्रिय और उनके प्रेरक थे। डॉ0 रामकमल राय जी इस तथ्य का स्वानुभूत उल्लेख करते हुए लिखते हैं–''सन् 1942 में कक्षा 4 में पढ़ता था, मेरा स्कूल एक तहसील केन्द्र घोसी में था। 9 अगस्त की सुबह एक अजनबी छात्र नेता आजमगढ़ आया था और सारे प्राइमरी और मिडिल स्कूल के छात्रों को इकट्ठा करके भाषण देने लगा। मैं भी इन श्रोताओं में एक था। उसने 'क्रान्ति', 'करो या मरो', 'गाँधी', 'आजादी', 'इंकलाब–जिन्दाबाद', जेल आदि शब्दों को मिलाकर जो व्याख्यान दिया उसका मिला–जुला असर यह था कि पूरी छात्रों की जमात पहले पोस्ट ऑफिस की ओर बढ़ी और सारे कागजों को जलाकर रेलवे स्टेशन की ओर चली। वहाँ भी कार्यालय को तहस–नहस करके जब छात्र खम्भों पर चढ़कर तार काटने लगे तब तक पुलिस की एक टुकड़ी लाठियाँ भाँजती हुई हम लोगों को दौड़ायी।'' यह है लोहिया के व्यक्तित्व के सम्मोहन का प्रतिफल जिसमें डॉ0 रामकमल राय आजीवन निमग्न रहे। इसका कारण लोहिया के व्यक्तिगत गुण व आचरण था। लोहिया निर्भीक स्पष्टवक्ता थे। लेखक ने 1950 में इलाहाबाद के ईंविग क्रिश्चियन कॉलेज के एक उदाहरण द्वारा लोहिया के स्पष्टवादी होने की प्रशंसा की है, जहाँ अपने एक व्याख्यान के दौरान लोहिया जी ने सभा में ईसाई मिशनरी की सेवा भावना की प्रशंसा करते हुए 'सेवा में राजनीति ठीक नहीं है' कहकर स्पष्टतः हिन्दू–ईसाई भेदभाव व ईसाईयों को प्राथमिकता न देने का संकेत किया था। इसका विवरण देते हुए डॉ0 राय ने स्पष्ट स्वीकार किया है–''मेरे मन पर उनकी सादगी, सच्चाई, लापरवाही, फक्कड़पन और बेलाग बात करने के ढंग का बहुत गहरा असर पड़ा था और मैं विधिवत समाजवादी युवक सभा का सदस्य बन गया।''

सन् 1953 ई0 में प्रजा–समाजवादी दल के इलाहाबाद में होने वाले राष्ट्रीय अधिवेशन और उसमें आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य कृपलानी, राजनारायण, चन्द्रशेखर, जयप्रकाश, अशोक मेहता आदि की उपस्थिति में लोहिया जी के व्यक्तित्व के प्रभाव व बुद्धिमत्ता का वर्णन करते हुए डॉ0 राय ने लिखा है – ''इस सम्मेलन की अध्यक्षता तो आचार्य कृपलानी जी ने की थी किन्तु जयप्रकाश जी और अशोक मेहता एकदम खामोश थे। डॉ0 लोहिया ने दो प्रमुख सिद्धान्त रखा था–पहला, समदूरत्व का सिद्धान्त, जिसमें कहा गया था कि कांग्रेस और कम्युनिस्ट हमारे लिए समान दूरी पर स्थित हैं और उनमें से किसी को वरीयता नहीं दी जा सकती। दूसरा, अमेरिकी ब्लॉक और रूसी ब्लॉक हमारे लिए समान रूप से अप्रासंगिक हैं। इन सिद्धान्तों को लोहिया ने गहराई से समझाया था और पूरे अधिवेशन में ये सर्वसम्मति से पारित हुए थे।'' इसी प्रकार लोहिया जी की संघर्षशीलता का वर्णन करते हुए डॉ0 राय ने 1953 ई0 में ही घटित एक घटना का उल्लेख किया है। इसी वर्ष फर्रुखाबाद में नहर रेट की वृद्धि की गयी थी, जिसका विरोध करते हुए जनता से टैक्स–वृद्धि न जमा करने की अपील लोहिया जी ने की थी। परिणामतः 'यू0 पी0 स्पेशल पावर्स एक्ट' के तहत हजारों सत्याग्रही गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये। लोहिया जी ने इसके विरोध में इलाहाबाद उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर स्वयं उसकी पैरवी की और उनके प्रबल तर्कों को सुनकर दो न्यायाधीशों जस्टिस देसाई और जस्टिस चतुर्वेदी में मतभेद होने पर तीसरे जस्टिस अग्रवाल की अदालत में मुकदमा पेश हुआ। लोहिया जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण यह मामला उनके पक्ष में निर्णीत हुआ है, जिसका वर्णन करते हुए डॉ0 राय ने लिखा है–''मुझे ठीक से याद है, वह शुक्रवार का दिन था। लोहिया अपनी बातों को रख रहे थे। उन्होंने कहा मैं जानता हूँ कि अदालत का निर्णय मेरे पक्ष में होगा लेकिन कल शनिवार को अदालत बन्द रहेगी और रविवार को तो छुट्टी रहती ही है। इन दो दिनों के लिए मुझे फिर भी जेल में सड़ना पड़ेगा। इसकी जिम्मेदारी किस पर आयेगी? जस्टिस अग्रवाल ने हँसकर कहा कि इसकी जिम्मेदारी शुद्ध रूप से आप पर है क्योंकि न आप अपनी बात खत्म करेंगे और न मैं निर्णय दे पाऊँगा।'' इस पर लोहिया जी चुप हो गये और परम्परा के विपरीत जस्टिस अग्रवाल ने अदालत में ही टंकक को बुलवाकर अपना फैसला लिखवाया। डॉ0 लोहिया के इस संघर्ष के परिणामस्वरूप स्वयं उन्हें और 1700 समाजवादियों को रिहा ही नहीं कियाा गया वरन् 'यू0 पी0 स्पेशल पावर्स एक्ट' को असंवैधानिक घोषित कर दिया गया।

सदियों से भारतीय समाज में चली आ रही शोशण की परम्पराओं–वर्ण व्यवस्था और सामन्तशाही के खिलाफ

लोहिया निरन्तर संघर्षशील रहे। वे ऐसी क्रान्ति का स्वप्न देखते थे जिसमें शोशित के प्रति करुणा मात्र नहीं बल्कि शोषक के विरोध में तीव्र प्रक्षोभ हो। ऐसी परिस्थितियों में वे शोषक के हृदय परिवर्तन और करुणावान होने के स्थान पर, लोहिया करुणावान संवेदनशील मनुष्य के अन्तःकरण में क्रोध को महत्त्वपूर्ण मानते थे क्योंकि क्रोध शोषकों के खिलाफ प्रेरक का कार्य करता है। इस सम्बन्ध में डॉ0 राय कहते हैं–''लोहिया का स्पष्ट तर्क था कि अन्याय और अत्याचार, दमन और उत्पीड़न जब तक समाज में रहेंगे उनके विरुद्ध सत्याग्रह की आवश्यकता भी बराबर रहेगी। यदि अन्याय का प्रतिकार बन्द हो जाये तो अन्याय करने वाली शक्तियाँ और भी उन्मुक्त होकर अन्याय करती चली जायेंगी। अन्याय में देशी और विदेशी का भेद करना एक प्रकार की मूढ़ता है। अन्याय का सतत् प्रतिकार होना चाहिए।'' अन्याय का प्रतिकार लोहिया की स्पष्ट धारणा थी। वे देखते थे, भारतीय समाज में स्त्रियों का ही सर्वाधिक उत्पीड़न होता है। इसीलिए वे स्त्री स्वातंत्र्य व स्त्री मुक्ति को भारतीय समाज के लिए आवश्यक मानते थे। इसके लिए वे सदैव संघर्ष करते रहे। हमारे समाज में परम्परा और मर्यादा के नाम पर स्त्रियों का अभी भी शोषण किया जा रहा है। जबकि ये परम्पराएँ और मर्यादाएँ समकालीन समाज में अप्रासंगिक हो गई हैं। लोहिया मौलिकता के आधार पर मर्यादाओं का स्वरूप निर्धारण करने पर बल देते थे। स्त्री–पुरुष के सम्बन्ध में इनकी धारणा पवित्रता अथवा विवाह के आधार पर निर्मित नहीं थी। वे मानते थे ''पूरी स्वतंत्र चेतना के साथ स्त्री और पुरुष जहाँ एक–दूसरे को पूरी निष्ठा के साथ चाहते हैं, वहीं यह सम्बन्ध सबसे पवित्र और सबसे आनन्ददायी होता है। परस्पर निष्ठा और समर्पण ही इस सम्बन्ध की सबसे बड़ी कसौटी है। शेष सब कुछ आरोपित और बनावटी है।'' लोहिया की यह केवल स्वीकारोक्ति मात्र नहीं है। उन्होंने आजीवन अविवाहित रहते हुए अनेक स्त्रियों से मधुर सम्बन्ध बनाये और जहाँ कहीं आवश्यकता पड़ी, उन्हें स्पश्टतः स्वीकार भी किया, बिना किसी बनावट या छद्म के। वे प्रवंचक नहीं थे और न प्रवंचना में विश्वास ही रखते थे। इस सम्बन्ध में डॉ0 राय स्पष्ट लिखते हैं–''एक बार लोक सभा में बोलते हुए सहसा बीच में श्रीमती सुभद्रा जोशी का उल्लेख करते हुए कहा कि आज सुभद्रा जी कांग्रेस की सदस्या हैं और हमारे विरोध में बैठी हैं, किन्तु सन् 1942 की क्रान्ति के दिनों में वे मेरी अत्यन्त निकट सहयोगिनी थीं। वे शरीर और मन से बेहद सुन्दर महिला हैं, मैं उन्हें आज भी बहुत पसन्द करता हूँ और फिर लगे हाथ उन्होंने सुभद्रा जी से पूछा कि आपको मेरी बातें बुरी तो नहीं लग रही हैं। सुभद्रा जी ने तपाक से उत्तर दिया, नहीं, मुझे तो बहुत अच्छी लग रही हैं।'' यह है लोहिया जी का कौतुक भरा मर्यादा–दर्शन। उनके अन्तस् में जितना खुलापन था उतनी ही गम्भीर–गहन मर्यादा दृष्टि भी थी, वे अपनी पसन्द–नापसन्द को छिपाते नहीं थे। वे भीतर–बाहर एक थे।

इतिहास की विकासशील चेतना को सामाजिक स्तर पर विश्लेषित करते हुए लोहिया ने समानता आधारित समाज–संरचना का सूत्र दिया है। उनका मानना था कि सांस्कृतिक प्रगति सीधी नहीं होती। प्रत्येक संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच पुनः ह्रासोन्मुख हो जाती है। इसके साथ–साथ सामाजिक सम्बन्धों की स्थिति और संस्कृति की विकासोन्मुख प्रक्रिया में विरोधाभास दिखाई देता है। जब संस्कृति ऊर्ध्वमुखी होती है उस समय सामाजिक सम्बन्धों में गतिशीलता तथा संस्कृति के अधोमुखी होने पर उनमें जड़ता और स्थिरता के तत्त्व घनीभूत हो जाते हैं। भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था की जड़ता सांस्कृतिक पतन की परिचायक है। इतिहास के इसी यथार्थ के आधार पर जनोन्मुखी और वर्ण–वर्ग रहित सामाजिक संरचना का सूत्रपात किया जा सकता है–ऐसा लोहिया जी का स्पष्ट मानना था। इस सन्दर्भ में डॉ0 राय कहते हैं– ''कभी–कभी वे बड़े रोचक ढंग से कहते थे कि हम नहीं चाहते कि फिर भारत उत्कर्श के शिखर पर जाये क्योंकि तब उसका पतन के गर्त में जाना उतना ही अवश्य भावी होगा। ऐसा भारत के साथ पहले भी हो चुका है। हम नहीं चाहते हैं कि यह दोबारा घटित हो।''

डॉ0 राय ने लोहिया की हिन्दी के प्रति अनन्य निष्ठा का विस्तृत वर्णन किया है। सांसद के रूप में लोहिया ने अपने पूरे कार्यकाल में हिन्दी में ही व्याख्यान दिया। वे भाषा के मर्मज्ञ थे। इसीलिए जो विदेशी शब्द प्रयोग रूढ़ होकर हिन्दी में प्रचलित हो गये थे, उन्हें बिना शुद्ध किये विकृत या विकसित रूप में ही प्रयोग करते थे, जैसे

प्लेटफार्म को प्लाटफार्म, प्वाइंटमैन को पैटमैन, मजिस्ट्रेट को मजिस्टर और रिपोर्ट को रपट के रूप में प्रयोग करते थे। यह उनकी भाषायी अज्ञानता नहीं अपितु मातृभाषा प्रेम था। विदेशी भाषाओं में आक्रान्त होने की प्रवृत्ति लोहिया में नहीं थी। वे अपनी भाषा की तुलना में अंग्रेजी को रंचमात्र भी महत्त्व नहीं देते थे। इसका स्पष्ट उल्लेख करते हुए डॉ0 राय ने लिखा है–''कभी–कभी तो उनका अपनी भाषा के प्रति आग्रह बहुत तीखा लगने लगता था, जैसे वे अक्सर अपनी सभाओं में कहते थे कि अगर तुम्हारे सामने कोई अंग्रेजी में गिट–पिट करता हो तो उससे पूछना–तुम्हारे माँ–बाप में कोई अंग्रेज तो नहीं था। लोहिया का यह तीखापन वास्तव में आज कितना प्रासंगिक लगता है जब हम यह देखते हैं कि अंग्रेजों के जाने के बाद भी अंग्रेजी के प्रति गहरे सम्मान की दृश्टि पूरे देश में नीचे से ऊपर तक नये शिरे से बनायी जा रही है। तब लगता है कि काश, लोहिया जैसे ही कुछ और जन नायक होते तो अंग्रेजी की दासता को उतनी ही खरी चुनौती दे सके होते।'' लोहिया हिन्दी के प्रबल समर्थक थे किन्तु उन्हें हिन्दी को राजनैतिक अस्त्र या अपने लाभ के लिए प्रयोग नहीं किया। यहाँ तक कि अपने जीवन की अंतिम बेला पर राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन जी उन्हें 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का दायित्व सौंपना चाहते थे तो लोहिया जी ने स्पष्ट मना कर दिया। इस घटना का उल्लेख करते हुए डॉ0 रामकमल राय लिखते हैं– ''लोहिया ने हँसकर कहा–बाबू जी मैं हिन्दी वाला थोड़े ही हूँ। मैं तो अंग्रेजी हटाओ वाला हूँ।' टण्डन जी ने कहा–'मुझे अच्छी तरह मालूम है कि अंग्रेजी हटाओ और हिन्दी लाओ में कोई भेद नहीं है।' लोहिया जी ने विस्तार से टण्डन जी को समझाया कि वे तो बंजारा किस्म के आदमी हैं, जो न तो कोई घर चला सकता है, न कोई संस्था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी बड़ी संस्था का दायित्व किसी व्यवस्थित व्यक्ति को ही सौंपा जा सकता है।'' यह लोहिया की चारित्रिक विशेषता है। वे अपनी बात स्पष्ट तरीके से ही करते थे बिना किसी लाग–लपेट के।

डॉ0 राम कमल राय एक सच्चे व ईमानदार 'लोहियावादी' पुरुष थे। उन्होंने बाल्यावस्था से ही लोहिया जी को सुना, देखा और कैशोर्यावस्था से आगे चलने पर न केवल समझा वरन् आत्मसात् किया उनके विचारों एवं आदर्शों को। इस सम्बन्ध में डॉ0 राय स्वयं स्वीकार करते हैं–''लोहिया के आचरण की जो छाप मेरे मन पर पड़ी, वह संवेदनाओं के एक ऐसे रसायन की छाप है जो अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है। एक ओर उनके भीतर गहरा राग था तो दूसरी ओर उतना ही गहरा वैराग्य। एक ओर उनका हृदय सत्य–अहिंसा और प्रेम से छलछलाता रहता था तो दूसरी ओर उनमें प्रतिरोध की आग सात्विक क्रोध के रूप में छलकती रहती थी। एक ओर उनकी दृष्टि में समता एक केन्द्रीय मूल्य के रूप में बैठी हुई थी, तो दूसरी ओर वे यह भी जानते और मानते थे कि जीवन के कुछ ऐसे आयाम हैं जहाँ समता की घुसपैठ सम्भव नहीं है।'' लोहिया का यही चरित्र उनके अनुयायियों में अनुकरणीय था। उनकी प्रशंसा करते हुए डॉ0 राजेन्द्र भटनागर लिखते हैं – ''वस्तुतया डॉ0 लोहिया विश्व मानवता का ऐसा विचार है, जो आज के सन्दर्भ में सर्वाधिक सशक्त और समीचीन ठहरता है। वह जहाँ विज्ञानपरक अध्ययन एवं अन्वेषण का पक्षधर है वहाँ वह अध्यात्ममूलक अनुदृष्टि का भी कायल है। वह जीवनीय दर्शन का संस्थापक व्यवस्थापक है।'' लोहिया के जीवनानुभव–संस्कारित यात्रा के कारणों का उल्लेख करती हुए इन्दुमती केलकर कहती हैं–''मानवीय सहानुभूति, अदम्य प्रतिकार शक्ति, राष्ट्र निरपेक्ष जननिष्ठा, स्वयं प्रज्ञा और अविरत कर्मशीलता, इन पाँचों तत्त्वों से लोहिया का व्यक्तित्व संस्कारित था।'' वास्तव में विश्वबंधुत्व और विश्वपंचायत का सपना संजोने वाले लोहिया की मानव सभ्यता विषयक कल्पना अत्यन्त व्यापक थी। उनके समाजवाद की परिधि किसी एक देश में सीमित नहीं थी। वे एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण को गर्हित समझते थे। वे काली दुनिया–गोरी दुनिया जैसे विभाजन को भी निम्न स्तरीय मानसिकता एवं घृणा का परिचायक मानते थे। उनके अनुसार–''संसार ऐसे दो हिस्सों में बँटा हुआ है जिसमें एक के लिए समृद्धि है, शान्ति है और दूसरी के लिए गरीबी है, दुःख है, शोषण है, भूख है और युद्ध।'' यह बँटवारा उन्हें बहुत ही क्लेष देता था। वे एक ऐसी दुनिया की कल्पना करते थे जिसमें एक देश से दूसरे देश में बिना किसी परमिट के जाया जा सके। वे एक ऐसी विश्व पंचायत की कल्पना करते थे जो सारी राष्ट्रीय सीमाओं के ऊपर प्रतिष्ठित हो और सारी दुनिया को एक सूत्र में बराबरी के भाई–चारे में

बाँधती हो। ऐसे व्यक्तित्व पर डॉ0 रामकमल राय ने 'राम मनोहर लोहिया : आचरण की भाषा' लिखकर समाज और देश का बहुत भला किया है। डॉ0 लोहिया के व्यक्तित्व को जानने, समझने और परखने में यह ग्रंथ बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि डॉ0 राय न केवल समाजवादी चिन्तक और श्रेष्ठ शिक्षक हैं वरन् वे लोहिया के साथी, लोहिया के आचरण के दृष्टा भी हैं। इस ग्रंथ में लेखक ने लोहिया की विचारधारा, उनकी वाणी और उनके कर्मों की संगति को उभारने का सफल प्रयास किया है। मन, वचन और कर्म की इतनी संगति विरल होती है। जब तक संसार में भेदभाव है, दुःख है, गरीबी और शोषण है तब तक डॉ0 लोहिया के विचार प्रासंगिक और अधिक प्रासंगिक हैं। और उन्हें प्रचारित करने और जन–जन तक पहुँचाने के एक विनम्र प्रयास के कारण डॉ0 राम कमल राय भी प्रासंगिक बने रहेंगे।

सन्दर्भ सूची

1. राम मनोहर लोहिया : आचरण की भाषा–डॉ0 राम कमल राय, 2008, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में जन चेतना : डॉ0 अरुणा लोखण्डे, 1996, विकास प्रकाशन, कानपुर।
3. समग्र लोहिया : डॉ0 राजेन्द्र मोहन भटनागर, 1982, किताबघर, दिल्ली।
4. राम मनोहर लोहिया : इन्दुमती केलकर, 1967, रुची प्रकाशन, पुणे।
5. डॉ0 राम मनोहर लोहिया : समाजवादी विमर्श–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, 2013, आराधना ब्रदर्स पब्लिकेशन्स, कानपुर।
6. डॉ0 राम मनोहर लोहिया : वैचारिक विमर्श–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, 2013, आराधना ब्रदर्स पब्लिकेशन्स, कानपुर।
7. कृतिका (अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)–सं0–डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव।

❑❑

वर्तमान काल में आचार्य नरेन्द्रदेव के विचारों की उपयोगिता

डॉ० अंजु अवस्थी
बृहस्पति डिग्री कॉलेज,कानपुर

इतिहास में ऐसे कम ही मिलते हैं जिनका प्रभाव युगांतकारी रहा हो आचार्य नरेन्द्रदेव ऐसे ही युग पुरुष थे। उन्होने अपने विचारों तथा अपनी सरल सहज पद्धति से अपने युग को प्रभावित ही नहीं किया वरन आने पीढ़ियों का मार्गदर्शन भी किया। भारतीय राजनीति के उद्धान में 31 अक्टूबर 1889 को जन्में नरेन्द्रदेव एक ऐसे वट वृक्ष के रूप में प्रकट हुये, जिसकी छाया की शरण राष्ट्रीय राजनीति समय–समय पर लेती रही, आचार्य जी जैसे विरले ही नेता हुये होंगे, जो भविष्य के गर्भ में इतनी दूर तक झाँकने की क्षमता रखते हों। आचार्य जी स्वयं अनेक विविधाओं को समेटे हुये थे। वे मूल्यतः एक शिक्षा बिन्दु, अनुसंधाता, विचारक और सुधि लेखक भी थे। वह पक्के सिद्धांतवादी थे और सिद्धान्त से हटना उन्हे किसी भी कीमत पर स्वीकार न था।

भारत की जन्म भूमि महान लोगों की जन्मस्थली रही है। ज्ञान, कर्म और साधना से उन्होने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। पर संसार में ऐसे लोग कम ही हुये हैं, जहाँ ज्ञान, कर्म और साधना एक साथ मिलते हो आचार्य नरेंद्रदेव एक ऐसी ही प्रतिभा थे फिर चाहे समाजशास्त्री की नजरिये से उन्हे देखे या अर्थशास्त्री होने के नजरिये से या फिर दर्शनशास्त्री के नजरिये से। उनमें हमें इस अदभुत ज्ञान से विषय में कहते हैं कि 'ज्ञान' की किसी भी धारा के सम्बन्ध में उनसे बातें करिए लगता था की आप किसी वायुयान चालक के बगल में बैठे हैं, जो आपको ऊँचे ले जाकर अन्तरिक्ष के उन अनेक रहस्यों को प्रत्यक्ष दिखला रहा हो, जिसकी कल्पना भी हमारे लिए संभव नहीं है।

आचार्य नरेन्द्रदेव ने शिक्षा को जीवन के ध्येय से अविच्छिन्न माना है। उनके लिए जीवन का ध्येय एक, ऐसी सर्जनात्मक शक्ति उत्पन्न करने से था जिसके द्वारा राष्ट्र की भौतिक एवं सांस्कृतिक शक्ति के रूप में देखते थे। नवयुवकों के विषय में आचार्य जी का यह विचार आज कितना तथ्यशील है कि युवक न प्रगतिशील होते हैं न प्रक्रियावादी। उन्हें जिस कार्य में लगा दिया जाय या जैसा परिवेश दिया जाय। वे अपने को उसी के अनुरूप ढाल लेते हैं। हमें युवकों की ऊर्जा और शक्ति का प्रयोग रचनात्मक दिशा में ही करना चाहिए।

क्योंकि शैक्षिक विचारधाराएँ एक ओर सभ्यता की नियामक, संस्कृति की पोष, मानवीय प्रेम संप्रेरिका और अंतिम जीवनोद्देश्य साधिका है, तो दूसरी ये आत्मबल की उद्‌बोधिका, समरसता की प्रतिस्थापिका, एकता की सम्बाद्धिका, संगठन की उत्प्रेरिका तथा प्रगति सरिता की संचारिका होती हैं, कहने की आवश्यकता नहीं है कि शैक्षिक विचारधाराएँ निश्चय ही राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करती हैं। जिस गंभीरता से वह राजनीति से जुड़े थे उसी गंभीरता से वह 'शिक्षा' के प्रति भी समर्पित रहें। उनकी दृष्टि से शिक्षक का पद "राजनेता" के पद से कहीं बड़ा था।

प्रायः देखा जाता है कि ज्ञान के क्षेत्र का महान व्यक्तित्व कार्य के क्षेत्र में बौना ही सिद्ध होता है। आचार्य नरेन्द्रदेव जी इसके विपरीत उदाहरण थे एक मेधावी विध्यार्थी की हैसियत से ही, देश के सार्वजनिक कार्यों में उन्होंने सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ किया पर महात्मा गाँधी जी ने असहयोग आंदोलन का शंखनाद किया, उनके आवाहन पर पहली कतार में खड़े होने वाले राष्ट्रकर्मियों में भी थे। वकालत छोडकर वे सक्रिय राजनीति के क्षेत्र

में आये और काशी विद्यापीठ के आचार्य पद को सुशोभित करते हुये भी आंदोलन को कभी भी नहीं भूलें। और अपने सहयोगियों और शिष्यों को भी नहीं भूलने दिया काशी विद्यापीठ सिर्फ विद्यापीठ नहीं था वहाँ ज्ञान के साथ भी कर्म का पाठ भी पढ़ाया जाता था पर वहाँ के शिक्षकों ने हिस्सा लिया की अपने नामों के साथ उन्होने अपनी संस्था को भी अमर कर दिया। उन्हे खोकर सारे देश में अनुभव किया कि उसने कोई अपना खोया है। आचार्य जी की अनुपम साधना की यह सबसे बड़ी विजय थी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- प्रो० मुकुट बिहारी लाल – आचार्य नरेन्द्रदेव – युग एवं नेतृत्व
- श्री जगदीश चन्द्र दीक्षित – आचार्य नरेंद्रदेव – युग और विचार
- श्री जगदीश चन्द्र दीक्षित – आचार्य नरेंद्रदेव – विशेषांक

❑❑

शिवपूजन सहाय : व्यक्तित्व–कृतित्व के विविध आयाम

डॉ0 कमलेश सिंह
7/5 ई0 डब्ल्यू0एस0 कालोनी, अल्लापुर– इलाहाबाद–211006

हिन्दी– भूषण की पदवी प्राप्त हिन्दी के अजात शत्रु1 आचार्य शिवपूजन सहाय का जन्म बिहार के भोजपुर अचंल के उनवांस गाँव में 9 अगस्त 1893 को हुआ था। आप साधारण किसान परिवार से थे। आपके पिता पटवारी तथा माता गृहस्थ नारी थी। शिवपूजन सहाय पिता के साथ 10 वर्ष की उम्र में आरा आ गए। आपने 1912 में मैट्रिक परीक्षा पास की तथा–जीविकोपार्जन के लिए उसी विद्यालय में हिन्दी–अध्यापक की नौकरी कर ली लेकिन 1920 में नौकरी से त्यागपत्र देकर राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल हो गये। शिवपूजन सहाय का साहित्यिक प्रेम आरा से निकलने वाली पत्रिका 'मनोरजंन' में 'परोपकार' लेख छपने पर प्रथम बार दिखाई पड़ता है। शिवपूजन सहाय ने आरा से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'मारवाड़ी सुधार' का सम्पादन दो वर्ष तक किया लेकिन 1923 में कलकत्ता के 'मतवाला' से जुड गए। इसके अतिरिक्त शिवपूजन सहाय जी ने 'आदर्श', 'उपन्यास–तरंग,' 'समन्वय', मौजी', 'गोलमाल', 'माधुरी', 'गंगा', 'बालक' आदि पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया। बिना एम0ए0 की डिग्री प्राप्त किए मात्र प्रतिमा के आधार पर राजेन्द्र कॉलेज आरा में उन्हें हिन्दी प्राध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया। यहाँ पर आपने 1949 तक कार्य किया। 'बिहार राष्ट्र भाषा परिषद' ने शिवपूजन सहाय को 1949 में मंत्री के रूप में नियुक्त किया।[2] 1954 में शिवपूजन सहाय को राष्ट्रभाषा के अवदान के लिए विहार राष्ट्रभाषा परिषद द्वारा 1500 रू0 का वयोवृद्व साहित्यकार सम्मान दिया गया। हिन्दी की दीर्घकालीन–सेवा के लिए भारत सरकार ने 1960 में 'पद्म भूषण' की उपाधि से अलंकृत किया 1962 में भागलपुर वि0वि0 ने शिवपूजन सहाय को डी–लिट् की उपाधि प्रदान की। हिन्दी के साधक शिवपूजन सहाय का 21 जनवरी 1963 को निधन हो गया। हिन्दी में इनका गौरवशाली अवदान हमेशा–अक्षुण्ण रहेगा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शिवपूजन–सहाय के व्यक्तित्व का बखान निम्न शब्दों मे किया है– ''आचार्य शिवपूजन सहाय जी विनय और शील के मूर्तिमान रूप थे। साहित्य सेवा उनके स्वभाव का अगं थी। कालिदास ने जिसे 'कांचन–पद्म–धर्मिता' कहा है, वह पूर्ण रूप से उनमे मिलती थी–दृढ़, उज्ज्वल और कोमल।.......चरित्रगत दृढ़ता, लेखनगत ईमानदारी और मनुष्य के सहज चरित्र गुण में अटूट आस्था ने उन्हें अपने ढगं का अद्वितीय व्यक्तित्व दिया था। वे अपना उपमान आप ही थे– 'गंगन गगनाकारम'।''[3]

शिवपूजन सहाय एक प्रतिभासम्पत्र विद्वान साहित्यकार थे। आप निबन्धकार, कहानीकार, उपन्यासकार, सरंमरण–लेखक तो थे ही : साथ में उच्चकोटि के सम्पादक भी थे। हिन्दी पत्रकारिता में आपका योगदान वेहद् महत्वपूर्ण है। कहने का आशय यह है कि शिवपूजन सहाय के कृक्तित्व के विविध–आयाम थे। सृजन सामर्थ्य के विविध आयामों को उन्होनें एक साथ साधा था। आप बहु प्रतिभा–सम्पन्न व्यंक्तित्व के धनी थे। निराला जी शिवपूजन सहाय को हिन्दी–भूषण' कहा करते थे क्यों कि उनका गद्य अत्यन्त व्याकरण–सम्मत, व्यवस्थित एवं परिष्कृत रहता था। नन्द किशोर नवल ने शिवपूजन सहाय जी के गद्य में द्विवेदी जी के गद्य की छाया के बारे में बताया है–''शिवपूजन बाबू पं0 महावीर प्रसाद द्विवेद्वी के प्रति बहु भक्ति 'भावना रखते थे। उन्होने अपने एक लेख में उन्होनें लिखा है कि मैनें दूर से ही एकलव्य की तरह उन्हे द्रोणाचार्य मानकर साहित्य साधना की है।............ .... लेकिन इसका मतलब यह कतई नही है कि उनका गद्य द्विवेद्वी जी के गद्य की छाया है।''[4] कहने का आशय यह है कि शिवपूजन सहाय का गद्य निश्चय ही द्विवेद्वी युगीन था लेकिन पूरा सपाट नही था।, उन्होनें अपने गद्य को सवाँरा भी था, रसीला भी बनाया था। उनके निबन्ध कहानियां, सरंमरण और उपन्यास इस बात के गवाही है। उनका सम्पादन वाला गद्य निश्चित ही द्विवेद्वी युग वाला था लेकिन कहानी, निबन्ध एवं उपन्यास वेहद् सन्तुलित था। नन्दकिशोर नवल ने उनके गद्य के चार स्तरों की चर्चा निम्न शब्दों में किया है।'' उनके गद्य के चार स्तर बहुत

ही स्पष्ट है। एक स्तर अलकृंत गद्य का स्तर है, जिसमें 'विभूति की कई कहानियाँ लिखी गयी है। दूसरा स्तर यथार्थवादी गद्य का है, जिका उत्कर्ष 'देहाती–दुनिया' नामक उपन्यास में देखने को मिलता है।उनकी गद्य–कला का तीसरा रूप 'दो घड़ी' नामक उनकी प्रस्तक के व्यक्तिगत निबन्धों मे प्रकट हुआ है, जिनमे हास्य–विनोद की धारा का कल–कल स्वर सुनाई पड़ता है और चौथा रूप उनके धार्मिक संस्मरणों में, जो 'वे दिनः वे–लोग' या फिर 'मेरा जीवन' नामक पुस्तक में संमलित हुए है''।[5]

शिवपूजन सहाय का 15 मौलिक– कहानियों का सग्रंह 'विभूति' प्रसिद्व हुआ था। सग्रंह में शामिल 15 कहानियां सहाय जी की प्रतिभा का प्रमाण है,। 'मुंडमाल', 'सतीत्व की उज्ज्वल प्रभा', विषपान, तथा 'शरणागत' एक जैसी कहानियाँ है। इन कहानियों मे प्रांजल गद्य का प्रयोग किया था। वीणा', 'प्रायश्चित', 'दृढ भगत जी', 'मानमोचन' कहानियॉ, सामान्य स्तर की हैं लेकिन 'कहानी–का प्लाट' नामक कहानी विशेष महत्व की है। इसकी–चटकीली शैली एवं मुहावरेदार भाषा6 प्रयोग विशिष्ट है। शिवपूजन सहाय ने 'देहाती दुनिया' उपन्यास लिख करके अपने इस विचार को चरितार्थ किया–''बात ऐसी हुई कि मैंने आज तक जितनी पुस्तके लिखी, उनकी भाषा अत्यन्त– कृत्रिम, जटिल, आ़डम्बरपूर्ण, अस्वाभाविक और अलंकार युक्त– हो गयी। उससे मेरे शिक्षित मित्रों को तो सन्तोष हुआ, पर मेरे देहाती मित्रों का मनोरंजन कुछ भी न हुआ। मेरी कहानियों का सग्रंह जब उपयुक्ति नाम ('महिला–महत्व'–विभूति' का पहला नाम) से प्रकाशित हुआ, तब देहाती मित्रों ने यह उलाहना दिया कि तुम्हारी एक भी पुस्तक हम लोगों की समझ में नही आती–क्या तुम कोई ऐसी पुस्तक नही लिख सकते, जिसके, पढ़ने में हम लोगों का दिल लगे। मैने उसी समय अपने मन में यह बात ठान ली कि ठेठ देहाती मित्रों के लिए एक पुस्तक अवश्य लिखूगाँ यह पुस्तक उसी का परिणाम है।.......... ....इसका एक शब्द भी मेरे दिमाग की खास उपज या मेरी मौलिक कल्पना नही है। यहॉ तक की भाषा का प्रवाह भी मैंने ठीक वैसा ही रखा है, जैसा ठेठ देहातियों के मुहॅ से सुना है।''7 वैसे सहाय जी ने इस उपन्यास को देहाती मित्रों के लिए लिखा था लेकिन यह उपन्यास हिन्दी आचंलिक उपन्यासों का मार्ग–दर्शक बना। इस उपन्यास के महत्व का ज्ञान 1959 में 'मैला आँचल' के बाद ही हिन्दी साहित्य मे हुआ। प्रसिद्वनाट्य–शिल्पी जगदीश चन्द्र माथुर ने 'देहाती दुनिया' का महत्व बताते हुए कहा है कि–''बिहार की अन्दरूनी आत्मा को जानने के लिए–भिखारी–ठाकुर के नाटक, रामवृक्ष बेनापुरी का 'माटी की मूरतें' और शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनिया' सबसे बढ़िया माध्यम है, लेकिन विपुल पाठनीयता के बावजूद हिन्दी में यह उपन्यास तब चर्चित हुआ, जब 28 साल बाद फणीवरनाथ 'रेणु' का प्रसिद्व उपन्यास 'मैला आँचल' छपा।''[8]

शिवपूजन सहाय ने लगभग 200 निबन्ध लिखे। इनमे से 'साहित्य', 'हिन्दी में कुछ चिंत्य अभाव', आर्यो का आर्ष प्रयोग' विशेष महत्व के है। शिवपूजन सहाय ने कई धार्मिक संस्मरण भी लिखे। डां0 मगंल मूर्ति[9] उनके संस्मरणों की पाँच कोटियों में बॉटा है। प्रख्यात और अत्पज्ञात की दो कोटियाँ, साहित्येतर की तीसरी कोटि एवं आयोजनों एवं–साहित्यिक–यात्राओं की चौथी कोटि सहाय जी के संस्मरणों में दृष्टिगत होती है। श्रद्वाजंलियों की पाँचवी कोटि है। महादेवप्रसाद सेठ, मुंशी नवजादिक लाल, प्रेमचन्द, गणेशशंकर विद्यार्थी, पराडकर जी, निराला जी, किशोरी लाल गोस्वामी और नलिन विलोचन शर्मा–कम से कम इन पर लिखे शिवपूजन सहाय के संस्मरणों को हिन्दी के श्रेष्ठ संस्मरणों मे गिना जाता है। नन्दकिशोर नवल ने उनके संस्मरणों का महत्व बताते हुए कहा है कि''संस्मरण साहित्य की सबसे नाजुक ही नही, खतरनाक विधा भी है क्यों कि लेखक असावधान रहा तो यह आत्मस्तुति और प्रक्षेपण का माध्यम बन जाता है और अनाड़ी हुआ तो यह उसके माध्यम से अपने मन की भड़ास निकालने लगता है शिवपूजन बाबू हिन्दी के दो चार उत्कृष्ट संस्मरण लेखकों मे सें है।''[10]

अब तक की चर्चा से स्पष्ट है कि शिवपूजन सहाय के व्यक्तित्व एवं कृक्तित्व के विधिध आयाम है। आप एक साथ कहानीकार–उपन्यासकार, निबन्धकार, संस्मरण–लेखक थे लेकिन आप सम्पदक के रूप में अपनी सृजन–प्रतिभा के साथ न्याय नही कर पाये अर्थात पत्रकारिता के विभिन्न दबावों के कारण शिवपूजन बाबू ने अपने

सृजनात्मक लेखन के साथ न्याय नही किया। कर्मेन्दु शिशिर ने ठीक ही कहा है–'' पत्रकारिता तथा हिन्दी हित के लिए उन्होंने जो कुछ किया, उसमे उनके सृजनात्मक लेखन का बलिदान ही शायद सबसे मूल्यवान क्षति है। सृजनात्मक लेखन के प्रति उनकी विमुखता बतौर एक लेखर उनकी बहुत बड़ी चूक थी। वरना उनके जैसे भाषा पर विरल अधिकार रखने वाल लेखक को इस तरह अपनी डगर नही बदलनी चाहिए थी।''[11]

सन्दर्भ सूची

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेद्वी ने शिवपूजन सहाय को हिन्दी का अजातशत्रु कहा था। 6
2. 'हिन्दी नवजागरण के पुरोधाः शिवपूजन सहाय' राजेन्द्र परदेशी, आजकल, अगस्त 2013, पृ0–19
3. 'शिव जीः विनय और शील के मूर्तिमान रूप'– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेद्वी, नया ज्ञानोदय, सित0 2017, पृ0–18
4. 'शिवपूजन सहाय की गद्य कलाः नन्द किशोर नवल नया ज्ञानोदय, सित0 2017, पृ0–19–20
5. वही, पृ0–2
6. 'आचार्य शिवपूजन सहाय का रचनात्मक लेखन'– कर्मेन्दु शिशिर, नया ज्ञानोदय– सित02017, पृ0–27
7. 'नया ज्ञानोदयः सित02017, पृ0–22
8. वही, पृ0–27
9. वही, पृ0–30
10. वागेश्वरी, पृ0–36
11. 'नया ज्ञानोदय', सि0 17, पृ0–22

❑❑

यतीन्द्रनाथ राही का काव्य सृजन और सामाजिक सरोकार

डॉ. प्रतिमा यादव,
प्राध्यापक हिन्दी,
शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

हिन्दी कविता की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। वह युगों–युगों से जनता के सुख–दुख, हर्ष विषाद आदि का चित्रण करते हुए मनुष्य में मानवोचित गुणों का विकास करती है। साहित्य मानव समाज के इतने करीब है कि मनुष्य के हर सुख में, दुख में, शोक–विषाद में साथ रहकर वह मनुष्य की सहायता करता है।[1] साहित्य सदा से समाज या व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता आ रहा है।[2] साहित्य के मूल्यांकन का सबसे बड़ा आधार उसकी सामाजिक संलग्नता है।[3] साहित्य हमें यथार्थ के रूबरू प्रश्न के रूप में खड़ा कर देता है और इस प्रश्न के उत्तर की तलाश में हमें न जाने कितने नये या प्रछन्न प्रश्नों का सामना करना पड़ता है।[4] किसी भी युग का समाज उस युग के आदर्शों दुर्बलताओं तथ आकांक्षाओं का पूजीभूत रूप है।[5]

हृदय से कवि , चित्त से दार्शनिक तथा वास्तविक जीवन में अनवरत कर्म में निष्ठा रखने वाले यतीन्द्रनाथ राही ने अपनी काव्य रचनाओं के माध्यम से उन समस्त जीवन्त अहसासों को रसात्मक धरातल पर स्वर दिया है जो भावनात्मक तो हैं पर भ्रमात्मक कतई नहीं। ''सभी समाजों में कुछ न कुछ सामाजिक समस्याऐं विद्यमान रही हैं।[6] फिर कवि समाज में फैली इन समस्याओं से नजरें कैसे चुरा सकता है ?उसका लेखन कर्म इन चुनौतियों को नकार कर सार्थकता नहीं पा सकता है। क्योंकि साहित्य जीवन की ही एक प्रक्रिया है और जीवन के लिए है।[7] आज परिवार तथा समाज की व्यवस्था के बीच आदमी पिस रहा है। जीवन में खालीपन उतर रहा है। दुर्भाग्यपूर्ण नियति आदमी के साथ है। यतीन्द्रनाथ राही की कविताओं में जीवन के यथार्थ और वर्तमान पीड़ा की गहन अनुभूति को रेखांकित किया गया है। संबंधों के टूटने का दर्द तथा शहर की ज़हर भरी हवा गांव–गांव में फैलने के भाव को बड़ी कुशलता से निम्न पंक्तियों में पिरोया गया है :–

गांव–गांव जहर भरी
शहर की हवा
नगरों के दर्द की
नहीं कोई दवा
स्याह वर्तमान का
भविष्य लिख चलो[8]

वैश्वीकरण और उदारीकरण के इस युग में मनुष्य प्रकृति और पर्यावरण के प्रति असंवेदनशील हो गया है। मनुष्य और प्रकृति के बीच बढ़ती दूरियां विश्व विरादरी के लिए गहरे संकट का अंदेशा है।[9] मानव का प्रकृति से घनिष्ट संबंध है लेकिन विकास की अन्धी दौड़ में सबसे ज्यादा दोहन प्रकृति का हुआ है। झरने, नदी, पहाड़, पेड़ आज निरन्तर घट रहे हैं। तट,जल,जंगल वन्य जीवन पर्यावरण कवि को हांफता दिग्भ्रमित सा जान पड़ रहा है –

तट प्रदूषित / जल प्रदूषित
वन्य जीवन क्लान्त / घुल रहा है जैसे
हवाओं में जहर / कांपते भय–भीत जंगल
हांफता पर्यावरण दिग्भ्रान्त[10]

हम पहचानते रहें कि क्या है जो हम रच रहे हैं या रच सकते हैं जो कि हमसे बड़ा है या हमसे बड़ा हो–

इतना बड़ा कि उसके संस्पर्श मात्र से हम स्वयं धन्य हो।[11] रचनाकार की सोच जब इस विस्तृत फलक को खोज लेती है तब कह सकते हैं उनका काव्य वस्तुततः जनवादी चेतना का काव्य है।[12] सच्ची और अच्छी कविताएं मनुष्य के बेहतर जीवन का व्याकरण रचती है। कवि अपने आस–पास के जीवन को जितना पढ़ता है, उतनी ही सार्थक अनुभूति उसकी कविताओं से प्रकट होती है। भारत में हर प्रकार के संसाधनों के वितरण में असमानता देखने को मिलती है।13 एक तरफ सैकड़ों ऐसे लोग हैं जिनके पास देश के प्रत्येक शहर में बड़ी–बड़ी कोठियां हैं, दूसरी ओर करोड़ों लोग ऐसे हैं जिनके पास सिर छुपाने को एक छत तथा शरीर ढांकने के लिए पर्याप्त वस्त्र भी नहीं है –

उनकी जेबें है फटी, इन पर नहीं कमीज
कहां धरे जो बांटते, गाली भरा तमीज[14]

भारतीय समाज में भ्रष्टाचार अपने विकराल रूप में कैंसर की तरह फैल चुका है।[15] फिर समाज की नब्ज को भली–भांति पहचानने वाला रचनाकार उसके प्रति उदासीन कैसे रह सकता है ?

घिसी पिटी सी बात है, कहना भ्रष्टाचार
सर्वव्याप्त है, आज यह, है अब शिष्टाचार।[16]

भूखों के हाथ रोटियां, साबुत नहीं लगी
बांटी गयी लंगोटियों की, बात क्या कहें ?[17]

आज न्याय व्यवस्था कठिन से कठिनतर होती जा रही है। न्याय बिकाऊ हो गया है। धन का अपव्यय, समय की अधिकता, राजनैतिक दांव–पेंच, गवाह बदलना या बिकना जैसे हथकण्डे न्याय की धज्जियां उड़ाने लगे हैं। बाजारू संस्कृति के बढ़ते आज सब कुछ बिकाऊ है। न्याय व्यवस्था में चश्मदीद गवाह अंधे हो जाते हैं। मूक बधिर साक्ष्य के तौर पर प्रस्तुत किये जाते हैं।

बिकते सभी बाजार में न्याय हुआ है बाध्य,
चश्मदीद अंधे हुए, मूक बधिर है साक्ष्य।[18]

अशिक्षा, कुपोषण, अविकास, बीमारियां और बालश्रम बालकों की प्रमुख समस्यायें हैं। यतीन्द्रनाथ राही ने बाल शोषण पर अपनी कलम चलाई है –

चीथड़ों में ठिठुरता कांपता,
रोटियों के स्वप्न बुनता,
झुग्गियों में रेंगता बचपन।[19]

मूल्य जीवन को विशिष्ट सत्ता प्रदान करते हैं और उनका अनुकरण करके व्यक्ति किसी विशेष आवश्यकता की पूर्ति करता है। आज जीवन मूल्यों का क्षरण विश्वव्यापी है। प्रेम का अभाव, नफरत बढ़ना एक चेहरे पर कई चेहरे लगाना, जैसी मूल्यहीनता का कवि राही ने अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है –

आंगनों में और दीवारें उठा ली हैं,
नफरतों की और कुछ फसलें उगा ली हैं।
रह रहे हैं हम घरों में भी अपरिचित से,
एक चेहरे पर कई शक्लें लगा ली हैं।[20]

बढ़ती हुई भीड़ के सैलाब में आदमी कहीं गुम हो गया है। प्यार का कतरा भी कहीं दिखाई नहीं देता। व्यस्तता का यह आलम है कि हमें अपने पड़ोसी का नाम ही पता नहीं होता। दिखावे के लिए हम विश्व–मानव प्रेम के तम्बू तानते रहते हैं। तुम सिर फोड़कर रोते रहो, लेकिन तुम्हारे पास दौड़कर आने की फुर्सत किसको है –

भीड़ के सैलाब हैं, पर आदमी मिलता नहीं।
इन घटाओं में नहीं है, प्यास का कतरा कहीं।
नाम अपने ही पड़ोसी का, नहीं हम जानते।

विश्व–मानव–प्रेम के, तम्बू हवा में तानते।
नाच लो ! गाओ ! हंसो !
रोते रहो सिर फोड़कर,
है किसे फुर्सत, तुम्हारे पास आये दौड़कर।[21]

वर्तमान युग की विभीषिका व यथार्थ यही है कि स्त्री हिंसा दिन–ब–दिन बढ़ रही है। नारी के प्रति घृणित सोच बदस्तूर जारी है। 'पुरूषत्व' के दम्भ में जकड़े समाज से लड़की प्रश्न कर रही है कि स्त्री ने ही असह्य प्रसव वेदना के बाद तुम्हें जन्म दिया, फिर तुम नारीत्व का मिटाकर कैसे जीवित रह सकते हो –

इतने कृतघ्न, नृशंस बहशी
कोख में हत्या,
सड़कों पर बलात्कार,
आग में वीभत्स दहन,
नारीत्व को मिटाकर
जीवित रह पाओगे तुम।[22]

जीवन में संवेदनाएं महत्वपूर्ण होती हैं। संवेदनाओं से ही समााजिक सरोकार का जन्म होता है। जब तक रचनाकार संवेदनशील रहेंगे, तब तक सामाजिक सरोकार यथार्थ के धरातल पर आदर्श लेकर स्थापित होते दिखेंगे। लेकिन जैसे–जैसे संवेदनाओं का लोप होता जायेगा, स्थिति प्रदर्शन पर टिक कर रह जायेगी। यतीन्द्रनाथ राही का रचनाकर्म समाज की संवेदनाओं से संप्रक्त है। यही कारण है कि वे सामाजिक सरोकारों के कवि हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ए जर्नल ऑफ सोषल फोकस (अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका) दिसम्बर 2012
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य, संपादक–अज्ञेय पृ. 104
3. रिसर्च जनरल – अप्रैल 2006, पृ. 30
4. नया ज्ञानोदय – अप्रैल 2007 पृ. 86
5. साहित्य और सर्जना – डॉ. रामरतन भटनागर पृ. 02
6. भारत की सामाजिक समस्यायें – एन.एन. ओझा, संपादकीय
7. साहित्य अमस्त – मई 2010 (साहित्य और जीवन का सामंजस्य – राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी) पृ. 33
8. रेषमी अनुबंध – यतीन्द्रनाथ राही पृ. 52
9. ए जर्नल ऑफ सोषल फोकस (अन्तर्राष्ट्रीय षोध पत्रिका) पृ. 202
10. बाहों भर आकाष – यतीन्द्रनाथ राही पृ. 46
11. साहित्य अमृत, अक्टूबर 2010 (प्रासंगिकता का प्रश्न – अज्ञेय) पृ. 51
12. कृतिका, जनवरी–जून 2010 पृ. 131
13. सामाजिक न्याय और सतत् विकास – डॉ. निशान्त सिंह पृ. 26
14. घरौंदे रेत के – यतीन्द्रनाथ राही पृ. 104
15. भ्रष्टाचार का मनोविज्ञान – डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव पृ. 06
16. रेषमी अनुबंध – यतीन्द्रनाथ राही पृ. 104
17. घरौंदे रेत के – यतीन्द्रनाथ राही पृ. 102
18. घरौंदे रेत के – यतीन्द्रनाथ राही पृ. 114
19. दर्द पिछड़ी जिन्दगी का – यतीन्द्रनाथ राही पृ. 51
20. बांसुरी – यतीन्द्रनाथ राही पृ. 27
21. अंजुरी भर हरसिंगार – यतीन्द्रनाथ राही पृ. 47
22. कुहरीले झरोखों से – यतीन्द्रनाथ राही पृ. 95

❑❑

लेखिका ममता कालिया के कथा साहित्य में सामाजिक मूल्य

रश्मि कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय सभ्यता और संस्कृति में अनेक परिवर्तन हुए हैं। जो परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है, अब उन सब का विघटन होने लगा है, जिससे समाज के बदलते स्वरूप ने व्यक्ति को विचारधाराओं, मान्यताओं व परम्पराओं से अलग एक वैयक्तिक पहचान बनायी है।

समाज में जब–जब परिवर्तन हुआ है; जनता के समक्ष उसकी पहल साहित्यकारों ने की है उन्हीं में से लेखिका ममता कालिया ने अपने कथा साहित्य में विघटित होते सामाजिक मूल्यों और जागरूक होती जनता की युगीन चेतना का यथार्थ चित्रण किया है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे से जुड़े हुए हैं; यद्यपि कहीं–कहीं व्यक्ति विशेष के नियम समाज के नियमों से भिन्न हो सकते है, परन्तु वह अपने व्यक्तिगत नियमों को समाज के सापेक्ष ही रखता है। एक और जहां व्यक्ति समाज के नियमों में जकड़ा हुआ कार्य कर रहा है वहीं दूसरी ओर कैरियर बनाने की अंधी दौड़ में इंसान पारिवार कि और सामाजिक संबंधों को भूलता जा रहा है। आधुनिक भारतीय समाज के परिवर्तन की स्थिति को लेखिका ने अपने कथा साहित्य में चित्रित किया है।

विषय विस्तार – लेखिका ने अपने कथा साहित्य में स्वतंत्र भारतीय व्यक्ति की भावनाओं में बिखरी हुई ध ार्मिक रूढ़ियों व युवा पीढी द्वारा सजातीय विवाह का विरोध इन विचारधाराओं में व्यक्त किया है, स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज जैसा होना चाहिए था। वास्तविक तौर पर वैसा नहीं रहा। उसमें पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति भी घुल मिल गयी है औद्योगीकरण के इस युग में परम्परागत मूल्यों का विघटन तथा नैतिक मूल्यों की निरर्थकता को लेखिका ने अपने कथासाहित्य में व्यक्त किया है। ममता कालिया ने अपने कथा साहित्य में ऐसे परिवार व समाज का वर्णन किया है; जहाँ अपनों से दूर रह रहे व्यक्ति के आने पर उसे प्यार सम्मान मिलता है, वहीं दूसरी और अपनों को छोड़कर चले जाने पर माँ बाप द्वारा भी नहीं किया जाता है। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् व्यक्ति जहाँ जिन परिवारों के साथ रहता है, वही उसका समाज होता है। 'नरक दर नरक' उपन्यास में उषा और जोगेन्दर तथा 'बेघर' उपन्यास में परमजीत के माध्यम से इन सब घटनाओं को उजागर किया है।

व्यक्ति का जैसा व्यवहार होगा समाज के लोग उसे वैसा ही तवज्जो देते हैं। 'लड़कियां' उपन्यास में हामिद की बीबी के स्वभाव को लेखिका ने उजागर किया है, और वे बताती हैं कि समाज में व्यक्ति अपना आदर सम्मान स्वयं के लक्षणों से घटाता या बढ़ाता है, क्योंकि आधुनिक महानगरीय जीवन ने मूल्यों को इतना परिवर्तित कर दिया कि व्यक्ति एक विशेष सांचे में ढलने को बाधित है। वर्तमान युवा वर्ग में बढ़ती वासना की भूख से शहरों के संस्कारों में लोक परम्पराएं अबूझ हो गयी हैं, इसी कारण लिव इन रिलेशनशिप को अपनाया जा रहा है, यह सब तथ्य 'बेघर' उपन्यास में दिखायी पड़ते है।

आधुनिक भारतीय समाज में परिवर्तन को लेखिका ने 'दौड़' उपन्यास में चित्रित किया है; युवा नौजवान पठान और सघन के माध्यम से बताया है कि किस तरह युवा वर्ग को प्रत्येक चीज रद्दी और प्राचीन लगती है। लेखिका अपने कथा साहित्य में उन सब सामाजिक मूल्यों को लेकर चलती हैं, जो आज के युग में समाज को प्रभावित कर सके। एक और यहां प्राचीन संस्कृति को छोड़ा जा रहा है, वहीं दूसरी और पाश्चात्य संस्कृति को जोड़कर युवा वर्ग की तथाकथित सोच का वर्णन किया है। युवा पीढ़ी ऊँचाइयां छूने की जागरूकता में पारिवारिक और सामाजिक

मूल्यों को भूलता जा रहा है, जीवन में परिवर्तन अनिवार्य है और नैतिक मूल्यों में परिवर्तन किया भी जा रहा है। वहीं लक्ष्य के अनुसार जीवन में बदलाव लाना भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि आज का युवा वर्ग बिना सोचे समझे अति शीघ्रता से निर्णय लेता है, ऐसी स्थिति में सामाजिक मूल्यों का पतन होता है। कारण यही है कि परिवर्तन आवश्यक है।

निष्कर्ष : अतः लेखिका ममता कालिया एक जागरूक रचनाकार हैं, जो वे अपने समाज के द्वन्द्वों से सीधे जुड़ी हुई है। उनकी सभी रचनाएं वर्तमान समय को सम्बोधित करती हैं। उनकी रचनाएं नारी जीवन की तथा भारतीय समाज की सभी विसंगतियों को रेखांकित करती है, साथ ही उन्होंने किसी एक विषय की चर्चा न कर समस्त सामाजिक मूल्यों पर आधारित अपने विचार अपने कथा साहित्य में किया है।

सन्दर्भ सूची

1. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक सन्दर्भ – डॉ. शीलप्रभा वर्मा
2. समकालीन हिन्दी उपन्यास एवं युवा प्रतिभा, कपिला पटेल हिन्दी साहित्य नवम्बर 2001
3. 'दौड' उपन्यास, ममता कालिया, वाणी प्रकाशन 21ए, दरियागंज, पृष्ठ संख्या 63, 67, 75
4. 'दुक्खम सुक्खम', ममता कालिया, भारतीय ज्ञानपीठ 18, पृ. 103, 120, 179
5. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण – रमेश कुलमेघ

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

डॉ0 रामकमल राय के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विविध पक्ष

डॉ. सन्ध्या शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग
आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम महिला महाविद्यालय, कानपुर

हमारे दैनन्दिन के जीवन में हमारे आस–पास कुछ ऐसे लोग होते है जो न केवल अपने समय में समाज को दिशाबोध कराने की छटपटाहट लिए निरन्तर क्रियाशील रहते है, अपितु अपने भविष्य के लिये प्रेरणादायी प्रसंग बन जाते है। ऐसे लोग जिज्ञासा और कृपों के माध्यम से जागरूकता के जीवन्त दस्तावेज होते है। जिनके जीवन में कोई पड़ाव व ठहराव नही होता है, उनकी विपासा इतनी तीव्र होगी है कि वे कभी आध्यात्मिक नही होते। उनकी जिजीविषा इतनी प्रखर होती है कि विपरीत परिस्थितियों और चुनौतियाँ को बार–बार अतिक्रमिक करते हुये समय की शिला पर अपनी जीवन्त उपस्थिति का आलेख अंकित कर जाते है। समाज भले ही उनकी उपलब्धियों से सन्तुष्ट हो जाता है लेकिन वे अपने कार्यों से स्वयं कभी संतुष्ट नहीं होते। उनके सामने एक साथ कई लक्ष्य होते हैं। जिन्हें पूर्ण करने की संघर्ष यात्रा में वे जीवन–पर्यान्त चलते रहते हैं। न जाने उनके अभ्यन्तर में कौन सी अन्तहीन तलाश की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है, जो कभी पूर्ण नही होती और एक रिक्ति का एहसास उनके मन में बराबर बना रहता है।

एक ऐसे ही अन्तहीन तलाश पथ के पथिक थे डॉ0 राम कमल राय। डॉ0 राम कमल राय जो जीवन की यथेष्ट उपलब्धियों और सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण पद और प्रतिष्ठा अर्जित करने के बावजूद अपने करणीय वे कभी पूर्ण सन्तुष्ट नही हुये यही कारण रहा कि कुछ और बेहतर करने की उलट अभिलाषा लिये वे अविराम जीवन भर चलते रहे। अपनी जीवन यात्रा में किसी पड़ाव तक पहुंच कर मंजिल का एहसास करते तब तक उन्हें कोई और लक्ष्य, कोई दूसरी मंजिल दिखाई पड़ने लगती और वे उसी दिशा में चल पड़ते। डॉ0 राम कमल राय जी अपनी आत्मकथा एक ''अन्तहीन तलाश'' के आरम्भ में ही अपने मनोदगार व्यक्त करते हुये लिखते है ''मेरी जिन्दगी सम्भावनाओं के क्षरण का विरल दस्तावेज है फिर क्यों नही इन सम्भावनाओं के प्रसादों को ध्वस्त होते जाने की कड़वी सच्चाइयों को खोलकर औरों के सामने रख दिया जाए, ताकि उनके भीतर कोई सम्भावना रूपाकार ग्रहण कर रही हो तो वे छिन्न भिन्न होने से बचा सके ।''

डॉ0 राय बहु–आयामी प्रतिभा सम्पन्न एक कर्मयोगी रहे है। कर्तव्य को सतत् प्राथमिकता देना और जो है, उसे और बेहतर करने के प्रति संकल्पबद्ध होना उनकी स्वाभाविक वृत्ति रही थी। उन्होंने जहाँ कही कुछ करने की सम्भावना देखी उधर वे ईमानदारी से चल पड़े। ऐसे में यथेष्ट करके भी उन्हें लगता कि बार–बार बदलाव करने से एकनिष्ठता भंग होती है। जो किसी बड़े विजन तक पहुँचने में बाधा पहुँचाती है। डॉ0 राम अपनी जिन्दगी को चाहे जिस रूप में परिभाषित करते रहे हो लेकिन एक बात तो बहुत स्पष्ट है कि डॉ0 राय में बार–बार मिथको को तोड़ा है और अपना ही अतिक्रमण किया है। वस्तुतः कोई भी बड़ी प्रतिभा अपने कृत्यों से सतत् संतुष्ट नही होती है, बार–बार अपना आत्मावलोकन करती है। तथा अपने कर्तव्य का स्वतः निर्धारण करती हुई अपना पक्ष प्रस्तुत सुनिश्चित करती है। डॉ0 राम कमल राय अपने रोजमर्रा की जिन्दगी में सहज सम्वेदनशील तो रहे ही है, आत्मावलोकन के माध्यम से निरन्तर आत्मपरिष्कार भी करते रहे है। यह आत्म परिष्कार की प्रक्रिया ही उन्हें

सम्भावना के क्षरण की स्थिति लगती है जो सच नही है।

डा0 राम कमल राय अपने प्रारम्भिक जीवन के चर्योसति के जीवन तक अनवरत आत्मशोधन करते हैं। इस प्रक्रिया में कुछ ऐसे रास्ते मिलें जिन पर केवल कुछ ही दूर जाकर फिर दूसरी राह पकड़ी, वह भी रास्ता नही आया तो किसी और डगर पर चल पड़े। इस प्रकार जीवन भर रास्ते दर रास्ते चलते हुये, वहां तक पहुंचे जहां, पहुंचकर लोग अपनी उपलब्धियों पर आत्ममुग्ध हो सकते है। लेकिन उनके अन्दर एक बेचैनी बराबर बनी रही। यही कारण है कि अपनी मेधा और कुसाग्रता के अनुपात में जो भी प्राप्त हुआ था उन्हें कम ही लगा। 'सम्भावनाओं के क्षरण' से शायद वे कहना चाहते थे कि अगर प्रतिभा का किसी एक दिशा में प्रयोग किये होते हो उसके शीर्ष पर निश्चित ही प्रतिष्ठित होते।

जीवनपर्यन्त चलना ही जिन्दगी है के आग्रही दृढ़ संकल्प और समाजवादी विचारधारा से अभिप्रेत एक विराट व्यक्तित्व के धनी डा0 रामकमल राय का जन्म 01 जून 1934 को तत्कालीन जिला आजमगढ़ के मझवारा (मऊ) ग्राम में स्व0 लक्ष्मीराम के घर में हुआ। तीन भाइयों में रामकमल राय सबसे बड़े थे। परिवार की स्थिति सुदृढ़ थी और पारिवारिक प्रतिष्ठा ऊँची थी। पिता श्री लक्ष्मीनारायण राय कचहरी में मुख्तार थे और बाद में वकालत करने लगे। इनके बाबा बाबू राम प्रसाद राय बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी थें। वे जमींदारी वाले सामन्ती परिवेश वाले समय में आस–पास के गाँवों तक लोगों की समस्याओं के समाधान करने, खेती के कार्य आदि की देखरेख करते थे। खेती किसानी के लिये भरपूर जमीन थी, इस पर मजदूर कार्य करते थे, और परिवार का सामन्तीरोबन्दाज क्षेत्र में प्रतिष्ठित था। किन्तु परिवार में अनुशासन की डोर संस्कारों द्वारा इतनी मजबूत बनायी गयी थी कि घर के सभी लोग मर्यादा और पारिवारिक प्रतिष्ठा के अनुरूप आचरण करते थे। किसी को भी ये लक्ष्मण रेखा लांघ ने की छूट नही थी। ऐसे संस्कारित परिवार की भावी पीढ़ी के नेतृत्व कर्ता डा0 रामकमल राय को अपने व्यक्तित्व के विकास का मजबूत आधार अपने पिता श्री से प्राप्त हुआ जो अच्छे मुख्तार थे, बाबा के संस्कारों के आबद्ध होकर उन्हें रामचरितमानस, विनय पत्रिका और गीता आदि का अच्छा अभ्यास था। अतिथि– प्रेम उनको अपने पिता से विरासत में प्राप्त हुआ। घर पर स्वाध्याय करने वाले श्रीलक्ष्मीनारायण राय अपने बच्चों की शिक्षा–दीक्षा को लेकर बहुत ही उत्साही व्यक्ति थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषित कर रखा था कि मैं अपने बच्चों को आजमगढ़ या मऊ में हाईस्कूल के बाद नही पढ़ाऊँगा वे चाहे इलाहाबाद, लखनऊ या बनारस चाहे जहाँ जाकर पढ़े। इसीलिये रामकमल राय को हाईस्कूल के बाद इलाहाबाद ईंविग क्रिश्चियन कालेज में भेजा गया। डा0 राय ने विज्ञान में स्नातक उपाधि प्राप्त करने के बाद जीवन राम इण्टर कालेज मऊ में विज्ञान के अध्यापक के रूप में अपनी नई पारी शुरू की। आगे अपनी श्रमशीलता की बुनियाद पर हिन्दी साहित्य में एम0ए0, पी–एच0 डी0 एवं एल0 एल0 बी0 की उपलब्धियां प्राप्त की। इस प्रकार राय साहब ने अपने ज्ञान की भूख और शिक्षा अर्जन की पाठशाला की यात्रा महावारा, घोसी, मऊ, इलाहाबाद व लखनऊ तक की। छः माह तक आजमगढ़ कचहरी में वकालत करने के बाद समाजवादी नेता राजनारायण के आग्रह पर राममनोहर लोहिया महाविद्यालय भैरों तालाब वाराणसी में हिन्दी अध्यापन के साथ प्राचार्य का दायित्व सम्भाला।

डा0 रामकमल राय का विवाह श्रीमती राजकुमारी राय के साथ हुआ। कालान्तर में वे तीन पुत्रियों और तीन बेटों के पिता बने, एक बड़े बेटे कैलाश राय उत्तर प्रदेश के प्रशासनिक अधिकारी बने, दूसरे बेटे निशीथ राय, लखनऊ विश्वविद्यालय के शिक्षाविद् और वर्तमान में डा0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय लखनऊ के कुलपति, और तीसरा बेटा उत्पल राय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की सफल राजनीति के बाद उत्तर प्रदेश की राजनीति में सक्रिय है। डा0 राय की तीनों बेटियां सुषमा, सुधा और शैवालिनी तीनों ही विवाहित है और अपने

दाम्पत्य जीवन से सन्तुष्ट है। डा0 राय की दो बहुयें– चंद्रकला और अनीता भी एम0 ए0 तक पढ़ी हैं। वे दोनों कुशल ग्रहणी है। अपने बच्चों को सम्भालने और पारिवारिक दायित्व को सम्भालने में वे अपनी सार्थकता का अनुभव करती है। डा0 राय के पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में ये कहना सर्वथा उचित होगा की वे एक भरे–पूरे शिक्षित और संस्कारित परिवार के मुखिया रहे अपने पारिवारिक सम्बन्धों को समुचित आकार देने वाले ऐसे कुशल कुम्भकार के रूप में उन्हें हम आज उद्धृत कर सकते है। जब भारतीय समाज पारिवारिक विघटन के दौर से गुजर रहा है।

डा0 राय को अपनी जन्म भूमि से भी इतना ही लगांव था इसीलिये वे प्रतिवर्ष लगभग 'गबई गन्ध गुलाब' को हृदय में संजोये प्रतिवर्ष पूरे परिवार के साथ दो बार गाँव में जरूर जाते और 15 दिन गाँव में निवास करते थे। उस दौरान मझवारा गाँव देखते–देखते साहित्यकारों की उपस्थिति से साहित्यमय हो जाता। रघुवंश, सोम ठाकुर, शशि तिवारी, लक्ष्मीकान्त वर्मा, रामस्वरूप चतुर्वेदी की उपस्थिति से डा0 राय के घर की बैठक साहित्यिक संगोष्ठी में बदल जाती। मझवारा रहते हुये डा0 राम कमल राय मऊ की साहित्यक संगोष्ठियों में भी भागीदारी करते थे। उनकी साहित्यक अभिरूचि और श्रमशीलता नही थी जो एक विज्ञान के विद्यार्थी को हिन्दी साहित्य में न केवल अध्ययन करने को बल्कि साहित्य जगत में उस मुकाम तक लाने में सफल रही जहाँ वे अज्ञेय और तत्कालीन साहित्यकारों का सानिध्य पाकर रचनाकारों की जमात में बैठने लायक बन सके। डा0 राम कमल राय के हृदय में बैठे एक रचनाकार को उस समय से समुचित धरातल मिला, जब वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में नियुक्त हुये, यह वो अवसर था, जिसे वे तलाश रहे थे। सन् 1977 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में नियुक्ति के साथ आरम्भ हुआ। यहां से डा0 रामकमल राय 1995 मैं सेवानिवृत्त हुये। सेवानिवृत्ति के पश्चात भी वे उत्तरोत्तर साहित्य पथ के धैर्यवान पथिक की भांति चलते–चलते उत्तर प्रदेश हिन्दुस्तानी अकादमी के अध्यक्ष पद पर आसीन हुये। इसके अलावा डा0 राय ने तीन वर्ष तक भारत सरकार द्वारा संचालित उच्च अध्ययन केन्द्र शिमला में बतौर शोधफैलो के रूप में साहित्य जगत की सेवा की।

डा0 रामकमल राय प्रतिभा बहुमुखी जो उन्हें विभिन्न क्षेत्रों की आकर्षित करती थी। वे अध्यापन कार्य में जितने निपुण थे उतने ही साहित्य सृजन के प्रति सजग और सम्वेदनशील, आजादी के बाद पनपे सत्ता से मोह भंग वे केवल लेखनी की धार से ही नही बल्कि राजनीति में सक्रिय भागीदार बनकर सेवा करने के लिये वे सन् 1962 में समाजवादी पार्टी से जुड़ गये। 1962 में मऊ के काजीटोला के मैदान में डा0 राममनोहर लोहिया ने डा0 रामकमल राय को सोशलिस्ट पार्टी का उम्मीदवार घोषित कर दिया परन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण आप चुनाव न लड़ सके। शिक्षक आन्दोलन के साथ–साथ समाजवादी आन्दोलनों में लगातार सक्रिय भागेदारी उनकी जिन्दगी का अनिवार्य हिस्सा बन गयी। जिसके चलते वे कई बार जेल गये। डा0 राम कमल राय घुम्कड़ स्वभाव के थे। भ्रमण ही उनकी जिन्दगी का बन चुकी थी। शायद ही भारत का कोई पर्यटन स्थल बचा हो जहाँ उन्होंने यात्रा न ही हो।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय डा0 रामकमल राय की सपनों की भूमि थी। वे अपनी आत्मकथा 'एक अन्तहीन तलाश' में लिखते है जब मै स्नातकीय पढ़ाई कर रहा था तो मेरे जीवन का एक सपना यही था कि काश मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो जाता। कोई प्रशासनिक सेवा उन्हें कभी आकर्षिक न कर सकी। अन्ततः मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रवक्ता हो ही गया। देर से ही सही मेरा स्वप्न साकार हो ही गया। वास्तव में डा0 रामकमल राय उन भाग्यशाली शिष्यों में थे जिन्हें अपने गुरूओं के सानिध्य में कार्य करने के अनुभव के साथ–साथ लम्बे समय तक गुरू स्नेह प्राप्त होता है। जब वे प्रवक्ता नियुक्त हुये तो विभागाध्यक्ष प्रो. रघुवंश थे, जिन्होंने उनके शोध कार्य का निर्देशन किया था। प्रो. रामस्वरूप चतुर्वेदी को वे अग्रज मानते थे। शिक्षक

परीक्षार्थी के रूप में, उन्होंने कामायनी के बड़ा सर्ग को रामस्वरूप जी से उनके घर पर पढ़ा था। मित्रता करने और उसे निभाने में डा0 राम कमल राय का कोई सानी नही। अपने इसी व्यक्तित्व के कारण वे प्रवक्ता पद पर आसीन होते ही शीघ्र ही प्रो0 जगदीश गुप्त, दूधनाथ सिंह, डा0 सत्यपाल मिश्र, डा0 राजेन्द्र कुमार, डा0 राजेन्द्र कुमार शर्मा, डा0 मीरा श्रीवास्तव, डा0 मालती तिवारी, डा0राम किशोर सभी से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गये कई लोगों से प्रगाढ़ता हो गयी। प्रो0 रघुवंश और डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी स्वयं एक निष्ठावान समर्पित प्राध्यापक थे। विभाग का वातावरण अत्यन्त शालीन और पढ़ाई लिखाई वाला था। प्रत्येक सप्ताह एक विभागीय संगोष्ठी होती थी। डा0 रामकमल राय ने ''नयी कविता के समानान्तर व्यक्तित्व'' विषय पर अपना आलेख रखा। उस लेख में उन्होंने अज्ञेय और डा0 राम मनोहर लोहिया की समानान्तरता की बात उठाई थी। जिसमें उन्होंने बताया कि जिस लोकतान्त्रिक समाजवादी चेतना के राजनीतिक वाहक डा0 राम मनोहर लोहिया है, उसी के सर्जनात्मक वाहक अज्ञेय है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अपने प्राध्यापन के दौर में उनके सम्बन्ध दूसरे विभाग के प्राध्यापकों से भी रहे। परन्तु अपने इन मित्रों में सबसे ऊपर वे प्रो0 जी0 आर0 शर्मा का नाम आता है किन्तु प्रो0 यू0 एन0 सिंह इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कुलपति हो कर आये तो कालान्तर में शर्मा जी से उनके सम्बन्धों में तनाव आ गया। जिसे पाटने के लिये डा0 राम कमल राय ने पूरा प्रयास किया। प्रो0 जी0 आर0 शर्मा औरे प्रो0 यू0 एन0 सिंह से डा0 राय ने हृदय से सच्चे मित्र होने के कर्तव्य निभाये जो उनके विराट व्यक्तित्व की एक वानगी थी। विश्वविद्यालय में वे 1994 तक रहे। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा कि 1994 तक आते–आते विश्वविद्यालय का वातावरण काफी बिगड़ गया था। अब इलाहाबाद विश्वविद्यालय वह नहीं रह गया था। नये प्रवक्ता विश्वविद्यालय में नौकरी करने और पैसा कमाने आते थे। उनमें कोई शिक्षा के प्रति आंतरिक रूचि नही थी। विश्वविद्यालय परीक्षा और उपाधि की जगह बनकर रह गया था। यद्यपि अभी भी पुराने प्राध्यापक अपने संस्कारों के कारण अपने दायित्वों के प्रति काफी निष्ठावान थे, परन्तु वातावरण तेजी से खराब हो रहा था।

भारतीय विश्वविद्यालयों के हिन्दी प्राध्यापकों की एक मात्र संस्था भारतीय हिन्दी परिषद है। परिषद की पत्रिका ''अनुशीलन'' भी एक स्तरीय शोध पत्रिका थी। परिषद का केन्द्रीय कार्यालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय में ही रखा गया क्योंकि इसके संस्थापक प्रो0 धीरेन्द्र वर्मा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से थे। आठवें दशक में डा0 राय को परिषद का कोषाध्यक्ष चुना गया। अक्टूबर 2002 में डा0 रामकमल राय को भारतीय हिन्दी परिषद का अध्यक्ष चुना गया था। ''एक अन्तहीन तलाश'' में डा0 राय ने लिखा है'' मुझे इस बात का सन्तोष है कि भारतीय हिन्दी परिषद की गतिविधियों के दौरान मेरा सम्बन्ध प्रो0 कल्याणमल लोढ़ा और प्रो0 रमेश कुमार शर्मा से हुआ, दोनों ने मुझे अपार स्नेह दिया। अटूट विश्वास दिया। दूसरा बड़ा सन्तोष यह है कि अत्यन्त जर्जर हो चुकी भारतीय हिन्दी परिषद को फिर से सुदृढ़ आर्थिक आधार पर खड़ा करने में अपना यथा सम्भव योगदान करने का मुझे अवसर मिला। वास्तव में डा0 राम कमल राय के व्यक्तित्व की एक विशेषता यह भी थी कि वे जिस काम को हाथ में लेते या जो दायित्व उन्हें मिलता उसे वे पूर्ण मनोयोग से पूर्ण सामर्थ्य से पूरा करते। भारतीय हिन्दी परिषद में चाहे कोषाध्यक्ष के रूप में उसकी आर्थिक स्थिति का पुनर्सुदृढ़ीकरण हो या अध्यक्ष के रूप में परिषद की तमाम गतिविधियों का कुशल संचालन कर परिषद को उसकी खोई हुई गरिमा के स्तर को पुनर्स्थापित करने के प्रति वे निरन्तर प्रयासरत रहे।

1994 में डा0 रामकमल राय इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सेवा निवृत्त हो गये। पारिवारिक दायित्वों को वे पहले ही पूरा निर्वाह कर चुके थे। जनवरी 1995 में उन्हें हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद का अध्यक्ष मनोनीत किया गया। इस संस्था का उददेश्य भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य का उन्नयन था। एकेडमी से 'हिन्दुस्तानी'

त्रैयमासिक पत्रिका निकलती थी। यह एक उच्चस्तरीय शोध पत्रिका थी। इसके अतिरिक्त संस्कृति सम्बन्धी गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था। एकेडमी का एक उच्चस्तरीय पुस्तकालय था। अध्यक्ष मनोनीत होने के बाद डा0 राम ने दायित्वबोध से एकेडमी को पुनः उसकी ख्याति और गौरव दिलाने के लिये सर्वप्रथम तत्कालीन मुख्यमंत्री मुलायम सिंह से एकेडमी की अनुदान राशि में वृद्धि करवाई। 3 लाख से 8 लाख अनुदान राशि में वृद्धि हो जाने के बाद डा0 रामकमल राय ने संकल्पित हो सर्वप्रथम एकेडमी का ढांचा ठीक किया, कर्मचारियों के वेतन आदि में यथेष्ट वृद्धि की। उसके पश्चात् एकेडमी की साहित्यिक एवम् सांस्कृतिक गतिविधियों की ओर ध्यान दिया। फरवरी 1995 में पद्भार ग्रहण किया और 7 मार्च को पहला आयोजन अज्ञेय के जन्म दिवस पर रखा गया। जिसमें दो बड़ी संगोष्ठियां, एक अज्ञेय के काव्य पर, दूसरी उनके कथा साहित्य पर। जून में एक नयी व्याख्यान माला का सूत्रपात किया गया जिसका शीर्षक था ''भाषा और राष्ट्रीय अस्मिता'' इस व्याख्यान माला का क्रम प्रति मास चला। बाद में इन सारे लेखों को ''भाषा एवम् राष्ट्रीय अस्मिता'' नामक पुस्तक का रूप दिया गया। दूसरी व्याख्यान माला ''संस्कृति की चुनौती'' शीर्शक से प्रारम्भ की गई। जिसमें एक अत्यन्त स्मरणीय व्याख्यान प्रो0 कुबेर नाथ राय का हुआ विषय था। आर्श चिन्तन के बुनियादी सूत्र''। सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय वाड्मय का निचोड़ प्रस्तुत करने वाला यह व्याख्यान अभूतपूर्व था। जिसे 'चिन्मय भारत' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया गया। इसी क्रम में फिराक साहब पर एक भव्य आयोजन हुआ जिसमे असगर अली इंजीनियर प्रो0 अकील रिजवी, श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, डा0 अली अहमद फातमी आदि के व्याख्यान दिये थे। तीन अगस्त को राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के जन्म दिवस को कवि दिवस के रूप में मनाया जाता था, जिसे पुनः सुचारू रूप दिया गया। अज्ञेय, सुमित्रानन्दन पन्त, निराला पर व्याख्यान मालायें प्रारम्भ हुई। हिन्दुस्तान एकेडमी का पुल पुरस्कार देना पुनः प्रारम्भ किया गया जो आठवे दशक से नही दिया गया था।

प्रधानमंत्री कार्यालय से 'आपातकाल : एक डायरी' श्री विषन टंडन की 1 नवम्बर 1974 से 15 अगस्त 1975 तक लिखी गयी नियमित डायरी के पृष्ठों का संकलन हैं। डा0 रामकमल राय ने इस डायरी की समीक्षा कर आपातकाल में हुये लोकतान्त्रिक संसदीय मूल्यों के क्षरण को भारतीय जनमानस समक्ष रख कर न केवल साहित्य जगत वरन् राष्ट्र के प्रति अपने नैतिक कर्तव्यों निर्वाह किया।

डा0 रामकमल राय अपने मित्रों सहयोगियों, तथा साहित्य जगत के परिचितों आदि से निरन्तर पत्र व्यवहार बनाये रहते थे। उनका प्रत्येक कार्य सुनियोजित दंग से होता था वे किसी प्रकार की हड़बड़ी में नहीं रहते। यही कारण रहा कि वे जिस संस्था में रहे, वहाँ भी कार्यों में नियमिता और निरन्तरता बनी रही। ऐसा करते समय वे संस्था की रक्षा की वे मूल्य मानकर उनसे समझौता नही करते थे। परिवार में भी वे योजनावद्ध होकर कार्य करते थे। प्रयाग से साहित्य परिवेश में, विशेषता परिमल के मंच पर और उसमें भी डा0 राम मनोहर लोहिया के समाजवादी परिपेक्ष्य में नव चिन्तन करते हुये डा0 राय के व्यक्तित्व का एक और अद्भुत गुण प्रदर्शित हुआ, समन्वयकारी वे सदैव समन्वयकर्ता बने रहे। प्रगतिशील होते हुये भी वे कभी यह नही स्वीकार कर पाये कि अज्ञेय कही से प्रतिक्रियावादी है। जनवादियों के साथ खाते पीते रहते हुये भी वे ''आखिरी कलाम'' की शैली में तुलसी दास की अवमानना को सहन नही कर पाये और कभी भारतीय संस्कृति तथा पुरातन परम्परा से परांगमुख नही हो सके। रामकमल राय अच्छे मित्र कुशल समन्वयक ही नही थे, अच्छे विचारक और व्याख्यानकार भी थे।

साहित्य के क्षेत्र में अपनी सीमाओं से परिचित थे परन्तु सम्भावना का तर्क उन्हें लिखने को बाध्य करता था। अज्ञेय, नरेश मेहता, साही उनके प्रिय कवियों में थे। इनकी कवितायें उन्हें कंठस्थ थी। इन कविताओं के आधार पर ही इन रचनाकारों का एक व्यक्ति चित्र रच डाला। शिखर से सागर तक में अज्ञेय का जो व्यक्ति चित्र निर्मित

किया है उनका आधार इन कविताओं की व्याख्यान में देखा जा सकता हैं। कृति की राह से कृतिकार की निर्मित और आचरण की राह से व्यक्ति का मूल्याँकन उनका सिद्धान्त जैसा था 'लोहिया :आचरण की भाशा' पुस्तक में 'आचरण की भाषा' मूल्यपरक निष्कर्ष है। रामकमल राय अपने और दूसरों के सन्दर्भ में निष्कर्ष का प्रयोग करते रहते थे। वे समाजवादी थे परन्तु उसे कभी भी भिन्न विचार रखने वालों के मूल्याँकन करने में बाँधा नही बनने दिया। विचारधारा उनके लिये आदर्श थी, परन्तु बड़ी नही थी। गुण ग्राहकता और साहित्य के प्रतिनिष्ठा उनके स्वभाव में थी । उनके सोचने, विचार ने और मूल्याँकन करने का एक नजरिया था और उसी नजरिये से वे साहित्य, समाज और व्यक्ति का मूल्याँकन करते थे। बौद्धिक विवेचना के साथ सर्जनात्मक क्षमता भी राय साहब में भरपूर थी।

'सार–सार को गह रहे थोथा देय उड़ाय' लोकोक्ति डा0 रामकमल राय पर चरितार्थ होती है। उनके इस गुण का उद्घाटन प्रसिद्ध संस्मरण कृति 'स्मृतियों का शुक्ल पक्ष' में होता है। जिसमें वे अपने जीवन के विस्तृत फलक पर बुरी स्मृतियों के बनाम सुखद स्मृतियों को ही जीवन की सकारात्मकता को सृजन बनाते हैं। दोषमय सृष्टि में उन्होंने गुण को सृजन का आधार बनाया जो वर्तमान संस्मरणकारों के लिये पथ प्रदर्शक सिद्ध होगा। एक नया कीर्तिमान डा0 राय जो साहित्य, राजनीति एवं विश्वविद्यालयी अध्यायन आदि विभिन्न पक्षों में समान रूप से भागीदार रहे। अपनी कृति में सर्वाधिक महत्व साहित्य को देते हुये प्रथम खण्ड साहित्यिक सन्दर्भ में बाईस लेखकों के संस्मरण प्रस्तुत करते है। आप उनका संस्मरण पढ़े तो पायेंगे कि किस प्रकार लेखक ने संस्मरण में ही अपने पूरे व्यक्तित्व की संवेदनशीलता के भाव प्राण पर्तो को उकेरकर रख दिया है। निराला पर लिखा 'आँखों देखाहाल' मर्मस्पर्शी है। जिस प्रकार डा0 रामकमल राय ने अज्ञेय को समझा, या नरेश मेहता के व्यक्तित्व को जाना या फिर विद्यानिवास मिश्र के व्यक्तित्व की झांकी प्रस्तुत की या रघुवंश की ऋतुता को रेखांकित किया या रामस्वरूप चतुर्वेदी की स्थिति प्रज्ञता का पक्ष प्रस्तुत करने के साथ डा0 सत्यप्रकाश मिश्र के प्रति उनकी मुक्त निर्मल मैत्री भावना को पहचानों और साहस के साथ रेखांकित करता है।

अज्ञेय के रामात्मक ऐश्वर्य और फुलकितमेंट के अल्प–कालिक बौद्धिक वर्ग को हटाकर भरी करुणा प्रभामय या आंगन के पार द्वार के वत्सल अज्ञेय को पकड़ने में रामकमल राय जितने सफल हुये, वे सुधीजनों के लिये बहुत ही उपयोगी है। दूसरा खण्ड विश्वविद्यालय से सन्दर्भित है, जिसमें डा0 राय की दो विरोधियों के बीच भी अपनी सद्भावना मिशन की मोमबत्ती जलाये रखी। जहाँ अज्ञेय और नरेश मेहता के बीच मनोमालिन्य को दूर करने में वे सफल रहे। वही डा0 गोवर्धन राय शर्मा और डा0 उदित नारायण सिंह के बीच सेफ्टीबाल्व बने रहे। यह रामकमल राय की ही विशिष्टता थी कि दोनों टकराये नहीं। तीसरा खण्ड राजनीति से सन्दर्भित है जिसमें तीन महान चिन्तकों श्री राम मनोहर लोहिया, श्री मधु लिमये और राजनारायण लोहिया ने बड़े मानवीय संवेदनाओं तथा कथनी और करनी में समानता रखने वाले व्यक्तित्व थे। श्री मधुलिमये ने जो समाजवादी ढांचा खींचा उसे जेपी ने जनता पार्टी के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। लेखक राजनारायण को जोखिम उठाने वाले कर्मठ सैनिक के रूप में याद करता है।

डा0 रामकमल राय की साहित्यिक कीर्ति का सबसे बड़ा आधार – अज्ञेय की वह जीवनी जो उन्होंने 'शिखर से सागर तक' शीर्षक से लिखी। अज्ञेय जैसे अन्तर्मुखी और मनस्वी साहित्यकार के साथ बैठ–बैठकर, बातचीत करके उनके जीवन के अनेक गूढ़ तथ्यों का संग्रह करना राय साहब के ही बस की बात थी। वे अज्ञेय जैसे परम गोपनशील, महामौनी साहित्यकार का विश्वास प्राप्त करने में सफल रहे। इसके अतिरिक्त डा0 रामकमल राय ने 1978 में रामकमल राय की अज्ञेय पर पहली पुस्तक 'अज्ञेय का सृजन और संघर्ष' प्रकाशित हुई । 2003 में 'अज्ञेय सृजन की समग्रता' पुस्तक प्रकाशित हुई वास्तव में आलोचना की। इस पुस्तक में समग्रता से अज्ञेय सृजन का ठीक–ठीक मूल्याँकन किया गया है। डा0 रामकमल राय की अज्ञेय पर लिखी तीन पुस्तकों के अलावा अन्य पाँच

पुस्तकें भी प्रकाशित हुई, परन्तु अज्ञेय पर किय काम से ही उनकी साहित्य में पहचान बनी। डा0 राय का मानना है कि 'अज्ञेय' के संवेदनशील व्यक्तित्व का निर्माण जिन अनुभूतियों के धामों से हो रहा था उनके साथ उनका अध्ययन एवं चिन्तन भी उनको रचनात्मक क्षमता को निखार रहे थे। डा0 राय, अज्ञेय के काव्य में उनके अहं की तलाश से भी नही चूकते। व्यक्ति और समष्टि के परस्पर द्वन्द और उनके भीतर के अन्तर्विरोध को व्याख्यामित करते है। यद्यपि अज्ञेय पर व्यक्तिवादी होने को आरोप लगता रहा परन्तु डा0 राय का मानना है कि अज्ञेय का व्यक्तिबोध, समष्टिबोध का विरोधी नही, पूरक भी नही। समष्टि उनकी दृष्टि में व्यक्ति की ही परिणति है। डा0 राय ने अज्ञेय की काव्यानुभूति में सौन्दर्य चेतना, संस्कृति चेतना, स्वाधीनताबोध, प्रणयानुभूति के साथ भाशागत विशेशताओं को भी उजागर किया। उनकी दृष्टि में अज्ञेय की काव्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति से तनिक भी कम महत्व उनके गद्य लेखन का नही है।

डा0 रामकमल राय को अपनी वाक्य पुष्पांजलि समर्पित करते हुये यही कहा जा सकता है कि साहित्य की सरसता, सजग संवेदना और सूक्ष्म–विषद विवेचना की प्रवाहमान त्रिवेणी थे डा0 राय। उनमें अन्तर्मुखी चिन्तन, व्यवहार बुद्धि प्रेरित दुनियादारी और समविषय परिस्थितियों में सामंजस्य बिठा लेने की यथेष्ट क्षमता थी। वे आत्मीयता सहजता और शोभनीयता का बानक आघन्त निभाते रहे। सार्वजनिक जीवन में काफी कुछ कमलवत् रहे। वास्तव में वे प्रयाग में रहकर स्वयं त्रिगुणों की त्रिवेणी बन गये।

सन्दर्भ सूची

1. अज्ञेय : सृजन और संघर्ष
2. नरेश मेहता : हिन्दी कविता की उर्ध्व यात्रा
3. हिन्दी कविता का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य
4. राम मनोहर लोहिया आचरण की भाषा
5. नई कविता नई दृष्टि
6. भाशा और राष्ट्रीय अस्मिता
7. 'शिखर से सागर तक'
8. स्मृतियों का शुक्ल पक्ष
9. अज्ञेय : सृजन की समग्रता
10. एक अंतहीन तलाश।

❑❑

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

स्वामी विवेकानन्द और राष्ट्रवाद

डॉ0 आशुतोष पाण्डेय

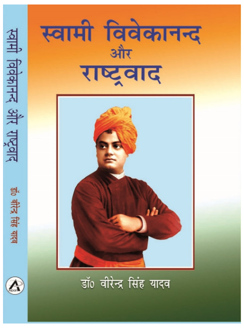

स्वामी विवेकानन्द एक तेजस्वी संन्यासी थे जिनके हृदय में एक आँधी उफन रही थी और आत्मा में आग जल रही थी। इस हालत में आपने निश्चय किया कि ''संसार के समक्ष भारत की आवाज बुलन्द की जाय और इससे भी अधिक जरूरी था कि भारत की समस्याओं के लिए एक समाधान प्रस्तुत किया जाये।'' इस कार्य के लिए अवसर भी आया और वे सन् 1893 ई0 में अमेरिका गये जहाँ शिकागो में स्वामी विवेकानन्द ने सर्वधर्म सम्मेलन में भाषण दिया। शिकागो धर्म सम्मेलन से पूर्व स्वामी विवेकानन्द की भेंट हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध प्रोफेसर जॉन हेनरी राइट से हुई। प्रो0 राइट ने स्वामी विवेकानन्द को धर्म सम्मेलन के सभापति के नाम एक परिचय पत्र दिया। इस पत्र में प्रो0 राइट ने यह लिखा था कि ''यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जो अपने यहाँ के सारे विद्वान प्रोफेसरों की इकट्ठी विद्वत्ता से भी कहीं अधिक विद्वान हैं।'' आपका भाषण भारत की सार्वदेशिकता और विशाल हृदयता से ओतप्रोत था जिसने वहाँ के प्रत्येक श्रोता को मुग्ध कर दिया। स्वामी विवेकानन्द जी ने धर्म सम्मेलन में जनसमुदाय को ''अमेरिका निवासी बहनों और भाइयों'' शब्दों से सम्बोधित किया। ऐसा सम्बोधन तो वहाँ की जनता के लिए बड़ा दिव्य था। स्वामी विवेकानन्द जी के इन दो सरल शब्दों में निहित तीव्र आन्तरिक भावना, स्वामी विवेकानन्द जी का महान व्यक्तित्व, उनका तेजस्वी मुखमण्डल, उनके गेरुआ वस्त्र का इतना भव्य प्रभाव हुआ कि दूसरे दिन समाचार–पत्रों ने उन्हें पूरे सम्मेलन में सर्वश्रेष्ठ एवं महानतम व्यक्ति कहकर वर्णित किया। स्वामी विवेकानन्द जी अमेरिका में तीन वर्ष तक रहे, व्याख्यान देते रहे, वेदान्त समितियाँ स्थापित करते रहे और शिष्य बनाते रहे। अमेरिका से वे इंग्लैण्ड गये और लन्दन में रहकर आपने वेदान्त पर भाषणों का ताँता लगा दिया। आपके विचारों से प्रभावित होकर आपके अनेक शिष्य बन गये।

लेखक का मानना है कि मोटे तौर पर स्वामी विवेकानन्द ने दर्शन के तीन स्रोत बताये हैं– प्रथम, वेदों तथा वेदान्त की महान परम्परा, द्वितीय, रामकृष्ण के साथ सम्पर्क और तीसरी, उनके अपने जीवन का अनुभव। इन तीनों स्रोतों के माध्यम से स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक और धार्मिक विचारों का निर्माण हुआ जो अन्ततोगत्वा उनके राजनीतिक विचारों के आधार स्तम्भ बने। स्वामी विवेकानन्द जी की रचनाओं के शुद्ध दार्शनिक अंश हैं – (1) ज्ञान योग, (2) पातंजलि सूत्रों पर भाष्य एवं (3) वेदान्त दर्शन पर स्वामी विवेकानन्द के द्वारा दिये गये भाषण भी अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। उनके राजनीतिक दर्शन का उल्लेख निम्नलिखित तीन प्रकार से देखने को मिलता है – (1) कोलम्बो से अलमोड़ा तक व्याख्यान। (2) भारत और उसकी समस्याएँ। (3) आधुनिक भारत।

प्रस्तुत पुस्तक में डॉ0 वीरेन्द्र यादव का मानना है कि वेदान्त की सार्वभौमिक वाणी का प्रचार कर स्वामी विवेकानन्द ने आर्य धर्म, आर्य जाति और आर्य भूमि को संसार की नजरों में पूजनीय बना दिया। आपका मानना था कि हिन्दूजाति पददलित है, पर घृणित नहीं; दीन–दुःखी होने पर भी बहुमूल्य, पारमार्थिक सम्पत्ति की अधिकारिणी है, और धर्म के क्षेत्र में जगद्‌गुरू होने के योग्य है। अनेक शताब्दियों के बाद स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दूजाति को अपनी मर्यादा का बोध कराया, हिन्दूधर्म का घृणा और अपमान के पंक से उद्धार कर, उसे विश्व–सभा में जाति उच्च आसन पर विराजमान कराया।

इस सन्दर्भ में रोमाँ रोलाँ ने इस जागरण की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि ''...सर्वप्रथम यहीं से भारत की उन्नति शुरू हुई। उसी दिन से इस दीर्घकाय कुम्भकर्ण की नींद टूटने लगी।... स्वामी विवेकानन्द के निधन के तीन साल बाद नयी पीढ़ी ने जो बंगाल का विप्लव तथा तिलक एवं गाँधी का आन्दोलन शुरू होते हुए देखा, वह तथा आज के भारत के संगठित जन–आन्दोलन स्वामी विवेकानन्द के ही सशक्त आवाहन का फल है।'' इसमें कोई दो राय नही कि स्वामी विवेकानन्द भारतीय जनजागरण एवं स्वाधीनता–संग्राम के अग्रदूत हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इन्हीं कुछ समकालीन स्थापनाओं को व्याख्यायित करती स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रवाद के विविध विचारों को उजागर करने का कार्य करती नजर आती है। आशा है कि दर्शन, अध्यात्म एवं साहित्य में रूचि एवं शोध करने वाले छात्रों को यह पुस्तक पसंद आएगी।

लेखक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव
पुस्तक का नाम – स्वामी विवेकानन्द और राष्ट्रवाद
प्रकाशन – अर्पण पब्लिकेशन्स, 4837/24 प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली, दिल्ली–110002
ISBN-978–93–86468–64–2 मूल्य – रू 995.00 पृ0–268
संस्करण : 2018

एसो0 प्रो0–राजनीति एवं लोकप्रशासन विभाग,डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ

मुक्तिबोध के साहित्य में मानवीय संवेदना और संघर्ष

डॉ0 अलका द्विवेदी

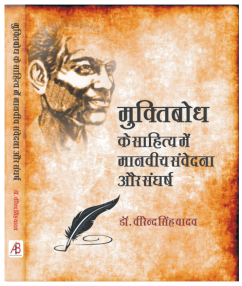

युवा लेखक एवं आलोचक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव इस पुस्तक के माध्यम से बताना चाहते हैं कि गजानन माधव मुक्तिबोध बीसवीं सदी के हिंदी कविता के सबसे बेचैन, सबसे तड़पते हुए और सबसे ईमानदार स्वर हैं। मुक्तिबोध की कविता जटिल है। मुक्तिबोध की रचनाएँ सरस नहीं हैं, सुखद नहीं हैं। वे हमें झकझोर देती हैं, गुदगुदाती नहीं। वे मात्र अर्थग्रहण की माँग नहीं करतीं बल्कि आचरण की भी माँग करती हैं। तारसप्तक में मुक्तिबोध ने स्वयं कहा है कि 'मेरी कविताएँ अपना पथ खोजते बेचैन मन की अभिव्यक्ति हैं। उनका सत्य और मूल्य उसी जीव–स्थिति में छिपा है।

सम्पादक का मानना है कि गजानन माधव मुक्तिबोध हिंदी के अतिविशिष्ट रचनाकार हैं। उन्हें उम्र जरूर कम मिली, पर कविता, कहानी और आलोचना में उन्होंने युग बदल देने वाला काम किया। पहली बार वह व्यवस्थित रूप में 'अज्ञेय' द्वारा संपादित 'तार सप्तक' में अपनी कविताओं के साथ उपस्थित हुए। टॉल्सटाय, दोस्तोवस्की, गोर्की से प्रभावित गजानन माधव मुक्तिबोध ने कहानी, कविता, उपन्यास, आलोचना आदि विधाओं में लिखा और हर क्षेत्र में उनका हस्तक्षेप अलग से महसूस किया जा सकता है। गजानन माधव मुक्तिबोध की रचनाएँ निराला की संवेदनशीलता और कबीर के अक्खड़पन का अद्‌भुत सम्मिश्रण हैं। मुक्तिबोध की रचनाएँ सृजन का उदात्त हैं। आपको प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता आदि साहित्यिक आंदोलनों के साथ जोड़कर देखा जाता है। 'अँधेरे में' और 'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाएँ मानी जाती हैं। मुक्तिबोध मूलतः कवि हैं। उनकी आलोचना दृष्टि का पैनापन और मौलिकता असंदिग्ध है। उनकी सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षा में तेजस्विता है।

मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' उनकी अंतिम कविता है और शायद सबसे महत्वपूर्ण भी। अँधेरे में' कविता में सत्ता और बौद्धिक वर्ग के बीच गठजोड़, उनके बेनकाब होने, सत्ता द्वारा लोगों पर दमन, पुराने के ध्वंस पर नये के सृजन, इतिहास के बारे में नयी अंतर्दृष्टि आदि देखने को मिलती है। इस कविता में स्वतंत्रता के बाद के भारत के लगभगा बीस वर्षों का आख्यान नहीं है बल्कि उसमें हमारा संपूर्ण अतीत मुखरित होता सुना जा सकता है। वे वर्तमान की घटनाओं को महज एक असंबद्ध घटना की तरह नहीं बल्कि उसके पीछे की पूरी कार्यकारण श्रृंखला के बतौर समझने की कोशिश करते हैं। जब वे इस प्रक्रिया का अनुसरण करते हैं, तो उनकी कवितायें लंबी होती चली जाती हैं।

मुक्तिबोध ने भक्ति आंदोलन का भी नये सिरे से मूल्यांकन किया और स्थापित किया कि यह मूलतः निचली जातियों का शोषक जातियों के खिलाफ विद्रोह था। बाद में शोषक जातियों ने इस आंदोलन पर नियंत्रण हासिल कर लिया और भक्ति आंदोलन पूरी तरह बिखर गया। मुक्तिबोध ने साहित्य की रचना प्रक्रिया के बारे में भी महत्वपूर्ण लेखन किया। रचना–प्रक्रिया के संदर्भ में 'कला का तीसरा क्षण' हिन्दी साहित्य की बड़ी उपलब्धि है। आधुनिकतावाद और व्यक्तिवाद के जरिये समाज की चिंता को साहित्य से परे धकेलने की कोशिशों का उन्होंने विरोध किया। मुक्तिबोध के बाद के कवियों पर उनका व्यापक असर है। अनेक विश्वविद्यालयों में मुक्तिबोध की कविताओं व आलोचना पर शोध कार्य हुए हैं और हो रहे हैं।

सम्पादक इसे बेहद दुर्भाग्यपूर्ण मानते हैं कि उनके जीवनकाल में उनकी कविता की कोई किताब नहीं प्रकाशित हो पाई। उनके जीवित रहते उनकी सिर्फ एक किताब छपी, वह थी 'एक साहित्यिक की डायरी।' इसके बावजूद बाद में वे ऐसे विलक्षण रचनाकार साबित हुए जिनके लिखे की गूँज परवर्ती कविता, विचार,आलोचना या कहानी सबमें बढ़ती ही चली गई।

इसमे कोई दो राय नहीं कि मुक्तिबोध सजग चित्रकार की भाँति दुनिया का सुंदरतम उकेरना चाहते हैं। वे चाहते हैं उजली–उजली इबारत, मगर अंधेरे बार–बार उनकी राह रोक लेते हैं। अंधेरे के चक्रव्यूह में घिरे वे अकेले ही जूझते हैं, अनवरत लगातार। पर प्रकाश की बात भी यहाँ है। उनकी रचनाओं में यह युद्ध कभी खत्म नहीं होता, चलता ही रहता है उनके भीतर। वे लड़ते हैं आजीवन क्योंकि उन्हें लगता है कि उन जैसों के हाथ में सच की विरासत है, जिसे उन्हें आने वाले समय को, पीढ़ी को ज्यों का त्यों सौंपना है।

यह आशा एवं विश्वास कि प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक मुक्तिबोध के साहित्य में मानवीय संवेदना और संघर्श पर आम–जन के मध्य जिज्ञासा एवं उत्सुकता पैदा करेगी।

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

पुस्तक का नाम – मुक्तिबोध के साहित्य में मानवीय संवेदना और संघर्ष

प्रकाशन – ए0बी0एस0 बुक्स, बी0–21, शिव कालोनी, बुद्ध बिहार, फेस–2, दिल्ली–110086

ISBN-978–93–86088–70–3 मूल्य–रू. 980.00 पृ0–239 संस्करण : 2018

एसो0 प्रो0–हिन्दी विभाग–जुहारी देवी गर्ल्स पी0जी0 कालेज, कानपुर

महात्मा गाँधी : विचार और मूल्यांकन

डॉ0 हरिनिवास पाण्डेय

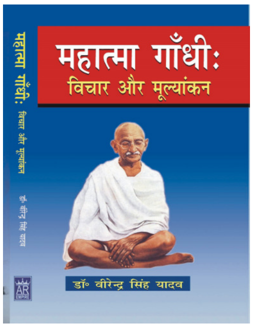

युवा आलोचक डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव की महात्मा गाँधी पर अद्यतन पुस्तक है।जिसमें महात्मा गाँधी की विचारधारा को नए सिरे से परिभाषित किया गया है। सम्पादकीय में डॉ0यादव ने लिखा है कि महात्मा गाँधी जी के विचारों पर अनेक भारतीय धार्मिक पुस्तकों, धर्मों तथा पश्चिमी दार्शनिकों के विचारों का प्रभाव पड़ा था। इंग्लैंड में अध्ययन करते समय गाँधी जी ने सर एडविन अर्नाल्ड द्वारा अनुदित गीता पढ़ी। इसने आपके दृष्टिकोण को सर्वाधिक प्रभावित किया तथा महात्मा को कर्मयोगी बनाया। महात्मा गाँधी गीता को अपना पथ प्रदर्शक तथा आध्यात्मिक निर्देश ग्रंथ मानते थे। गाँधी जी ने सत्य व अहिंसा के नैतिक सिद्धांतों तथा आदर्शों के बारे में गीता से बहुत कुछ सीखा था। गीता के अतिरिक्त गाँधी जी ने उपनिषद्, पतंजलि के योग सूत्र, रामायण, महाभारत, जैन तथा बौद्ध धर्म की पुस्तकों का भी अध्ययन किया था। इन पुस्तकों के अध्ययन से सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह में आपकी आस्था बहुत दृढ़ हो गई। ईसाई धार्मिक ग्रंथों में न्यू टेस्टामेंट तथा समर्रो ऑन द माउंट का गाँधी जी के विचारों पर गहरा प्रभाव पड़ा। अहिंसक प्रतिरोध की शिक्षा उन्हें ईसा मसीह के इन शब्दों से मिली। "भगवन उन्हें क्षमा कीजिये, क्योंकि वे नहीं जानते की वे क्या कर रहे हैं।"

पुस्तक की मान्यता है कि जॉन रस्किन, हेनरी डेविड थोरो तथा टॉलस्टॉय जो कि तीनों आधुनिक दार्शनिक थे ने गाँधी जी को अत्यंत प्रभावित किया। जॉन रस्किन की पुस्तक 'अनटू दिस लास्ट' से महात्मा गाँधी ने शारीरिक श्रम का आदर करना सीखा तथा उस आर्थिक व्यवस्था को सर्वोत्तम माना जिससे सबको लाभ होता है। वहीं हेनरी डेविड थोरो से गाँधी जी ने सविनय अवज्ञा की प्रेरणा ली। गांधी जी ने टॉलस्टॉय के प्रभाव में ईसाई मत के नैतिक अराजकतावाद के सिद्धान्त को अपनाया। उनके 'ईश्वर का साम्राज्य अपने अंदर है' नामक निबंध को पढ़ने के बाद महात्मा गाँधी जी के मन का संशय तथा नास्तिकता दूर हो गयी और अहिंसा के प्रति महात्मा का विश्वास और दृढ़ हो गया। यह बता देना आवश्यक है कि टॉलस्टॉय ने प्रेम को सभी समस्याओं का समाधान माना था। महात्मा ने कहा था कि ईसा अपने पड़ोसी के साथ झगड़ा नहीं करता है और न वह आक्रमण करता है और न ही हिंसा का प्रयोग करता है। गुजराती कवि रायचंद भाई के विचारों ने भी गाँधी जी के जीवन व विचारधारा को अत्यधिक प्रभावित किया।

सम्पादक की मान्यता है कि गाँधी जी का चिंतन और आदर्श नैसर्गिक नियमों और शाश्वत मूल्यों पर आधारित हैं और कोई को कहीं भी कतई उनकी नियति पर प्रश्न चिह्न नही लगने चाहिए। लेकिन अपने वास्तविक जीवन में आपने हरिजनोत्थान (दलितोत्थान) एवं अस्पृश्यों के लिये बहुत महत्वपूर्ण कार्य किये परन्तु सामाजिक ढाँचा को बदलने के लिये अकेले गाँधी जी पर्याप्त नहीं थे क्योंकि गाँधी जी किसी को नाराज नहीं करना चाहते थे उन्हें सब वर्गों को खुश करके (राजनीतिज्ञता झलकती है) स्वराज्य प्राप्त करने की अपनी इच्छा को प्रदर्शित भी नहीं करना था। आलोचकों की दृष्टि में यह शायद व्यक्तिगत सोच हो सकती है कि सनातन हिन्दुओं को धर्म और ईश्वर का झुनझुना देकर एवं दलितों को अस्पृश्यता का शिगूफा थमाकर महात्मा दोनों वर्गों को खुश करने का प्रयत्न कर रहे थे यानी बीच–बीच में अपने विचारों को मोड़कर मध्य मार्ग अपनाते रहे।

सत्ताइस अध्यायों एवं आठ उपखण्डों में विभाजित इस सम्पादित पुस्तक को ज्ञानवर्धक उपयोगी एवं जनसामान्य की समझ लायक बनाने के लिए 27विद्वतजनों के लेखों को सम्मिलित किया गया है। भारत में गाँधी जी विमर्श की इस प्रस्तुत पुस्तक में इनसे सम्बन्धित विभिन्न समकालीन भारतीय एवं वैश्विक मुद्दों को उठाकर उसके समाधान की कोशिश करने का विनम्र प्रयास किया गया है। आशा है कि गाँधीवादी विचारधारा में रूचि रखने वाले पाठको को यह कृति अवश्य पसंद आएगी।

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

पुस्तक का नाम – महात्मा गाँधी : विचार और मूल्यांकन

प्रकाशक – एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल,4837/24 प्रहलाद गली,अंसारी रोड,दरिया गंज,नई दिल्ली,110002

ISBN-978–93–86846–46–4 मूल्य–रू. 995.00 पृ0–256 संस्करण : 2018

'एसो0 प्रो0–हिन्दी, जवाहर लाल नेहरू कालेज, पासीघाट (अरूणाचल प्रदेश)

समावेशी भारत और शिक्षा

डॉ0 सुरेश एफ. कानडे

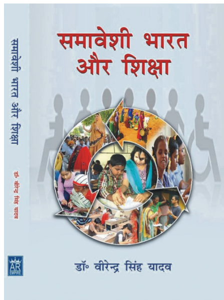

यह पुस्तक समावेशी शिक्षा जगत के पन्द्रह विद्वानों के विचारों को समेटे हुए 15 अध्यायों में विभाजित की गयी है। पुस्तक में अधिकतर विद्वानों की मान्यता है कि समावेशी विकास से तात्पर्य समान अवसरों के साथ विकास करना होता है। दूसरे शब्दों में ऐसा विकास जो न केवल नए आर्थिक अवसरों को पैदा करे, बल्कि समाज के सभी वर्गो के लिए सृजित ऐसे अवसरों की समान पहुँच को सुनिश्चित भी करे, तो उस विकास को समावेशी विकास कह सकते हैं। जब यह समाज के सभी सदस्यों की इसमें भागीदारी और योगदान को सुनिश्चित करता है। विकास की इस प्रक्रिया का आधार समानता है। जिसमें लोगों की परिस्थितियों को ध्यान में नहीं रखा जाता है।

सम्पादक का मानना है कि आजादी के 70 वर्ष बीत जाने के बाद भी देश की एक चौथाई से अधिक आबादी अभी भी गरीब है और उसे जीवन की मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी स्थिति में भारत में समावेशी विकास की अवधारणा सही मायने में जमीनी धरातल पर नहीं उतर पाई है। ऐसा भी नहीं है कि इन सात दशकों में सरकार द्वारा इस दिशा में प्रयास नहीं किए गए। केन्द्र तथा राज्य स्तर पर लोगों की गरीबी दूर करने हेतु अनेक कार्यक्रम बने, परन्तु उचित अनुश्रवण के अभाव में इन कार्यक्रमों से आशानुरूप परिणाम नहीं मिले और कहीं तो ये कार्यक्रम पूरी तरह भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ गए। यही नहीं, जो योजनाएं केन्द्र तथा राज्यों के संयुक्त वित्त पोषण से संचालित की जानी थीं, वे भी कई राज्यों की आर्थिक स्थिति ठीक न होने या फिर निहित राजनीतिक स्वार्थों की वजह से कार्यान्वित नहीं की जा सकीं।

समावेशी विकास ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों के संतुलित विकास पर निर्भर करता है। इसे समावेशी विकास की पहली शर्त के रूप में भी देखा जा सकता है। हालांकि वर्तमान में मनरेगा जैसी और भी कई रोजगारपरक योजनाएं प्रभावी हैं और कुछ हद तक लोगों को सहायता भी मिली है, परन्तु इसे आजीविका का स्थायी साधन नहीं कहा जा सकता,जबकि ग्रामीणों के लिए एक स्थायी तथा दीर्घकालिका रोजगार की जरूरत है। अब तक का अनुभव यही है कि ग्रामीण क्षेत्रों में सिवाय कृ षि के अलावा रोजगार के अन्य वैकल्पिक साधनों का सृजन ही नहीं हो सका,भले ही विगत तीन दशकों में रोजगार सृजन की कई योजनाएँ क्यों न चलाई गई हों। इसके अलावा गाँवों में ढ़ाँचागत विकास भी उपेक्षित रहा फलतःगाँवों से बड़ी संख्या में लोगों का पलायन होता रहा और शहरों की ओर लोग उन्मुख होते रहे। इससे शहरों में मलिन बस्तियों की संख्या बढ़ती गई तथा अधिकांश शहर जनसंख्या के बढ़ते दबाव को वहन कर पाने में असमर्थ ही हैं। यह कैसी विडम्बना है कि भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ कहीं जाने वाली कृषि अर्थव्यवस्था निरन्तर कमजोर होती गई और वीरान होते गई, तो दूसरी ओर शहरों में बेतरतीब शहरीकरण को बल मिला और शहरों में आधारभूत सुविधाएँ चरमराई यही नहीं रोजी–रोटी के अभाव में शहरों में अपराधों की संख्या बढ़ गई है। समावेशीकरण के तहत जहाँ तक शिक्षा का सवाल है तो विशेष शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक सामान्य छात्र और एक अशक्त या विकलांग छात्र को समान शिक्षा प्राप्ति के अवसर मिलने चाहिए। इसमें एक सामान्य छात्र एक अशक्त या दिव्यांग छात्र के साथ विद्यालय में अधिकतर समय बिताता है। पहले समावेशी शिक्षा की परिकल्पना सिर्फ विशेष छात्रों के लिए की गई थी लेकिन आधुनिक काल में हर शिक्षक को इस सिद्धांत को विस्तृत दृष्टिकोण में अपनी कक्षा में व्यवहार में लाना चाहिए।

अंत में पुस्तक की मान्यता कुल मिलाकर यह है समावेशी विकास वह है जिसमें रोजगार के अवसर पैदा हों और जो गरीबी को कम करने में मदद करे। इसमें अवसर की समानता प्रदान करना और शिक्षा व कौशल विकास के द्वारा लोगों को सशक्त करना शामिल है। इसी को ध्यान में रखते हुए सरकार ने अनेक योजनाओं की शुरूआत की है जो समाज के हाशिए के लोगों को मुख्यधारा में लाने में मदद करेगी और उन तक तीव्र आर्थिक विकास का फायदा पहुँचाएगी।

प्रस्तुत सम्पादित पुस्तक में देश के विभिन्न प्रान्तों के उच्च शिक्षा जगत से सम्बद्ध प्राध्यापकों, शिक्षाविदों, बुद्धिजीवियों तथा साहित्यकारों के सार्थक चिन्तन, मनन एवं गम्भीर विचारों को रखा गया है। बदलते परिदृश्य में समावेशी विकास की ओर बढ़ते शिक्षा के कदम को वस्तुपरकता एवं विषयपरकता की दृष्टि से इस सम्पादित पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत पुस्तक न केवल विषय विशेषज्ञों, शोधार्थियों, प्राध्यापकों एवं सामाजिक चिंतकों, बल्कि आम–जन के लिए भी उपयोगी एवं प्रेरणास्पद सिद्ध होगी।

सम्पादक – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

पुस्तक का नाम – समावेशी भारत और शिक्षा

प्रकाशक–एम्पायर बुक्स इण्टरनेशनल,4837/24 प्रहलाद गली,अंसारी रोड,दरिया गंज,नई दिल्ली,110002

ISBN-978–93–86846–11–2 मूल्य–रू0 895.00 पृ0–218 संस्करण : 2017

'प्लाट नं.48, साईं बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वरनगर, गंगापुर रोड, नासिक–422013 (महाराष्ट्र)

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

किन्नर विमर्श साहित्य के आइने में

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

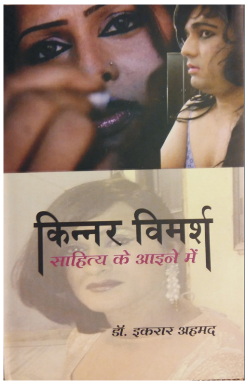

युवा आलोचक एवं हाशिए के विमर्श के हस्ताक्षर डॉ0 इकरार अहमद के लेखन में सामाजिक सरोकार देखने को मिलता है। पुस्तक किन्नर विमर्श साहित्य के आइने में आपने संपादित करके उनके हकों की बात है।

किन्नर शब्द ऐसे समाज के लिए प्रयुक्त होता है जो लैंगिक रूप से न नर होते हैं न मादा। लैंगिक दिव्यांगता के कारण यह शारीरिक और मानसिक समस्या उत्पन्न होती है। वर्तमान समय में इस प्रकार के जन्मे व्यक्तियों की संख्या भारत में लगभग 50 लाख है। भारतीय समाज के बहुत से वर्ग विकृत परम्पराओं के कारण त्रासदपूर्ण जीवन व्यतीत करने को विवश होते हैं उनमें सर्वाधिक उपेक्षित वर्ग है – किन्नर। किन्नर समाज के बारे में प्रायः बात करने से समाज कतराता है और वह इनकी व्यथा व पीड़ा पर अपना मनोरंजन करता है। इन्हें हिजड़ा, खोजा, जनखा, छक्का, अरावनी, खुसरा, ट्रांसजेण्डर इत्यादि नाम से भी जाना जाता है। अभी कुछ वर्ष पूर्व पहले माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में उपरोक्त शब्दों के स्थान पर 'थर्ड जेण्डर' के नाम से सम्बोधित किया है। इसीलिए अब इस समुदाय के लोगों पर 'थर्ड जेण्डर' के नाम से पुकारा जाएगा।

सम्पादकीय में डॉ0 इकरार अहमद लिखते है कि भारतवर्ष में लगभग पचास लाख की इस आबादी के नारकीय जीवन को व्यवस्थित करने के लिए विशेष प्रयास नहीं किये गये हैं। यह समस्या मुख्य रूप से दक्षिण एशिया में प्रचलित है। यूरोप व अन्य देशों में इस प्रकार के दिव्यांग व्यक्ति सामान्य जीवन व्यतीत करते हैं और किसी बच्चे को गोद लेकर अपनी वंशावली भी चलाते हैं। यह एक प्रकार की दिव्यांगता है जो शारीरिक के साथ–साथ मानसिक भी है। कुछ पुरुषों की मानसिक स्थिति स्त्रियों जैसी होती है। वे मनोवैज्ञानिक तौर पर स्वयं को आन्तरिक रूप से महिला मानते हैं। पाश्चात्य देश में ऐसे पुरुष शल्य क्रिया, स्टारायड व हार्मोन के द्वारा विकृत नर (शीमेल) बनते हैं।

शिक्षा के अभाव में किसी भी व्यक्ति और समाज का सशक्तिकरण सम्भव नहीं है। ऐसे बच्चे सामान्य बच्चों में हीनभावना के शिकार होते हैं अतः इनके लिए अलग से विद्यालयों की व्यवस्था होनी चाहिए। बहुत से किन्नर ने सोशल वर्क एवं बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन में स्नातकोत्तर की डिग्री हासिल करके 'कलिंग इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेस (कीरा) में सामाजिक विकास अधिकारी की नियुक्ति प्राप्त की है। साधना पिछले चौदह वर्षों से भुवनेश्वर में रहकर उपेक्षित शिशुओं एवं महिलाओं के विकास के लिए काम कर रही हैं। इसी प्रकार लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी जो एक टीवी व सिनेमा कलाकारण भरत्नाट्यम नर्तिका और सामाजिक कार्यकर्ता हैं जो किन्नर समाज के अधिकारों के लिए संघर्श कर रही हैं। ट्रांसजेण्डर अधिकारों के लिए काम करने वाली लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी को किन्नर अखाड़े का पहला महामण्डलेश्वर बनाया गया है।

सम्पादित प्रस्तुत पुस्तक में आठ आलेखों पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए लेखकों ने किन्नर जीवन की विडम्बनाओं को प्रस्तुत करते हुए उनकी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रो. मेराज अहमद ने 'तीसरे विमर्श की कहानियाँ' नामक आलेख में संकलन की कहानियों पर विहंगम दृष्टि डाली है। प्रो. शर्मिला सक्सेना का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। डॉ. विमलेश शर्मा का आलेख 'साहित्यिक पगडंडियों पर मुखरित अभिशप्त उपस्थितियां' किन्नर के प्रति पूर्वाग्रहों और मिथकों को तोड़ने का आह्वान करता है। डॉ0 कर्मानन्द आर्य अपने आलेख 'अस्मिता, व्यक्तित्व, सेक्स और थर्ड जेण्डर की कहानियाँ' के माध्यम से किन्नर समाज की अस्मिता की तलाश करते हैं। सम्पादक डॉ0 इकरार अहमद का लेख हिन्दी कहानियों में किन्नर विमर्श भी महत्वपूर्ण है।

आशा है कि डॉ0 इकरार अहमद की प्रस्तुत सम्पादित आठ अध्यायों में संकलित पुस्तक शोधार्थियों, अध्येयताओं एवं प्राध्यापकों के लिये संग्रहणीय एवं महत्वपूर्ण होगी ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

पुस्तक का नाम – किन्नर विमर्श साहित्य के आइने में

सम्पादक – डॉ0 इकरार अहमद

प्रकाशक – वाडःमय बुक्स, 205 ओहद रेजीडेन्सी, मिल्लत कालोनी, दोदपुर रोड अलीगढ़–202002

ISBN-978–93–82485–95–7 मूल्य – रू. 300.00 पृ0–95 संस्करण : 2017

अध्यक्ष – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ

अज्ञेय का कथा साहित्य : नारी मानसिकता के आयाम

डॉ0 शिवशंकर यादव

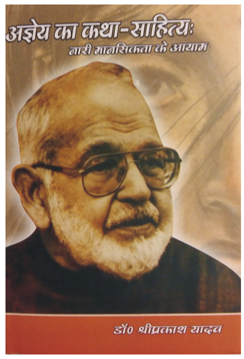

समाजवादी युवा चिन्तक डॉ0 श्रीप्रकाश यादव नेसमकालीन विषयों के साथ ही अपने लेखन में आलोचना को मुख्य विषय बनाया है। डॉ0 यादव की यह पुस्तक उनके अज्ञेय पर किए गए शोध का आधार ग्रन्थ है। डॉ0 श्रीप्रकाश जी का मानना है कि मनोविश्लेषण शास्त्र से प्रभावित होने वाले कथाकारों में ''अज्ञेय'' का नाम प्रमुख है। वस्तुतः मनोविश्लेषण इतनी दर्शन–सम्बन्धी उपलब्धि नहीं जितनी विज्ञान सम्बन्धी। मानव स्वभाव के गहनातिगहन स्तरों को समझने के लिए इससे लाभान्वित तो हुआ जा सकता है परन्तु इसे व्यापक जीवन–दर्शन अथवा साहित्यिक सिद्धान्त के रूप में अपना नहीं सकते। मनोविश्लेषण भी मार्क्सवाद के समान, द्वन्द्व सिद्धान्त को स्वीकार करता है, किन्तु यह सिद्धान्त वर्ग और वर्ग के बीच न होकर व्यक्ति और समाज के भीतर चलता है। इसे कल्पना जगत और वास्तविक जगत का संघर्ष भी कहा जाता है। यह संघर्ष मार्क्सवादियों द्वारा स्वीकृत वर्ग–संघर्ष का प्रतिद्वन्द्वी नहीं, हालाँकि हिन्दी के कई आलोचकों का ऐसा ही मत है। वर्ग के भीतर कई उपवर्ग भी चलते हैं। प्रत्येक बाह्य समूह में कई अन्तः समूह भी चलते हैं। अतः भौतिक ऐतिहासिक दृष्टि से वर्गों का अस्तित्व स्वीकार करते हुए भी हम व्यक्ति और समाज के संघर्ष को स्वीकार कर सकते हैं।

लेखक की मानता है कि ''अज्ञेय'' के कथा साहित्य में नारी संवेदना के रूप में अलगाव, एकाकीपन, अजनबीपन और फालतू होने की समस्या बहुलाशंतः कथ्य के आधार पर मिलती है। आज के इस यांत्रिक युग में सामाजिक और राजनीतिक जीवन में व्याप्त अराजकता और स्वार्थान्धता के कारण व्यक्ति को जिस कटु और असत्य स्थिति का सामना करना पड़ता है उससे वह आत्मसीमित, बेगाना और अजनबी होता जा रहा है। आज का व्यक्ति जीवन की बड़ी भयानक और करुण स्थिति से गुजर रहा है। इसी जटिल जीवन और गम्भीर संवेदनाओं की स्थिति को ''अज्ञेय'' रूप देने में संलग्न हैं। परिवेश के प्रति जब अनासक्ति का भाव महात्मा गौतम बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण हो या मरणकाल की मरण दशा में पहुँचे हुये कृष्ण का थका–मांदा चिन्तन हो–इन सबमें अलगाव की अनुभूति ऐसी दरारें हो जाती है जिनके कारण अलगाव का अनुभव होने लगता है। तब व्यक्ति, एक अज्ञात भय के कारण आत्म सम्पुटित हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लेखक मनुष्य के व्यक्तित्व को समकालीन दृष्टि से विवेचित करते हैं। आन्तरिक व्यक्तित्व की दृष्टि से मनुष्य प्रायः तीन प्रकार के होते हैं–पहले प्रकार का व्यक्ति परिवेश के साथ घुल–मिलकर रहता है, वह परिवेश के अनुकूल नहीं बनता है, बल्कि वह परिवेश की प्रतिकूलताओं को ही तोड़ने का प्रयास करता है। इस प्रकार के व्यक्ति में इतना साहस होता है कि वह अपने आन्तरिक मन और बाह्य परिवेश के बीच निरन्तर टकराव में भी जीवित रहता है। तीसरे प्रकार का व्यक्ति न केवल अपने को परिवेश के अनुकूल बना पाता है और न परिवेश को तोड़ने की हिम्मत रखता है। वह केवल परिवेश से विमुख होकर आत्मोन्मुख हो जाता है। वह अपने चारों तरफ फैले हुये शेष परिवेश से अपने को कटा हुआ महसूस करता है। इस तरह उपरिनिर्दिष्ट तीसरे प्रकार का व्यक्ति अलगाव की स्थिति में ही जीना चाहता है। उसकी पूरी चेतना आत्म निर्वासित हो जाती है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक डॉ0 श्रीप्रकाश यादव की स्थापना है कि अकेलापन मानसिक संवेदना के रूप में अज्ञेय के कथा साहित्य में एकाकीपन, तनाव, अजनबीजन और फालतू होने की प्रवृत्ति के साथ समन्वित है। यह अकेलेपन की स्थिति नारी जीवन की प्रबलतम संवेदना है, जिसे वह हर रूप में झोलते हुये ''अज्ञेय'' के कथा साहित्य में दर्शित है। ''शरणदाता'' कहानी की जेबू, मुस्लिम–मुस्लिम भाई–भाई'' की सकीना, अमीना और जमीला की अकेलेपन की संवेदना मन के एक लकीर की तरह खींची रह गयी है।

डॉ0 श्रीप्रकाश यादव की पाँच अध्यायों में विभाजित प्रस्तुत पुस्तक कथा साहित्य में नारी की इन्हीं कुछ आधुनिक स्थापनाओं को व्याख्यायित करती साहित्य के विविध समकालीन चर्चाओं को उजागर करने का कार्य करती नजर आती है। आशा है कि साहित्य में रूचि एवं शोध करने वाले छात्रों को यह पुस्तक पसंद आएगी।

पुस्तक का नाम – अज्ञेय का कथा साहित्य : नारी मानसिकता के आयाम
सम्पादक – डॉ0 श्रीप्रकाश यादव
प्रकाशक – निखिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 37, शिवराम कृपा विष्णु कालोनी शाहगंज, आगरा–10
ISBN-978–93–86281–32–6 मूल्य–रू. 800.00 पृ0–160 संस्करण–2017
सहायक आचार्य–हिन्दी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

शंख घोष की चयनित कविताएँ

अनुवाद – डॉ0 जयश्री पुरवार
डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव

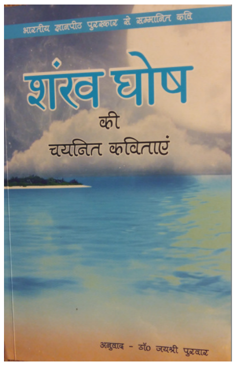

साम्यवादी जीवन दर्शन से प्रभावित एवं महिला सशक्तिकरण की प्रबल पक्षधर डॉ0 जय श्री पुरवार के साहित्य में विविधता देखने को मिलती है। उन्होंने स्वतन्त्र लेखन के अलावा अंग्रेजी एवं बांग्ला से हिन्दी में और हिन्दी से बांग्ला में अनेक पुस्तकों का अनुवाद किया है। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित डॉ0 जयश्री पुरवार वर्तमान में अनुवाद एवं यात्रा संस्मरण में व्यस्त है।

डॉ0 जय श्री पुरवार ने भारतीय साहित्य के सर्वोच्च सम्मान से अलंकृत श्री शंख घोष की प्रमुख कविताओं का हिन्दी में अनुवाद (शंख घोष की चयनित कविताएँ) नाम से किया है। वास्तव में देखा जाए तो श्री शंख घोष के साहित्य सृजन ने आधुनिक कविता की नई पीढ़ी को प्रभावित किया है। शंखघोष जीवन–मर्म से कविताएँ लिखते हैं, और नई ऊर्जा–ऊष्मा में पिरोते है। कवि के रूप में उनकी ख्याति अन्य सभी प्रकार की पद्धतियों पर भारी पड़ती है। उन्होंने कोलकाता की गलियों – सड़कों में जो जीवन जैसा देखा–जिया समय–समय पर उससे कविता सहज भाव से बुनती चली गयी। जीवन प्रसंगो से उन्होंने सिर्फ कोलकाता के जीवन की ऊर्जा–ऊष्मा अपनी कविता में नहीं उतारी बल्कि उन प्रसंगों से भी बटोरी संजोई जो जीवन मर्म और मनुष्य हृदय की अतल गहराइयों को छूते हैं और हमें आध्यात्मिक प्रतीतियों की ऊँचाई पर भी ले जाते हैं। प्रकृति व उसके विभिन्न उपादान उनकी कविता में सहज रूप में रचे बसे हैं। श्री शंख घोष ने आधुनिक समाज की विसंगतियों, विडम्बनाओं और मानव के प्रति मानव की उदासीनता के साथ जीवन के कटु सत्य को बिना किसी आडम्बर के साथ साहसपूर्वक सामने रखा है। उनकी कविताएँ मौनता में भी मुखरता का गान करती हैं। उनकी प्रभावपूर्ण लेखन एवं अभिव्यक्ति शैली में वर्तमान मानव समाज और मानव अस्तित्व की कृत्रिमता के प्रति एक गहन विक्षोभ दिखाई पड़ता है। डॉ0 जयश्री पुरवार ने उनके रचना कोष से 'बना दो भिखारी' अकेला, जल एवं चेहरा ढक जाता है विज्ञापनों से इत्यादि प्रमुख कविताओं का हिन्दी में अनुवाद किया है। एक गहन अनुभवपरक जीवन की वास्तविकता और विचार व दर्शन की उच्चता जो इन कविताओं में दिखाई देती है जो जन सामान्य से भी गहराई तक जुड़ी हुई है। प्रस्तुत संग्रह में डॉ0 जयश्री पुरवार ने एक सच्चे अनुवादक के धर्म का निर्वाह करने हुए यह ध्यान रखा कि कविताओं का आकार, अर्थ और मूल–प्रवाह बना रहे।

वर्तमान भारतीय राजनीति ने सामाजिक समरसता को विघटित किया है। व्यक्ति के दुख–दर्द से बढ़कर उसका राजनैतिक दल हो गया है। मानवीय संवेदना के प्रत्येक पहलू को राजनैतिक चश्में से देखा जाता है। इस दृष्टि से उनकी कविता 'तुम किस दल में हो' महत्वपूर्ण है। कवि घोष ने विघटित मानवीय मूल्यों को भी अपनी कविता में अभिव्यक्ति किया है। प्राचीन मूल्यों के विघटन से व्यक्ति अकेलेपन की पीड़ा से ग्रस्त है, अकेलापन व्यक्ति को कैसे घर से बाहर कर देता है, जिसकी अभिव्यक्ति उनकी कविता 'घर–बाहर' में अभिव्यक्ति हुई है।

प्रस्तुत संग्रह में अनुवादक ने पश्चिमी भोगवादी संस्कृति से प्रभावित प्रेम एवं स्वार्थ के विकृत रूप को भी अपनी कविता 'भिखारी बनाती हो पर तुम तो वैसी नही हो' में व्यक्त किया है। उन्होनें मानव के संघर्षमय जीवन को उसकी सारी विसंगतियों के साथ चित्रित किया है, साथ ही साथ मानव के प्रति मानव की उदासीनता को भी अपनी विभिन्न कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है। जीवन के कटु सत्य को साहस के साथ कहना उनकी विशिष्ट उपलब्धि है।

इस दृष्टि से उनकी कविता 'चेहरा ढक जाता है' विज्ञापनों से महत्वपूर्ण होने के साथ ही समकालीन दृष्टि से प्रासंगिक है। कुल मिलाकर पुस्तक अपने विजन को विषय वस्तु की दृष्टि से विल्कुल स्पष्ट करती हुई अनुवाद की सार्थकता को जीवंत करती हुई 81 कविताओं के माध्यम से समकालीन आधुनिक समाज की विसंगतियों, विडम्बनाओं और मानव के प्रति मानव की उदासीनता के साथ–साथ जीवन के कटु सत्य को बिना किसी आडम्बर के साथ साहसपूर्वक दो टूक शब्दों में व्यक्त करती हैं। प्राध्यापकों, शोध–छात्रों एवं जिज्ञासु पाठकों को यह पुस्तक उपयोगी होगी, ऐसी मेरी धारणा है।

पुस्तक का नाम – शंख घोष की चयनित कविताएँ

लेखक – श्री शंख घोष

अनुवाद – डॉ0 जयश्री पुरवार

प्रकाशक – दिव्यांश पब्लिकेशन्स, एम0आई0जी0 222, फेज–1, एल0डी0ए0, टिकैतराय कालोनी, लखनऊ–226017

ISBN : 978–93–84657–39–0 मूल्य – रू. 200.00 पृ0–94 संस्करण : 2017

अध्यक्ष – हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त

डॉ0 हेमा देवरानी

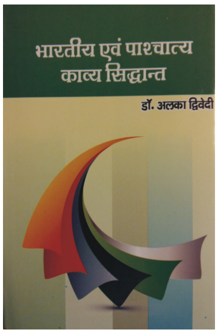

डॉ0 अलका द्विवेदी लेखन के क्षेत्र में एक जाना पहचाना नाम है। सांस्कृतिक एवं सामाजिक सरोकारों की प्रगतिवादी लेखिका समसामयिक क्षेत्रों में भी अपने निरन्तर लेखन के माध्यम से राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करवाती रही हैं। आपके लेखन में मौलिकता, वैज्ञानिकता के साथ–साथ मानव मूल्य तथा मनुष्यता की बात देखने को मिलती है।

लेखिका डॉ0 अलका द्विवेदी का मानना है कि भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त के संबंध में विविध विषयों में विपुल साहित्य उपलब्ध हैं। हजारों वर्ष के इस शास्त्रीय चिन्तन का अध्ययन एक बहुत बड़ी समस्या है कारण कि अनेक काव्यशास्त्र संबंधी ग्रंथों की रचना के बावजूद सम्पूर्ण विश्लेषण समस्याओं का निराकरण सहज रूप में नहीं हो पाता है।

प्रस्तुत पुस्तक में भारतीय शास्त्रीय विधाओं की ही तरह भारतीय काव्य सिद्धान्त का सम्पूर्ण चिन्तन क्रमशः सहज रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रारम्भ में भारतीय काव्य शास्त्र की सम्पूर्ण ऐतिहासिक परम्परा का अद्यतन मंथन इसके व्यापक बिन्दुओं तक व्याख्यायित किया गया है। हजारों वर्शों से लगातार चले आ रहे काव्य के गूढ़ विवादास्पद समस्याओं का निराकरण चिंतन के आधार पर सफलता से करने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में चर्चित सिद्धान्तों तथा वादों को जानने, उनके संबंध में चिन्तन मनन करके उनके विषय में विशेष दृष्टिकोण से पाश्चातय काव्य शास्त्रियों के सिद्धान्तों का गहन एवं सहजबोध गम्य अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त की पृष्ठभूमि पर चर्चा करते हुए डॉ0 अलका द्विवेदी लिखती हैं कि भारतीय साहित्य का अदि स्रोत ऋग्वेद माना जाता है। हम ऋग्वेद में जिस प्रांजल भाषा, भाव, विचार, दर्शन और आध्यात्म का समावेश देखते हैं, उससे यह कहना अनुचित न होगा कि इस ग्रन्थ–रत्न की रचना के पूर्व भी कुछ ग्रन्थों की रचना अवश्य हुई होगी।

पुस्तक की मानता है कि सर्वप्रथम भले ही राजशेखर ने अपने सुप्रसिद्ध मान्य ग्रन्थ 'काव्य मीमांसा' की रचना कर साहित्य के शास्त्र होने की उद्घोषणा कर 'समीक्षाशास्त्र' का मार्ग प्रशस्त किया हो, किन्तु इसके बहुत पहले 'अलंकार–शास्त्र' का सृजन हो चुका था। वास्तव में इस शास्त्र के जन्म के साथ ही समीक्षाशास्त्र का जन्म हो गया था। ऐसा जान पड़ता है कि वैदिक साहित्य के अध्ययन के पश्चात् हमारे प्राचीन आचार्यों का ध्यान सर्वप्रथम अलंकारों की ओर ही गया। कोई समय था, जब काव्यमयी भावाभिव्यंजना के लिए ''अलंकार–तत्व'' को विशेष महत्ता प्राप्त थी। अतः सर्वप्रथम 'अलंकार–शास्त्र' की रचना स्वाभाविक थी। भामह अलंकार–शास्त्र के आचार्य माने जाते हैं, किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इनके बहुत पहले से ही अलंकार काव्य का अत्यधिक आवश्यक उपकरण माना जाता रहा है और सम्भवतः इसलिए भामह ने अपने ग्रन्थ को काव्यालंकार संज्ञा से अभिहित किया था। इनके पश्चात् उद्भट, वामन और रूद्रट ने भी इसी शैली पर अपने ग्रन्थों को क्रमशः काव्यालंकार–सार–संग्रह (काव्यालंकार का टीका) तथा 'काव्यालंकार' (वामन और रूद्रट की कृतियां) की संज्ञा प्रदान की। आचार्य कुन्तक ने भी अपने ग्रन्थ 'वक्रोक्ति जीवित' को काव्यालंकर की संज्ञा से ही अभिहित किया है। यद्यपि काव्यालोचन की दृष्टि से न केवल अलंकार, वरन् रस, ध्वनि, गुण–दोष, शब्द–विन्यास आदि पर भी विचार करना आवश्यक है, तथापि कुमार स्वामी के अनुसार काव्य में अलंकार' तत्व का ही प्रधान्य होता है, अतः आलोचना–शास्त्र को अलंकार' शास्त्र कहना अनुचित नहीं है। वास्तविकता यह है कि अलंकार के ही गहन और विस्तृत अध्ययन ने जहाँ वक्रोक्ति को जन्म दिया, वहाँ पर्यायोक्ति, तुल्योगिता, दीपक आदि अलंकारों द्वारा काव्य में प्रतीयमान अर्थों में पूर्ण 'ध्वनि–सिद्धान्त' का भी सूत्रपात किया। अतः आलोचना–शास्त्र अथवा साहित्य शास्त्र को एक बड़ी सीमा तक अलंकार–शास्त्र भी कहा जा सकता है। आचार्य वामन ने सौन्दर्यालंकार कहकर अलंकार को सौन्दर्य का प्रतिनिधित्व प्रदान कर दिया।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखिका ने सत्रह अध्यायों के माध्यम से भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्तों के समकालीन सरोकारों से सम्बन्धित विषय को गम्भीरता से उठाया गया है। आशा है कि हिन्दी विषय पर शोध करने वाले छात्रों को यह पुस्तक अवश्य पसंद आएगी।

पुस्तक का नाम – भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धान्त
लेखक – डॉ0 अलका द्विवेदी
प्रकाशक – ज्ञानोदय प्रकाशन, 6–7 जी मानसरोवर काम्पलेक्स पी0 रोड कानपुर, 208012
ISBN-978–93–85812–03–3 मूल्य – रू. 300.00 पृ0 – 155
संस्करण : 2017

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बाबूराम शोभाराम कला महा., अलवर, राजस्थान

PEER REVIEW BOARD KRITIKA

डॉ0 वाई0 पी0 सिंह
प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
लखनऊ, विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415914942
E-mail - yp.hindi.indology @gmail.com

डॉ0 देवेनबरा
एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग
गुवाहटी कालेज बमुनिमाईदम
(BAMUNIMAIDAM), गुवाहटी–781021
दूरभाष न0–9435046970
E-mail - debenbora@gmail.com

डॉ0 मुकेश कुमार मालवीय
असिस्टेंट प्रोफेसर–विधि विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
दूरभाष न0–8004851126
E-mail - mukesh9424@gmail.com

डॉ0 किशन यादव
एसोसिएट प्रोफेसर–राजनीति विज्ञान विभाग
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9454054899
E-mail - dr.kishanpolsc@yahoo.com

डॉ0 पुष्पेन्द्र मिश्रा
एसोसिएट प्रोफेसर–वाणिज्य विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास
विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415103233
E-mail - pushpendramishra.dsmru@gmail.com

डॉ0 राजेश्वर यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर–दर्शनशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9415789303
E-mail - rpyadavlu@gmail.com

डॉ0 आशुतोष पाण्डेय
एसोसिएट प्रोफेसर–लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान विभाग
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
दूरभाष न0–9411863763
E-mail - ashuparsiya@rediffmail.com

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एंड सोशल साइंसेज
ISSN : 0975-0002 वर्ष : 10, अंक : 20, जुलाई–दिसम्बर 2017

रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स रूल्स 1956 (सेन्ट्रल) के अन्तर्गत
'कृतिका' – हिन्दी अर्द्धवार्षिक के सम्बन्ध में स्वामित्व
तथा अन्य विवरण विषयक जानकारी

घोषणा–पत्र

(फार्म–4)

1.	प्रकाशन स्थल	:	1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
2.	प्रकाशन अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
4.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
5.	सम्पादक का नाम	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
	नागरिकता		भारतीय
	पता		1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	:	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) उ. प्र.

मैं डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव एतदद्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी तथा विश्वास के अनुसार दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : जुलाई 2017

हस्ताक्षर
डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

मुद्रक : महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स,
15, आजाद नगर, उरई (जालौन)

☞सम्पादक : डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

RNI : UPHIN/2008/30136 ISSN : 0975-0002

lnL;rk i=d

n'k&n'kkUrj fe=k dk 'kks/kijd vuq"Bku

कृतिका

Ñfrdk bUVjus'kuy fjlpZ tuZy vkQ gkQ b;jyh ºz;qfefuVht ,.M lks'ky lkbalst

ISSN : 0975–0002 o"kZ % 10] vad % 20] tqykbZ&fnlEcj 2017

¼lkfgR;] dyk] laLÑfr] vk;qosZn] ekufodh ,oa lekt foKku dh v)Zokf"kZd vUrjkZ"Vªh; 'kks/k if=dk½

प्रधान सम्पादकीय कार्यालय – 303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

पत्रांक– दिनाँक–

श्रीमान सम्पादक, कृतिका

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर,

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, मोहान रोड, लखनऊ, उ.प्र. 226 017

महोदय,

निवेदन है कि मैं या हमारा विश्वविद्यालय/महाविद्यालय कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ हाफ इयरली "ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज, ISSN : 0975-0002, RNI: UPHIN/2008/30136 ¼lkfgR;] dyk] laLÑfr] vk;qosZn] ekufodh ,oa lekt foKku dh v)Zokf"kZd vUrjkZ"Vªh; 'kks/k if=dk½ dh okf"kZd laLFkkxr* lnL; cuuk pkgrk gSA मैं या हमारी laLFkk lEiknd Ñfrdk] ds uke 0;fDrxr ;k laLFkkxr lnL;rk "kqYd Hkkjrh; LVsV cSad] eq[; 'kk[kk y[kuÅ dk Mªk¶V ;k [kkrk la- 30358537228] IFSC No. SBIN0000125 esa udn tek dj jgk gw ;k jgh gwA

नाम एवं पद का नाम ....

संस्था का नाम ....

पत्र व्यवहार का पूरा पता पिन कोड सहित ....

फोन/मो. नं. .... EMAIL..

स्थान एवं दिनांक ....

हस्ताक्षर

iz/kku lEikndh; dk;kZy;

Mk- ohjsUnz flag ;kno

303 तीसरा तल, टाईप 5, विश्वविद्यालय परिसर,

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,

मोहान रोड, लखनऊ, 226017

दूरभाष–07607782917, 09415924888

Email : dr.virendrayadav@gmail.com

Email : kritika_orai@rediffmail.com

Webside :www.kritika.org.in

izcU/ku

vkjk/kuk cqDl

(प्रकाशक एवं वितरक)

124/152–सी ब्लाक, गोविन्दनगर,

कानपुर–208006, उ.प्र.

दूरभाष – 09935007102

Email : aradhanabooks@rediffmail.com

Webside :www.kritika.org.in

कृतिका पत्रिका की वार्षिक संस्थागत सदस्यता से तात्पर्य प्रिन्टेड उतने मूल्य की प्रति या प्रतियाँ (किसी भी अंक की)

आराधना ब्रदर्स कानपुर के नवीनतम् प्रकाशन

पुस्तक	लेखक	मूल्य
स्वर्ग की अदालत	डॉ. परशुराम शुक्ल	300/-
चिकित्सा विज्ञान की खोंजे	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
हिन्दी बाल साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन	डॉ. परशुराम शुक्ल	500/-
बाल साहित्यकारों की कहानी उन्हीं की जुबानी	डॉ. परशुराम शुक्ल	400/-
हिन्दी बालकाव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	मनोज कुमार	400/-
हिन्दी का बाल लोक साहित्य	डॉ. मीना सिंह गौर	400/-
बाल सतसई प्रबोधिनी	स्वामी विजयानन्द	600/-
सतसई काव्य परम्परा और बाल सतसई	डॉ. संगीता जगताप	550/-
हिन्दी और ओड़िया बाल कविता का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. निर्मला जेना	750/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में वैज्ञानिक चेतना	डॉ. डी.आर. राहुल	300/-
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी बाल कविता में युगचेतना	डॉ. उमा सिरोनिया	600/-
बाल कविता में सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना	डॉ. शिरोमणि सिंह 'पथ'	400/-
हिन्दी बाल साहित्य में मनोरंजन एवं नैतिकता	डॉ. रामशंकर आर्य	400/-
बाल समस्याएँ कारण और निदान	जयजयराम आनन्द	500/-
हिन्दी बाल कविता की प्रवृत्तियाँ	डॉ. उदय सिंह जाटव	500/-
मयंक का हिन्दी बाल साहित्य	डॉ. कंचनलता यादव	500/-
डॉ. अंबेडकर : वैचारिकी एवं दलित विमर्श	डॉ. कालीचरण स्नेही	600/-
स्वयंसिद्धा	डॉ. तनूजा चौधरी	250/-
परसाई समय और सापेक्षता	डॉ. तनूजा चौधरी	250/-
मॉरिशस की कहानियों में भारतीय संस्कार–जीवन मूल्य	डॉ. तनूजा चौधरी	300/-
साठोत्तरी लेखिकाओं का स्त्री–विमर्श	डॉ. तनूजा चौधरी	500/-
हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के विविध सरोकार	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी समस्यायें आधुनिकताबोध	डॉ. सविता मसीह	500/-
मैत्रेयी पुष्पा के कथा साहित्य में नारी	डॉ. भारती	400/-
मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य	डॉ. प्रियंका रानी	400/-
डॉ. रामकमल राय सृजन सरोकार	डॉ. निशीथ राय	300/-
मृच्छकटिकम् में मानवाधिकार	डॉ. शुभांगी गायकवाड़	500/-
सूरदास एवं अक्षर अनन्य का काव्य	डॉ. पी.एस. गोयल	500/-
संत परम्परा की खोज	डॉ. कमलेश सिंह नेगी	400/-
आधुनिक संस्कृत साहित्य में समकालीन समस्यायें	डॉ. रेखा शुक्ला	300/-
संस्कृत वांड्मय में वर्णित भारतीय संस्कृति एवं कला	डॉ. रेखा शुक्ला	1200/-
आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी और उनकी समीक्षा दृष्टि	डॉ. अजिता दीक्षित	250/-
कथाकार भगवती चरण वर्मा के कथा साहित्य का शास्त्रीय अध्ययन	डॉ. अजिता दीक्षित	600/-
मुकुट बिहारी 'सरोज' और डॉ. सीता किशोर खरे के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. प्रगति	600/-

हिन्दी व्यंग्य लेखन में शरद जोशी का योगदान	डॉ. शिवशंकर यादव	400/-
सौन्दर्यबोध और भारतीय चिन्तन परम्परा	डॉ. पद्मा शर्मा	400/-
हिन्दी महिला उपन्यास लेखन में स्त्री आन्दोलन	डॉ. मुनेश यादव	500/-
शशिप्रभा शास्त्री के कथा साहित्य में नारी	डॉ. अनिता शर्मा	500/-
वैश्विक परिदृश्य में वैदिक ज्ञान–विज्ञान	डॉ. पुष्पा यादव	900/-
मुक्तिबोध सृजन के विविध	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	700/-
ज्योत्सना	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
जगत् सत्यं ब्रह्म नास्ति	कामता प्रसाद विश्वकर्मा	250/-
साधना सफल है! (कहानी संग्रह)	सीताराम यादव	250/-
प्यासे केन के फूल	कुँवर वैरागी	500/-
यात्रा (परिधि से केन्द्र तक)	हरीराम गुप्ता 'निर्पेक्ष'	250/-
हिन्दी भाषा एक अबाध प्रवाह	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
आधुनिक हिन्दी कविता में लोक चेतना	डॉ. मीता, डॉ. सुमन	350/-
रेणु का कथा साहित्य	डॉ. सुरेश चन्द्र मेहरोत्रा	500/-
रामचंद्रिका में वक्रोक्ति सिद्धांत का अनुशीलन	डॉ. ममता गंगवार	500/-
बुन्देलखण्ड का साहित्य, कला और संस्कृति	डॉ. परशुराम शुक्ल	350/-
बुंदेलखण्ड के साहित्यकारों का साहित्यिक अवदान	डॉ. छाया राहुल	700/-
बुन्देलखण्ड की साहित्य सर्जना	डॉ. किरण शर्मा	350/-
आधुनिक बुन्देली काव्य	डॉ. कालीचरण स्नेही	300/-
जायसी और कबीर : सामासिक संस्कृति के संदर्भ में	डॉ. डी.आर. राहुल	600/-
समीक्षा रेखायें	डॉ. कामिनी	400/-
उरैन	डॉ. कामिनी	350/-
आलेख	डॉ. कामिनी	350/-
हाशिये पर (कहानी संग्रह)	डॉ. कामिनी	150/-
संस्कार गीत और लोक जीवन	डॉ कामिनी	200/-
सिर्फ रेत ही रेत	डॉ. कामिनी	100/-
स्थान नाम बोलते हैं	डॉ. कामिनी	75/-
दतिया जिले में पत्र–पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. कामिनी	120/-
वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नारी	डॉ. रामप्रकाश जाटव	350/-
चिड़ियाँ चुग गईं खेत (लघुकथा संग्रह)	डॉ. राज गोस्वागी	300/-
सुनहरी धूप (काव्य–धारा)	मंजू एस. सिंह	200/-
सबके अपने अमित...	सं. डॉ. निरंजन कुमार	300/-
गुलदस्ता	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	350/-
बंशी उठी पुकार	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	250/-
प्रदोष नृत्य	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	250/-
मृत्यु पर विजय	डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा	300/-
रामाश्रय (खण्डकाव्य)	डॉ. हरीश चन्द्र शर्मा	500/-
प्रेमचन्द्र युगीन उपन्यास लेखिकाएँ और उनका रचना संसार	डॉ. संध्या शर्मा	150/-

हिन्दी यात्रा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डॉ. संध्या शर्मा	500/-
स्वच्छन्द काव्यधारा	डॉ. मीता अरोरा	600/-
'अंधेरे में' आख्यान का स्वरूप	डॉ. मीता अरोरा	200/-
पं. श्रीवर चतुर्वेदी : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति	डॉ. रामकिशोर यादव	500/-
जैनेंद्र का कथालोचन	डॉ. वन्दना श्रीवास्तव	350/-
'रामायण' और 'महाभारत' में राजनीतिक विचार	डॉ. कान्ती शर्मा	500/-
स्थानवाची नामों का समाज भाषा शास्त्रीय विश्लेषण	डॉ. कमलेश प्रजापति	350/-
प्रसाद नाट्य साहित्य में हास्य–व्यंग्य	डॉ. संगीता अग्रवाल	200/-
नयी कहानी : अस्तित्व एवं स्वरूप	डॉ. संगीता अग्रवाल	250/-
शिवानी के उपन्यासों में कूर्मांचलीय लोक संस्कृति	डॉ. अलका मिश्र	300/-
महाप्राण निराला : पुनर्मूल्यांकन	डॉ. प्रदीप मिश्र	400/-
श्रृंगार शिरोमणि का रस–भाव विवेचन	डॉ. प्रदीप मिश्र	500/-
शिवानी के उपन्यासों के पात्र	डॉ. सुषमा पुरवार	400/-
कालजयी नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र	डॉ. मंजुला श्रीवास्तव	400/-
भारतीय नारी का धर्मशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. पूजा श्रीवास्तव	300/-
महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक गैलीलियो गैलिली	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक बैंजामिन फ्रैंकलिन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक आइजक न्यूटन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
महान वैज्ञानिक सी.वी. रामन	डॉ. जगदीश त्रिपाठी	200/-
विज्ञान पहेलियाँ	चन्द्र प्रकाश शर्मा	200/-
मानव जीवन और पेड़ पौधे	डॉ. शिवानी शुक्ला	250/-
संतोष का फल	रघुपति सिंह	175/-
आसमान छूते विकलांग	सुखदेव सिंह सेंगर	200/-
भारत के अमर वीर	सुखदेव सिंह सेंगर	350/-
साहित्य के समुद्र गुरुदेव	सुखदेव सिंह सेंगर	250/-
तुम न आये सितारों को नींद आ गई	मंजुल मयंक	300/-
मेरी हम जिन्दगी मेरी हमशाइरी	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	200/-
सहमे सहमे अक्षर	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	300/-
अनाम सखे	डॉ. सुरेन्द्र प्रताप सिंह	150/-
गीत से नवगीत	डॉ. शुभा श्रीवास्तव	250/-
उर्वशी काव्य में नारी चेतना	डॉ. मीता अरोरा	200/-
उठी हाट के हम व्यापारी	रामस्वरूप	80/-
कहत ईसुरी और दास मलूका	डॉ. सीता किशोर	200/-
रहीम के आमूं सामूं	डॉ. सीता किशोर	200/-
सबका अंतरिक्ष	डॉ. सीता किशोर	150/-
इस दौर से गुज़रे हैं हम	डॉ. सीता किशोर	200/-
बुंदेलखंड की पूर्व रियासतों में पत्रपांडुलिपियों का सर्वेक्षण	डॉ. सीता किशोर	250/-

ग्वालियर संभाग में व्यवहृत बोली रूपों का भाषा अध्ययन	डॉ. सीता किशोर	200/-
नारी स्वर	ज्ञानचन्द्र गुप्त	200/-
पुरवा	मंजु सिंह	200/-
मनन और मूल्यांकन	डॉ. विश्वम्भरनाथ	250/-
साहित्यिक एवं सांस्कृतिक निबन्ध	डॉ. कैलाश नाथ द्विवेदी	150/-
जन्म जन्मान्तर	मंजु सिंह	200/-
महाकवि भवभूति के नाटकों में ध्वनि तत्व	डॉ. शिवबालक द्विवेदी	225/-
पं. बनारसी दास चतुर्वेदी व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. कालीचरण 'स्नेही'	400/-
वासुदेव गोस्वामी और उनका साहित्य	डॉ. श्रीमती गीता पाण्डेय	150/-
विचार–वीथी (निबन्ध–संग्रह)	डॉ. पुरुषोत्तम बाजपेयी	75/-
अपराधी कल्याण के विविध आयाम	डॉ. ए. एन. अग्निहोत्री	300/-
भदावरी बोली का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. श्यामसुन्दर सौनकिया	150/-
हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी	डॉ. हरिशंकर शर्मा	140/-
संस्मरण और संस्मरणकार	डॉ. मनोरमा शर्मा	60/-
ब्रजनंदन व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. ओमप्रकाश सिंह	60/-
दिव्यांग विभूतियाँ सामाजिक सरोकार	डॉ. विजय कुमार वर्मा	300/-
दिव्यांगता एक सामाजिक यथार्थ	डॉ. विजय कुमार वर्मा	300/-
भारत की विदेश नीति	मनोज कुमार यादव	600/-
पं. दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति विचार	डॉ. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय	500/-
पर्यावरणीय संकट एवं गाँधीवादी मूल्य	डॉ. शकुन्तला	700/-
ग्रामीण बैंकों की रोजगार सृजन में भूमिका	डॉ. नीरज यादव	600/-
टैगोर और रूसो की शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. अनीता यादव	350/-
स्वच्छ भारत अभियान (मुद्दे–समस्यायें–संभावनायें)	डॉ. अरविन्द शुक्ला	595/-
स्वच्छ भारत अभियान : चुनौतियाँ एवं अवसर	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
उभरती पर्यावरणीय चिंताएँ एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	600/-
पर्यावरण एवं अक्षय विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	650/-
वैश्विक पर्यावरण एवं सतत् विकास	डॉ. अरविन्द शुक्ला	595/-
नई सदी में पर्यावरण : चिंतन के विविध परिदृश्य	मनोज कुमार यादव	995/-
भारत में समावेशी एवं सतत् विकास	डॉ. सपना, डॉ. शुक्ला	850/-
भारत में उच्च शिक्षा दशा एवं चुनौतियाँ	डॉ. उमेश शाक्य	600/-
राष्ट्रवादी–मार्क्सवादी इतिहास लेखन महात्मा गांधी	डॉ. सुप्रिया वर्मा	500/-
भारत का समाजवाद : दशा एवं दिशा	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	500/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं वैचारिक विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवादी विमर्श	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं सामाजिक समरसता	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	600/-
डॉ. लोहिया का समाजवाद एवं अर्थ दर्शन	डॉ. यतीन्द्र नाथ शर्मा	500/-
भारतीय राजनीतिक–सामाजिक समस्यायें	डॉ.(श्रीमती) राजेश जैन	600/-
भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उ.प्र. की महिलाओं का योगदान	डॉ. संजू	400/-

राजपूत कालीन सामाजिक विषमताएँ	डॉ. प्रशांत सिंह	500/-
पंचायती राजव्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता	डॉ. अनीता	400/-
चाणक्य नीति : वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ. ममता गंगवार	600/-
विश्व पर्यावरण एवं राजनीतिक संघर्ष	डॉ. आर.के. त्रिपाठी	400/-
Communication Skills & Higher Education	Dr. Sapana Pandey	750/-
Environmental Issues & Sustainable Development	Dr. Arvind Shukla	600/-
Environmental Concerns & Clean India Campaign	Dr. Arvind Shukla	595/-
Swachh Bharat Campaign (Administrative Perspectives Issues & Challenges)	Dr. Arvind Shukla	595/-
Global Environment & Sustainable Development	Dr. Arvind Shukla	595/-
A Journey Into Religious Freedom	Fr. Jerom Paul	400/-
The Permanent Synod of the East	Fr. Jerom Paul	400/-
Dalit Politics in Uttar Pradesh : A Study of Bahujan Samaj Party (B.S.P.)	Dr. Ravi Ramesh Shukla	650/-
Khilafat Movement	Dr. Razia Nayab	500/-
Arun Joshi : An Exploration of the Self	Dr. Anjita Singh	500/-
Tourism Industry in Himanchal Pradesh	Dr. Tiwari	400/-
Modern English Poetry	Dr. Satish Kumar	400/-
Environmental Issues & Gandhian Value	Dr. Shakuntala	400/-
Evolution of National Consciousness in U.P.	Dr. Vijay Khare	500/-
History of Hindu Socio Religious Reform Movements in 19th Century	Dr. Vijay Khare	500/-
Cultural Aspect of Food & Nutrition	Dr. Geeta Mathur	500/-
Issues & Challenges Related to Family Dynamics in Modern Society	Dr. Geeta Mathur	1100/-
Trends Issues & Challenges in Physical Education	Dr. Madhu Gaur	995/-
Anne Sextion and Her Universe	Dr. Sapna Pandey	600/-
Speech Act analysis of Political Discourse	Dr. Kamalakar Jadhav	350/-
Critical Essays of Indian English Drama	Dr. R.T. Bedre	450/-
Socio Realism in Indian English Drama	Dr. R.T. Bedre	800/-

नोट : (1) हमारी संस्था महाविद्यालय/विश्वविद्यालय एवं सार्वजनिक पुस्तकालय हेतु समस्त विषयों में समस्त प्रकार की पुस्तकों की आपूर्ति आपकी माँग के अनुसार करती है।

(2) पुस्तकों का आदेश भेजते समय अपना नाम, पता, पिनकोड व फोन नं. लिखें या मेल करें।

आराधना ब्रदर्स प्रकाशक एवं वितरक

124/152-सी ब्लाक, गोविन्द नगर, कानपुर-208 006 (उ.प्र.)

दूरभाष : 09935007102, 09889121111, 07985242564 दूरभाष : aradhanabooks@rediffmail.com